हिन्दी के जनपद संत

शोभीराम संत साहित्य शोध संस्थान द्वारा संपादित

प्रेरक

जगजीवन राम

सम्पादकीय मण्डल

काका साहेब कालेलकर (अध्यक्ष)

सर्वज्ञ मुनि

देवेशचन्द्रदास (आई० सी० एस०)

बद्रीनाथ वर्मा (आई० सी० एस०)

ओमप्रकाश अग्रवाल

ए० चन्द्रहासन

भगवतशरण उपाध्याय

शचीरानी गुर्टू

निदेशक

इन्द्रनारायण गुर्टू

शोभीराम संत-साहित्य

शोध केन्द्र

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली :: वाराणसी :: पटना
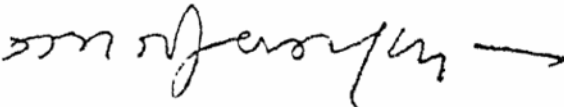
दो शब्द

भारत में जनपद संतों की—वैसे संतों की जिन्होंने जनता की ही भाषा और बोली में दर्शन और अध्यात्म के गूढ़ तथ्यों का प्रचार किया है—ही प्रधानता रही है, जो बिना किसी आत्म-विज्ञापन के अपने उपदेशामृत से जन-मानस को आप्लावित करते रहे हैं। इनका मुख्य कार्य प्रस्तुत वैयक्तिक 'स्व' को पराभूत करना है, इस कार्य में ये सफल होते रहे हैं।

जनपद सत भारत के विभिन्न प्रान्तों में हो चुके हैं। इनकी परम्परा अभी तक चली आ रही है, ये अपनी बोलचाल की भाषा में ही कहते और बोलते हैं। जो कुछ कहते हैं वह आदेश हो जाता है, जो कुछ बोलते हैं वह उपदेश बन जाता है। इनके 'बोलों' को अर्थात् बानियों में जीवन पर आश्चर्य-जनक प्रभाव डालने की क्षमता होती है।

तुलसी, कबीर, रैदास, दादू, मीरा आदि सभी जनकवि थे, उसी परम्परा में अनेकों कवियों ने अपनी वाणी की देन से देश का हित किया है और अब भी कर रहे हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में हिन्दी के कुछ जनपद संतों की वाणी का संग्रह है। इसी क्रम में यदि दो और कुछ खण्ड प्रकाशित किए जाएँ तो संभव है, हिन्दी के जनपद संतों का व्यक्तित्व व कृतित्व पाठकों के सामने और भी पूर्णरूप से आ सकेगा।

प्रस्तुत ग्रंथ श्रीशोभीराम संत साहित्य शोध संस्थान का प्रथम पुष्प है। इसी प्रकार आगे भी भारत की विभिन्न भाषाओं के जनपद संतों का व्यक्तित्व-कृतित्व की झांकी पाठकों के सामने प्रस्तुत करने का प्रयास सम्पा-दकीय मण्डल करता रहेगा। अनेक संत जो भारत के कोने-कोने में अब तक छिपे पड़े हैं और दुनियाँ की वाहवाही और ख्याति के मोह से निर्लेप आध्यात्मिक साधना में निरत रहे हैं उन पर खोज हो सकेगी और इस अछूते अक्षय खजाने से न जाने कितने ही अनमोल रत्न हमारे साहित्य-भण्डार को समृद्ध करेंगे।

[illegible signature]

१/२/६३.

क्रम

लोकयुग के लिए पाथेय

काका साहेब कालेलकर

भारत का सन्त साहित्य एक सागर है। हमारे ऋषि मुनियों ने संस्कृत में लिखा, दार्शनिकों ने सूत्र ग्रंथ बनाये, आचार्यों ने उन पर भाष्य लिखे, कवियों ने अच्छे-अच्छे प्रासादिक स्तोत्र लिखे, लेकिन यह सारा हुआ देववाणी संस्कृत में। अब यह देववाणी देवों की जैसी कृपण बन गयी और उसका सारा कृपा-प्रसाद विद्वानों के लिए रह गया।

जब बुद्ध भगवान जैसे परम कारुणिक सन्तों ने लोकवाणी का सहारा लेकर सामान्य जनता के लिये लिखना शुरू किया, बुद्ध भगवान के चन्द शिष्य जो बड़े विद्वान् थे, वैदिक ब्राह्मण थे, उन्होंने भगवान के पास जा करके कहा–"तथागत का उपदेश कल्याणकारी है ही, लेकिन वह सब लोकभाषा में होने के कारण उसकी प्रतिष्ठा नहीं है। अगर भगवान की इजाजत रही तो हम उसका वैदिक संस्कृत में अनुवाद कर दें।"

भगवान इस पर नाराज हुए। उन्होंने कहा—"वैदिक संस्कृत के प्रति ही जिनकी श्रद्धा है, वे मेरा उपदेश ग्रहण नहीं करेंगे। मैं तो बहुजन के लिए हूँ। इसलिये मेरी वाणी का संस्कृत में अनुवाद मत करो। लेकिन मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि लोगों की जो अन्यान्य लोकभाषाएँ हैं उनमें मेरी वाणी का अनुवाद करो ताकि मेरी बातें सामान्य जनता तक पहुँच जायें।"

तब से यह सिलसिला चालू है। सन्तों ने संस्कृत में कम लिखा। जो भी लिखा स्थानिक भाषा में, और वह भी पण्डिताऊ शैली में नहीं, किन्तु अनपढ़ जनता समझ सके ऐसी लोक शैली में।

गुजरात के एक सन्त साधु के बारे में मैंने सुना था कि वे घर में बैठे उपदेश नहीं देते थे। कहते थे—बेचारा किसान मेरे पास आने के लिये समय कहाँ से निकालेगा? उसे तो धूप में खेती कर अनाज पैदा करना है और दुनिया को खिलाना है। मैं ही उसके खेत में जाकर उसके पीछे पीछे चलूँगा। वह हल चलाकर जमीन को 'खेडे' (जोते) और मैं अपनी वाणी चला कर उसके दिल और दिमाग को 'खेडूँ' (जोतूँ)। दोनों अपनी अपनी खेती करेंगे। बैल के पीछे पीछे चलता था किसान, और किसान के पीछे पीछे चलता था साधु।

सन्तों ने राष्ट्र चारित्र्य की ओर भारतीय संस्कृति की ऐसी खेती की इसलिये भारत का अध्यात्म और भारत की ईश-भक्ति गाँव गाँव तक और लोगों के दिल दिल तक पहुँच गई। अनेक आक्रमणकारी राजाओं ने, विलासी राज-

पुरुषों ने, और धन लोभी पामर लोगों ने राष्ट्र का चारित्र्य बिगाड़ने में तनिक भी कसर नहीं की। तो भी भारत में अगर संतोष-प्रधान संस्कृति है, गरीबों में अगर निःस्पृहता और चारित्र्य की निर्मलता है, तो उसका कारण इन सन्तों की तपस्या और वाङ्मयी सेवा ही है।

महाराष्ट्र के एक सन्त ग्वालियर के दरबार में गये थे। सन्त अच्छे कवि भी थे और गायक भी थे। राजा ने अपनी बनायी हुई थोड़ी कविता सोहिरोबा नाथ को बताई। निःस्पृह सन्त ने कहा—यह तो सारी निःसार कविता है। मुझे इसमें दिलचस्पी नही है। जिसमें भगवान के गुणों का कीर्तन नहीं है ऐसी कविता से दुनिया का क्या भला होने वाला है ?

तुकाराम जैसे लोककवि लोकमत की पर्वाह नहीं करते थे। वे कहते थे इन लोगों को राजी करके मैं क्या करूँ ? इनके हाथ में है क्या ? वे अपने बल पर मुझे थोड़े ही बैकुण्ठ भेज सकते हैं ? और पांडुरंग की कृपा से अगर मैं बैकुण्ठ चला तो वे थोड़े ही मुझे रोक सकते हैं ? हम तो भगवान की दी हुई करुणा के कारण ही लोगों के भले के लिए उन्हें चार शब्द कहने आये हैं।

इन सन्तों ने अपनी अपनी जनता की भाषा में बहुत कुछ लिखा है। ये सन्त समाज की सेवा करते करते सारे देश में घूमते रहते थे। उन्होंने देखा कि सारे भारत के लिए अगर कुछ कहना है, लिखना है, तो सारे भारत में चलने वाली हिन्दी ही काम की है।

सन्त महाराष्ट्र का हो या गुजरात का, पंजाब का हो या बिहार का, अपने कुछ भजन तो हिन्दी में लिखेगा ही। महाराष्ट्र का प्राचीन संत नामदेव का पेशा था दर्जी का। वह गया पंजाब में। वहाँ जैसी हिन्दी उसके कानों तक पहुँच गई, उसी भाषा में उसने अपने गीत लिखे हैं। नामदेव का प्रभाव पंजाब में इतना था कि सिख लोगों के गुरुओं ने नामदेव के पचास से अधिक भजन अपने पवित्र ग्रन्थ 'ग्रन्थ साहब' में दर्ज किये हैं। सन्तों के मन में जात-पाँत का कोई महत्त्व नहीं था। सत्यनिष्ठा, सदाचार, परोपकार, सन्तोष, निःस्पृहता, दुःखनिवारण, ध्यान, भजन, नाम, स्मरण, गुरु की सेवा और अनाथों का रक्षण, यही था उनके उपदेश का सार। उनकी वाणी का सामर्थ्य भाषा के सौष्ठव के कारण नहीं था, उनकी भक्ति, उनका चारित्र्य, उनका अध्यात्म और लोक-कल्याण की उनकी तीव्र अभिलाषा यही थी उनकी पूँजी जिसके बल पर उन्होंने जनता के हृदयों में प्रवेश पाया और भारत जैसे विशाल और प्राचीन देश की करोड़ों की जनता के जीवन पर कायमी प्रभाव डाला।

यह कहा नहीं जा सकता है कि हमारे सब के सब सन्त जीवन-विमुख थे। उनके मन में जीवन का एक उच्च आदर्श था। उसके लिए पुरुषार्थ करने के लिए वे हमेशा तत्पर रहते थे। उन्हें निःसार जीवन में दिलचस्पी नहीं थी। जीवन

का सच्चा रहस्य पाने के बाद ही उन्होंने अपनी कविता लिखी है और जीवन की सफलता के अपने आदर्श अपने जमाने के लोगों के सामने धरे हैं।

लेकिन आज जमाना बदल गया है। सन्तों के आदर्शों के अनुसार चलने वालों की संख्या दिन-प्रतिदिन कम होती जाती है।

सन्तों ने जिस जीवन का चित्र जनता के सामने रखा उसकी ओर हमारा आदर है लेकिन हम उसको स्वीकार नहीं कर सकते। उस जमाने का शब्द था सन्तोष, आज का शब्द हैं पुरुषार्थ। उस जमाने का आदर्श था ईश-भक्ति, आज का आदर्श है लोक-सेवा।

तो भी सन्तों की वाणी आज भी हमारे जीवन में जामन के जैसा काम कर सकती है। सन्तवाणी के परिशीलन से चारित्र्य की बुनियाद मजबूत होती है और आज जिस लोकसेवा की दुहाई हम देते हैं उस सेवा का रास्ता भी कुछ हद तक सन्तवाणी से हमें प्राप्त होता है।

आजकल के जमाने का पुरुषार्थ अलग है। असंख्य नये नये क्षेत्र समाज ने अपने लिये उत्पन्न किये हैं। अब सन्तवाणी का अध्ययन करने की फुरसत ही किसको है? आज का जमाना गागर में सागर भर कर उसी का सेवन करने का है।

प्रस्तुत ग्रंथ 'हिन्दी के जनपद संत' इस जमाने की अत्यन्त महत्व की आवश्यकता की पूर्ति करता है। इसमें हिन्दी के जनपदीय सन्तों की वाणी संग्रहीत है। सारी पूरी वाणी एक ग्रन्थ में आ नहीं सकती, और आयेगी तो भी लोग पढ़ नहीं सकते। इसलिए कुछ चुनी हुई वाणी का ही यह संग्रह है। संतभक्त कहेंगे कि यह संग्रह छोटा है। मैं कहूँगा कि आज के जमाने में सबसे बड़ा दारिद्र्य है समय का। बहुत पृष्ठों के ग्रन्थ का अध्ययन करने के लिए समय निकालना आसान नहीं है।

इन सन्तों ने अपने समय की लोकभाषा में लिखा। आज वह भाषा पुरानी हो गई है। विचार व्यक्त करने की शैली में भी फरक हुआ है। इसलिए सन्तवाणी समझने में कुछ प्रयत्न की आवश्यकता तो रहती ही है।

इस कठिनाई को दूर करने के लिए श्रीमती शचीरानी गुर्टू ने 'व्यक्तित्व और कृतित्व' के शीर्षक में एक अच्छा विस्तृत परिचय लिखा है, जिसके द्वारा आज की भाषा में हम समझ सकें ऐसे रूप में सन्तों की वाणी हमें मिल रही है। इतनी मदद नहीं होती तो मेरे जैसा सन्तवाणी का पूरा लाभ नहीं उठा सकता। श्रीमती शचीरानी ने सन्तों के बोध के साथ इतनी सहानुभूति रक्खी है कि हम मानो संतों का हृदय ही अच्छे अनुपान के साथ हमारे हृदय में ले रहे हैं।

आज का जमाना जागतिक दृष्टि का है। अब केवल भारतीय जनता ही हमारी

दुनिया नहीं रही। जैसा कि कुरान-शरीफ में लिखा है भगवान ने हरेक देश के लिए, हरेक जमाने को आगाह करने के लिये, अपना कोई न कोई नबी-पैगम्बर भेजा ही है। जो बात पैगम्बरों के बारे में सच है, वही संतों के बारे में भी है। हर देश में और हर जमाने में पहुँचे हुए संत पैदा हुए ही हैं। उनके बारे में अगर हमारे पास कुछ भी जानकारी नहीं रही, तो हमारा ज्ञान अधूरा ही रहेगा। अध्यात्म के बारे में हमारी आस्तिकता बढ़ाने के लिए भी यह जानना जरूरी है कि जो अनुभव हमारे देश में हमारे संतों को हुआ है वहीं स्वतन्त्र रूप से दूसरी परिस्थिति में पले हुए दूसरे सन्तों को हुआ है।

सारी दुनिया के संत-जीवन और सन्त-साहित्य की जानकारी इकट्ठा करना आसान काम नहीं है। यह तो मानो विश्वकोश का ही काम है। सौभाग्य से विश्वकोश बनाने वालों की वृत्ति और शक्ति धारण करने वाले पण्डित भगवत-शरण उपाध्याय की कृपा इस ग्रन्थ को मिली है। उन्होंने प्राचीन काल से आज तक देश-देशान्तर में संत-जीवन का विकास कैसा होता आया है इसकी जानकारी अपने विषय-प्रवेश में हमें करा दी है। मेरे लिए यह क्षेत्र बिलकुल नया सा था। थोड़े ईसाई संत और बौद्ध संत के बारे में मेरी जानकारी थी। मुस्लिम संतों के बारे में भी थोड़ा कुछ सुना था। लेकिन डा. साहब ने जिस तरह से सारी दुनिया के सन्त-जीवन का चित्र हमारे सामने खड़ा किया है, मेरे लिये तो एक नया ही चित्र था। इसलिए व्यक्तिशः मैं उसके लिए उनके प्रति कृतज्ञ हूँ। डा० उपाध्याय की विद्वत्ता और श्रीमती शचीरानी की व्यापक और उत्कट सहानुभूति के कारण ही यह ग्रन्थ इतना उपादेय बना है।

अगर इसके साथ कठिन शब्दों का अर्थ देने का प्रबन्ध हुआ होता, तो पाठक प्रकाशक को अधिक धन्यवाद देते। इस संग्रह में महाराष्ट्र के संतों को अच्छा स्थान मिला है उससे मुझे विशेष प्रसन्नता होती है। सन्त सोहिरुबा अम्बियेकर की हिन्दी वाणी को उसमें स्थान मिलता तो और भी अच्छा होता। लेकिन दोष हमीं लोगों का है कि हम लोगों ने उस सन्त की वाणी हिन्दी जगत के सामने प्रस्तुत नहीं की।

सन्त-वाणी के अध्ययन से [illegible] को तो लाभ होगा ही, रसिकों की अभिरुचि को एक अच्छा बोध सन्तवाणी से मिलेगा यह लाभ भी कम नहीं है। साथ-साथ हिन्दी की शैली को भी जनपद सन्तों की शैली से बड़ा लाभ होगा। लोक जीवन से सम्बद्ध ऐसे असंख्य शब्द आज के हिन्दी से लुप्त हो गए इसमें पहला गुनाह उर्दू वालों ने किया। लोगों के जानपद शब्दों को तर्क करके उन्होंने अरबी-फारसी के शब्द खड़ी बोली में दाखिल किए और लोक-भाषा को लोक-जीवन से विमुख बनाया। उसके बाद जब उर्दू शैली को अराष्ट्रीय समझ कर चन्द लोगों ने अरबी-फारसी के शब्दों का बहिष्कार अथवा टालना शुरू किया तब उनकी

जगह जानपद शब्द लाने की क्षमता न होने के कारण कई लेखकों ने अरबी-फारसी शब्दों की जगह संस्कृत के शब्द भर दिये। इस तरह हिन्दी और उर्दू दोनों शैलियों ने सामान्य जनता के और लोक-शैली के शब्दों की उपेक्षा की। इस क्षति को अगर दूर करना है तो हमें जनपद साहित्य का ही सहारा लेना पड़ेगा। इन जनपद शब्दों में भी चन्द शब्द कालग्रस्त और दुरूह हो गए हैं, उनको फिर से प्रचलन में हम ला सकते हैं कि नहीं उसका विवेक तो करना ही होगा लेकिन यही दिशा है जो इस लोकयुग के लिए अनुकूल है। सन्तों की सेवा इस दिशा में भी राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने में सहायक होगी।

विषय प्रवेश

डॉक्टर भगवतशरण उपाध्याय

भारतीय सन्तों की परम्परा अधिकतर जनपदीय रही है, जन-जीवन का परिष्कार उनका इष्ट रहा है। भारतीय दार्शनिक या तो नगरों में या प्रव्रजित आश्रमों में रहते रहे हैं, पर सन्त अधिकतर जनपदों में रहे हैं। उनका आवास यदि नगरों में रहा भी है, तो जीवन उनका सर्वथा जनपदीय रहा है और वे लिखते-बोलते भी जन-साधारण की बोलियों में ही रहे हैं।

सन्तों की यह जानपदिक परम्परा 'यहूदियों को छोड़' वस्तुतः सार्वदेशिक है। सर्वत्र के सन्तों ने आत्म-परिष्कार, चिन्तन तथा भजन-स्मरण के अतिरिक्त अपने देखे सत्य के उपदेश के अर्थ अपने देश की जनता को खोजा है और अधिकतर वे नंगे पाँव गाँव-गाँव, जनपद-जनपद फिरते रहे हैं। जो बुद्ध के संबंध में सही है वही इस दिशा में अन्यत्र के सन्तों के सम्बन्ध में भी सही है—उनका जीवन भी भ्रमणशील रहा है। लोक-कल्याण के व्रतियों का इस विधि आचरण स्वाभाविक और अनिवार्य होता है।

भारतीय सन्तों के इस अध्ययन के संदर्भ में संसार के अन्य देशों-जातियों के सन्तों पर भी संक्षिप्त विचार कर लेना संभवतः समीचीन होगा। संसार की कदाचित् ही कोई प्रवृत्ति हो जो एकाकी जी कर समाप्त हो गई हो, अधिकतर प्रवृत्तियों ने आन्दोलन का रूप धारण किया है और, अतीत के यातायात सम्बन्धी सीमित साधनों के बावजूद, वे विश्वव्यापी आन्दोलन बन गई हैं। विविध साधुवर्गों (मोनैस्टिक आर्डर्स) के शीलाचार इसके सबसे मुखर प्रमाण हैं। उस पृष्ठभूमि की ओर भी संकेत उपादेय होगा।

इसी आशय से यहाँ विविध जातियों के विविध काल के सन्तों का उल्लेख किया जा रहा है। उनके परिवार साधारणतः इस प्रकार होंगे—१. सुमेरी-अक्कादी, २. मिस्री, ३. चीनी-जापानी, ४. ईरानी, ५. यहूदी, ६. ईसाई, ७. मुस्लिम (अभारतीय) ८. भारतीय—बौद्ध-जैन-हिन्दू, और ९. मुस्लिम (भारतीय)।

१. सुमेरी-अक्कादी सन्त

सुमेर अक्काद की प्राचीनतर संज्ञा है। ईराक में दजला और फ़रात नदियों का द्वाब, जो कभी मेसोपोतामिया कहलाता था, दो भागों में बँटा था। नदियों के मुहानों पर बसे नगर-राज्यों की सम्मिलित भौगोलिक-सांस्कृतिक संज्ञा सुमेर थी। सुमेर के निवासी, जिन्होंने संसार को वर्णमाला और लिपि दी, ग़ैरसामी थे, जिन पर ईसा से प्रायः ३००० वर्ष पूर्व अथवा कुछ बाद सामियों ने अधिकार कर लिया। नई जाति अक्कादी अथवा बाबुली कहलाई, बाबुल उसका प्रधान नगर था। जाति भिन्न होते हुए भी अक्कादी-बाबुली सुमेरियों की ही संस्कृति के उत्तराधिकारी हुए। मेसोपोतामिया का उत्तरी द्वाब असुर अथवा असूरिया कहलाया जहाँ की जाति, प्रधान देवता तथा राजधानी सबका नाम 'असुर' था। जिस प्रकार अक्कादी-बाबुलियों ने सुमेरियों को जीतकर उन पर अपनी सामी सत्ता स्थापित की, उसी प्रकार असुरों ने भी अक्कादी-बाबुलियों को जीत उन पर अपनी उनसी ही सामी सत्ता स्थापित की।

सुमेरी- अक्कादी-असूरी सभी जातियों के अपने-अपने सन्त थे, यद्यपि इन सन्तों की परिभाषा यहूदी-ईसाई अथवा मुस्लिम-हिन्दुओं की परिभाषा से सर्वथा एकाकार न थी। साधारणतः सन्तों में चार बातें विशेष रही हैं—आचरण की पवित्रता, त्याग तथा आत्म-बलिदान, लोककल्याण की भावना और दिव्य तथा अलौकिक चमत्कारपूर्ण क्रिया। सुमेरी-अक्कादी जीवन में इनमें से मात्र अंतिम ही लक्षित होता है।

ई. पू. ४००० से प्रारम्भ हो कर प्रायः ६०० ई. पू. तक घटनापूर्ण इतिहास स्वाभाविक है कि अपने आदि काल में सर्वथा धूमिल-अस्पष्ट दिखे। दिव्य पौरुष तथा अलौकिक पौराणिक क्रियाशीलता ही तब की साधुवृत्ति की परिचायक है। व्यक्ति वीरकार्यों द्वारा प्रगट होते हैं और उन्हीं के परिवेश में उनका व्यक्तित्व लिपटा रहता है। देवता और उनमें विशेष अन्तर नहीं हुआ करता और वे कालान्तर में, पश्चात्कालीन सन्तों की ही भाँति, पूजे जाने भी लगते हैं। इसी से कहा गया है कि बाबुली सन्तपन का अर्थ है **'मानस की शक्ति का सफल उपयोग, कामना की आहृत शक्ति में परिणति'**। इस दृष्टि

से उस संस्कृति के साधु-सन्त तब के पुरोहित ('पतेसी'), पुरोहित-राजा अथवा राजा ही हुआ करते थे। वीरकर्मा नृपति तब नगर–जनपद के देवकर्मों से एकाकृति स्थापित कर इस प्रकार अमनुजकर्मा हो जाते थे कि उनका सन्तवत् पूजन होता था। उन के प्रसंग में तब पवित्रता और देवोपमता में अन्तर नहीं हुआ करता था। अतीत के धूम से आच्छन्न उनकी सन्तवत सत्ता थी जिसके बल पर वे यथाकाम यथाकाल राज कर सकते थे। इस प्रकार के दिव्य वीर-कर्माओं की सन्त-तालिका ए. पीबेल ने प्रकाशित की है।[1] जो इस प्रकार है—

१. गालसुम—	राज्यकाल	६०० वर्ष
२. जु[illegible] –	,,	८४० ,,
३. अरीपी (अदेमे)	,,	७२० ,,
४. एताना (गड़रिया जिसने स्वर्ग तक की यात्रा की)	,,	६३५ ,,
५. पिलिकम	,,	३५० ,,
६. एन्मेनुन्ना	,,	६११ ,,
७. मेलानकिश	,,	९०० ,,
८. मेस्जामू	,,	—— ,,
९. मेस्किंगाशिर	,,	३२५ ,,
१०. एन्मेर्गन	,,	४२० ,,
११. लुगालबन्दा (गड़रिया)	,,	१२०० ,,
१२. दुमुज़ी	,,	१०० ,,
१३. गिल्गमेश	,,	१२६ ,,

'गिल्गमेश' महाकाव्य में वर्णित महात्मा एंगिदु (एंकि-दू) जड़भरत सरीखा है, वन्य, जांगल मैदान (स्टेपिज़) का बर्बर मानव जो न केवल वन-पशुओं के बीच रहता है बल्कि ऋष्यशृंग के पिता की भाँति उनसे यौन

[1]. यूनिवर्सिटी म्यूज़ियम, फ़िलाडेल्फ़िया में सुरक्षित; पब्लिकेशंस् ऑव दि बेबिलोनियन सेक्शन ऑव दि म्यूज़ियम ऑव दि यूनिवर्सिटी ऑव पेन्सिल्वेनिया, फ़िलाडेल्फ़िया, १९१४, खं० ५; और देखिए—जी. ए. बार्टन: आर्क्यालोजी ऐण्ड बाइबिल, १९१६, पृ. २६४ से आगे।

व्यवहार भी करता है। वह पिछले काल के दरवेशों की भाँति न केवल ऊन का बल्कि मात्र बाल का परिधान धारण करता है, मृगों के साथ शद्वल का आहार करता है, पशुओं के ही साथ प्रवहमान जलधाराओं से जल पीता है, जल धाराओं में ही रम रहता है। ऋष्यश्रृंग की ही भाँति अप्सरा एंगिदु को भी नगर को फुसला ले जाती है, वहाँ उसे सभ्य करने का प्रयत्न करती है, पर उसका सारा प्रयास निष्फल होता है और वह बन को लौट जाता है। अदापा भी उसी वर्ग का, यद्यपि शारीरिक शक्ति में एंगिदू से हीन, सन्त है, आदिम सन्त जो अमृतत्व खोजता है पर जिससे वह एक देवता की ईर्ष्या और अकृपा के कारण वंचित रह जाता है, पर जो आदम की भाँति ज्ञान का लाभ कर लेता है।

उत्नपिश्तिम जलप्रलय का बाबुली नायक है। उससे पूर्व का जलप्रलय का सुमेरी नायक गिल्गमेश का पूर्वज ज़िउसिद्दू है, पश्चात्कालीन अत्रखसिस (बाइबिल के नूह तथा [illegible] [illegible]कुली असुरब्राह्मण इति आहूतः—के मनु के समवर्ती तथा समकर्मा)। बाबुली आदर्शों के अनुसार ये सन्त थे क्योंकि ये अमनुजकर्मा, यथेच्छाचारी, यथाकाम समर्थ थे।

जिस साहस के साथ कबीर ने अपनी स्पष्टवादिता द्वारा अन्धविश्वासियों और उनके देवता दोनों को चुनौती दी थी दूर-इलू नगर के इशुम ने भी वेबिलोनिया के देवता को उसके अनैतिक आचार पर धिक्कारा था—"बाबुली निःसंदेह पक्षी हैं, और तू उन्हें पकड़ने वाला बहेलिया है। तू जाल द्वारा उन्हें विवश करता, बाँध लेता, नष्ट कर देता है।" बाबुल, निप्पुर, दूर-इलू आदि नगरों के निवासियों के कष्ट व्यक्त करता हुआ वह देवता उर्रा से कहता है— "उर्रा, तू तो [illegible] में भी अन्तर नहीं करता, सबको समान रूप से नष्ट कर डालता है, न्याय से विरत है तू।"

तक्कू (तगतुग, लैंगडन के पाठ के अनुसार) हिन्दी के सन्तों की ही भाँति जनपदीय था। उसका उल्लेख सर्वत्र कृषि के सम्बन्ध में हुआ है। वह कृषि के प्रति विशेष जागरूक सन्त था। बाबुली जगत् में भविष्यद्रष्टाओं का साका चलता था। फलित ज्योतिष का प्रचलन सबसे पहले संभवतः वहीं हुआ जहाँ से वह सर्वत्र फैला। एन्मेदुरंकी अक्कादी हिरो-राजा था जिसकी गणना सन्तों

में इस कारण की जाती है कि उसने जल पर तेल डालकर उसमें भविष्य पढ़ने की कला का प्रचलन किया। यह एक प्रकार की दैवी शक्ति मानी जाती है और दैवी शक्ति के आधार तब सन्त ही माने जाते थे। ताबू-उतुल-बेल (लालुरालिम) असाधारण धार्मिक था जिससे वह 'सन्त राजा' कहलाया। शील और आचार का कोई प्रतिबन्ध न था जिसे उसने न माना, कोई कर्त्तव्य न था जिसे उसने पूरा न किया।

जिन दिव्य पुरुषों का उल्लेख ऊपर हुआ है उनके ऐतिहासिक व्यक्ति होने में सन्देह किया गया है। उनका महत्त्व शीलविहित आचरण में है। पर इनके अतिरिक्त भी सुमेर और अक्काद में अनेक ऐसे सन्त-राजा हो गए हैं जिनकी ऐतिहासिकता प्रमाणित है। इनमें प्रधान लगाश का पतेसी (पुरोहित-राजा) गूदिया (ल० २५०० ई० पू०) था जो अपनी पवित्रता तथा साधुता के लिए विख्यात हुआ। अपने सन्तवत जीवन के कारण ही उसे देव-पद प्राप्त हुआ। ऊर आदि के अनेक राजा, उदाहरणतः दूंगी, बुर-सिन, गिमिल-सिन, इबी-सिन इसी प्रकार सन्तोपम-देवोपम हुए।

२. मिस्री सन्त

मिस्री इतिहास के प्रारम्भिक सन्त भी सुमेरी-अक्कादी सन्तों की ही भाँति देवोपम सन्तनिष्ठ शीलाचारप्रवण 'हिरो' अथवा वीर-राजा थे। इनका महत्त्व भी इनके देवकर्मा आचरण में था। तब के मिस्रियों का विश्वास था कि इनकी इष्टसिद्धि ने इन्हें ऐसी शक्ति प्रदान की थी कि चमत्कारों का प्रदर्शन इनके लिए अत्यन्त साधारण बात थी। इनमें से कुछ राजकीय अथवा राजस्तरीय व्यक्तियों का उल्लेख नीचे किया जाता है।

सन्तों की इष्टसिद्धिजनित प्रक्रिया में विशेष ख्याति तृतीय राजवंश के नृपति ज़ोसेर के मंत्री इम्होतेप की हुई। वह बड़ा ज्ञानी और पौरोहित्य कुशल माना जाता था। इम्होतेप के चमत्कारों को देख लोग उसे जादूगर कहने लगे थे। वस्तुतः वह सिद्धों की परम्परा में था। प्राचीनतम काल में जादूगरी और चिकित्सा में घना सम्बन्ध हुआ करता था, सो उसका चमत्कारों के साथ-साथ चिकित्सा-उपचार भी इष्ट रहा हो तो कुछ आश्चर्य नहीं। पिछले काल के भारतीय सन्तों की ही भाँति तभी से सन्तों द्वारा 'बानी' कही जाने लगी

थी। इम्होतेप भी रहस्यमय पहेलियाँ अथवा कहावतें (प्रावर्ब) कहने में बड़ा प्रवीण था। उसकी कहावतें सदियों बाद तक कही अथवा 'बानी' की तरह गाई जाती रहीं थीं।[1]

गाज़ा का महान् पिरामिड बनाने वाले खुफ़ू के संरक्षण में उबानेर नामक एक सन्त था जो चमत्कारों के प्रदर्शन में सिद्धहस्त था। वह जब मोम का घड़ियाल बनाकर नीलनद में फेंकता तब वह सजीव हो उठता था। इसी प्रकार मोम का एक घड़ियाल बना, उसे नीलनद में सजीव कर उसने अपनी पत्नी के जार से बदला लिया। जार घड़ियाल को मोम का समझ जब उसकी ओर बढ़ा तब घड़ियाल ने उसे दाढ़ों में भींच लिया।

खुफ़ू के एक पूर्ववर्ती राजा सेनेफ़ेरू की संरक्षा में रहने वाला चचमांख भी तब का प्रसिद्ध सिद्ध माना जाता है। उल्लेख है कि उसने एक बार एक झील के जल को अपनी सिद्धि से अभिभूत कर अद्भुत चमत्कार दिखाया। उस झील में स्वर्ण कंकण गिर गया था जिसे जाल द्वारा भी किसी प्रकार न निकाला जा सका। जब कोई बस न चला तब सिद्ध चचमांख की ओर लोगों की दृष्टि गई। चचमांख ने तत्काल झील के एक ओर का जल उसके दूसरे अर्धभाग पर चढ़ा दिया जिससे जलविरहित नग्न तल पर पड़ा कंकण सहसा चमक उठा।

खुफ़ू का ही कालवर्ती सन्त तेता था जिसकी मृत पशुओं को जीवित कर देने की शक्ति का उल्लेख हुआ है। खुफ़ू का काल इस प्रकार के सिद्धि-प्राप्त व्यक्तियों की बहुलता का था। निश्चय ही जो अद्यावधि खड़ा महान् पिरामिड निर्मित कर सकता था, उसके दरबार में हस्तलाघव के धनी व्यक्तियों की कमी न रही होगी। पर इस हस्तलाघव को समकालीन जनसमुदाय सिद्धि और ऐसे सिद्धों को दिव्य सन्त मानता था। खुफ़ू का प्रसाद-प्राप्त एक और सिद्ध तब विख्यात् हुआ था जो भविष्यकथन में बड़ा दक्ष था। उसने भविष्यवाणी की कि देवता रे के तीन पुत्र होंगे जो चतुर्थ राजवंश का अन्त कर देंगे। पाँचवें राजवंश के स्थापित होने से यह भी भविष्यवाणी सत्य हुई मानी जाती है। भविष्यवक्ता का नाम रुतेतेत था।

---

[1]. जे. एच. ब्रेस्टेड : हिस्ट्री ऑव ईजिप्ट, पृ० ११२ और आगे।

पंचम राजवंश के समय ल. २६०० ई. पू. प्रसिद्ध ऋषि प्ताहोतेप हुआ। उसने जो उपदेशप्रद बानियाँ कहीं वे दीर्घकाल तक मिस्र में प्रचलित रहीं थीं। वे आज भी पुराविदों के अध्यवसाय से सुरक्षित हैं। आज से कम से कम वे चार हज़ार वर्ष पूर्व की तो हैं ही, पर विद्वानों का तो अनुमान है, कि वे और भी पुरानी हैं।[1] प्ताहोतेप के उपदेशों को लाक्षणिक रूप से 'बानियाँ' कहने का मोह होता है क्योंकि न तो उस सन्त ने संसार से संन्यास लिया और न उसके उपदेशों ने उसे निःसार बताया। कबीर, तुलसी आदि की ही भांति उसने समाज का विसर्जन न कर उसे साधु बताया और उसी के परिवेश में रहकर जीवन को भोगना उसने कल्याणकर माना। सुखी और सफल जीवन जीने का संकल्प और उपाय उसके उपदेशों में मुखर है। इस प्रकार के आधुनिक विचारों का हज़ारों वर्ष पूर्ववर्ती इस सन्त के उद्‌गार निःसन्देह स्तुत्य हैं। उसकी आचारपद्धति कनफ़्यूशस् की आचार-पद्धति के सन्निकट है यद्यपि उस चीनी विचारक से वह हज़ारों वर्ष प्राचीन-तर है।

ईसा पूर्व २००० से भी पहले सन्त ईपूवेर हुआ जो अपने ज्ञान के लिए शताब्दियों तक विख्यात् रहा। सम्राटों को चुनौती देने वाले यहूदी भविष्यवक्ता नबियों से प्रायः डेढ़ हज़ार पूर्व का यह सन्त उन्हीं की परम्परा में जो उद्‌घोष कर गया है वह मिस्र के राजाओं के लिए दीर्घ काल तक भय तथा उदाहरण बना रहा। उसकी **'चेतावनियाँ'** कही भी उन्हीं से गई थीं।[2] ईपूवेर राजाओं के सन्निवेश में, मिनान्दर की सभा में नागसैन की परम्परा में, हुआ था। उसके विपरीत हुतानेप जनपदीय था, भारतीय परम्परा का संत और सूक्तियाँ भी उसकी उन्हीं की भांति जनसाधारण के कल्याण के लिए कही गई। उसका

---

[1]. **ब्रेस्टेड : डेवेलपमेंट ऑव रिलीजन ऐण्ड थॉट इन ऐन्शेन्ट ईजिप्ट, पृ० २११ और आगे; और देखिये, बार्टर : आर्क्यालोजी ऐण्ड दि बाइबिल, पृ० ४०९ और आगे।**

[2]. **ब्रेस्टेड : वही, पृ० २०४ से ; बार्टन : वही, पृ० ४२१ से।**

नाम ही 'वाचाल कृषक'[1] पड़ गया है। २००० ई० पू० से भी पहले उसने मिस्र के किसानों और निर्धनों की हितसाधक ऐसी वक्तृता एक प्रान्तपति के सामने दी कि उसने सम्राट् के पास उसे भेज उसकी मुखर वाणी सुनने का उससे विनीत आग्रह किया। सम्भवतः उसकी वक्तृताओं में संसार के प्रथम सामाजिक आदर्श अभिव्यक्त हुए थे। **'कहा मोको सीकरी सों काम'** की दिशा में आचरण करने वाले सन्तों की प्राचीन मिस्र में भी कमी न थी।

मिस्री साहित्य में एक **'दो भाइयों की कहानी'** है। उसमें दोनों में कनिष्ठ भाई, यूसुफ़ की भाँति, आज्ञाकारी और विश्वसनीय है, वासना के लोभ को जीत लेता है। फिर भी उस पर मिथ्या आरोप लगाया जाता है, पर यूसुफ़ के विपरीत, उसे दण्ड भोगना नहीं पड़ता। वह लेबनान निकल भागता है। वहाँ वह पहले वृक्ष बन जाता है, फिर पशु, और जब मिस्र लौटता है तब भाई के द्वार पर पौधा बनकर उग आता है[2]। इस प्रकार की अनेक कहानियाँ भारत के अनेक मुस्लिम सन्तों के संदर्भ में कही जाती हैं, ऐसी ही बाइबिल की पुरानी पोथी में भी कुछ उल्लिखित हैं, पर उन सबसे पहले बुनी जाने वाली यह कहानी साहित्य की परिधि से बाहर भी सन्तों के चमत्कारों भरे जीवन से सम्बन्धित अपनी अलग ताज़गी रखती है। इस कहानी का नायक, बन्धुओं में अनुज, वाता है।

इस प्रसंग में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक जान पड़ता है कि सन्तों की परम्परा का भी अपना विकास हुआ है। यह सही है कि विकास का वैज्ञानिक संदर्भ एक ही पिण्ड की आवयवीय परिस्थिति में प्रमाणित होता है और कि पश्चात्कालीन सन्त परम्परा की सुमेरी-अक्कादी सिद्धों-सन्तों से विशेष शृंखला नहीं बाँधी जा सकती, फिर भी उनमें अपनी एक सपिण्डता है जिससे विरत भी नहीं हुआ जा सकता। हमें एक बात का बराबर ध्यान रखना है, कि सन्तों की जनपदीय प्रवृत्ति, उनकी अज्ञानाभास की सादगी, दर्शन की प्रगति और विकास के पश्चात्, उसकी सावधि सत्ता में ही, कठिन की परिणति सरल

[1]. बार्टन : वही, पृ० ४१८ से।

[2]. डब्ल्यू० एम० एफ़० पेट्री : ईजिप्शन टेल्स, द्वितीय सीरीज़, पृ० ३६ से, देखिए बार्टिन भी, वही, पृ० ३०० से।

की भांति, जहाँ मुखरित हुई है, वहाँ इन सुमेरी-अक्कादी-मिस्री सन्तों की वाणी विकास के उद्गम पर खड़ी है। और इसी कारण वह उन सारी परिस्थितियों को अभिव्यक्त करती है, जो जाति की बाल जिज्ञासा के आदि काल में सर्वत्र लक्षित होती है। इसी से इन सन्तों का वातावरण शुद्ध जनकल्याण अथवा उपदेश या साम्प्रदायिक तत्वचेतना का नहीं, जिज्ञासा, प्रदर्शन, शक्ति आदि का है, प्रायः चमत्कार या जादूमिश्रित जो प्रारम्भिक सभ्यताओं में स्वाभाविक ही हुआ करता है।

फिर भी, यदि विचारतः देखा जाय तो, उनके बीच भी एक विकासक्रम की बुनियाद स्पष्ट हो जाएगी। जहाँ सुमेरी-अक्कादी महापुरुषों की स्थिति आभिजात्य तथा राजन्य होने से देवोपम हो गई है, राजस्तरीय होने से जन-संपर्क से भिन्न वीरलोक के धरातल पर घटित होती है, वहाँ मिस्र में दिव्य तथा अलौकिक राजन्य से भिन्न परिस्थिति में भी घटित होते हैं। 'पतेसी' पुरोहित और राजा के सर्वमान्य शक्तिधरातल से उठकर शक्ति मिस्र में जैसे उन विशिष्ट व्यक्तियों में, उनके साधे इष्ट के कारण जा बैठती है, जो अत्यन्त साधारण स्थिति के हैं। जादू के चमत्कार दिखाने वालों की जनपदीय, अराजकीय मिस्री स्थिति, 'पतेसी' अथवा वीर-राजकीय-दिव्य सुमेरी-अक्कादी स्थिति से भिन्न, ऐतिहासिक सन्तस्थिति के मध्य की-सी है। उस विकसित स्थिति से पूर्व की जिसमें **'प्राववों', 'चेतावनियों', 'वाचाल कृषक', 'दो भाइयों की कहानी'** आदि का वातावरण व्यक्त होता है। देवत्व-वीरत्व-राजत्व की, उलझी, अस्पष्ट अथवा आभिजात्य स्थिति से निःसन्देह जनपदीय, अनभिजात्य प्रजावर्गीय विकासोन्मुख प्रगति की यह परिचायक है। सन्त स्थिति का यह क्रम अब उस परम्परा की बुनियाद डाल चलता है जो विकसिक सभ्यता में प्रौढ़ होती है। इसी परम्परा के क्रम में, इसकी परिणति स्वरूप बाइबिल की पुरानी पोथी.के नबी-सन्तों की वाणी मुखर हुई जिसका उल्लेख हम अन्यत्र करेंगे।

३. चीनी-जापानी

चीन में दर्शन का युग प्रारम्भ होने से बहुत पूर्व उसकी सभ्यता और इतिहास का प्रारम्भ होता है। उसकी सहज परिवर्त्तनशील राजनीति में इति-

ह्रास और सभ्यता की प्रगति भी अनिवार्य थी जिससे विचारों के पारस्परिक संघर्ष तथा नूतन पल्लव की भी प्रभूत और स्वाभाविक संभावना थी । अनेक राजवंशों की आनुक्रमिक प्रगति ने भी उसके इतिहास में विविधता प्रगट की । पर यही राजवंशीय आनुक्रमिक प्रगति मिस्र में होती हुई भी वह वहाँ विविधता न ला सकी । कारण कि जहाँ मिस्र में एक तंग घाटी में राजवंश बदलते गए, जातियों की विविधता के अभाव में भावों और विचारों की विविधता का भी अभाव रहा, चीन के प्रशस्त देश में केवल राजवंश ही नहीं बदलते गए बल्कि जातियों का अभ्युदय और पतन भी होता गया, उनके पारम्परिक सांस्कृतिक संघर्ष में विचारों के पैटर्न भी तीव्रता से बदलते गए । और जो बदलता है वह नष्ट नहीं हो जाता—कम से कम जिज्ञासु इतिहास के वृत्त में—केवल अलक्ष्य हो जाता है, पर बना रहता है । इस दृष्टि से चीन की वैचारिक प्रगति अपनी विस्तृत आकार-प्रकार की परिधि में प्रायः समूची बच रही है ।

चीनी दर्शन अथवा वैचारिक साहित्य के उदय से पूर्व उस देश में सभ्यता की अनेक सदियाँ अपनी विविध मंज़िलें तय कर चुकी थीं । और लेखन द्वारा ज्ञान को सुरक्षित रखने की आदिम परिपाटी ने प्राचीन दर्शनेतर कथित ज्ञान को बचा रखा है । इसी कारण कनफ़्यूशस्, लाओ-त्से आदि के पंचवर्गीय ज्ञान के अतिरिक्त अदार्शनिक ज्ञान की भी पर्याप्त सम्पदा चीन में बचा रखी गई है । ऐसा भी नहीं कि वहाँ केवल संरक्षा ही हुई हो, ज्ञानपरक ग्रन्थों का नाश न हुआ हो । अशोक के समकालीन त्सिन (हुवांग-ती) को दार्शनिकों-ज्ञानवन्तों की अकर्मण्यता से इतना क्षोभ हुआ कि उसने तृतीय शताब्दी ईसवी पूर्व के मध्य चीन के समस्त उपलब्ध ग्रन्थ भण्डार को अग्निसात् कर दिया । फिर भी जिस तेज़ी से अग्निसात् करने के लिए ग्रन्थों की खोज हुई थी उसी तेज़ी से रक्षा करने के लिए उन्हें गुप्त भी कर डाला गया, जिससे कनफ़्यूशस् आदि के ग्रन्थ-निकायों की काया बची रह गई ।

यही कारण था कि दर्शनपूर्व की बानियों, कहावतों, उपदेशों की भी रक्षा की जा सकी जिनके निर्माताओं का भी सदा पता नहीं चल पाता । फिर भी साधु-सूक्तियों का अक्षय भण्डार, दर्शनपूर्व बहुश्रुतिक सन्तोक्त वाणी की अटूट निधि, आज भी चीन में सुरक्षित है । **'सेंग जेन'**—सन्त जन—अर्थात्

पवित्र पुरुषों की परम्परा वहाँ अति प्राचीन है। इन्हीं आचारवान पवित्र पुरुषों में सबसे अन्तिम सबसे विख्यात कनफ़्यूशस् है, लगभग छठी सदी ई० पू० का। 'शेन सियेन थुंग काम' नामक एक महाग्रन्थ में ८०० सन्तों, साधुओं, विचारकों, ऋषियों आदि के चरित संग्रहीत हैं। इनमें अनेक ताओवादी, अनेक बौद्ध, अनेक अनैतिहासिक भी हैं, पर निःसन्देह इनसे उस अनन्त समुदाय का परिचय मिलता है जो दर्शन के उदय से पहले और पीछे, और उसके बावजूद, अपने ज्ञान के पट बुनता रहा था।[1]

साहित्य के प्रति, दर्शन की ही भाँति, चीनी उत्कंठा पुरानी है। इस साहित्य का प्रारम्भिक रूप केवल उल्लास से ही नहीं सम्बलित हुआ है, बल्कि उसका अंग नीतिपरक सांसारिक उपदेशामृत से भी भरा पुरा गया है जो महान् सभ्यताओं के विकास में एक आवश्यक तथा अनिवार्य मंज़िल बनता है। चीनी साहित्य में अपरिमित परिमाण उस साहित्य का है जो अनभिजात्य है और जिसे नगरों से दूर के जनपदीय सन्तों ने अपनी बहुश्रुत वाणी से प्रस्तुत किया है।

जापान में निःसन्देह सन्तों अथवा शहीदों का सर्वथा अभाव है। जापान का राष्ट्रीय धर्म 'शिन्तो' प्रभूतपूर्व ही राजधर्म मान लिया गया था जिससे धार्मिक असहिष्णुता के अभाव में यन्त्रणा अथवा धार्मिक प्राणदण्ड की भी जापान में सम्भावना न रही। शहादत का जापान में सर्वथा अभाव तो नहीं, पर उसका चलन राजनीति में ही रहा है, धर्म में नहीं। फिर 'हराकिरी' का बलिदान आत्महत्या है, असहिष्णुता से उत्पन्न यन्त्रणा का परिणाम नहीं। और जब बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ तब वह धर्म स्वयं अपनी बोधिसत्वों आदि की ही असमाप्य सन्त सम्पदा लिए आया। बौद्ध धर्म में भगवान् नहीं है, मात्र सन्त हैं, शिन्तोधर्म में सन्त नहीं है, मात्र भगवान् है।

४. ईरानी सन्त

ईरानी सन्तों का आचरण जीवन से बँधा रहा है। जीवन के आदर्शों, धर्म द्वारा निर्दिष्ट पथ, पर ग्यारहों प्राणों द्वारा निर्भय चलना उनका ध्येय रहा है।

---

[1]. ए० विली : नोट्स् ऑन चाइनीज़ लिट्रेचर, पृ. १६८।

सम्भवतः किसी धर्म के सन्तों ने इस मात्रा में धर्म सम्बन्धी आचार का अनुसरण नहीं किया जिस मात्रा में ईरानी सन्तों ने किया।

सन्तपन की परिभाषा देश-देश में, धर्म-धर्म में भिन्न रही है। साधारणतः जीवन तथा आचरण की पवित्रता और कम से कम कुछ अंश तक दूसरों के प्रति कल्याण की भावना तो सभी में रही है, पर अनेक अन्य आदर्शों में सन्तों की मान्यताएँ भिन्न-भिन्न रहीं हैं—कुछ में भक्ति की प्रगाढ़ता रही, कुछ में तप की प्रखरता, कुछ में आत्मबोध अधिक रहा है, कुछ में परकीय बोध, कुछ परमात्म चिंतन में ध्येय के आत्मरूप हो गए हैं, कुछ ने दिव्यशक्ति अर्जित कर अलौकिक चमत्कारों का प्रदर्शन किया है। ईरानी सन्तों के आदर्श इनसे सर्वथा भिन्न रहे हैं, उनका आचरण भावबद्ध नहीं, जीवन के प्रति कर्म वद्ध रहा है। ज़रथुश्त्री सन्त विचारों के इतने नहीं जितने कर्मों के सन्त हैं। लोक कल्याण की उनकी भावना उन्हें लोक में रहने को बाध्य करती है। लोक में रह कर ही वे लोकजयी होते हैं। उनके जीवन का सबसे ऊँचा आदर्श है समाज में सदाचरण से रहना और समाज के अभागों के प्रति जागरूक हो उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करना, उनका कल्याण साधना। उनका रूप भी इस कारण प्रकृत होता है—न वे भभूत लगाते हैं, न फ़कीराना बाना धारण करते हैं, न बैरागी चोला, न सिर मुंडाते हैं, न जटा-जूट रखते हैं। उनके धर्म के इतिहास के किसी मंज़िल पर तप का आचरण सन्तों के लिये उपयुक्त नहीं माना गया, सन्यास को कभी दूर का भी पोषण नहीं मिला। ज़रथुश्त्री धर्म के अनुसार कभी वह सन्त नहीं माना गया जो लोक से विमुख हो आत्म कल्याण का तप या त्याग द्वारा चिन्तन करता है। ऐसा व्यक्ति कभी ओर्मुज़्द (अहुरमज़्द) का प्यारा नहीं हो सकता, ओर्मुज़्द का प्यारा वही हो सकता है जो समाज में रहता हुआ, उसके आचरणों के प्रति जागरूक हो जन कल्याण के प्रति कर्मठ होता है, जो संसार के अपने से भिन्न प्राणियों के दुःख सुख को सोचता है, मानवता के उत्कर्ष, उसके मोक्ष की कामना करता है, जो संसार से कभी विमुख नहीं होता, कभी जीवन के कर्मों से विमुख नहीं होता। जो ओर्मुज़्द के सामिप्य की कामना करता है वह मानव सामिप्य को अपना इष्ट बनाता, उसके साथ मैत्री की साधना

करता है।[1]

इस दृष्टि से ईरानी सन्ताचार भारतीय अथवा ईरान के ही सूफ़ी सन्ताचार से सर्वथा भिन्न है। मज़्दी सन्ताचरण योग-सन्यास को नहीं मानता, व्यक्ति के प्रति भक्ति को भी नहीं मानता, जो भारतीय तथा सूफ़ी सन्ताचरण का मूर्धन्य है। कर्त्तव्य के प्रति उदासीन ईरानी सन्त परिणामतः शुष्क हो जाता है क्योंकि भक्तिप्रसूत प्रेम के अभाव में प्रेम की उष्णता भी उसे नहीं छू पाती। जे० एच० मोल्टन ने सच कहा है कि 'गाथाओं की प्रेरक शक्ति प्रेम नहीं, उस शब्द का तो उन में प्रायः अस्तित्व भी नहीं है।[2]

अवेस्ता की भाषा में **'सन्त'** का निकटतम पर्याय **'अषवन्'** (अशवन्, बहुवचन, अशओनी) है, अष अथवा अश से निर्मित, जिसका अर्थ है पवित्रता, धार्मिकता, आचारपूतना। यही पुरानी फ़ारसी का **'अर्त'** है। संस्कृत-ऋत, व्यवस्थित मार्ग, (दिव्य विधान, सत्य; लातीनी 'रीतस'), अर्तक्षयार्षा, अर्तकामा आदि नामों में (व्यवहृत) होने वाला, वस्तुतः अपने मूल में अहूरमज़्द का द्योतक। इस रूप से अषवन् वस्तुतः सभी शुद्धमना कर्त्तव्यनिष्ठ मज़्दियों के लिए सन्त के अर्थ में प्रयुक्त हो सकता है। साथ ही यह ज़रथुश्त्री धर्म के लिए समुन्नत आदर्श व्यक्तियों, स्वयं ज़रथुश्त्र, को व्यक्त करता है।[3] अवेस्ता में जिन व्यक्तियों को इस विशेषण अषवन् से युक्त किया गया है उनमें प्रधान फ्रषओस्प, ज़मास्प, विष्तास्प (जरथुश्त्र का संरक्षक ईरानी सम्राट्) और जरथुश्त्र की पत्नी स्वयं ह्वोवी हैं।

अवेस्ता के 'यश्तों' में एकयश्त[4] **'फ़र्वर्दीन'** है, पर्याप्त बड़ा यश्त, जिसमें ३३६ महात्माओं—फ्रवशियों—के नाम परिगणित हैं। वस्तुतः यही ज़रथुश्त्री धर्म की पवित्रात्माएँ अथवा सन्त हैं। इन में २७ नारी-सन्त भी हैं, जिनमें कुछ विवाहिता कुछ **'पवित्र कुमारियाँ'** हैं और जिनमें प्रधान ज़रथुश्त्र की

[1]. एम. ढल्ला : ज़ोरोस्ट्रियन थियालोजी, न्यूयार्क, १९१४, पृ. १५।

[2]. दि ट्रेज़र ऑव मागी, लंदन, १९१६, पृ. १९५।

[3]. **'पस्सिम'**, दोनों गाथाओं और उत्तर-अवेस्ता में, एक स्थल पर (यश्त १२,१) बिना नाम के मात्र सन्त कह कर भी।

[4]. यश्त १३।

पत्नी ह्वोवी तथा तीन कन्याएँ हैं। इन में से प्रत्येक नाम के साथ क्रिया जुड़ी हुई है—यज़मैदे—**'हम पूजते हैं'** प्रायः उसी रूप में जैसे वेद मन्त्रों में होता है—यजामहे।

ज़रथुश्त्री धर्म में शहादत का विधान तो नहीं है पर अनेक बार ईरानी सन्तों को धर्म के लिए बलिदान होना पड़ा है। स्वयं ज़रथुश्त्र को अपने ८० अनुयायियों के साथ धर्म पर बलि हो जाना पड़ा था। अनुमान है कि उस महात्मा और उसके सन्तों को ईरान तथा तूरान के झगड़ों का शिकार होना पड़ा। ख्यातों के अनुसार ईरान के शत्रु तूरानी नृपति अरेजतास्प (अथवा अर्ज़ास्प) ने ५८३ ई. पू. जब ईरान पर दूसरा आक्रमण किया तब महात्मा ज़रथुश्त्र इन सन्तों के साथ बलख़ (बाख़्त्री=वह्लीक) के एक अग्नि-मन्दिर में अग्नि देवकी पूजा कर रहे थे। अरेंजतास्प ने उनके सन्तों के साथ ही स्वयं उनका वधकर उनके रक्त से आग बुझा दी।[1]

सातवीं सदी के पूर्वार्ध में अरब के रेगिस्तान में जो धार्मिक आग भड़की उसने पहले ईरान को ही भस्म किया। हज़रत मुहम्मद ने जो नए धर्म का पैग़ाम भेजा था, ईरानी सम्राट् ने उसकी अवहेलना की थी। परिणामतः ६४१ ई. में ईरान पर अरबों का आक्रमण हुआ। इसमें ज़रथुश्त्र के लाखों अनुयायी मारे गए। उनका यह बलिदान नहीं था बल्कि नालन्दा विहार के भिक्षुओं की भाँति नरसंहार था। डी. एफ. कराका का अनुमान है कि इस आक्रमण के फलस्वरूप नित्य एक लाख ईरानी मारे गए थे।[2] प्रगट है कि ज़रथुश्त्री सन्तों की भी बड़ी संख्या हताहतों में रही होगी। इसी अरबी आक्रमण का परिणाम था कि अग्निपूजक ईरानी स्वदेश छोड़ भागे और भारत में शरण ली, जहाँ वे **'पारसी'** कहलाए। पारसी पुरोहित आज भी ईरानी सन्त परम्परा के अनुसरण में जीवन के पूत आचरण को विशेष मान्यता देते और पारसी जनहित की साधना करते हैं।

ईरानी ज़रथुश्त्री पृष्ठभूमि ने निःसन्देह सन्तों की भावभूमि को तो इतना प्रश्रय नहीं दिया पर उनकी जीवन में शुद्धाचरण के प्रति एकनिष्ठा स्तुत्य

---

1. ए० पी० विलियम्स जैक्सनः ज़ोरोस्टर, न्यूयार्क, १९०१, पृ. १०२-१३२।
2. हिस्ट्री ऑव दि पारसीज, लन्दन, १८८४, १, २३।

थी। अरबी आक्रमण उस निष्ठा को आत्मसात कर गया, पर उसी भूमि से पश्चात्काल में इस्लामी बुनियादी उसूलों के विरुद्ध जो सूफ़ी धर्मान्दोलन उठा उसने मध्य एशिया और भारत के जीवन, विशेषकर साधु अथवा धार्मिक जीवन, को प्रभूत प्रभावित किया। सूफ़ी सन्त जहाँ जहाँ गए वहाँ वहाँ उन्होंने भक्ति और प्रेम की धारा बहाई जिससे भारत का जनमानस भी आप्लावित हुआ और उसके सन्तों ने सूफ़ियों के सान्निध्य से एक नई ज्योति के दर्शन किए।

५. यहूदी सन्त

यहूदी सन्तों की परम्परा अपनी है। कर्त्तव्य—जीवनगत पूर्वाचार्यों द्वारा आदिष्ट—को इष्ट मान कर इन्होंने विशिष्ट आचरण किया। इनका यह आचरण न केवल यहूदी जाति के लिए आदर्श बना बल्कि समूची ईसाई धर्मावलंबी तथा अरब जातियों के लिए वह अनुकरणीय बना। यहूदी सन्तों और आचार्यों के आचरण का ही परिणाम था जो सन्त जीवन का एक अंश शहादत भी बन गया। यहूदी आचार्यों और नबियों के आत्म-बलिदान के बाइबिल की पुरानी पोथी में पृष्ठ-पृष्ठ पर दर्शन होते हैं। सन्त और शहीद यहूदी प्रसंग में प्रायः पर्याय बन गए। अपने जीवन के आदर्शों को, आचरण की धर्मानुगत पवित्रता को अक्षुण्य बनाए रखने के लिए उन्हें निरंतर बलिदान देने पड़े। उन्हीं का चरम विकास, यद्यपि घटनारूप में उनके विपरीत तथा उन्हीं के साधन से घटा, महात्मा ईसा का बलिदान था।

अब्राहम-मूसा से ईसा और-उनके अनुयायी सन्तों तक, वस्तुतः ईसाई नव-धर्म के सन्तों तक, की आत्मबलिदानी प्रक्रिया, जिससे इस्लाम की शहादत भी प्राणवान हुई, इन्हीं यहूदी आचार्यों और नबियों के साहस तथा कर्त्तव्य के प्रति मर मिटने वाली आस्था का परिणाम थी। सन्तों के जीवन में शहीद हो जाने वाली जो कठिन भावना आई और जिसने कर्त्तव्य के प्रति उत्कट निष्ठा की प्रवृत्ति सन्तपन में समाविष्ट की उसका उदय यहूदी अपकर्ष के युग में, आठवीं शताब्दी ईसा पूर्व के पश्चात् हुआ। जिस मात्रा में पड़ोसी राष्ट्रों का उत्कर्ष हुआ, जिस मात्रा में पड़ोसी सम्राटों की प्रसर लिप्सा बढ़ी, उसी मात्रा में यहूदी सन्तों की अपने धर्म की रक्षा के लिए दृढ़ता बढ़ी, उसी मात्रा में

उन्होंने विदेशी आक्रमकों को धिक्कारा, उसी मात्रा में उन्होंने आत्मबलिदान किया और विदेशी आक्रमकों के कोपानल के भागी बने।

तब के सभ्य संसार के सभी पड़ोसी राज्यों ने फ़िलिस्तीन—जूदिया और इस्रायल—को कुचला, सभी उर्दायमान सम्राटों ने पहले उसी की ओर रुख किया, अपने साम्राज्य का विस्तार उसी के मूल्य पर किया, हम्मुराबी से नबूख़द-नेज़्ज़ार-दाराओं तक। मिस्री सम्राटों ने एशिया के अपने अभियानों में पहले फ़िलिस्तीन को ही सर किया। वस्तुत: मिस्र में जो साम्राज्य उठा उसकी दजला-फ़रात की घाटी के साम्राज्य से और दजला-फ़रात की घाटी में जो साम्राज्य उठा उसकी नीलनद की घाटी के साम्राज्य से टक्कर होना अनिवार्य था, टक्करें उनमें सदा होती भी रहीं, और फ़िलिस्तीन दोनों की राह में पड़ता था, दोनों का पहला ग्रास बनता था। असूरिया के असुरों—असुरनज़ीरपाल आदि—तथा ख़ल्दियों—विशेषकर नबूख़दनेज़्ज़ार—ने तो यहूदी राष्ट्र और जीवन को, उनके कर्तव्यनिष्ठ आचारवान जीवन को, तहस-नहस कर डाला।

पर उसी का यह परिणाम था कि यहूदी जाति नष्ट न हो सकी, गठकर दृढ़ हो गई, एक मन, एक प्राण और उस जाति की निष्ठा उसके आचार्यों—सन्तों-भविष्यवक्ताओं में बसती थी। यहूदियों का भविष्यकथन ग्रीकों की भाँति भविष्यदर्शन से किसी मात्रा में सम्बन्धित नहीं था। उनका भविष्यकथन आक्रमण के अत्याचार से पल्लवित शापोद्गार हुआ करता था। संसार की वह अचरज की जाति थी, इसके सन्त-नबी आश्चर्यजनक साहसी थे, जिन्होंने कभी शक्ति अथवा अत्याचार के प्रति आत्मसमर्पण नहीं किया, यद्यपि उन्हें बार-बार अपनी दृढ़ता के लिए मिट जाना पड़ा। फ़िलिस्तीन ने सदा आक्रमण-अत्याचार का दृढ़तापूर्वक विरोध किया, सदा उस पर आक्रमण-अत्याचार होते रहे, सदा उसकी दृढ़ता फ़ौलादी कठोरता धारण करती गई। इसी का यह दूर का परिणाम हुआ कि यहूदी जाति, यद्यपि पश्चिमी संसार के प्रत्येक ईसाई प्रदेश में—जर्मन नात्सी काल तक—अद्यावधि अत्याचार सहती रही है, यहाँ तक कि राष्ट्रों ने उसकी करोड़ों जनता को नष्ट कर दिया है, आज भी मिट नहीं सकी। आज देशान्तरों से लौटकर उसने अपनी सनातन भूमि पर नवराष्ट्र इस्रायल कायम किया है, जो फिर भी अपने चतुर्दिक् के पड़ोसी अरब राष्ट्रों

के आक्रोश का केन्द्र बन गया है, पर जो फिर भी अपनी सनातन दृढ़ता से दृढ़ है।

जब-जब असूरी आदि राजाओं ने इस्रायल अथवा जूदिया के यहूदी राष्ट्र पर आक्रमण-अत्याचार किया तब तब यहूदी सन्तों ने प्राणों का मोह छोड़ संसार के अनजाने साहस से उनका प्रतिकार किया, उन्हें प्रभूत धिक्कारा। बार-बार उनकी राजधानी तथा उनके धर्म का केन्द्र जुरूसलम को ज़मीन से मिला दिया गया, बार बार यहूदी सन्त और नबी पहाड़ी गुफाओं के अन्तराल से, पर्वत की चोटियों से, बियाबाँ से शाप की ज्वाला लिए शत्रुओं को धिक्कार उठे। मानव जाति के इतिहास में सन्तों का कोई वर्ग नहीं जिसने शक्ति के विरुद्ध, धर्म के विरुद्ध, राष्ट्र के विरुद्ध आक्रमकों के अत्याचार का इस वाणी से, इस अभिशाप से प्रतिकार किया, जिससे यहूदी सन्तों ने किया। एलिजा-इसाइया-जोशुआ-नाहौम-उनकी अनन्त तालिका है—असुर राजाओं के नाश का शाप देते गए और उनकी पेशीनगोई असुरों के नाश का प्रमाण बनी, भविष्यवाणी सच होकर रही। नाहौम ने असुर राजाओं की राजधानी निनेवे को लक्ष्यकर धिक्कारा :

"धिक्कार उस नगर को! धिक्कार उस ख़ूनी नगर निनेवे को! देख निनेवे, मैं तेरा विरोधी हूँ, अनन्य शत्रु, और देख कि मैं तेरे नंगपन का राज़ खोल दूँगा, तेरी बर्बरता को ढकने वाले लेबास को उलट दूँगा। और तेरी नग्नता का राष्ट्रों में भण्डा फोड़ कर दूँगा, राज्यों पर तेरी बेहयाई जाहिर कर दूँगा। और तेरे ऊपर तेरा ही ग़लीज़ बरस पड़ेगा, तेरे अहंकार को ढक लेगा, तुझे घिनौना बना देगा और तू अपनी ही जलालत निहारता रह जाएगा। और ऐसा होकर रहेगा, जान ले तू अभिशप्त निनेवे! कि आज जो तेरे हमगुज़र हैं, तुझसे बाज़ू मिलाए हुए चल रहे हैं वे ही एक दिन तेरी छूत मानेंगे, तेरा मुँह देखने से परहेज़ करेंगें, तेरे साये से दूर भागेंगे, चिल्ला-चिल्ला कर ऐलान करेंगे कि निनेवे नष्ट हो गया, धूल में पड़ा है, ज़मींदोज़ हो चुका है। फिर कौन तुम पर आँसू बहाएगा? देख निनेवे, कान खोलकर सुन ले—तेरे बाशिन्दों में बस औरतें रह जाएँगी, मर्द तलवारों के घाट उतर जाएँगे, तेरे घर के द्वार दोनों फाटक दोनों ओर दुश्मनों के सामने अपने आप

खुल जाएँगे, आग की लपटें तेरे शहरपनाह को, तुझे घेरने वाली ऊँची दीवारों को चाट जाएँगी·· ···असुरों के राजा, तू भी सुन ले—तेरे गाँवों के सिंगार भेड़ों के चरवाहे सदा के लिए सो जाएँगे, तेरे अभिजात अमीर धूल में मिल जाएँगे, तेरी क़ौम टुकड़े-टुकड़े होकर, बर्बाद होकर, पहाड़ों पर बिखर जाएगी, और कोई उसका पुरसाँहाल न होगा, कोई उसका नामलेवा न बचेगा, फिर उनको हाँक कर कोई इकट्ठा न कर पाएगा और न तब, निनेवे, तेरे घाव का कोई मरहम भी होगा और तेरा घाव गहरा है। ऐसा गहरा कि तेरे दर्द से किसी की आह न निकलेगी। सुनने वाले ताली बजा उठेंगे। कारण, ज़मीन पर भला कौन है जिस पर तेरा क़हर न बरसा हो ?

और नाहौम की भविष्यवाणी सच हो कर रही। इस भविष्यवाणी की तलख़ी यहूदी सन्तों की अपनी है जिसकी परिणति बप्तिस्मावादी योहन और ईसा की अवाज़ में हुई, पाल, पीतर आदि उन ईसाई सन्तों की अवाज़ में जिन्होंने शेरों के दाढों के सामने भी अपने विश्वास न छोड़े। ईसा की निर्धनों के घाव सहलाती, धनिकों को स्वर्ग से दूर करती, उन्हें धिक्कारती वाणी उन्हीं यहूदी सन्तों की परम्परा में है जिन्होंने जुरूसलम के मिट जाने पर ख़ल्दी सम्राट् नबू-ख़दनेज़्ज़ार की बाबुली कैद से छठी सदी ईसवी पूर्व 'पेन्तुतुख़' प्रस्तुत कर बाईबिल की बुनियाद डाली। सन्तपन—जीवन की पवित्रता—और आत्म-बलिदान—शहादत—यहूदी आचार्यों, सन्तों और नबियों के अपने हैं, अनुपम निजी।

यहूदियों की धार्मिक तथा राष्ट्रीय भाषा इब्रानी में सन्त को **'हसीद'** और सन्तपन को **'हसीदूथ'** कहते हैं। सन्तों के लिए उस भाषा में **'कदोश'**, **'त्सद्दिक'** आदि कुछ अन्य शब्द भी प्रचलित हैं। ईसाई चर्च की भाँति चर्चकी मान्यता से यहूदियों में सन्त नहीं होते थे। केवल कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा तथा धर्मादेशों की अभिपूर्ति में दृढ़ता ही उन्हें उस पद पर आरूढ़ कर पाती थी। हृदय, आत्मा और शक्ति का धर्मादेशों के प्रति आग्रह और तदनुसार कार्यक्षमता इन सन्तों के लिए अनिवार्य होती थी। धर्म के लिए शहीद हो जाना भी सन्त-पन के लिए आवश्यक नहीं था, कम से शहादत के कारण कोई यहूदियों में सन्त नहीं माना गया, यद्यपि सत्याचरण की एक परिणति शहादत के रूप में

हो सकती थी। सन्त के लिए आवश्यक था धर्मादेशों के अनुकूल आदर्श जीवनाचरण, उस आचरण के लिये यथावश्यक त्याग। फिर सन्त अथवा शहीद का स्थान देवोत्तर भी न था; क्योंकि यहूदियों के धर्म में जेहोवा मात्र का एकेश्वरवाद था, उसमें अन्य देवताओं के लिए स्थान न था (सुमेरी-बाबुली देवता बाल, बेल का यहूदी पूजा में प्रवेश हो जाने पर उसके विरुद्ध कितना बड़ा आन्दोलन इस्रायल तथा जूदिया में हुआ था, यह इतिहास प्रसिद्ध है)। इसी से वहाँ न देवताओं का परिवार था, न देवोपम व्यक्तियों का व्यक्तित्व सज सका। इसी से अन्य धर्मों की भाँति वहाँ सन्त अथवा शहीद पूजे भी नहीं जा सके, न उनकी पूजार्थ समाधि ही बनी। हाँ, पुस्तकों में उनके नाम दर्ज अवश्यक कर लिए जाते थे। ये पुस्तकें ही उनके स्मारक हुआ करती थीं। यहूदी यिद्दिश-जर्मन में उन्हें स्मारक-ग्रन्थ (मेमोरबुख) कहते भी थे। वैसे यहूदियों में धर्म के अर्थ प्राण देने वाले शहीदों अथवा आत्मबलिदानियों की संख्या कुछ कम नहीं। स्वाभाविक भी था; क्योंकि जिस मूर्तिहीन देश पर मूर्तिपूजक सभी जातियों—अक्कादी, असूरी, ईरानी, ग्रीक, रोमन—की घातक चोट पड़ी, उसके धर्म के दृढ़व्रतियों का सिद्धान्तरक्षा में मर मिटना नित्य की घटना हो गया होगा। यह भी महत्व की बात है कि यहूदी सन्तों ने अपने कर्त्तव्य के प्रतिफल (स्वयं कर्त्तव्यपूर्ति ही जिसका पुरस्कार था) के अतिरिक्त कोई भिन्न, देवोत्तर अथवा अलौकिक पुरस्कार भी नहीं माना। धर्मानुकूल निःसंग कर्म ही उनकी प्रक्रिया थी।

यहूदियों की सन्त परम्परा में वैसे कुछ शहीदों के नाम भी गिने गए हैं, पर केवल इसी कारण कि वे अपने प्रकृत धर्म के प्रति कट्टर सिद्ध हुए। इनकी संख्या दस है। ये रोमन सम्राट् हाद्रियन के शासन कालमें शहीद हुए। इनको अपने प्राण केवल इसलिए खोने पड़े कि ये अपने पवित्र 'तोरा' के अध्ययन के लिए देश में अध्ययन-पीठ स्थापित करना चाहते थे। उनके रोमन प्रभुओं को—जिनका इस काल इस्रायल पर शासन था—यह स्वीकार न था और उन्होंने इस प्रकार के यहूदी उपक्रम रोक दिए। पर उपक्रम रुके नहीं, यद्यपि उनका मूल्य यहूदी सन्तों को अपने रक्त से चुकाना पड़ा। इन दस शहीद सन्तों में प्रधान अक़ीबा था, अक़ीबा इब्न यूसुफ़ (५०-१३० ई०), भारतीय

राजा कनिष्क का प्राय: समकालीन। अक़ीबा ने रोमन यन्त्रणाओं को असाधारण रूप से झेला। कुचलते-ऐंठते शरीर की जान लेवा पीड़ा भुला होंठों पर मुस्कान ला उसने 'शेमा' पढ़ा—"और तू अपने स्वामी, अपने भगवान्, जेहोवा से प्रेम करेगा, तहे दिल से, अपनी समूची आत्मा से, समूची शक्ति से!" और जब वह यन्त्रणाओं से मरा तब उसके होठों ने यहूदी एकेश्वरवाद के प्रतीक मात्र शब्द **'एक'** का उच्चारण किया।

यहूदी सन्त का सन्तपन केवल उसके आदिष्ट धर्माचरण में नहीं है, उसे अपने सन्त जीवन की साधुता में भी सन्त बनना पड़ता है। जो जीवन उसे जीना आदिष्ट है वह स्वयं सन्त जीवन है, पर उससे आशा यह की जाती है कि वह सन्तों में भी सन्तवत रहे, सन्तों में भी सन्त बने। यहूदी धर्मादिश तालमुद का कथन है—**'जो तुझे आदिष्ट है, उससे परे भी, उससे ऊपर भी तू पवित्राचरण कर'**। सन्तपन की इसी प्रक्रिया को 'हसीदूथ' कहा गया है।

एक विशेष बात यहूदी सन्तों में भारतीय जनपदीय सन्तों से भिन्न यह है कि जहाँ भारतीय सन्त बिना पण्डित हुए केवल **'ढाई आखर प्रेम'** के पढ़ कर सन्त हो सकते थे, यहूदी सन्त से पण्डित होने की अपेक्षा की जाती थी। उसका अध्ययनशील तथा अध्ययन द्वारा ज्ञानवान् होना आवश्यक होता था। केवल पण्डित ही **'हसीद'** हो सकता था, अन्य नहीं। मिश्ना में उत्कट व्यंग्य रूप में **'निरक्षर सन्त'** का उल्लेख हुआ है। उन्हें मिश्ना ने अवांछित कह कर धिक्कारा है, कहा है कि वे अपने अज्ञान से विश्व को अज्ञानान्धकार में बदल देते हैं। तालमुद ने भी उस व्यंग्य को दुहराया है—**'ऐसे अपढ़ सन्त डूबती हुई नारी को बचाने के लिये सहारा तक न देंगे, क्योंकि धर्म का आदेश है कि नारी पर नज़र न डालो।'** प्रगट है कि मक्षिका स्थाने मक्षिका की दृष्टि से धर्म का तत्व समझने वाले सन्तों के प्रति तालमुद स्पष्ट प्रतिकूल है।

अनेक यहूदी सन्त शहीद होने कारण विशेष प्रसिद्ध हैं पर अधिकतर ऐसे भी हैं जो मात्र सन्ताचरण से विख्यात हुए। एज़रा का चेला हिलेल अपने सन्तपन, शिष्टता, विनय से विख्यात हुआ था। वह ईसा का समकालीन था, ई० पू० ३० में जन्मा था, १० ई० में, चालीस वर्ष की आयु में मरा। इस प्रकार के अनेक यहूदी सन्तों का उल्लेख स्मारक ग्रन्थों में मिलता है जो अपने

जीवन को प्रमाण बनाकर प्रसिद्ध हुए।

चौथी सदी ईसवी के यहूदी सन्त हूना और हिस्दा इसी प्रकार के गृहस्थ साधु थे। देश में जब अकाल पड़ा हुआ था तब लोगों ने उनसे सूखा मिटाने की प्रार्थना की। कहते हैं कि जेहोवा की प्रार्थना द्वारा उन्होंने देश का अकाल दूर कर दिया और वर्षा से भीगी भूमि बिरवाइयों के फूटने से लहलहा उठी। प्रसिद्ध यहूदी सन्त मुर ज़ुत्रा उसी सदी में हुआ। अपने चेलों को बुरा भला तो सभी गुरु कहते हैं, पर दण्ड उन्हें देने के पहले अपने आप को दे लें, ऐसे गुरु बिरले ही मिलते हैं। मुर ज़ुत्रा का विचार था कि चेले ऐसे पात्र हैं कि उनमें गुरु का रंग झलकना चाहिए। यदि गुरु की गुरुता के बावजूद शिष्य में अपेक्षित गुण नहीं आए तो उसमें दोष गुरु का है, उसे ही उसका दोषी होना चाहिए। इससे शिष्य को दण्ड देने के पहले वह अपने आप को दण्ड दे लिया करता था।

यहूदी इतिहास के मध्यकाल में, रोमन साम्राज्य के पतन के पश्चात्, पाँचवीं सदी ईसवी के बाद, सन्त दृष्टि में भी कुछ अन्तर पड़ा, यद्यपि यह अन्तर पूर्व दृष्टिकोण के विपरीत अथवा उसका विरोधी न था। तब का सन्त कुछ रहस्यमय हो गया। साधुता अपनी उसने और अधिक साधी, धार्मिक आदेशों से कुछ अंश तक किनारा कर उसने मुक्ति पा ली, और पार्थिव अवश्यकताओं तथा वस्तुओं से कुछ उदासीन हो उसने देवत्व से एका किया। यह देवत्व से एका अधिकतर एकान्त सेवन और चिन्तन द्वारा ही संभव था जिसके आचरण ने सहज ही सन्त की रहस्यमयता बढ़ा दी। मध्यकालीन सन्त वस्तुतः रहस्यवादी रहस्यचारी हो गया। जर्मन यहूदी सन्त आर-जुदा बेन सामुएल ह हसीद, रोजेन्सबुर्ग का निवासी, इसी प्रकार का रहस्यवादी सन्त था। अपने साधुवर्ग के लिए उसने जिस इब्रानी आचार ग्रन्थ का प्रणयन किया—सिफ़र हसीदीम का—उसमें अत्यन्त मौलिक और अबूझ कहावतों–पहेलियों का समावेश हुआ है। इस मध्ययुग का यहूदी सन्त वस्तुतः सन्त (हसीद) और रहस्यवादी का मिश्रित व्यक्तित्व था।

६. ईसाई सन्त

ईसाई सन्तों पर विचार करने के पहले यह आवश्यक होता कि हम ग्रीक

अथवा यूनानी सन्तों के जीवन पर प्रकाश डाल लेते। पर दो मुख्य कारणों से ऐसा कर सकना संभव नहीं। एक यह कि उस ग्रीस देश और उसकी सभ्यता में, जिस अर्थ में हम यहाँ सन्त शब्द का प्रयोग कर रहे हैं उस अर्थ में, सन्तों का अभाव था। दूसरे यह कि इक्के दुक्के जो वे मिल भी जाँय तो कहना न होगा कि वे जनपदीय न होकर नगर-सन्त थे, ग्रीस की सभ्यता ही तब स्वतंत्र नगर-राष्ट्रों की थी।

ग्रीक सभ्यता में सन्त नहीं थे ऐसा कहना **'पैराडाक्स'** लगता है, पर यथार्थ यही है। संसार के अधिकतर दर्शनों की बुनियाद वहीं से पड़ी और दार्शनिकों की वहाँ अनन्त संख्या अनन्त सत्ता थी, पर निःसन्देह सन्त वहाँ नहीं थे। यौन जीवन से मुक्त जिस पवित्र जीवन का संम्बन्ध संसार के सारे सन्तवर्गों से जोड़ा जाता हैं, उसका वहाँ सर्वथा अभाव था। आचार की स्वच्छता और शारीरिक पवित्रता सन्तों में अनिवार्य अपेक्षित होती थी। उसकी ग्रीक सभ्यता में सम्भावना ही नहीं हो सकती थी। प्रकृत नारी के प्रति पुरुष के आकर्षण के अतिरिक्त वहाँ पुरुष के प्रति पुरुप का आकर्षण भी सामान्य रूप से मान्य होने से तज्जनित अस्वाभाविक कामचेष्टा भी साधारणतः प्रचलित थी। सुकरात आदि प्रायः सभी दार्शनिक इस प्रेरणा तथा इसके परिणाम से अवंचित थे। नारी के प्रति आकर्षण तथा आग्रह तो स्वाभाविक ही थे, दार्शनिक खुले तौर से यौनकार्य संपन्न करते थे और दियोजिनीज़ के से दार्शनिक तो खुली सड़क पर भी मैथुन को हेय नहीं मानते, बल्कि स्वयं करते भी थे। ऐसी स्थिति में सन्त जीवन का ग्रीस की सभ्यता में पनप सकना संभव ही न था। साधारणतः कदाचित ही किसी दार्शनिकवर्ग ने काम अथवा नारी को अलग कर पवित्र जीवन का प्रचार किया। परिमाणतः ग्रीस में दार्शनिकों की संख्या तो अगणित थी, पर सन्तों की प्रायः बिलकुल नहीं थी।

अन्यत्र सन्तों के जिस आत्मबलिदानी (शहादत) गुण का उल्लेख किया गया है उसकी निःसन्देह ग्रीस की सभ्यता में कभी नहीं थी। अनेक दार्शनिक ऐसे थे जिन्हें जीवन का मोह न था और जिन्होंने रंच भर उसकी परवाह न की और अपने सिद्धान्तों की रक्षा के लिए हँसते-हँसते विष का प्याला पी लिया। सुकरात इनमें अग्रणी था। इसके अतिरिक्त भी ग्रीस में ऐसे दार्श-

निकों की भी कमी न थी जो ऐश्वर्य तथा विलास की वस्तुओं से घृणा करते, उनके विरुद्ध प्रचार करते और स्वयं जीवन के लिए नितान्त आवश्यक वस्तु का ही उपयोग करते थे। पर निःसन्देह वे दार्शनिक थे, सन्त नहीं।

पर इस सन्त जीवन के अभाव का कारण वहाँ की सभ्यता थी। ईसाई धर्म के वहाँ प्रचार के बाद ग्रीक जीवन ने जो करवट ली उसने उस सभ्यता का सर्वथा रूप ही बदल डाला। ग्रीक चर्च (आर्थोडाक्स चर्च) के इतिहास में अनेक सन्तों का प्रादुर्भाव हुआ जो जाति से ग्रीक थे; पर जिनके पवित्र जीवन ने जनमानस को मोह लिया और अन्य सन्तों के लिए आदर्श बना। इनमें से अनेक प्रारम्भकाल में स्वयं ईसा के शिष्य-प्रशिष्य थे और जीवन की पवित्रता तथा आत्मबलिदान के लिए ईसाई धर्म के इतिहास में अमर हो गए। पर उनका सही संदर्भ ईसाई धर्म होगा।

रोमन सभ्यता ग्रीक सभ्यता की ही अधिकतर प्रतिलिपि थी। उसके अधिकतर दोष रोमन सभ्यता में आ गए थे। उसमें भी सन्तों का सर्वथा अभाव था क्योंकि जो जीवन वहाँ जिया जा रहा था उसमें सन्त-पवित्रता की संभावना ही नहीं हो सकती थी। रोमनों की प्रवृत्ति धर्म में नहीं सैन्यव्यवस्था और विधिक न्याय में थी। सन्त जीवन का तो रोम ने उपहास ही किया और ईसाई धर्म के प्रारम्भिक इतिहास में तो रोमनों का अत्याचार पृष्ठ-पृष्ठ पर उल्लिखित है। स्वयं ईसा की शहादत का अधिकतर श्रेय उनको है और अगली सदियों में उनके अनेक अनुयायियों को विविध यन्त्रणाएँ दे देकर सिंह आदि हिंस्र जन्तुओं के मुँह में डाल जो मारा उसका बयान पढ़कर तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पर यह भी चमत्कार ही है कि प्रारम्भिक ईसाई धर्म पर अनवरत और घातक अत्याचार करने वाला वही रोम कालान्तर में उस धर्म का संरक्षक और ढाल बना।

धार्मिक असहिष्णुता और असहिष्णु विरोधी धर्म की सत्ता धार्मिक अत्याचार का कारण होती है। अनेक धर्मों को, विशेषतः अपने आरम्भ काल में, अनन्त अत्याचारों को झेलना और उनका सामना करना पड़ा है। यहूदी और ईसाई दोनों धर्मों को इस प्रकार के अत्याचार सहने पड़े थे। दोनों में सन्त और शहीद हुए; पर दोनों के सन्तसम्बन्धी भावसत्ता में अन्तर है। ईसाई धर्म

प्रथमतः शहीद को सन्त मानता है, यहूदी धर्म शहीद को सन्त नहीं मानता, कर्त्तव्याचरण को सन्तपन मानता है।

ईसाई धर्म में शहादत को धर्म के प्रति प्रगाढ़ प्रेमका प्रमाण माना गया जिससे शहीद सन्त बना। शहीद (या मार्टीर) का अर्थ है साक्षी, शहीद अपने रक्त द्वारा धर्म प्रेम का साक्ष्य करता है। प्रत्येक शहीद, जिसने धर्म के प्रचार अथवा उसके प्रेम में प्राण दिया है ईसाई सिद्धान्तानुसार, सन्त है। पर शहीदों के अतिरिक्त भी एक वर्ग ईसाई सन्तों का है जो धर्म के प्रेम के अर्थ कष्ट सहने अथवा उसके प्रचार में अत्यधिक योग देने के कारण भी सन्त माने गए हैं। इनमें से धर्मार्थ कष्ट सहने वालों की गणना अधिकतर शहीदों में ही होती है और प्रचार में योग देने वालों का धर्म के वन्दों में। धर्म के वन्दों में उनकी गणना भी है जो चर्च के पदाधिकारी, बिशप आदि, रहे हैं, अथवा उपासकों के पाप-स्वीकरण को सुनते रहे हैं। शहीद और धर्मसेवक दोनों ही प्रकार के ईसाई सन्त माने गए है। इस दूसरे प्रकार के सेवक पोप के विधान से सन्त घोषित किए जाते हैं, जिस प्रक्रिया अथवा सन्तकारी घोषणा को 'कैननाइज़ेशन' कहते हैं। इनके अतिरिक्त दोमिनिक, फ्रांसिस्की आदि उन साधुओं का वर्ग है, जो वस्तुतः पदीय सन्त तो नहीं हैं पर जो अपनी पवित्रता तथा त्यागमय सादे आचरण के कारण हमारे अर्थ के सन्तों के अधिकतम निकट आते हैं। ये साधुवर्ग वस्तुतः पूर्वी सम्पर्क से, बौद्ध धर्म के साधु-संप्रदायों से, प्रभावित होकर ही बने भी थे, जो संसार त्याग संन्यस्त हो मठों में रहने लगे थे। उनको सन्त अथवा 'सेन्ट' रूप में आधिकारिक ईसाई धर्म (पोप आदि) तो नहीं मानता पर ईसाई जनता साधु रूप में सन्त निःसन्देह मानती है। पूर्वी सन्तों की ही भाँति मठ में निवास अथवा यत्र-तत्र यात्रा कर उपदेश देना उनका व्रत रहा है। उनका रूप बहुत कुछ पूर्वी साधुओं का सा ही है, इससे उनके विषय में कुछ विशेष वक्तव्य नहीं है। यहाँ हम ऊपर कहे दो प्रकार के सन्तों पर विचार करेंगे।

धर्म पर अत्याचार होने के कारण उस पर प्राण देने वालों की भी कमी नहीं रही। इससे शहीदों की परम्परा बनी जो सन्त कहलाए। शहादत और सेवा द्वारा बने सन्तों के प्रकारों पर विचार करने से पूर्व यह उल्लेख कर देना

आवश्यक होगा कि ईसाई धर्म में, प्रोटेस्टेंट संप्रदाय को छोड़, ग्रीक आर्थोडाक्स चर्च और रोमन चर्च तथा उनकी समस्त शाखाएँ सन्तों को न केवल आदर के आस्पद और परम्परा के अंग मानती हैं बल्कि उन्हें अपनी पूजा तथा प्रार्थना में स्थान देती हैं। यह सही है कि सन्तों को भगवान नहीं माना जाता पर उनके नाम भी प्रार्थना में भगवान और उसके **'पवित्र पुत्र'** ईसा के साथ लिए जाते हैं। उपासक की ओर से भगवान के प्रति सन्त प्रतिनिधान तो करते ही हैं, स्वयं अपने अधिकार से भी वे उपासकों की पूजा पाते हैं। अनेक ईसाई विद्वानों का विचार है कि उनकी अपनी कोई सत्ता नहीं, फिर भी अपनी शहादत से भगवान की मैत्री तथा कृपा उपार्जित कर लेने के कारण उनके माध्यम से भगवान तक अपनी प्रार्थना अथवा अभिलाषा पहुँचाने में सहायता मिलती है, इससे उनका महत्त्व बढ़ गया है और वे भी पूजा के पात्र बन गए हैं। जो भी हो, पूर्वी शाखाओं और रोमन कैथोलिक संप्रदाय में निःसंदेह उनका देवोपम स्थान है। अनेक धार्मिक घोषणाओं से सन्तों का यह स्थान प्रतिष्ठित हुआ है। प्रसिद्ध ट्रेन्ट की काउंसिल की एक घोषणा को पोप पीयस पंचम ने इस प्रकार संक्षिप्त किया है—

'इसी प्रकार मेरा यह मत है कि भगवान के साथ जगत् पर शासन करने वाले सन्त पूजा तथा प्रार्थना के आस्पद हैं और कि वे हमारी ओर से भगवान से प्रार्थना करते हैं और कि उनके शेषावशेष की भी पूजा होनी उचित है।'

सन्तों के प्रति देववत आचरण तो होता ही है, प्राचीन काल में ही उनका भगवान से सम्बन्ध स्पष्ट कर दिया गया है। उनके प्रति एक उल्लेख इस प्रकार है—

'हम भगवान से उसकी कृपा, उसका आशीर्वाद माँगते हैं, सन्तों से अपना प्रतिनिधि होने की प्रार्थना करते हैं। भगवान से हम विनय करते हैं—**"हमारे ऊपर दया करो"**, सन्तों से हम साधारणतया कहते हैं—**"हमारी ओर से प्रार्थना करो"** और कभी जब हम सन्तों से भी दया करने की प्रार्थना करते हैं तब उसका भाव भिन्न होता है। हम उनसे प्रार्थना करते हैं कि अपने दयालु स्वभाव के अनुरूप हम पर वे कृपा करें, भगवान से हमारा प्रतिनिधान

करें।"[1]

यहाँ इस वक्तव्य से तात्पर्य भगवान तथा सन्तों की स्थिति में अन्तर बताना है। भगवान प्रार्थना तथा पूजा का आस्पद है, सन्त आदर का अधिकारी। पर सन्तों की स्थितिमात्र भगवान के निकट होने से ही महत्त्व की नहीं है। मध्य काल में उनकी पूजार्थ अनन्त मूर्तियाँ बनीं, गिरजों में उनके चित्र बने, और तभी की भाँति आज भी आर्थोडाक्स तथा रोमन कैथोलिक संप्रदायो में वे धूप-नैवेद्य से पूजे जाते हैं।

ग्रीक और रोमन कैथोलिक सम्प्रदायों का सान्निध्य बहुदेववादी ग्रीक तथा रोमन सभ्यताओं से होने के कारण यह स्वाभाविक ही था का ईसाई धर्म पर भी उनका प्रभाव पड़े और उन्हीं की परम्परा में लघु देवों का भी सृजन हो जाय जिससे जनपदीय जनता की आस्था बनी रहे। सन्तों की पूजा ने वह आवश्यकता पूरी कर दी। उनकी स्वतंत्र पूजा भी होने लगी और ईसाई प्रार्थनाओं में उन्हें स्थान भी मिलने लगा। सूफ़ी उपासक जनता कहाँ तक इस बात का अन्तर कर पाती कि सन्त के प्रति उसका आग्रह देवता के रूप में है या भगवान के प्रति उसकी ओर से प्रतिनिधान करने वाले प्रतिनिधि के रूप में। इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय और महत्त्व की बात है कि सन्तों के प्रति विशेष श्रद्धा तथा उनकी पूजार्हता की भावना पूरब से आई, सीरिया की ओर से, जो पहले ग्रीस, रोम में प्रचलित हुई, फिर इंग्लैंड और पश्चिमी यूरोप में। ईसाई धर्म ने जहाँ से साधुवर्गों के संगठन सीखे वहीं से सन्तों की पूजा भी सीखी। बौद्ध भिक्षु संप्रदायों से उसे अपने साधु सम्प्रदाय मिले, उस बौद्धधर्म में आनन्द, सारिपुत्त, मोग्गलान, कस्सप आदि बुद्ध के शिष्यों तथा सन्तों के पूजन, उनके भग्नावशेषों तक के पूजन, का विधान था, सो वह अनायास पश्चिम पहुँच गया और ईसाई धर्म का एक विशिष्ट अंग बन गया। सन्तों के अवशेषों की रक्षा और पूजा वहाँ भी धर्मसम्मत बन गई।

फिर इस दिशा में एक और प्रसंग से भी सन्तों की इस प्रतिष्ठा को बल मिला। शहीद ही सन्त बने, कम से कम प्रारम्भिक धर्मस्थिति में सन्त शहीद

[1]. **रोमन कैटेकिज़्म, अंग्रेजी, अनुवाद, डबलिन; १८२६, पृ. ४६६ से।**

ही थे । शहीदों की असाधारण धर्मपरता, धर्म के लिए बलिदान की प्रेरणा और प्रवृत्ति तथा क्षमता सभी किसी अंश में लोकोत्तर माने जाते थे जिससे शहादत से सन्त बने व्यक्तित्व के प्रति असाधारण श्रद्धा अथवा पूजा-भावना स्वाभाविक थी । लोगों का जब यह विश्वास था कि ईसा स्वयं शहीद की शहादत में शिरकत कर रहे हैं, उसके शहीद होते समय वे उपस्थित होकर उसके दुःख को स्वयं सहते हैं,[१] तब सन्त अथवा शहीद के देवोपम होते क्या देर लग सकती है ?

चौथी सदी ईसवी तक सन्तों तक की पूजा और प्रार्थना की रीति पूर्णतः प्रतिष्ठित हो चुकी थी । फिर तो धीरे-धीरे वे संरक्षक भी बना लिए गए और नामों के साथ, जैसे पाल, पीतर, जार्ज आदि जोड़े जाने लगे । उन्होंने प्राचीन स्थानीय गैरईसाई ग्रीक, रोमन तथा अन्य देवताओं का स्थान ले लिया । और उनके मेले भी उनके स्थान पर लगने लगे, त्यौहार भी मनाए जाने लगे । उनके नाम कलेंडर आदि में भी आगए और मृत्यु की वार्षिकियाँ भी आयोजित होने लगीं । मृत्यु की इस कारण कि अधिकतर सन्त आदितः शहीद ही थे ।

यहाँ सन्तों के प्रकारों पर विचार न कर उस आदि स्थिति का उल्लेख करेंगे जिसमें उनका प्रधान वर्ग सन्त माना गया । यह वर्ग आत्मबलिदानी शहीदों का था । मध्यकालीन विशपों आदि का जीवन इतना भोग-विलास से सना था कि सुधारवादी आन्दोलन की नींव ही उनके उस जीवन की प्रतिक्रिया पर रखी गई । इससे विशपों आदि से बने संतों के जीवन पर विचार करना व्यर्थ है, यद्यपि इसमें भी सन्देह नहीं कि इनमें से अनेक ऐसे भी थे जिनमें सादगी तथा धर्म के प्रति आग्रह था और जो अपने सात्विक जीवनयापन के कारण ही सन्त माने गए । पर सन्तवर्ग के प्रधान स्कन्ध निःसन्देह शहीद ही थे।

अपनी प्रारम्भिक सदियों में ईसाई धर्म अत्यधिक मात्रा में धार्मिक असहिष्णुता का शिकार हुआ । तब पश्चिमी सभ्य जगत् का स्वामी रोम था जिसका शासन यूरोप से पश्चिमी एशिया, उत्तरी अफ्रीका तक फैला हुआ था । तब ईसाई, विशेषकर उनका उपदेशक नेता, होना अत्यन्त आपज्जनक था । अनेक गुलाम बना लिए जाते थे, कारागारों में यन्त्रणाओं द्वारा मार डाले जाते थे

---

१. **देलेहाइ : लेजोरिजिन दु कुल्त दे मारतीर, पृ. ११ से।**

अथवा खेल के अखाड़ों में हिंस्र पशुओं के सामने डाल दिए जाने पर अपनी इहलीला समाप्त कर रोमन नागरिकों का मनोरंजन करते थे। इन बलिदानियों की संख्या अनन्त थी। इनमें से अनेक, जिनकी याद बनी रही चर्च के प्रतिष्ठित हो जाने पर, सन्त करार दे दिए गए। इस प्रकार सन्त बनाने की प्रधान प्रेरणा शहीदों के माध्यम से हुई। वैसे इस संख्या में उन बलिदानियों की गणना न थी जिनका निधन चर्च के ही माध्यम से होता था। पोप, धार्मिक (इन्क्विज़िटोरियल) न्यायालय अथवा ऐंग्लिकन चर्च आदि द्वारा अपनी धार्मिक दृढ़ता के कारण प्राणदण्ड पाए शहीदों की गणना स्वाभाविक ही सन्तों में नहीं हो सकती थी जब सन्तीकरण का अधिकार पोप अथवा विरोधी चर्चों को ही था। यही कारण था कि सैवोनारोला, रिडले, लैटिमर आदि के से शहीद सन्त नहीं क़रार दिए गए।

धर्म के शक्ति अर्जित करने और सत्तारूप में रोम में प्रतिष्ठित होने से पहले ईसाई जनता ही शहीदों को सन्त करार देती थी। शहीदों का जीवन तब निःसन्देह सन्तव्रत था भी और अधिकतर वे जनपदीय उपदेशकों की भाँति गांव-गांव, नगर-नगर भ्रमण कर अपने धर्म का प्रचार किया करते थे। उनका जीवन सादा था और वृत्ति भिक्षा थी। इनमें से प्रायः सभी निर्धन और निचले वर्ग के थे, और ईसा स्वयं धर्म के पहले शहीद थे।

इस प्रकार ये शहीद होने के पहले वस्तुतः साधुवृत्ति के सन्त थे जिन्हें कालान्तर में चर्च के प्रबल होने पर वैधानिक रूप से सन्त घोषित कर दिया गया। इन शहीदों की धर्माचार्यो ने यत्र तत्र सूचियाँ बना रखीं थीं, जिनको चर्च ने सन्त घोषित किया। निःसंदेह ये सूचियाँ सर्वथा प्रामाणिक न थीं क्योंकि अधिकतर ये स्मृति के आधार पर बनीं थीं और स्मृति में विकार की संभावना स्वाभाविक थी।

शहीदों को सन्त बनाने और मानने की परम्परा की नींव ईसाई धर्म ने डाली। इसके सभी शहीद सन्त थे, जीवन के आचरण से भी, शहादत से भी। ये प्राणों तथा रक्त का प्रमाण देकर सन्त बने थे और स्वाभाविक ही इन्हें धर्म-सत्ता तथा जनता ने दैवी शक्ति से रक्षित तथा भगवान के प्रकाश से प्रकाशित और उसकी मैत्री से संयुक्त माना। इनकी मूर्तियों, समाधियों आदि की पूजा

भी इसी मे बड़े चाव से होने लगी ।

इनके अतिरिक्त उन साधुओं की संख्या भी ईसाई जगत् में कुछ कम न थी जो सांप्रदायिक रूप से प्रव्रजित हो मठों में रहते थे । इनकी ओर ऊपर संकेत किया जा चुका है । यद्यपि चर्च के पदाधिष्ट कर्मचारी न होने से इनका धर्मविहित कोई जनव्यापार नहीं था, निःसंदेह ये नित्य जनसम्पर्क में आते और पूर्वी साधुओं की भाँति सादा जीवन बिताते, ईश भजन करते, और जनकल्याण की भावना से प्रेरित सेवाकार्य में निरत होते ।

७. मुस्लिम सन्त (अभारतीय)

मुस्लिम सन्त परम्परा का उल्लेख करते हुए उसे दो वर्गों में विभाजित कर देना आवश्यक होगा । एक वर्ग तो उन मुस्लिम सन्तों का था जो इस्लाम के भारत में प्रवेश करने से पूर्व अथवा पश्चात् भी भारतेतर इस्लामी राज्यों अथवा देशों के इतिहास में अमर हो गए हैं, और दूसरा उनका जो अपने संप्रदाय बनाकर भारत में रहे, बाहर से आए अथवा यहीं उत्पन्न हुए, हिन्दू सम्प्रदायों-सन्तों द्वारा प्रभावित हुए अथवा स्वयं उनको उन्होंने प्रभावित किया । यहाँ हम उन्हीं सन्तों का ज़िक्र करेंगे जो भारतेतर देशों में कार्यशील इस्लाम के इतिहास में प्रसिद्ध हुए । भारतीय, अथवा भारत में बसकर धर्म का प्रचार अथवा सन्तवत जीवन का निर्वाह करने वाले मुस्लिम सन्तों के प्रसंग पर हम भारतीय सन्तों के संदर्भ में विचार करेंगे ।

ईसाईयों की ही भाँति इस्लाम में भी शहीद अनेक बार सन्तपन के बुनियादी कारण बन गए हैं, फिर भी सभी शहीद सन्त नहीं हैं । अधिकतर इस्लाम का रूप हमलावर रहा है इससे, सिवा स्पेन आदि के अन्यत्र, उन्हें धार्मिक असहिष्णुता का शिकार नहीं होना पड़ा है । अतः साधारण अर्थ में अत्याचार से पीड़ित शहादत का परिवेश वहाँ इतना व्यापक नहीं । इस्लाम के शहीदों में उनकी भी गणना है जो बलपूर्वक दूसरों को मुसलमान बनाने के प्रसंग में शहीद हुए हैं या धार्मिक युद्धों अथवा जेहाद में लड़कर मरे हैं । वहाँ भी शहीद का अर्थ साक्षी ही है जो अपनी धार्मिक प्रखरता का साक्ष्य अपने रक्त अथवा रक्तिम बलिदान द्वारा प्रस्तुत करता है ।

इस्लाम में साधारणतः मृत सन्त को **'वली' और** जीवित को, जो उसकी,

समाधि, उससे संबंधित ख़न्काह, आदि की सम्हाल करता है, 'शेख़' कहते हैं। ज़ाहिद उस वृत्ति का संकेतक है जिसमें साधुभाव चरम सीमा तक विकसित हो चुका है, पावनता जहाँ परम ध्येय है, और लोभ का संवरण तथा आत्मसंयम आचरण का प्रधान नियम बन गया है। मुस्लिम देशों में गांव-गांव में सन्तों के मज़ार हैं, गाँव-गाँव के अपने सन्त हैं जिनकी पूजा होती है और उस पूजा के विविध रूप हैं जिनका हम अन्यत्र ज़िक्र करेंगे।

इस्लाम के सन्तपन सम्बन्धी सिद्धान्त सादे हैं, वस्तुतः उसकी कोई अपनी दार्शनिक आचार-पद्धति नहीं है। **'वली'** ईसाई सन्तों की ही भाँति अल्लाह का प्रसादपात्र मित्र है, उससे समीप्य ही उसकी शक्ति हैं। सन्त की कुछ ऐसी दैवी बिसात है कि वह साधारण जन समाज से ऊपर होता है, उसमें देवशक्ति का निधान होने से उसके शरीर अथवा आत्मा को किसी प्रकार का आघात नहीं पहुँचाया जा सकता। इस स्थिति से उसे रोगमुक्त, शापग्रसित आदि कर देने में अद्भुत शक्ति मिलती है जिससे वह असंख्य चमत्कार (**'करामात'**) कर सकता है। यह उसे अल्लाह की फ़ज़ल से, उसके सामीप्य तथा मैत्री से ही सिद्ध होता है।

जो अपढ़ हैं वे स्वाभाविक ही अल्लाह के रूप को नहीं पहचान पाते, इससे **'वली'** ही उनके समक्ष उसका स्थान लेता है। वली को ही वे उसका प्रतिनिधि मानते हैं। वली का हृदय, उसकी समूची भावना, सारे कर्म, अल्लाह से ही व्याप्त होता है, वह स्वयं अल्लाह में ही स्थित रहता है, उसका प्रत्येक कार्य अल्लाह की प्रेरणा, उसी के हुक्म से सम्पन्न होता है। अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं को संयत कर वह अल्लाह की प्रेरणा के लिए अपने शरीर का अणु-अणु तत्पर रखता है, उस प्रेरणा की धारा को ग्रहण करने के लिए वह सर्वथा पात्र बन जाता है, और उसे वह अपने अहम् को सर्वथा दबाकर स्वीकार करता है। जीवन की उसकी अपनी सारी अनुभूतियाँ स्तम्भित रह जाती हैं, उनसे वह मुक्त हो केवल अल्लाह की इच्छा और शक्ति को हाज़िर और नाज़िर जानता है, अपनापा वह सभी प्रकार से खो देता है। और अपनी इसी स्थिति में अल्लाह प्रेरित हो अपने करामात करता है। वस्तुतः करामात वे अल्लाह के ही होते हैं, वली अथवा सन्त को वह निमित्त बनाने के लिए चुन

लेता है, और उसी के माध्यम से वह अपनी रहमत या कोप का करामातों द्वारा इज़हार करता है। करामात (चमत्कार) वस्तुतः अल्लाह के ही होते हैं, वली के नहीं, क्योंकि वह तो कार्यहीन, निरीह, प्रेरित मात्र होता है। इसी से वली या सन्त की आवाज़ खुदाई होती है जिसका सबूत नहीं माँगा जा सकता न जिसकी मुख़ालफ़त या अवहेलना की जा सकती है। ऐसा करना ख़तरे से ख़ाली नहीं होता क्योंकि उसका परिणाम देवक्रिया के प्रतिरोध का होगा और ऐसा करने से अल्लाह का कहर बरस पड़ेगा। इस स्थिति से दुर्वृत्त अथवा चतुर सन्त का लाभ उठाना कुछ अजब नहीं। पर इस स्थिति का लाभ सारे धर्मों के सन्तों को सदा उपलब्ध रहा है क्योंकि उनके श्रद्धालु दैव-पीड़ित अधिकतर अज्ञानी रहे हैं जिन पर इस स्थिति का जादू आसानी से चलता रहा है। अल्लाहप्रेरित अवसन्न सत्ता रखने के कारण अनेक मुस्लिम सन्त विक्षिप्तसदृश, लुंज-पंगु, मूढ़ (मोहाच्छन्न) भी रहे हैं।

यह उनके लिए आवश्यक नहीं कि वे गार्हस्थ्य छोड़ सर्वथा प्रव्रजित हो जाँय। अनेक प्रव्रजित हुए भी नहीं, पर निर्धनता को निश्चिय उन्होंने सेया और संसार के प्रति घृणा का आग्रह बना रखा। संसार को तुच्छ मानने का प्रभाव संसारियों पर निःसंदेह विशेष पड़ता था। और संसार से चिपके, उसके मोह से आसक्त, आडम्बर के मारे समाज को निश्चिय ऐसे सन्तों के प्रति श्रद्धा होती थी जो उस प्रकार के मोहबन्ध से मुक्त थे, अथवा मुक्त लगते थे। निर्धनता को सम्बल बनाकर रहने वाले इन सन्तों का लेबास परिणामतः भिख-मंगों का ही होता था और उन्हीं का सा उनका जीवन, आचरण होता था जिससे उस परिधान की लाज बचा रखी जा सके। निर्धनता, विशेषकर स्वतःवरण की हुई, पवित्रता की परिचायक, उसका पर्याय बन जाती थी। यह कुछ अकारण न था कि '**फ़कीर**' शब्द सन्त और भिखारी दोनों को व्यक्त करने लगा। दोनों का अपने आप अन्योन्याश्रय सम्बन्ध हो गया। धन से घृणा करने वाले को निर्धन हो वृत्ति के लिए भिखारी का बाना पहनना पड़ता था, भिखारी की वृत्ति धन के परिमाण को प्रकृत ही अल्लाह के विहित मार्ग में बाधा मानना पड़ता था।

संसार को तुच्छ मान उससे विरक्त सन्तों को युक्तितः ही अनेक बार

मैदानों या बियाबाँ की शरण लेनी पड़ती थी। संसार को धिक्कार कर भी उसी की कृपा से उदरपोषण जिन मानी सन्तों को सह्य न हो पाता था वे रेगिस्तान में भी निवास करते थे। सूफ़ी सन्त तो एकान्त कक्षों में रहा करते थे। सूफ़ी चेले अपने गुरु अथवा '**मुर्शिद**' द्वारा निर्दिष्ट पथ पर ज़ाविया अथवा सन्त परिवार में रह कर चलते थे। सांसारिक वैभव, पार्थिव शक्ति, राजसत्ता आदि को तुच्छ मानने वाले सन्तों का अक्सर राजशक्ति से विरोध हो जाय करता था। ख़िलाफ़त के प्रारम्भिक काल में अनेक बार उच्चपदासीन व्यक्तियों के सम्मान के ठुकरा देने वाले सन्त ख़लीफ़ाओं और सरकारों के विरोधी हो गए, उनसे बग़ावत कर बैठे। अनेक बार उन्होंने बाग़ियों का साथ दिया और शासनविरोधी आन्दोलनों से हिमायत की, उनका संचालन तक किया, यद्यपि यह कुछ आम रवैया सन्तों का न था। अक्सर उनका आचरण ख़िलाफ़त के अनुकूल ही हुआ करता था। स्वयं खलीफ़ाओं में अनेक की फ़कीराना सन्तवत वृत्ति थी। सोलहवीं सदी के सफ़वी ईरानी राजवंश के कुछ प्रारम्भिक राजा तो स्वयं सन्त थे और उन्हें समसामयिक शेखों से समर्थन अनायास प्राप्त था। पिछले काल के सन्तों का सम्बन्ध भी राजाओं से अनुकूल रहा। उन्होंने राजसत्ता का समर्थन किया, राजाओं-अमीरों ने उन्हें संरक्षा दी, उनके तकियों, ख़न्काहों को धन दिया।

अक्सर सन्तपन का आरंभ प्रेरणा अथवा स्वप्न से माना जाता था। एकान्त की प्रेरक शक्ति कुछ निर्देश संकेततः प्रस्तुत कर देती थी और उस ओर प्रवृत्त हो व्यक्ति सन्त बन जाता था। स्वयं हज़रत मुहम्मद को एकान्त में ऐसी प्रेरणा प्राप्त हुई थी जिसके अनुसार आचरण कर वे रसूल-पैग़ंबर बन गए थे। मुस्लिम सन्तों को युद्ध से विरक्ति न थी, अनेक का तो युद्धाचरण से प्रगट संबंध रहा था। इस्लाम के प्रवर्तक स्वयं पैग़म्बर मुहम्मद को आवश्यकतावश युद्धाचरण करना पड़ा था। अली, हुसेन आदि ने अपने फ़कीराना जीवन को यौधेय गुणों से संयुक्त किया था। दीन के प्रचारार्थ युद्धों में भाग लेना धर्म था इससे खलीफ़ा-फ़कीर रण से विमुख कैसे हो सकते थे?

मुस्लिम सन्तों अथवा वलियों की एक उच्चावच श्रृंखला थी। सबके ऊपर युग का सबसे महान् सन्त होता था जिसे '**क़ुत्ब**' (मीनार, स्तंभ) कहते

थे। उसके नीचे अक्सर उसके तीन, जिन्हें मिस्र में **'नकीव'** 'नक़ीब', और **'बदील'** कहते थे। वली के अपने-अपने यथेच्छ निवासस्थान होते थे। इनमें से एक मक्का में काबा की छत पर रहा करता था, दूसरा बाबाज़ज़ुवैला (**बाब अल**-मुतवल्ली) क़ाहिरा में। उनमें आस्था रखने वालों का विश्वास है कि **क़ुत्ब** वेश बदलकर अक्सर खुदाबन्दों की भीड़ में आ जाता है और विशेष चमत्कारी रहस्यमय कार्य (करामात) द्वारा अपने को व्यक्त करता है। उस करामात का परिणाम लोक-कल्याण हुआ करता है।

सुन्नियों ने पहले वली के पद को स्वीकार नहीं किया। उनका कहना था कि सन्तों की परम्परा अथवा वलियों का प्राधान्य सुन्ना के विरुद्ध है, कुरान तथा सुन्ना के विधान की मुखालफ़त करता है। इससे अल्लाह का रुतबा तथा प्राधान्य घटता है, उसकी इबादत खतरे में पड़ जाती है और उसकी पूजा में शिरकत पाकर वली उसका स्थानापन्न हो जाता है। इससे वली का पद अवांछनीय है, सुन्नी संप्रदाय की हन्वली जमात ने तो इस प्रथा का खुलकर और प्रवल विरोध किया। वलियों के हिमायती सुन्नियों ने जब उन्हें इस उसूल से स्वीकार किया कि इस्लाम की **'इजमा'** (एकमतीयता) ने उन्हें सदियों स्वीकार कर पूजा है तब हन्बलियों ने इजमा को इस्लाम के प्राथमिक युग के मतैक्य तक ही सीमित कर उनको इस्लाम की आत्मा के विरुद्ध माना। इसमें सन्देह नहीं कि इस सम्बन्ध में उनके मत को प्राचीनता की मान्यता प्राप्त थी। उस सम्प्रदाय के उदय के पर्याप्त पूर्व स्वयं उमर द्वितीय ने हज़रत मुहम्मद के मज़ार का रुख़ मक्का की ओर रखे जाने का इस डर से विरोध किया था कि कहीं अल्लाह के साथ-साथ उस क़ब्र पर पैग़म्बर के लिए भी नमाज़ न पढ़ी जाने लगे। चौदहवीं सदी में इब्नतैमिया ने वलियों की पूजा और मदीना में पैग़म्बर की क़ब्र के खिलाफ़ लिखा। वह अपने इस विरोध के कारण कारागार में मरा (१३२८ ई० में) पर नियति का व्यंग कि वह स्वयं अठारहवीं सदी के अन्त में अपने अनुयायियों द्वारा संतवत पूजा जाने लगा, वली बना दिया गया।

वहाबियों ने तो जैसे वलियों के मज़ार तोड़ने की शपथ ही ली थी। उन्होंने सारे अरब में क़ब्रों-मक़बरों के ख़िलाफ़ जेहाद बोल दिया और सारी

पूजी जाने वाली समाधियाँ तोड़ दीं। १८१८ ई० में जब मुहम्मद अली की सेनाओं ने उन्हें परास्त किया, तब उनकी सनक बन्द हुई। सन्तों अथवा वलियों की पूजा का विरोधी आन्दोलन असफल हुआ और इस्लाम के पिछले नौ सौ वर्षों के इतिहास को देखते हुए उसका असफल होना कुछ अजब नहीं।

धीरे-धीरे सुन्नियों ने भी वलियों की पूजा स्वीकार कर ली। बारहवीं सदी में अल-गज़ाली के प्रभाव से विशेषतः उनमें वलियों के अनुकूल परिवर्तन हुआ। वैसे सुन्नी तथा कुरान दोनों वलियों को प्रार्थना के संवाहक, ईसाई धर्म-वत प्रतिनिधि मानते हैं। इस्लाम की आम जनता वली को पूजा का आस्पद और कल्याण का उद्गम मानती है।

वली सन्तों के उत्साही समर्थक शिया हैं। उनकी पूजा में वलियों का अपना स्थान है। शिया जनता का गढ़ ईरान बना जो रहस्यवाद का भी गढ़ था, उन सूफ़ियों का उद्गम जिन्होंने सन्त जीवन को उसके सिद्धान्त दिए। सूफ़ी सिद्धान्तों का उन्नयन तथा पोषण फ़ारस में ही हुआ और उनका विशेष समर्थन सन्तों को मिला। उन्होंने पैग़म्बर के परिवार—'**अहलुल बैत**' (जनता का घराना)—अली और पैग़म्बर की पुत्री फ़ातिमा—के प्रति विशेष आदर का भाव प्रकाशित किया। उनके कष्टसहन को उन्होंने आदर्श माना और उस आदर्श को उदाहरण बना शहीद होने की दृढ़ता से वे प्रेरित हुए। सूफ़ियों ने विधान तथा पार्थिव सत्ता को चुनौती दी, उन्हें मानने से इन्कार किया। उनके आदर्श जीवन में विधि-निषेध के प्रतिबन्धों के लिए स्थान न था, आज्ञा-कारिता अथवा इस्लामी सत्ता द्वारा निर्दिष्ट पथ उन्हें मान्य न था। शिया सन्तों ने अपना दावा इमामों से प्राप्त उत्तराधिकार पर आधारित किया, सैयद होने का दावा किया और जनता में उनकी मर्यादा बढ़ चली। शिया मुसल-मानों के हृदय में सन्तों के प्रति घनी आस्था जगी और सूफ़ियों ने तो सिद्ध संप्रदायियों की ही भाँति गुरु अथवा मुर्शिद को भगवान अथवा अल्लाह से भी बढ़ कर मर्यादा दी।

यहाँ मुस्लिम सन्त अथवा वली प्रथा के उदय पर भी दो शब्द लिख देना अनुचित न होगा। पैग़म्बर मुहम्मद साहब ने अपने नेतृत्व के आरम्भ में '**ज़ुह्द**' का अवलंबन किया था। ज़ुहद का अर्थ है दुनिया से नाता तोड़ संन्यास ले

लेना। वे आरम्भ में सांसारिकता के प्रति अन्यमनस्क रहने भी लगे थे। उमैया खलीफ़ाओं के आरम्भिक युगों ने इस विचार को विशेष सराहा और प्रश्रय भी दिया। उस काल में अनेक मुसलमानों ने इस प्रकार के प्रव्रजित जीवन का आचरण भी किया और वे **'उब्बद'** कहलाए। **'उब्बद'** शब्द का अर्थ **'धार्मिक'** होता है। इस प्रकार के जीवन के दो शिष्ट अंग थे—१. अल्लाह के प्रति निःशेष आत्मसमर्पण तथा अन्य सर्वत्र से विरक्ति, २. कुरान का अनवरत पारायण तथा स्मरण-चिन्तन (ध्यान)। इनमें से पहली स्थिति को **'तवक्कुल'** और दूसरी को **'धिक्र'** कहते थे।

हिज्री पहली सदी के अन्त तक सन्त जीवन और उसकी परिभाषा के सम्बन्ध में विचार होने लगा। उस सम्बन्ध की अनेक रचनाएँ तब प्रकाश में आईं। धीरे-धीरे जब सिद्धान्ततः भी सन्त-जीवन को पोषण मिलने लगा तब कथन कार्य-रूप में परिणत किया जाने लगा और सन्तपन मात्र एक आचरण अथवा शील न रहकर वृत्तिरूप धारण कर चला। अनेक लोगों ने तवक्कुल तथा धिक्र का व्रत ले प्रव्रजित सन्त का जीवन बिताना प्रारम्भ किया। इस्लाम बाईबिल की पुरानी पोथी के नबियों और ईसा का आदर करता ही था, ईसाई सन्तों का भी निर्बाध स्वच्छन्द विचरण उसे प्रभावित किए बिना न रहा। ईसाई सन्त प्रायः सर्वथा प्रव्रजित हो विशिष्ट नियमों का पालन करते, अपने अनुयायियों को उपदेश करते, मठों अथवा देश-देश फिरते रहते थे। उन सन्तों की इन मुस्लिम सन्तों को गन्ध लगी और वे अपनी नई वृत्ति में आश्वस्त हो गए। अनावश्यक वस्तुओं का परित्याग, निर्धनता का स्वेच्छया वरण, कायिक कामनाओं से विरक्ति, अमारत और सत्ता के प्रति अनास्था, इस्लाम के नए सन्तों की परिचायक हुईं, भिखारियों का सन्तों ने बाना पहना, ऊन का फटा वस्त्र जिसे **'सूफ़'** कहते थे जिससे सन्तों की संज्ञा सूफ़ी हुई। सूफ़ी आन्दोलन का आरम्भ भी इसी प्रकार अव्यवस्थित, असंगठित रूप से अनायास हुआ। इसका उदय ईरान में हुआ पर इसके आन्दोलन का रूप लेने के पूर्व ही सन्तवाद का सिद्धान्त अरबी विचारकों द्वारा स्वीकार किया जा चुका था और सन्त वृत्ति का प्रचार समूचे इस्लामी जगत् में हो चुका था।

इस्लाम के प्रारम्भिक सन्त प्रव्रजित न थे, निज कार्यों में निरत संसारी

थे। सूफ़ीवाद (तसव्वुफ़) ने आन्दोलन का रूप धारण कर सन्त जीवन का प्रचार आरम्भ किया। आन्दोलन की लहर अफ्रीका के देशों तक पहुँची और फ़ारस, सीरिया, अफ्रीका सर्वत्र सन्तों के अपने-अपने परिवार उठ खड़े हुए जिन्होंने अपनी रीति-नीति अपने देश तथा वातावरण के अनुरूप बनाई। पर इन सबमें एक बात समान रूप से मानी गई, इनके सभी फ़िरके रहस्यवादी थे। धर्म को उन्होंने एक प्रकार की रहस्यमयता दी और इनके सन्तों की शक्ति गुप्त शक्तियों से सम्बन्धित मानी जाने लगी। इस्लाम के बाद में होने वाले सभी सन्तों पर तसव्वुफ़ का प्रभाव पड़ा यद्यपि उनमें से कुछ ने सूफ़ी रहस्यवाद के कुछ अंगों की निन्दा भी की और अनेक शिया चिन्तकों तक ने तसव्वुफ़ के एकान्तिक अतिवाद का विरोध किया। सोलहवीं सदी के आरम्भ से ही सफ़वी राजवंश ने तसव्वुफ़ को सराहा और वंश का प्रारम्भ सूफ़ी सन्तों से ही हुआ। सूफ़ियों में नारी-सन्त भी हुए। अफ़्रीका में उनका विशेष मान बढ़ा।

सन्तों की शक्ति इस्लाम में भी असाधारण और दिव्य मानी जाती है। भक्त उनकी दुआ और सभी प्रकार की अपनी कठिनाइयों में उनसे सहायता लेते हैं। जीवित-मृत दोनों प्रकार के सन्तों से वे मुकदमों में सफल होने के लिए, रोग से मुक्ति पाने के अर्थ, सन्तान के लाभार्थ, निजी तथा सार्वजनिक लाभ के लिए प्रार्थना-मनौतियाँ करते हैं। भक्तों का विश्वास है कि सन्तों के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं, संसार की सभी वस्तुएँ उनकी करामात की बसी हैं। सन्तों का सामर्थ्य अलौकिक है। इसी से वे अपनी दिव्य तथा अलौकिक सत्ता के कारण पूजा के आस्पद तथा अवसरप्राप्य हैं।

और जब यह स्थिति जीवित की हो सकती है जो अल्लाह से अपेक्षाकृत दूर है तब मृत सन्त अथवा वली की शक्ति की क्या सीमा जो अल्लाह के निकट है? इसी से उसके सामर्थ्य तथा शक्ति में और भी अधिक भक्तों की श्रद्धा हो जाती है। अब वली की प्रभुता देववत हो जाती है और वह अल्लाह की ही भाँति पूजा का अधिकारी हो जाता है। उसकी पूजा धर्ममान्य हो जाती है, जो वस्तुतः अल्लाह की पूजा का स्थान ले लेती है। मृत्यु के बाद वली की क़ब्र ही उसके व्यक्तित्व का प्रतिनिधान करती है। वही उसकी शक्ति की प्रतीक है। उसी के विशेष आग्रह से मनौतियाँ मनायी जाती हैं और उसी

पर चढ़ावे चढ़ाए जाते हैं। उसकी उपयोग की हुई वस्तुओं का महत्व बेहद बढ़ जाता है। उसके अवशेषों की माँग दूर-दूर से आती है और वहाँ जा कर वे पूजे जाते हैं। वली का परिधान उसके उत्तराधिकारी को मिलता है। वही शेख़ होता है जो कब्र की देख-रेख करता और भक्तों के चढ़ावे लेता है। सदियों समाधियाँ इसी प्रकार वली के परिवार में उसके उत्तराधिकारियों के तत्त्वावधान में फलती-फूलती रहती हैं। मुस्लिम जगत् के प्रायः प्रत्येक गाँव का वली होता है, वली की समाधि (कुब्बा) होती है जहाँ त्यौहारों पर लोग तीर्थयात्रा अथवा ज़ियारत के लिए जाते हैं। जो प्रार्थना कह पाते हैं, कहते हैं। नहीं कह पाते तो श्रद्धानिरत हो कागज़ पर प्रार्थना लिखकर कुब्बा पर ही छोड़ जाते हैं, जिसका पुण्य उतना ही होता है जितना कही हुई प्रार्थना का। सन्तों और उनके कुब्बे का मोह कुछ जातियों में इतना रहा है कि उसने पागलपन का स्थान ले लिया है। अफ़ीदी पठानों के एक गाँव (तीरा) में सन्त नहीं था। इससे उन्होंने पीर लाकर अपने गाँव में काटकर दफ़ना दिया जिससे वह कहीं जा न सके और उसका कुब्बा बनाकर उसे पूजने लगे।[1]

८. भारतीय सन्त

भारत तो सन्तों का देश रहा ही है, आज भी है। पर ऐतिहासिक दृष्टि से उसकी सन्त-परम्परा का सिंहावलोकन निश्चय उन धार्मिक आन्दोलनों पर दृष्टिपात करेगा जिनके दौरान में सन्तों का प्रादुर्भाव हुआ। साधारणतः इस सिंहावलोकन के पाँच अंग हो सकते हैं—१. वैदिक सन्त, २. बौद्ध सन्त ३. जैन सन्त, ४. हिन्दू और ५. मुस्लि सन्त। नीचे हम संक्षेप में इन पाँचों का परिचय देने का प्रयत्न करेंगे।

१. वैदिक सन्तों के विषय में तो निश्चित रूप से कुछ कह सकना कठिन है सिवा इसके कि यदि संत जीवन का मुख्य अंग उसकी पवित्रता है, तो निश्चय वैदिक ऋषियों का जीवन नितान्त पवित्र था। ऋषि साधारणतः अप्रव्रजित गृहस्थ मंत्रद्रष्टा और सत्य से साक्षात्कार करने वाले महात्मा थे।

---

[1]. **रिपोर्ट ऑव दि सेन्शस ऑव दि पंजाब, १८८१, कलकत्ता, १८८३, १, १४४।**

अधिकतर जनपदीय तो वे थे ही, क्योंकि नगरों की बहुलता अभी नहीं हुई थी। जनकल्याण उनका परम इष्ट था और अधिकतर वे वनों में आश्रम अथवा चरण बनाकर रहते थे। प्रव्रज्या का प्रचलन शीघ्र ही बाद हुआ। वैदिककाल के ऋषियों की संख्या पर्याप्त बड़ी है जिसका यहाँ उल्लेख कुछ विशेष अर्थ नहीं रखता। इतना ही उनके विषय में कह देना पर्याप्त होगा कि गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए, बन्धुबान्धवों में रहते हुए उन्होंने शाश्वत शान्ति और सबके हित की इच्छा की। समय-समय पर उन्होंने देवताओं की प्रशस्ति में मधुर ऋचाएं रचीं और अनेक बार उनकी कल्पना तथा उल्लास उद्गीरत हो कर गिरा के उपासकों के शृंगार बने। उनकी साधुता सराहनीय थी। ज्ञानवान गायक थे और अपने पद वे उस लोक-भाषा में लिखते थे जो जनपद में मुखरित होती थी, जनभाषा थी। अत्रि, अंगिरा, अथर्वन्, वामदेव, च्यवन, भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्र, कक्षीवान्, औशिज, कवष ऐलूष, वत्स आदि ऐसे ही ऋषि-साधु थे। इनमें से अन्तिम चार ब्राह्मणेतर कुलों में जन्में थे, पर जिनके प्रति ब्राह्मण ऋषियों का सदा आदर मिला था। उस काल के वैदिक आर्ष कवियों में अनेक अपाला, घोषा, विश्ववारा, लोपामुद्रा आदि नारियाँ भी थीं।

उत्तर वैदिककाल में आश्रमों-चरणों की व्यवस्था बढ़ी और गुरुकुलों की मर्यादा स्थापित हुई। पूर्व वैदिककाल के जानपद विश्वासों की पृष्ठभूमि से दार्शनिक चिन्तन का विकास हुआ और सत्य के प्रकाश के लिए कथोपकथन करते ऋषि और दार्शनिक यत्र-तत्र घूमने लगे। इन घूमने वालों में नारियाँ भी थीं जो ब्रह्मवादिनी कहलाती थीं। इसी काल में प्रर्यटनशील अनेक साधु-संघों का उदय हुआ जो प्रव्रजित हो सत्य की खोज अपनी-अपनी विधि से करते थे, अपने-अपने दर्शन के अनुसार लोक-कल्याण सम्पन्न करते थे। इन्हीं साधुवर्गों में कालान्तर में छठी-पाँचवीं शताब्दी ई० पू० बौद्ध तथा जैन भिक्षु-संघों का भी संगठन हुआ जिनका उल्लेख अब करेंगे।

२. बौद्ध सन्तों का समुदय प्रतिक्रिया में हुआ। यह वस्तुतः प्रतिक्रिया की प्रतिक्रिया थी। पूर्व वैदिक जानपद ब्राह्मण सन्तों की आस्था बहुदेववाद में थी, ज्ञान के पेच से वे परे थे। पर उनके बहुदेववाद की प्रतिक्रिया रूप

उत्तर वैदिक (उपनिषदिक) काल में क्षत्रिय ब्रह्मवाद का उदय हुआ। पर यह दार्शनिक चिन्तन संस्कृत में दुरूह तर्क का पोषक हुआ जिसकी प्रतिक्रिया में, संगठित साधुसंघों के लोक-संग्रह में अक्षम ज्ञान से विरत, बुद्ध और महावीर प्रव्रजित हो दर्शनभिन्न संस्कृतभिन्न जनबोली पाली तथा प्राकृत में देखा सत्य जनता से बोले। बौद्धधर्म ने संसार को प्रभावित किया और उसके साधुसंघ ईसाई साधुसंघों के संगठन में प्रमाण बने।

बुद्ध के मना करने के कारण हीनयान में बुद्ध अथवा सन्तों की मूर्तियाँ तो नहीं बनीं, न उनकी पूजा ही हुई, पर महायान ने बुद्ध तथा भावी बुद्ध अर्थात् बोधिसत्त्वों की मूर्तियाँ पूजार्थ प्रस्तुत कर दीं। बुद्ध पर्यटक साधुमात्र थे। पर महायान ने उन्हें देवता बना दिया। बोधिसत्त्वों के जीवन में, जातकों के अनुसार, अपने पूर्वजन्मों में बुद्ध साधु पवित्र आचरण से युक्त सत्त्व के रूप में उत्पन्न हुए थे और उनका जीवन पावन सन्तवत रहा था। बोधिसत्त्वों की सन्त परम्परा तिब्बत [1] में विशेष विकसित हुई और अनेक ऐतिहासिक बौद्ध सन्त बोधिसत्त्व बनकर पूजनीय हो गए। भारतीय बौद्ध सन्तों में बुद्ध के प्रधान शिष्यों में आनन्द, सारिपुत्र, मोग्गलान, कस्सप, उपालि आदि के अतिरिक्त सोलह स्थविर (थेर) गिने जाते हैं।

अंगुत्तरनिकाय[2] में बुद्ध के ८० प्रधान शिष्यों की तालिका दी हुई है जिन्हें भिक्षुओं, भिक्षुणियों (थेर-थेरी), उपासकों और उपासिकाओं में बाँटा गया है। इससे भी बड़ी तालिका थेरथेरीगाथा में मिलती है। थेर सन्त वे थे जिन्हें पूर्णज्ञान (अञ्ञ) अथवा अर्हत पद प्राप्त हो गया हो। पधमाल की टीका में २५६ भिक्षुओं तथा ७० भिक्षुओं के नाम उनके चरित के साथ उपलब्ध हैं। महायान ने बुद्ध की शिष्य परम्परा में होने वाले पश्चात्कालीन उपगुप्त और असंग के नाम भी जोड़ दिये। अशोक के यज्ञ की मार द्वारा नष्ट होने से रक्षा करने के लिए इस सन्त उपगुप्त का समुद्रतल से आगमन हुआ।[3] असंग पाँचवीं

---

[1]. **एल. ए. वाडेल : दि बुद्धिज्म ऑव तिब्बत, पृ. ३७६ से।**

[2]. **१, २४ से आगे।**

[3]. **दिव्यावदान, पृ. ३५६ से आगे।**

सदी ईस्वी में हुए । बौद्ध व्याख्या के अनुसार असंग अपने शून्य-दर्शन का ज्ञान मैत्रेय से प्राप्त करने तुषित स्वर्ग गए थे ।[1]

संरक्षक सन्तों में आनन्द और राहुल की गणना की जाती है । आनन्द भिक्षुणियों के संरक्षक-सन्त हैं क्योंकि उन्होंने बुद्ध की माँसी प्रजापती की ओर से बुद्ध से प्रार्थना कर संघ में भिक्षुणियों का प्रवेश संभव किया । राहुल नवदीक्षितों के संरक्षक-सन्त हैं ।

महायान से मन्त्रयान का उदय हुआ, मन्त्रयान से वज्रयान का । वज्रयान तक पहुँचते-पहुँचते सन्तों की परम्परा बन गई । वज्रयानी सिद्ध प्रसिद्ध हैं । इनकी संख्या ८४ है । इन्हीं में कण्हपा, सरहपा, गोरखनाथ आदि भी गिने जाते हैं । अनेक इनमें तन्त्रयानी हैं । इनमें से कइयों ने नाथ, निजरंन आदि अपने संप्रदाय चलाए । सिद्धों में अधिकतर च्युत (टूटे हुए) ब्राह्मण अथवा निम्न जाति के साधु थे । इन्होंने स्मार्त हिन्दूजीवन का परित्याग कर उसके विरुद्ध आचरण को प्राय: आदर्श माना । सिद्ध-सन्तों में अनेक ऐसे थे जो नारी, मांस और मद्य को साधन के आवश्यक उपकरण मानते थे । सिद्धों में गुरु का स्थान बहुत ऊँचा था, भगवान से भी ऊँचा । ईसाई और मुस्लिम सन्तों की भाँति वज्रयानी सिद्धों में भी चमत्कारी कार्य करने की क्षमता मानी जाती है और उससे सम्बन्धित अलौकिक कार्यों की अनेक कथाएँ कही जाती हैं । सिद्ध की पूजा भी उनके पंथ के अनुयायी करते हैं । पर सन्त की परिभाषा में जीवन की पवित्रता यदि अनिवार्य हो तो शायद इनमें से अनेक सन्त नहीं थे ।

बौद्ध सन्तों में आत्मबलिदान की विशेष कथाएँ तो प्रचलित नहीं हैं, पर यदि जातक कथाओं की अनैतिहासिक भूमि को प्रमाण माना जा सके तो निश्चय बोधिसत्त्वों के परकल्याणार्थ दुःखसहन तथा प्राणत्याग आत्मबलिदान के अनन्त उदाहरण उपस्थित करते हैं । ऐतिहासिक युग में मोग्गलान की हत्या का उल्लेख किया जा सकता है । जैन साधुओं की ईर्ष्या के परिणामस्वरूप उस बौद्धसन्त को डाकुओं के हाथ मरना पड़ा था ।

---

[1]. **सिल्वाँ लवी, इन्ट्रोडक्शन टु महायान-सूत्रालङ्कार**, पेरिस, १९११, पृष्ठ २ ।

३. जैनधर्म भी बौद्धधर्म की ही भाँति ब्राह्मणधर्म की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रादुर्भूत हुआ। बौद्ध और जैन दोनों धर्म समकालीन थे, जैसे दोनों के निर्माता समकालीन और समान रूप से क्षत्रिय थे। वर्धमान महावीर स्वयं असाधारण तप और पवित्रता के साधु थे, प्राणिनाश से सर्वथा विरत। वे नग्न रहते थे और कैवल्य के साधक थे। जैनों के चौबीस तीर्थ-करों में वे अन्तिम माने जाते हैं। इन २४ महात्माओं सहित ६३ जैन साधुओं की सूची मिलती है।[१]

४. हिन्दू जनपदीय सन्तों में सिद्धों से लेकर रामानन्द, कबीर, नामदेव आदि की गणना की जाती है। इन पर भारतीय भाषाओं, विशेषकर हिन्दी में, पर्याप्त लिखा जा चुका है। यहाँ उसकी पुनरुक्ति हमें अभीष्ट नहीं। उनका पवित्र, निश्छल, सरल और साहसपूर्ण जीवन तथा जन-बोलियों में कहे स्पष्ट अथवा रहस्यमय ज्ञान का उल्लेख थोड़े में हो भी नहीं सकते। इनमें से अनेक के अलौकिक चमत्कार भी प्रसिद्ध हैं, अनेक की समाधियाँ पूजी भी जाती हैं। इनमें से कइयों के अपने-अपने सांप्रदायिक पन्थ भी हैं। प्रस्तुत संग्रह में उनकी बानियाँ संग्रहीत हैं जिन्हें पढ़कर पाठकों को अनेक बार यहूदी नबियों की निर्भीकता याद आ जाएगी।

इस्लामपूर्व भारतीय सन्तों अथवा साधु पुरुषों की संख्या अनन्त है। असाधारण व्यक्ति प्रायः सभी युगों में उत्पन्न होते गए हैं और उनके महान् कार्यों ने उन्हें अलौकिक बना दिया है। उनके महान् व्यक्तित्व को उससे भी कहीं जंगल सदृश घनी ख्यातों ने ढक लिया है। कारण कि भारतीय समाज अनेक वर्णों, जातियों, उपजातियों, प्रजातियों, कबीलों में बँटा रहा है, और सबके अपने-अपने सिद्ध, सन्त, महापुरुष रहे हैं जिनके सम्बन्ध में उन्होंने असीम कहानियाँ गढ़ ली हैं। फिर वस्तुतः उन महात्माओं के व्यक्तित्व थे भी अप्रतिम। देश में अनन्त सम्प्रदाय हुए, अनन्त उनके निर्माता और विधायक हुए जिनकी चमत्कारी कथाओं का कोई अन्त नहीं। फिर रोमन

[१]. जगमन्दरलाल जैनी : आउटलाइन्स ऑव जैनिज्म, लन्दन, १९१६, पृष्ठ ५, १२९।

चर्च की भाँति यहाँ सन्तीकरण (कैननाइज़ेशन) की तो कोई प्रथा थी नहीं, प्रजातियाँ-उपजातियाँ अपनी इच्छा से चाहे जिसको और चाहे जिस परिमाण का सन्त बना देती थीं, फिर तो उसी परिमाण में चमत्कारों का ताना-बाना बुनते भी कोई देर नहीं लगती थी।

५. भारतीय मुस्लिम सन्तों की अपनी परम्परा है यद्यपि जैसे उन्होंने हिन्दू आचारों तथा सन्तों को प्रभावित किया स्वयं वे भी उनसे प्रभावित हुए बिना न रह सके। ऊपर भारतेतर देशों के मुस्लिम सन्तों पर विचार किया जा चुका है। वहाँ भारत के इस्लामी सन्तों का उल्लेख इसलिए छोड़ दिया गया था कि भारतीय सन्तों के ही प्रासंगिक संदर्भ में उनकी चर्चा की जा सके। इससे नीचे इस्लाम के उन पन्थों और उनके सन्तों की चर्चा होगी जिनके सम्बन्ध में सामग्री उपलब्ध है। पर वह चर्चा आरम्भ करने से पूर्व उचित होगा कि इसी प्रसंग में हिन्दू-मुस्लिम सन्तों के परस्पर सम्बन्धों की ओर भी संकेत कर दिया जाय।

इस्लामी सम्प्रदायों और सन्तों ने भारत में प्रवेश कर अनेक बार ऐसा रंग बदला है कि उन्हें कई बार भारतीय पन्थों से पृथक् करना कठिन हो जाता है। विशेषकर चमत्कारों-करामातों सम्बन्धी कहानियाँ तो समान रीति से दोनों धर्मों के सन्तों के जीवन से बँध गई हैं। सन्तों की अनेक परम्पराएँ, स्थानीय समाधियाँ, मेले, त्यौहार कुछ ऐसे हैं जो हिन्दू अथवा बौद्ध थे पर मुसलमानों ने उन्हें इस प्रकार अपना लिया है कि वे उनसे पृथक् ही नहीं किए जा सकते। पश्चिमी पाकिस्तान के गन्धार प्रदेश की बौद्ध समाधियाँ अथवा धार्मिक स्थल साधारणतया मुस्लिम मान लिए गए हैं। इसी प्रकार कश्मीर के अनेक हिन्दू स्थान आज मुस्लमानों के अपने पवित्रस्थल बन गए हैं। कश्मीरी मुस्लमानों में परम लोकप्रिय बामदीन साहिब काबुल के साहिय राजा भीमसाही (मृ. १०२६, रानी दिद्दा का पिता) का बनवाया पहले हिन्दू देवालय था। स्वयं भीमसाही का नाम बदलकर मुसलमान हो गया है, यद्यपि कहा जाता है कि मुसलमान होने के पहले उसका नाम भूमासाधी (साधू ?) था। निःसन्देह मुसलमानों के पंचापीर (पाँच पीर) हिन्दुओं के पाँचों पाण्डव हैं।

भारत में भी इस्लाम के सन्तों के प्रायः वही विशेषण हैं जो अन्यत्र के मुस्लिम सन्तों के हैं। **'पीर'** पहुँचे हुए फ़कीर और चमत्कारी सन्त को कहते हैं जिसका अरबी अर्थ वृद्ध, वरेष्ठ है। **'वल्ली'** अल्लाह के सामीप्य का द्योतक है जिसका बहुवचन 'औलिया' विशेष प्रकार के सन्तों के लिए व्यवहृत होता है। कुरान का क़लाम है, **'बेशक क्या वे अल्लाह के मित्र (औलिया) नहीं, (जिसकी कृपा से) उन्हें कोई भय नहीं ?'**[1] इसी प्रकार पवित्रता में अप्रतिम सन्त को क़ुत्ब कहते थे' जिसका ज़िक्र ऊपर हो चुका है। **'घौस'** से कष्टकाल में सहायता की अपेक्षा की जाती थी। **'बुज़ुर्ग'** उन्नत श्रद्धेय पूज्य होते थे, **'ज़ाहिद'** संयमी सन्त, **'आबिद'** अल्लाह का बन्दा, उसका भक्त, पुजारी। **'सालिक'** मुसाफ़िर अथवा यात्री के अर्थ में प्रयुक्त सूफ़ियों का लाक्षणिक शब्द था। **'फ़क़ीर'** भिखारी का द्योतक बेशक था, पर वह साधारण जन के लिए नहीं अल्लाह की नज़र में भिखारी होता था। **'शेख'**, **'मीर'**, **'मियाँ'** आदि का प्रयोग स्वामी, प्रधान आदि के अर्थ में होता था। अपने रक्त के तर्पण द्वारा अल्लाह के प्रति अपने अनुराग का प्रमाण अथवा साक्ष्य देने और धार्मिक युद्ध जेहाद में प्राण देने वाले **'शहीद'** का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। कुरान कहता है—**'उनको मरा हुआ न गिनों जो अल्लाह के लिए मरते हैं, उनको अल्लाह के निकट रहने वाला जानो**।'[2] इसी से जेहाद में मरने वाला व्यक्ति साधारण शहीद नहीं होता, **'अश्शहीदुल-कामिल'** होता है।

पाँच प्रकार के मुस्लिम सन्तों के पन्थ भारत में लोकप्रिय हुए जिनके मुस्लिम अनुयायियों की संख्या भी प्रचुर रही है और जिनके प्रधान पुरुषों के जीवनवृत्त की घटनाएँ भी ज्ञात हैं। इन पन्थों के नाम हैं—चिश्ती, सुह्र-वर्दी, क़ाफरी, शत्तारी और नक्शबन्दी। इनमें से प्रत्येक का उदय भारत से बाहर हुआ पर इनका प्रसार-प्रचार इस देश में पर्याप्त हुआ। नीचे इनकी संक्षिप्त चर्चा करेंगे। इनमें से कुछ का सम्बन्ध पाकिस्तान से भी था।

चिश्ती सन्तों में प्रथम, ख़ाजा मुइनुद्दीन चिश्ती, का जन्म सीस्तान में

---

[1]. १०, ६३।   [2]. २,१५५।

हुआ जो ११९३ में दिल्ली पधारे, उसी साल जिस साल शिहाबुद्दीन ग़ोरी ने उस नगर पर अधिकार किया। बाद में वे अजमेर चले गए और वहीं उन्होंने आमरण निवास किया, वहीं वे ४३ वर्ष बाद १२३६ में मरे। उनके मज़ार पर आज भी प्रतिवर्ष हज़ारों श्रद्धालुओं की भीड़ लगा करती है। उन्होंने अपने जीवनकाल में बड़ी संख्या में चेले बनाए। चिश्ती पन्थ के दूसरे प्रसिद्ध सन्त ख़ाजा कुत्बुद्दीन बख़्तियार काकी का जन्म भी भारत से बाहर ही फ़रग़ना में हुआ था जो बग़दाद आदि में सन्तों से मिलते घूमते-फिरते भारत आ पहुँचे थे। उनकी शालीनता से आकृष्ट दिल्ली के गुलाम सुल्तान अल्तमश ने उन्हें शेख़ुल-इस्लाम के ऊँचे पद पर प्रतिष्ठत करना चाहा पर उस सन्त ने सांसारिक सुखों से बँधना न चाहा और रमता हुआ अपने परम मित्र मुईनुद्दीन चिश्ती के पास अजमेर जा पहुँचा। वहीं, अपने मित्र से कुछ मास पहले, उसकी मृत्यु हुई पर वह दिल्ली में ही कुत्बमीनार के पास दफ़नाया गया। कुत्बमीनार का नाम उसी सन्त के नाम पर पड़ा। उसके शिष्यों मे प्रधान शेख़ फ़रीदुद्दीन शकरगंज बड़ा प्रसिद्ध हुआ। वह १२६५ में मरा और मुलतान लाहौर के बीच पाकपत्तन में दफ़नाया गया। उसकी समाधि आज भी उसी के उत्तराधिकारियों की संरक्षा में हैं और हर साल पर्याप्त संख्या में लोग वहाँ ज़ियारत करनें जाया करते हैं। शकरगंज के दो प्रधान शिष्य, उसका भतीजा अली साबिर (मृ. १२९१) और निज़ामुद्दीन औलिया हुए, और दोनों ने चिश्ती पंथ की दो नई शाखाओं की नींव डाली। निज़ामुद्दीन औलिया को तो फ़रीदुद्दीन ने उसकी बीस वर्ष की आयु में ही अपना ख़लीफ़ा (उत्तराधिकारी) घोषित कर दिया था। निज़ामुद्दीन ने दिल्ली के पास ही अपना ख़ानक़ाह (दरवेशों का मठ) स्थापित किया। दिल्ली के दरबार पर उसका बड़ा दबदबा था और उसका ख़ानक़ाह मुस्लिम पंडितों से भरा रहता था। उसका देहान्त १३२५ में हुआ और उसकी क़ब्र आज भी श्रद्धालु मुसलमानों का तीर्थ बनी हुई है। उसका एक शिष्य सैयद बुरहानुद्दीन दकन चला गया और वहाँ उसने बड़ी ख्याति अर्जित की। वह दकन के सब से महान् सन्तों में गिना जाता है। हैदराबाद के इलाके में उसका रौज़ा है जहाँ उसी का-सा प्रसिद्ध उसका ख़लीफ़ा ज़ैनुद्दीन दाऊद १३७० में दफ़नाया गया। निज़ामुद्दीन औलिया का ख़लीफ़ा

नासीरुद्दीन महमूद **'चिरागे देहली'** कहलाता था, जो १३५६ में मरा। उसका शिष्य मुहम्मद गेसूदराज़ (लम्बे घुँघराले बालों वाला) दकन चला गया जहाँ वह और उसके शिष्य बहमनी सुल्तानों के परम पूज्य बने। १४२२ ई० में उसके मरने पर सुल्तान ने गुलबर्गा में उसका बड़ा आलीशान मक़बरा बनवाया। उसके शिष्यों में गेसूदराज़ की कब्र की इतनी पावनता मानी जाती है कि उनका विश्वास है कि जो मक्का हज के लिए न जा सके उसे गुलबर्गा की ज़ियारत से ही हज का सारा सबाब हासिल हो जाता है। अगली सदियों में भी चिश्ती सन्तों का बोलबाला बना रहा है। उस पन्थ के बाद के सन्तों में प्रसिद्ध शेख़ सलीम चिश्ती (मृ. १५७२) और ख़ाजा नूर मुहम्मद (मृ. १७९१) हुए। इनमें से पहला अकबर का पूज्य होने से विशेष प्रसिद्ध हुआ। उसी के आश्रम में जोधबाई ने सलीम (जहाँगीर बादशाह जिसका सलीम नाम सन्त के नाम पर ही पड़ा) को जन्म दिया। इस सन्त के स्थान के निकट ही अकबर ने अपना प्रसिद्ध नगर फ़तहपुर सीकरी खड़ा किया जिसके वास्तु के महनीय प्रासाद आज भी दर्शनीय हैं। नूर मुहम्मद को क़िब्ले-आलम भी कहते थे। उसने अपने पन्थ का प्रचार पंजाब और सिन्ध के इलाकों में भरपूर किया जहाँ आज भी चिश्ती सन्तों को पूजने वालों की संख्या बड़ी है।

सुह्रवर्दी सन्तों की बुनियाद शिहाबुद्दीन सुह्रवर्दी ने डाली जो बग़दाद का रहने वाला था। वहीं वह अपने ज्ञान का प्रकाश करता रहा और भारत कभी नहीं आया। भारत में उस पन्थ की बेलि शिहाबुद्दीन के एक शिष्य ने लगाई। सुह्रवर्दी सन्तों में से एक, जलालुद्दीन तब्रेज़ी, बंगाल जा पहुँचा, जहाँ उसकी दरगाह बनी जिसे बड़ा धनदान मिला। जैसे उसके नाम से प्रकट है जलालुद्दीन ईरान में तब्रेज़ का रहने वाला था। उसकी मृत्यु १२४४ में हुई। बहाउद्दीन ज़करिया का जन्म मुल्तान के निकट हुआ। मुल्तान में ही वह बस गया और वहीं १२६६ ई० मे उसके मरने पर उसका मक़बरा बना। वह मक़बरा उसके जीवनकाल में ही बनकर खड़ा हो गया था और मुस्लिम वास्तु की प्रसिद्ध इमारतों में गिना जाता है। उसका शिष्य जलालुद्दीन सुर्ख़पोश बुख़ारा का सैयद था जो बहावलपुर के उच्छ (पाकिस्तान) में बस गया था

और १२९१ में मरा। उसके वंशधरों में अनेक प्रसिद्ध सन्त हुए और उसकी समाधि की संरक्षा आज भी उसी वंश के हाथ में है। उससे भी अधिक यशस्वी उसका पोता और खलीफ़ा सैयाद जलाल हुआ, जो मख़दूमे-जहानियाँ (जगत्सेवित) नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने छत्तीस बार मक्का हज किया और असंख्य '**करामात**' किए। उसका पौत्र बुरहानुद्दीन (कुत्बे-आलम, दुनिया की मीनार) गुजरात में जा बसा और वहीं १४५३ में मरा। उसके पुत्र और सन्त मुहम्मद शाहआलम की मृत्यु भी गुजरात में ही १४७५ में हुई जहाँ उसने बड़ा नाम कमाया और जहाँ के राजनीतिक तथा धार्मिक जीवन में उसका साका चला।

क़ादिरी सन्तों की बुनियाद अब्दुल क़ादिर अल-जिलानी ने फ़ारस में डाली। भारत में मुस्लिम सन्त पन्थों में यह पर्याप्त विख्यात है। इसके प्रवर्तक अल-जिलानी की मृत्यु ११६६ ई० में ही हो गई थी। यद्यपि सन्त कभी भारत नहीं आया, उसकी समाधियाँ अनेक स्थानों में बनी हुई हैं जहां उसके अवशेष रखे बताए जाते हैं। इन्हीं में एक विशाल वृक्ष लुधियाने में है जिसे अल-जिलानी की दतौन से निकला हुआ मानते हैं। उसके मेले में प्रतिवर्ष चालीस-पचास हज़ार श्रद्धालु जाते हैं, वैसे उस सन्त की मृत्यु-वार्षिकी भारत में प्रायः सर्वत्र मनाई जाती है। भारत में इस सन्त पन्थ की नींव सैयद मुहम्मद ने डाली जिसका दूसरा नाम बन्दगी मुहम्मद गौथ था। वह अलेप्पो का रहने वाला था जो १४८२ में भारत आकर उच्छ में बस गया था। भारत आने के पैंतीस वर्ष बाद १५१७ ई० में उच्छ में ही उसकी मृत्यु हुई। उसके उत्तराधिकारी खलीफ़ाओं में अनेक प्रसिद्ध सन्त हो गए हैं जिनके '**करामात**' प्रसिद्ध हैं। उसकी समाधि पर आज भी, उच्छ में, उनका ही अधिकार है। उसका एक उत्तराधिकारी, जो लाहौर में १६३५ में मरा, शेख़मीर (मियाँ मीर) था। वह-दाराशिकोह का गुरु था और उसकी समाधि की बड़ी महिमा कही जाती है। सन्त ताजुद्दीन पन्थ के प्रवर्तक अल-जिलानी का वंश था जो दकन में औरंगाबाद में १६९८ ई० में मरा जहाँ उसका मक़बरा बना है।

शत्तारी सन्तों का भारत में आरम्भ मुहम्मद गौथ ने किया जो बादशाह हुमायूँ का गुरु था। वह १५६२ में मरा जब अकबर राज कर रहा था।

अकबर ने ग्वालियर में उसका अलीशान मक़बरा बनवा दिया। उसका शिष्य वजीहुद्दीन गुजराती असाधारण विद्वत्ता का सन्त था जो १५८६ ई० में मरा और अहमदाबाद में दफ़नाया गया। उसी शत्तारी पन्थ का एक प्रसिद्ध सन्त शांहपीर था जो १६३२ ई० में मेरठ में मरा जहां नूरजहाँ ने उसका मक़बरा बनवा दिया।

नक्शबन्दी सन्तों का प्रचारकार्य भारत में शिथिल रहा। इस देश में इनकी बुनियाद शेख़ अहमद अली-फ़ारूक़ी ने डाली। फारूक़ी की मृत्यु सर-हिन्द में १६२५ ई० में हुई। भारत और पाकिस्तान में अनेक स्थानों पर इस पन्थ के सन्तों की दरगाहें बनी हैं। इनमें प्रसिद्ध शाह मुसाफ़िर की है जो १६९८ ई० में औरंगाबाद में मरा था।

मुस्लिम सन्तों के भारत और पाकिस्तान में अनेक वर्ग हैं पर विस्तार के से उनका उल्लेख यहाँ नहीं किया जा सकता। इन सन्तों के करामात प्रसिद्ध हैं और अधिकतर ये हिन्दुओं को चमत्कारी ढंग से मुसलमान बनाने से सम्बन्ध रखते हैं। ऊपर वर्णित मुस्लिम साधु पन्थ '**बा-शरह**' अर्थात् दीन की हिदायतों के अनूकूल माने जाते हैं, पर इनके अतिरिक्त कुछ पन्थ ऐसे भी हैं जो '**शरह**' के प्रतिकूल होने से '**बे-शरह**' कहलाते हैं क्योंकि उनमें इस्लाम की पाबन्दियाँ और हिदायतें नहीं मानी जातीं। इनका उल्लेख अब नीचे किया जा रहा है।

'**बा-शरह**' चलने वाले पन्थों के अनुयायी ऊँचे तबके के पढ़े लिखे मुसलमान हैं। पर 'बे-शरह' पन्थों के मानने वाले अनपढ़ और निम्नवर्गीय मुसलमान तथा हिन्दू हैं। इन पन्थों की अपनी-अपनी ख्यातें कहानियाँ हैं जिनपर विश्वास करना कठिन होगा पर जो इनके सन्तों के जीवन से अभिन्न हो गई हैं। इनका सबसे पुराना सन्त शाह मदार है जिसकी क़ब्र कानपुर से चालीस मील परम कानपुर में है। कहते हैं कि शाह अलेप्पो का यहूदी था, जो मुसलमान होकर ग्यारहवीं सदी ईसवी के मध्य भारत आया और मकानदेव नाम के जिन्न को भगाकर मकानपुर में बस गया था। मदाड़ी फ़कीरों में शाहमदार के असंख्य अनुयायी हैं। मदाड़ी जादूगरी का पेशा ही करते हैं, नमाज़ नहीं पढ़ते, पर साँप-बिच्छू के काटे का जन्तर-मन्तर से इलाज करते और झाड़-फूँक से जिन्न भगाते हैं।

बे-शरह पन्थ के एक-दूसरे सन्त सखी सखर की भी बड़ी ख्याति है। उनके करामातों की कहानियाँ आज भी कही जाती हैं। उनका समय ठीक नहीं मालूम पर संभवतः वे बारहवीं या ग्यारहवीं सदी में हुए। दीर्घ काल तक रमते रहकर पाकिस्तान में कोह सुलेमान के नीचे निगाह में उन्होंने डेरा डाला, जहाँ उनकी क़ब्र है जिसकी ज़ियारत के लिए हर साल वहाँ मुसलमान, सिक्ख और हिन्दू जाते हैं। मध्य पंजाब के प्रायः प्रत्येक गाँव में सखी सखर का चौरा है। बे-शरही पन्थ के सन्तों में एक मूसा सुहाग भी पर्याप्त प्रसिद्ध हैं जो पन्द्रहवीं सदी के अन्त में हुए और जिनकी दुआ से, कहते हैं, अकाल मिट गया और मेंह बरस जाने से धरती लहलहा उठी। वे अल्लाह के प्रति उसी प्रकार मुख़ातिब थे जिस प्रकार पत्नी पति के प्रति होती है। इसी से वे रहते ज़नाने लिवास में थे, जिस लिबास में उनके पन्थ के मानने वाले दूसरे सन्त भी रहते हैं और ब्रह्मचर्य के ये सन्त दृढ़व्रती होते हैं। मूसा सुहाग की क़ब्र अहमदाबाद में है। क़ब्र के पास ही एक वृक्ष खड़ा है जिसकी प्रशाखाएँ चूड़ियों से ढकी रहती हैं। नारी के रूप में इन्हें पूजने वाले भक्त पूजा में इन पर चूड़ियाँ चढ़ाते हैं। अनपढ़ मुसलमानों में पाँच पीरों की पूजा बहुत प्रचलित है। इनमें से एक—ख़ाजा ख़िज़्—कुरान (१८, ६४-८१) में उल्लिखित मूसा के अनामा साथी से अभिन्न माने जाते हैं। इनको मुसाफ़िरी का पीर मानकर पूजा जाता है, विशेषकर माँझी और जल से सम्बन्ध रखने वाले अन्य पेशेवर इनके विशेष भक्त हैं। कुआँ खोदते समय अनेक स्थानों के मुसलमान और हिन्दू इनके नाम पर बकरे की बलि देते हैं। बंगाल में उनकी वार्षिकी की शाम लोग केले के तने उनके नाम पर बहाते हैं या कागज़ की किश्तियाँ बनाकर उनमें दीप जला कर जल में उन्हें प्रवाहित करते हैं।

नारी सन्तों की ओर भी ऊपर संकेत किया जा चुका है। उनकी क़ब्रों तथा दरगाहों का यहाँ संक्षेप में उल्लेख कर देना उचित होगा। भारत और पाकिस्तान दोनों देशों में नारी सन्तों की पूजा होती है। बलोचिस्तान में कलात के पास बीबी नाहज़ान के मज़ार पर कुते काटे आदमियों की बराबर भीड़ लगी रहती है। कहते हैं, बीबी क़ाफ़िरों के डर से अपनी बाँदी के साथ धरती में समा गई थी। मुस्तंग की सैयद बीबी नाज़ो की क़ब्र भी कुत्ते काटे व्यक्तियों के

इलाज के लिए प्रसिद्ध है। कुमारी सन्त हारो अना शत्रुओं से तारीन अफ़गानों की शाखा बनीचीयों की रक्षा करती है। कोह सुलेमान के दखिनी प्रदेश मर्री में अनेक नारी सन्तों की क़ब्रें पूजी जाती हैं। अब्दुल हकीम (मृ. १७३२) की शिष्या माई सपूरन की क़ब्र ज़िला मुल्तान में है जहाँ कुत्ते काटे लोग रक्षा के लिए जाते हैं। कहते हैं कि माई सपूरन रावी की धारा पर जाँनमाज़ बिछा कर नमाज़ पढ़ा करती थीं। इसी प्रकार फ़ीरोज़पुर में भी नारी सन्त माई अमीरन साहिबा के मज़ार पर हर बरस मेला लगा करता है।

सन्तों के तप और जीवन की सादगी की कहानियाँ सर्वत्र प्रचलित हैं। संभल का सन्त मियाँ हातिम (मृ. १५६२) दस साल तक निरन्तर संभल और अमरोहा के आसपास नंगे सिर, नंगे पाँव फिरता रहा था। मुहम्मद गौथ (मृ. १५६२) गंगा के उत्तर के पहाड़ों में बारह बरस तक कठिन तप करता रहा था। वह पत्तियों का आहार करता था, गुफाओं में नंगी शिलाओं पर सोता था। अल-बदाऊनी ने इस प्रकार के अनेक सन्तों के कठिन जीवन का वर्णन किया है।[1] इनमें शेख़ बुरहान और मियाँ हातिम विशेष उल्लेखनीय हैं। चिश्ती और सुहरवर्दी सन्तों सम्बंधी मेलों में उनके '**उर्स**' कव्वाली और नाच के साथ मनाए जाते थे। फ़रीदुद्दीन शकरगंज का समकालीन एक सन्त शेख़ बद्रुद्दीन था। विख्यात है कि बुढ़ापे में जब वह हिल भी नहीं सकता था, उसने गीत और आयत सुने। वह सहसा उठा और नाचने लगा, फिर लोगों के पूछने पर बोला—'**अरे यह शेख़ थोड़ा ही है, प्रेम है जो नाच रहा है।**'[2]

---

[1]. मुन्तखाबुत्तवारीख़, टी. डबल्यू. हेग का अनुवाद, ३, १०; वही, ३,३।

[2]. अबुल फ़ज़्ल : आईने अकबरी, एच. एस. जैरेट का अनुवाद, ३. ३६८।

व्यक्तित्व और कृतित्व

शचीरानी गुर्टू

हिन्दी के जनपद संतों की परम्परा युग-युगान्तर की विश्रृंखल कड़ियों को जोड़ती हुई मुख्यतः एक ऐसी व्यापक मानवीयता के जीवन-स्पन्दन की वाहक है जिसकी भावनाएँ इतनी नैसर्गिक और जनसुलभ हैं जो रागात्मक अंतःप्रकृति के साथ समरस होकर युग-चेतना को सदा मुखर करती रहीं। यद्यपि उक्त जनपद संत अधिक शिक्षित अथवा शास्त्रीय अध्येता कभी नहीं रहे, तथापि जीवन की अयथार्थ विडम्बनाओं की रगड़ खाकर उनका तर्क और विवेक जागरूक हो उठा, अनुभूति और अंतर्ज्ञान की ज्वलन्त प्रखरता ने उनमें व्यामोह नहीं निर्वेद का भाव भर दिया, बौद्धिक उत्पीड़न नहीं वैचारिक क्रान्ति उत्पन्न कर दी, अतएव उनकी अभिव्यक्ति किसी विचार-वृत्त में क़ैद न होकर उन्मुक्त विचार-स्वातन्त्र्य की सदा हामी रही जो न केवल आध्यात्मिक प्रयोजन सिद्ध करती है, वरन् मुक्तावस्था की ओर प्रेरित करने वाली उन्नायक शक्ति भी है।

सबसे बड़ी बात है ऐसे संतों के कृतित्व की शैलीगत वैयक्तिकता, जिससे लगता है कि मानों वे सभी के आत्मीय हैं, सभी के अत्यन्त समीप और आमने-सामने खड़े होकर बातें कर रहे हैं। उनके विचार और भाव जन-सामान्य के विचार और भावों से संश्लिष्ट होकर अंतर्बाह्य स्थितियों का निरूपण करते हुए सामूहिक लोक-जीवन की कितनी ही रसधाराओं का उद्रेक करते हैं। एक ओर तो उनकी चित्तवृत्ति अपने ध्येय अर्थात् चरम तत्त्व की खोज में निरन्तर निरत रहकर सुखद स्वानुभूति का रसास्वादन करती हुई आत्मविभोर-सी दीख पड़ती है तो दूसरी ओर उन्होंने अपनी निश्छल, अकृत्रिम वाणी को प्रवृत्ति और निवृत्ति की भ्रांतिमूलक धारणाओं से परे लोकस्वर का चोला पहना कर चिन्मय रूप दे दिया है।

परिणामस्वरूप इस कोटि में आने वाले जनपद संत सभी वर्गों और जनसमूहों के बीच अत्यन्त लोकप्रिय रहे हैं। हृदय की सचाई से अभिहित होकर, पर कभी-कभी प्रतिस्पर्द्धा अथवा उन्मुक्त चिंतन का प्रश्रय लेकर उन्होंने जो कुछ सिरजा, युग की समग्रता में आत्मसात् कर अखण्ड मानवता के निर्द्वन्द्व गायक के रूप में उसे अपने निर्भीक मन, प्रखर बुद्धि, सूक्ष्म निरीक्षण और स्पष्ट वाणी द्वारा कविता में प्रतिष्ठित कर दिया।

यही कारण है कि इन जनपद संत कवियों की वाणी का एक अपना

वैशिष्ट्य है। नित-नये अर्थ और संदर्भ में उन्होंने बेलाग सादगी और सचाई के साथ जीवन के जिस सम्पूर्ण सत्य को उजागर किया है उसके अपने निराले अर्थ और आयाम हैं।

कबीर*

कबीर की सच्ची अनुभूति की दीपशिखा आज भी जन-मानस के अंधकार को विच्छिन्न कर रही है। मन में मस्ती है, तन्मयता है या निष्कपट भाव एवं दृष्टिकोण की एकतानता है तो भले ही उसमें कवित्व के वाह्य गुणों का अभाव हो, किंतु अंतःकरण की पुकार और भाव-तद्रूपता तो मिलती ही है। अतएव सदाचरण और शुद्ध व्यावहारिक कसौटी पर किसी शास्त्रीय-पद्धति का सहारा लेकर नहीं बल्कि प्रत्यक्षवाद पद्धति पर निजी अनुभवों को बोलचाल की भाषा में साकार किया गया। फलतः कबीर में न तो हीनत्व भाव है और न मिथ्याभिमान का दर्प। सामाजिक संक्रमण की विद्रूपता, धर्मनीति एवं आचार-मर्यादाओं के खोखलेपन से चिढ़कर कितने ही मतभेदों का निराकरण करते हुए उन्होंने उग युग की विकट चुनौती को आगे बढ़कर स्वीकार करने का अद्भुत साहस दिखाया। यही स्वतःप्रेरित जिज्ञासा और स्वानुभूति उनके समूचे कृतित्व का प्राण है जो उनके जनपदीय रूप को मुख्यतः बड़े ही सबल रूप में सामने लाता है।

***कबीर 'कबीर पंथ' के प्रवर्त्तक हैं। इस पंथ के संत सिर पर नोकदार पीले रंग की टोपी पहनते हैं। 'कबीर कसौटी' में कबीर का जन्म सं० १४५५ वि० में और मृत्यु १५७५ वि० में होना लिखा है। इस पंथ के लोग कबीर की उम्र तीन सौ वर्ष बताते हैं। इनका कहना है १२०५ वि० में जन्म और १५०५ वि० में मृत्यु हुई। कबीर कहते हैं :**

"तू बाम्हन मैं काशी का जुलहा बूझहु मोर गियाना" (आदिग्रंथ)

१४५५ की ज्येष्ठ पूर्णिमा को एक विधवा ब्राह्मणी के उदर से इनका जन्म हुआ था। ब्राह्मणी ने बालक को काशी के लहरतारा तालाव के किनारे फेंक दिया था। नीरू जुलाहा ने अपनी पत्नी नीमा के साथ उधर से गुजरते हुए अनाथ शिशु को देखा, उसे घर लाकर पालन-पोषण किया। यही बालक संत कबीर के नाम से विख्यात हुआ। इनकी पत्नी का नाम लोई और पुत्र का नाम कमाल था।

"कहै कबीर बहु अकथ है, कहताँ कही न जाई।
सहज भाइ जिहि ऊपजैं, ते रमि रहे समाई।।"

एक अन्य स्थल पर वे स्वीकारते हैं—भाई ! मैं तो कहीं गया न आया, मेरे मन में जो विचार उपजे उन्हें ही ज्यों-का-त्यों सच्चे रूप में सामने रख दिया :

"करत विचार मन-ही-मन उपजी, ना कहीं गया न आया।"

इस अपरिमेय उद्दामता एवं बलवती जागरूकता के कारण कबीर में आत्मग्राह्यता और स्वतन्त्र सचेत मानववाद की व्यापक आस्था उनकी अपनी तथाकथित अनुभूतियों और प्रतीतियों में नितान्त सशक्त रूप में उभर कर सामने आई। उन्होंने अपनी इसी आत्मनिष्ठा का समष्टि में रूपांतरण किया, यहाँ तक कि उनका जीवनदर्शन परम्परावादी मर्यादाओं का अतिक्रमण कर अपने नये स्वर, नये प्रतीक, नये शब्द और निराली रचना-शक्ति का ओज उसमें भरता रहा। निम्न पद में अपने राम को सम्बोधित कर वे अपने प्रश्नों का समाधान खोजते हैं :

"राम मोहि तारि कहाँ लै जैहो।
सो वैकुंठ कहौ धूं कैसा करि पसाव मौहि देहो।।
जे-मेरे दोइ जानत हौ तौ मोहि मुकति बताओ।
एक मेक रमि रह्या सबनि मैं तो काहे भरमावो।।
तारण तिरण जबै कहिए तब लग तत न जाना।
एक राम देख्या सबहिन में कहै कबीर मन माना।।"

सगुण या निर्गुण का आलम्बनत्व उन्हें लोकानुभव से विमुख न कर सका, वरन् उनकी सूक्तियों में यदि कहों भावावेश की प्रखर व्यंजना, हठधर्मी, विरोधाभास एवं भाषा की अत्यधिक वक्रता नज़र आती है तो उसमें भी सर्ववाद का प्रतिपादन ही मिलता है। कहीं-कहीं उनके तर्क बड़े बेधड़क और विचित्र से लगते हैं, किन्तु उनके ऐसे तर्क भी सत्यभाव से अन्तर्भूत हृदय के व्यापकत्व का ही आभास देते हैं :

"संतौ धोखा कासूँ कहिए।
गुण में निरगुण निरगुण में गुण है, बाट छाड़ि क्यूं बहिये।।

अजरा अमरा कथै सब कोई, अलख न कथणाँ जाई।
नीति स्वरूप बरण नहीं जाकै, घटि-घटि रह्यौ समाई।
प्यंड ब्रह्मंड कथै सब कोई, वाकै आदि अरु अंत न होई।
प्यंड ब्रह्मंड छाड़ि जे कथिये, कहै कबीर हरि सोई॥"

अनेक बार इन्होंने अपने अनुभूत सत्य को रूपकों में बाँधा और उसकी तरह-तरह से व्याख्या प्रस्तुत की—'यह शरीर तो है मेरा सितार और यह सारी रगें हैं उसकी ताँत। मुझ विरही के इस सितार को और कोई नहीं सुन सकता। इसे या तो मेरा स्वामी सुनता है या फिर यह हृदय।" "हाँ, अपने प्रीतम को मैंने इस तरह रिझाया है—आंखों की कोठरी सजाई, उसमें रंगीली पुतलियों का पलंग बिछाया और खिड़कियों पर पलकों की चिकें डाल दीं। इस तरह मैंने अपने प्रीतम को रिझाया।" "यह कोई खाला का घर तो है नहीं; यह तो बाबा! प्रेम का घर है। वही सूरमा इसमें पैठने का साहस करे, जिसने अपना सिर उतार के जमीन पर रख दिया हो।" क्षितिज के छोर पर नीलाकाश अत्यन्त मनोरम और आकर्षक प्रतीत होता है, किन्तु उसकी रहस्यमयता में ठोस जीवन की अवतारणा करके उस स्वर्गलोक को इस यथार्थ जगत् में खींच लाना ही तो सच्ची साधुता है। सांसारिक जीव एक अद्भुत स्वर्गराज्य की कल्पना में ही भटके रहते हैं। वास्तविक जगत् से पलायन करके जिस मिथ्यात्व में मन भ्रान्त है वहाँ असली खोज कहाँ? जो अंतर में बसा है, उसे ढूंढ़ते क्यों फिरते हो, उसे आज तक पहचाना ही नहीं, न समझा, न पाया।

'तू क्या मुझको ढूंढे • बंदे मैं तो तेरे पास में,
खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं पलभर की तालास में॥"

यों कबीर को ज़िन्दगी में ही साधना की दृढ़ प्रतीति हुई। आत्मानुभूति ही सच्ची उपासना है। भीतर-ही-भीतर मानों अनहद नाद हो रहा है, किसी गंभीर गर्जन का अजस्र प्रवाह है जहाँ पवन झरता रहता है और उससे टकराती तूर्य की झनकार नित्य झंकृत होती रहती है। इस आकाश-मंडल में चन्द्र-ज्योत्स्ना का प्रसार है। उदय और अस्त की दुर्दम्य स्थिति यहाँ नहीं है। इस प्रेमप्रकाश के गहन सागर में दिवस और रात्रि का वैषम्य नजर नहीं

आता, अपितु उसकी निस्सीम दृश्यमान परिधि में आलोक-ही-आलोक सदा विकीर्ण होता रहता है :

> **"गगन गरजै तहाँ सदा पवन झरै।**
> **होत झनकार नित बजत तूरा।**
> **गगन के भवन में गैब का चाँदना**
> **उदय और अस्त का नाँव नाहीं।**
> **दिवस और रैन तहँ नेक नहीं पाइए।**
> **प्रेम परकास के सिन्ध माँही॥"**

अतएव द्वैतभावना से परे द्वन्द्व-दैन्य, पीड़न-शोषण, दमन-शमन और जरा-जीर्णता के तिमिर जाल से निकल कर उसी आलोकपथ की ओर अग्रसर होना ही अनुभूति के स्पर्शमणि की जाज्वल्यमान ज्योतिशिखा को प्रदीप्त करना है। तात्कालिक क्षणों से भागकर शाश्वत को छूना संभव नहीं है, तथापि इन अस्थायी क्षणों में केन्द्रित रहकर भी ऊर्ध्व को नहीं पकड़ा जा सकता। जब ये क्षण मन्वन्तर बनकर मुखरित होंगे तभी जीवन में तम का अनावरण होगा। कबीर ने बड़ी ही उच्च मनोभूमि पर सभी विरोधी इकाइयों को जागरूक चेतना की अन्तर्ज्योति से दीप्त कर दिया। उस विराट् सत्ता को उन्होंने कितने ही नामों से संबोधन किया, किन्तु जो अदृश्य है, जिसे किसी ने देखा ही नहीं, सगुन-निर्गुन से परे जो गुणातीत और निराकार-निरंजन है उसके बारे में क्या कहा जाय, कौन-सी दलील पेश की जाय। सीधे-सच्चे शब्दों में कैसी मार्मिक अभिव्यक्ति है जो मन को छूती है—

> **"अविगति की गति क्या कहूँ; जसका गाँव न नाँव।**
> **गुनविहून का पेखिये, काकर धरिये नाँव॥"**

इस प्रकार कबीर के समूचे पद परम्परित अनुभूत ज्ञान के परिपुष्ट, प्रभावोत्पादक और लोकरंजक यथार्थ के वैचित्र्य से उपजे सजीव सूत्र हैं जिनमें एक ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया गया है कि जिसका एक छोर असीम चेतन तो दूसरा सर्वसामान्य के हृदय में समाया हुआ है। एक लम्बे अर्से तक उनकी यह जनपदीय देन अन्य समकालीन एवं परवर्त्ती कवियों के कृतित्व को भी प्रभावित करती रही।

गुरु नानक*

इनमें भी ऐसी ही एकाग्र ईश्वर निष्ठा, सद्प्रवृत्ति और जनहित तत्पर सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा की सच्ची लगन थी जो सर्वसामान्य का पथ-निर्देश करती रही। ईश्वरीय आदेशों के प्रसारक के रूप में उन्होंने अपनी अंतरंग करुणा और सदाशयता के [illegible] को जन-जन के बीच इस ढंग से लुटाया जिससे इनके मुख से निस्सृत वाणी सत्य की सजीवता का अविभाज्य मिश्रण बनकर लोगों के दिलों में गहरी धँस गई। कहीं इन्होंने सचेत स्वर में आगाह किया :

"अरे! उसे तू क्यों वन में खोजने जा रहा है? वह घट-घट वासी अलिप्त स्वामी तो तेरे रोम-रोम में समाया हुआ है। फल में जैसे सुगन्ध बसती है और दर्पण में जैसे परछाईं उसी प्रकार श्रीहरि का तेरे अन्तर में

---

*नानक की जन्मतिथि बैशाख अक्षय तृतीया सं० १५२६ मानी जाती है। इनके पिता का नाम कालू था। वे गुलार पठान के यहां कारिन्दे का काम करते थे। जाति के खत्री थे। माता का नाम तृप्ता था। इन्हें उर्दू और फारसी पढ़ाई गई थी। १९ वर्ष की अवस्था में शादी हुई। इनकी पत्नी का नाम सुलक्षणी था। इन्होंने कुछ दिनों तक दौलतखां के यहां मालखाने में नौकरी भी की थी।

बाल्यावस्था से ही इनके चित्त में वैराग्य था। संसार उनको प्रिय नहीं लगता था। इन्हें वीतराग साधु संतों में बैठकर हरि-चर्चा करने में सुख मिलता था। ये बहुत दिनों तक उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल और बर्मा आदि स्थानों में घूमते रहे। इन्होंने दक्षिण भारत की भी यात्रा की। पश्चिमोत्तर प्रदेशों में बलख, बुखारा, बग़दाद, रोम और मक्का मदीना भी गये थे। इन्होंने नेपाल, भूटान, काश्मीर आदि देशों की भी यात्रा की। संवत् १५९५ में इनका स्वर्गवास हो गया। इनके आध्यात्मिक विचार इनके पदों में स्पष्ट हैं। श्री नानक के पदों का संग्रह 'आदिग्रन्थ' अथवा 'ग्रन्थ साहब' के नाम से प्रसिद्ध है। 'सुखमनी', 'अष्टांग जोग' और 'साखी', 'प्राण संगली' आदि पुस्तकों में इनके पदों का संग्रह है।

निरन्तर निवास है। उसे तू अपने घट के अन्दर ही खोज। सतगुरु का यह प्रसाद ही समझो कि मेरी दृष्टि द्वैतबुद्धि से दूर हो गई। अब तक जहाँ देखता हूँ वहीं केवल एक वही दिखाई देता है।"

इंसान अपने सपनों के जाले में मकड़ी की तरह उलझा-पुलझा रहता है जिसके कारण सचाई उसकी नज़रों के सामने से छिप-सी जाती है। अज्ञानान्धकार में वह जीव विषयासक्तियों में सदा भरमता रहता है और उसे प्रकाश की वह लौ आकृष्ट नहीं करती जो न जाने ऐसे कितने ही काले पर्दों को चीरकर मन में आह्लाद की तरंगों का आलोड़न पैदा कर देती है। इस भ्रम के तिमिर जाल की ओर संकेत करते हुए नानक एक पद में कहते हैं :

> **"भाई मैं केहि विधि लखो गुसाँई।**
> **महा मोह अज्ञान तिमिर है, मन रहियो उरझाई।**
> **सकल जनम भ्रम ही भ्रम खोयो, नहिं इस्थिर मति पाई॥**
> **विषयासक्त रह्यौ निसिबासर, नहिं छूटी अधमाई।**
> **साधुसंग कबहूँ नहिं कीन्हा, नहिं कीरति प्रभु गाई॥**
> **जब नानक में नाहीं कोउ गुन, राखि लेहु सरनाई।"**

ईश्वर की रहमत का कोई सानी नहीं, उससे बढ़कर कौन है, उसकी दयानतदारी की तुलना भला किसी से कैसे की जा सकती है। जागरण और सुषुप्ति के मिश्रित सम्मोहन में जब हम डूबे रहते हैं तो कभी किन्हीं पुराने संस्कारों वश किसी महापुरुष का भाग्य जगता है और सहसा विद्युत् की कौंध की तरह ज्ञान की किरणें उसके मनःप्राणों को एक नशे के से आलम से अभिभूत कर लेती हैं। कभी-कभी ऐसे क्षण कर्म-बन्धन से मुक्त कर उन्मुक्त जीवन की ओर प्रेरित करने वाले सिद्ध होते हैं। स्थूल से सूक्ष्म के दायरे में वे ससीम हैं और काम्य कर्म से साम्य स्थिति में सुस्थिर करने वाले हैं। साम्य स्थिति जब स्थिर हो जाती है तो लगता है मन ईश्वर से एकाकार होता जा रहा है, एक ताल, एक लय के साथ समरस होकर वह ऐसे अनहद नाद में थिरकता रहता है जहां बाधाएँ विचलित नहीं करतीं और धुकधुकी व अशांति उत्पन्न करने वाली अवस्था समाप्त हो जाती है।

"पुष्प मध्य ज्यों वास वसत है मुकुर माँहि जल छाँही ।।
तैसे ही हरि बसै निरंतर, घट ही खोजो भाई ।।"

नानक के मत में ईश्वर-भक्ति का अर्थ यह नहीं है कि दुनिया से विमुख होकर कर्म करना छोड़ दिया जाय अथवा चुपचाप संन्यास लेकर पलायनवाद का सहारा लिया जाय, किन्तु कर्त्तव्य-कर्म करते हुए भी निष्काम निरासक्त रहा जा सकता है। यद्यपि सांसारिक क्रिया-प्रतिक्रिया का कहीं अन्त नहीं है और कर्म बंधनकारी हैं, तथापि लोकव्यावहारिकता की कसौटी पर दूसरों का लाभालाभ भी तो देखना चाहिए। केवल वैयक्तिक सुखसुविधा अथवा आत्मतुष्टि के लिए ही समूचे प्रयास और कर्मचेष्टाएँ नहीं हैं बल्कि लोकतुष्टि और समाजहित का ध्यान रखते हुए जीवन-यात्रा को सफल बनाना भी ध्येय होना चाहिए। अतएव नानक ने ऐसे नीति-विषयक पदों की भी रचना की, जो विचारों की पवित्रता और विशेषकर सत्पथ की ओर उत्प्रेरित करने वाले हैं :

"कीजे नेकनामी जो देवे खुदाइ, जो दीसे जिमी परसी होसी फनाहि।
दायम व दौलत कसे बेशुमारन, रहिंगे करोड़ी न रहिंगे हजार।
दमड़ा तिसी का जो खर्चे और खाए, देवे दिलाये राजाइ खुदाई।
होता न राखे अकेला न खाए, तहक़ीक दिलदानी वही मिल्लत जाई।"

भावों का दरिया जो इस भक्त कवि के दिल में हिलोरें मार रहा है उसकी अनुभूति दूसरों को भी होनी चाहिए, यही कारण है कि उनके हर पद में निर्विवाद आत्मानुभव और विचारों का सामंजस्य सर्वथा सधे रूप में प्रकट हुआ है। बिना किसी लाग-लपेट के एक अन्य स्थल पर वे कहते हैं :

"हरि मेरी प्रीति रीति है, हरि मेरी कथा कहानी जी।
गुरु परसादि मेरा मन भीजै एहा सेव बनी जीऊ।
रहाउ हरि मेरा सिम्रिति हरि मेरा सासतर हरि मेरा बंधु हरि मेरा भाई।
हरि की मै भूख लागै हरिनाम मेरा मनु त्रिपतै हरि मेरा साकु अंति होइ सखाई।
हरि बिनु होर रास कूडी हे चल दिया नालि न जाई।
हरि मेरा धनु मेरे साथ चालै जहां हउ जाउ ताह जाई।

कर्मशील जीवन की सापेक्षता में अपने चहुँ ओर के वातावरण की

हलचल भरी व्यस्तता वैयक्तिक साधना और भावना के स्वतन्त्र विकास में बाधक नहीं होती, इसके विपरीत व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास में और भी उन्मुख एवं सहायक सिद्ध होती है। अतएव अत्यधिक ऐकान्तिकता या अहंवादिता से परे प्रत्यक्ष जीवन की युगान्तरकारी अनुभूति में छिपे परोक्ष आनन्द का सभी को रसास्वादन कराना चाहिए। कुछ लोग धरती पर पैर रखकर आसमान को निहारा करते हैं, किन्तु सच्चा जनपद संत तो वही है जो स्वर्ग और भूलोक दोनों के बीच की कड़ी बनकर जन-जन की मनोवृत्ति को स्पर्श करने का प्रयत्न करता है। न केवल कुंठित मन की गाँठें खोलने में, अनगिन उलझनों को सुलझाने में, वल्कि दूसरों के सत्य को अपनी आँखों के सत्य से आँकने में तथा जीवन के चरम श्रेय-प्रेय को लोकोत्तर कल्याण भावना से शराबोर कर सकने में ही सच्चे साधक का सच्चा जनपदीय स्वरूप प्रकट होता है।

दादू*

दादू में भी ऐसी ही लोकरंजनकारी प्रवृत्ति थी जो लोकव्यवहृत भाषा में व्यष्टि-समष्टि के ऊहापोह से परे बड़े ही सीधे-साधे ढंग से मुखर होती रही। इनके पदों में ज्ञान, योग और वैराग्य तीनों का समावेश है। सतगुरु ने रास्ता दिखाया जिससे मन में भक्ति की तन्मयता जगी।

> **"सतगुरु सू सहजै मिल्या, लीया कंठ लगाइ।**
> **दाया भई दयाल की, तब दीपक दिया जगाइ॥"**

सत्-असत् और जड़-चेतन के चिरंतन संघर्ष में भी मानसिक उन्नयन द्वारा आत्मप्रतीति कब होती है, कैसे कर्मचक्र से मुक्त हो सच्चा ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है और क्योंकर भक्ति अथवा निष्काम कर्मयोग आध्यात्मिक

---

*दादू का जन्म अहमदाबाद में सं० १६०१ में हुआ था। दादू के गुरु कौन थे—इस सम्बन्ध में अभी जानकारी नहीं मिल पाई है। किन्तु दादू के एक पद से ऐसा मालूम होता है कि उनके गुरु थे। इनसे पहले के ३० वर्षों का जीवन-वृत्त अप्राप्य है, किन्तु दादू पंथियों का मत है कि ये भी किसी लोदीराम नागर ब्राह्मण द्वारा पालित पोषण हुए थे। कोई-कोई इन्हें छोटी जाति का भी मानते हैं।

शक्तियों के उच्च शिखर पर ले जाता है—इसका बहुत सुन्दर विवेचन हमे दादू के विभिन्न पदों में मिलता है। नौका पर सवार होकर यदि दुर्लंघ्य सागर पार करना है तो उस खेवनहार परमप्रभु की उंगली पकड़ ले, उसे विस्मृत न कर। मन-मंदिर में मूर्ति प्रतिष्ठित है तो तेरे हर श्वास-प्रश्वास के साथ वह तेरी संभाल करता रहेगा :

"दादू नौका नाँव है हरि हिरदै न विसारि।
मूरति मन माहें बसै, सासै साँस सँभारि ॥"

माया का प्रसार नानाविध रूपों में साधक को विपन्न करता रहता है। एकान्त निष्ठा अथवा सूक्ष्म विवेक बिना साधनाच्युति की संभावना बनी रहती है। जब तक साम्यभाव या निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं उपजती तब तक भेदबुद्धि नष्ट नहीं होती। दादू ने बहुत ही सीधे-सादे ढंग से दिग्भ्रांत जीवन-पथिक को सत्पथ पर चलने को प्रेरित किया है :

"कौन पटंतर दीजिए, दूजा नाहीं कोइ।
राम सरीखा राम है, सुमिर्‌या ही सुख होइ ॥"

सच्चे भक्त और अध्यात्मज्ञानी के लिये कोई भेदभाव नहीं रह जाता। वह सब प्रपंचों से ऊपर उठ जाता है। आत्मदर्शी का श्रेय-प्रेय ईश्वरार्पण है, वह अपने समूचे शुभाशुभ कर्मों को प्रभु के चरणों में ही न्योछावर कर देता है। उसका '**स्व**' ईश्वर में ओतप्रोत है। दादू एक स्थल पर कहते हैं :

"बाहर-भीतर सब जगह उसी दयालु मालिक को पाता हूँ। हर दिशा में वही प्रीतम प्यारा नज़र आता है। वह मेरे रोम-रोम में रम रहा है। दूसरे का ऐहसास तो होता ही नहीं। ऐ, तू यह मत समझ कि वह मुझसे दूर है।"

एक अन्य स्थल पर दादू कहते हैं—**"दीन और दुनिया दोनों को निछावर कर कहता हूँ कि ज़रा अपना रूपरस तो पी लेने दे। इस तन-मन को भी निसार करता हूँ और ले, स्वर्ग का लोभ और नरक का भय भी छोड़ देता हूँ।"**

कहीं दादू ने विरहिणी की मर्मांतक वेदना से अपनी तुलना की है जो प्रिय की याद में पलक पाँवड़े बिछाए उसी की बाट जोहती रहती है—

"विरहिनि दुख कासनि कहै, कासनि देइ संदेस ।
पंथ निहारत पीव का, विरहिनि पलटे केस ।।"

कहीं चातक की तरह 'पिव-पिव' की रट लगी है और उसके दर्शन के लिए प्राण तड़फड़ा रहे हैं :

"मन चित चातक ज्यूँ रटै, पिव-पिव लागी प्यास ।
दादू दरसन कारने, पुरबहु मेरी आस ।।"

कहीं अत्यन्त दीन-हीन भिक्षुक या याचक के समान वे प्रभु से अभ्यर्थना करते हैं :

"मैं भिख्यारी मंगिता, दरसन देहु दयाल ।
तुम दाता दुख भंजिता, मेरी करहु संभाल ।।

और कहीं आत्मारूपी सुहागिन प्रियतम की याद में छटपटा रही है । उसने अपने स्वामी को कभी नयन भरके नहीं देखा, कभी दौड़कर गले नहीं लगाया, आलिंगनपाश में आबद्ध हो कभी उसके साथ वह एकमेक नहीं हुई । प्रियतम का अस्तित्व तो है, किन्तु उसका रूपरंग कुछ भी तो वह नहीं देख पाई, न कभी वह आया और उसके सान्निध्य का किंचित्-सा आभास ही उसे हुआ ।

"पीव न देख्या नैन भरि, कंठि न लागी धाइ ।
सूती नहिं गल बाँहि दे, बिच ही गई बिलाइ ।।"

ऐसी स्थिति में भला नींद कैसे आए ? हाय—मेरा प्रियतम तो जग रहा है और मैं सोई पड़ी हूँ । भला, मेरा उससे मिलना कैसे होगा, क्योंकि गफ़लत में मदहोश यह प्राणात्मा तो जगती ही नहीं :

"हूँ सुख सूती नींद भरि, जागे मेरा पीव ।
क्यों करि मेला होइगा, जागै नाहीं जीव ।।"

कर्मनिरत रहकर भी सम्यक् स्थिति में—दादू कहते हैं—हम अहंकार के दामन का पर्दाफ़ाश कर सकते हैं । दरअसल, इस आवरण की ओट में साईं खड़ा है, पर इसी कारण वह आँखों से ओझल है । जब तक पर्दे का वह विभेदक आवरण हटता नहीं तब तक वह दिखाई कैसे दे । अतः ईश्वर और जीव का पार्थक्य कभी नहीं मिटता । अज्ञान की तमिस्रा दोनों को अपने दामन में समाहित किये रहती है :

"मेरे आगे मैं खड़ा, ताथैं रह्या लुकाइ ।
दादू परगट पीव है, जेथहु आपा जाइ ।।"

बुद्धि, तर्क और विवेक मनुष्य के पास अद्‌भुत ईश्वरीय देन है । यदि वह संघर्षों के बीच अपनी सद्‌वृत्ति निर्धारित कर सके तो वह उत्तरोत्तर विश्वात्मा से एकत्व स्थापित कर सकता है । जिस प्रकार पंच महातत्त्व तथा सूर्य-चन्द्र और समस्त नक्षत्रमंडल एक विशेष मर्यादित स्थिति में कार्य करते रहते हैं उसी प्रकार सामंजस्य और नियम-उपनियम हमारे स्वभाव में भी गुँथे हैं । यह आवश्यक नहीं कि जीवन के व्यवहार की अवहेलना की जाय अथवा निष्क्रिय होकर उस ओर अग्रसर हुआ जाय । इसके विपरीत आनन्द का स्रोत तो अंतःकरण ही है जिसमें जीवन को जीते हुए ध्येय की एकस्वरता का आनन्द निहित है । संकल्प-विकल्पात्मक मन जीवन के संघातों से ऊपर उठकर यदि व्यष्टि-समष्टि में, समूची सृष्टि में, सब कालों और गोचर-अगोचर स्थिति में अखण्ड, अव्यय आत्मा की पूर्णता को पा जाता है तो समझना चाहिए कि उसी की शुद्ध एवं आत्मनिष्ठ बुद्धि है ।

"सहज रूप मन का भया, जब द्वै द्वै मिटी तरंग ।
ताता सीला सम भया, तब दादू एकै अंग ।।"

सुन्दरदास*

सुन्दरदास के मत में भी हृदय की शुद्धता का अर्थ है अपने आपको

***सुन्दरदास दादू के शिष्य थे। ये जयपुर के पास द्योसा गाँव में सं० १६५३ में रामनवमी के दिन पैदा हुए थे। ये खंडेलवाल वैश्य थे। थोड़ी अवस्था में ही इन्हें दादू के दर्शन हुए । उनके दर्शन होते ही इन्हें संसार अप्रिय लगने लगा। बैरागी की अवस्था में ही ये घर से बाहर चले गये। 'भक्तमाल' में राघवदास का एक पद है—**

दिवसा है नग्र चोखा ब्रसर है साहूकार,
सुंदर जनम लियो ताहि घर आई कै ।
पुत्र की चाहि पति दई जनाइ,
त्रिया कह्यो समझाइ स्वामी कहौ सुखदाई कै ।।

सांसारिक प्रपंचों से दूर रखकर भगवत्प्राप्ति । किन्तु जगत्-व्यवहार के परित्याग का अर्थ अकर्मण्य लाचारी, नैराश्यपूर्ण दौर्बल्य अथवा दर्पपूर्ण अकर्तृत्व नहीं है । इसके विपरीत जो काम सामने आए उसके प्रति पूर्ण सजग रहकर मिथ्याभावना से पल्ला छुड़ाना है । यह उसी अवस्था में संभव है जबकि प्रत्येक में और सबमें ईश्वरत्व के दर्शन किये जाएँ ।

"ब्रह्म निरंतर व्यापक अग्नि, अरूप अखंडित है सब माहीं ।
ईसुर पावक रासि प्रचंड जू, संग उपाधि लिये बताहीं ॥
जीवत अनंत मसाल चिराग, सु दीप पतंग अनेक दिखाहीं ।
सुंदर द्वैत उपाधि मिटै जब, ईसुर जीव जुदे कछु नाहीं ॥"

इनकी विरहिणी आत्मा के उलाहनों में हृदय की अनन्यता और करुण चीत्कार है । प्रिय कहीं दूर हैं और असमय में ही साथ छोड़ कर चले गए हैं । विरहिन की स्थिति बड़ी ही दयनीय है—कभी वह प्रिय के संदेशे की आशा में अत्यधिक उत्साह से भर जाती है, कभी हताश हो रो-रोकर आँसू बहाती है । कभी वह इस आशंका से भर जाती है कि प्रियतम कहीं और तो नहीं बिलम गए । किसी और से तो प्रणय-सम्बन्ध नहीं जोड़ बैठे । बाट जोहते-जोहते मुद्दत हो गई । प्रतीक्षा-तरु जो अहर्निश बढ़ रहा है और जिसकी

स्वामी मुख कही सुत जनमैगो सही,
पै बिराग लैगो वही घर रहे नहीं माइ कै ।
एकादस बरस में त्याग्यो घर माल सब,
वेदांत पुरान सुने बारानसी जाइ कै ॥

इन्होंने कुछ दिन तक फतेहपुर में निवास किया । पश्चात् जयपुर के पास सांगानेर चले गये थे । बहुत वृद्ध हो जाने पर ये बीमार रहने लगे । बीमारी की हालत में किसी भी औषधि का सेवन नहीं करते थे । ६० वर्ष की अवस्था में इनकी मृत्यु हुई । अंतिम समय में जो कुछ इन्होंने कहा उसे "साखी" कहते हैं । साखी उनके पदों का संग्रह है । इनके मुख्य ग्रन्थ 'ज्ञान-समुद्र', 'लघु-ग्रंथावली', 'साखी', 'पद', 'सुन्दर-बिलास' हैं । 'सुन्दर-बिलास' ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है ।

कालावधि समाप्त ही नहीं होती उसको कैसे काटा जाय। कहाँ उसका ओर-छोर है, कहाँ उसकी इति है।

पतिप्राणा छटपटा रही है, सखी से पूछती है—मेरे प्रियतम कहाँ भटक गए। ए री, मेरा मन शंकित है, ऐसी प्रीति तोड़ी जो अभी तक नहीं आए। जीवन-प्राण संकट में हैं, रात-दिन उधर ही ध्यान है, कलेजे में हूक-सी उठ रही है, प्यारे की इंतज़ार में आँखें अटकी हुई हैं। जब से बिछुड़कर गए हैं किंचित् भी कल नहीं पड़ती। हे सखि! इसीलिए तो तुझसे बार-बार पूछती हूँ कि मेरे प्रियतम कहाँ विलम गए, हमें भुलाकर किसके प्रेमजाल में फँस गए।

> **"पीव को अंदेसो भारी, तो सूँ कहूँ सुन प्यारी।**
> **यारी तोरि गये सो तौ, अजहूँ न आये हैं॥**
> **मेरे तो जीवन प्राण, निसिदिन उहै ध्यान।**
> **मुख सूँ न कहूँ आन, नैन उर लाये हैं॥**
> **जब ते गये बिछोहि, कल न परत मोहि।**
> **ता तें हूँ पूछत तोहि, किन बिरमाये हैं॥**
> **सुंदर विरहिनी को, सोच सखी बार-बार।**
> **हम कूँ विसार अब, कौन के कहाये हैं॥"**

इसके अतिरिक्त ज्ञान-तत्त्व, आत्मा-परमात्मा, द्वैत-अद्वैत, विचार-विवेक निःसंशय-ज्ञान, प्रेम-ज्ञान, संख्या-ज्ञान, वाचक-ज्ञान, आत्मानुभव, साधु के लक्षण, गुरुदेव की महिमा, स्मरण, बंदगी, विरह और पातिव्रत्य का सम्यक् विवेचन भी इनके पदों में अलग-अलग मिलता है। विविध ज्ञानों का एकीकरण अथवा समन्वय तो कर्मेन्द्रियों से या ज्ञानेन्द्रियों से, मन से या बुद्धि से, चैतन्य या अहंकार से होता है, फिर भी इससे काम नहीं चलता। आत्मा का व्यापकत्व ही सबको एक साथ समेटता है। अतएव आत्मप्रतीति का अर्थ है ईश्वरतत्त्व का भान, वही वास्तविक आत्मा का ज्ञान है जो सच्चे स्वरूप का बोध कराता है:

> **"है दिल में दिलदार सही, अंखियाँ उलटी करि ताहि चितैये।**
> **आब में खाक में बाद में आतस, जानि में सुंदर जानि जनैये॥**

नूर में नूर है तेज में तेजहि, ज्योति में ज्योति मिलै मिलि जैये।
क्या कहिये कहते न बनै कछु, जो कहिये कहते हि लजैये ॥"

अस्थिर मन की मीमांसा में सुंदरदास ने लिखा है कि मनुष्य का चित्त बड़ा ही चंचल है। वह क्षण-क्षण में बदलता रहता है, उसकी गति जानी नहीं जा सकती :

"पलही में मरि जाय, पलही में जीवतु है।
पलही में पर हाथ, देखत बिकानो है ॥
पलही में फिरै, नवखंड हूँ ब्रह्मांड सब।
देख्यो अनदेख्यो सो तौ, या ते नहिं छानो है ॥
जातो नहिं जानियत, आवतो न दीसै कछु।
ऐसे सी बलाई अब, तासूँ पर्यो पानो है ॥
सुंदर कहत याकी, गति हूँ न लखि परै।
मन की प्रतीत कोऊ, करै सो दिवानो है ॥"

किन्तु चंचल होते हुए भी मनोदेवता में ही सदसद्विवेक शक्ति है जो करणीय एवं अकरणीय का निर्णय करती है। तत्त्वस्वरूप का आभास वस्तुतः हमें इस मन के द्वारा ही होता है। जीव-जगत्, आत्मा-परमात्मा, प्रवृत्ति-निवृत्ति, चित्तशुद्धि और दार्शनिक सिद्धान्तों का सम्यक् विवेचन करते हुए सुंदरदास ने बचन-विवेक जैसे विषय पर भी पद-रचना की है। बोलने की कला, वाणी का संयम और बचनों को प्रसंगानुरूप प्रयुक्त कर उच्चरित करना बहुत बड़ी खूबी है। हर मुँह पर चढ़े अनगिनत बचनों की कोई थाह नहीं है, कुछ लोग पशुओं की भाँति रात-दिन अंडवंड बोलते रहते हैं और समय-असमय विना सोचे-समझे निरन्तर इस प्रकार वकते रहते हैं जैसे कुएँ के भीतर बरसाती मेंढक टर्राते रहते हैं। ऐसे अनर्गल वकने वालों को आगाह करते हुए सुन्दरदास कहते हैं :

"बोलिये तो तब जब, बोलिबे की सुधि होइ।
न तो मुख मौन गहि, चुप होइ रहिये ॥
जोरिये तो तब जब, जोरिबे की जानि परै।
तुक छंद अरथ अनूप जामें लहिये।

गाइये तो तब जब, गाइबे को कंठ होइ।
श्रवण के सुनत ही मन जाइ गहिये ॥
तुक-भंग छंद-भग, अरथ मिलै न कछू।
सुंदर कहत ऐसी वाणी न कहिये ॥"

दूसरों का अहित करने वाले दुर्जनों को फटकारते हुए एक अन्य स्थल पर ये कहते हैं :

"अपने न दोष देखे, और के औगुण पेखे।
दुष्ट को सुभाव उठि निंदा ही करतु है ॥
जैसे कोई महल सँवारि राख्यो नीके करि।
कीरी तहाँ जाय छिद्र ढूँढत फिरतु है ॥
भोरही तें साँझ लग, साँझ हीं ते भोर लग ॥
सुंदर कहत दिन ऐसे ही भरतु है ॥
पाँव की तरे की नहीं सूझे आग मूरख कूँ।
और सूँ कहत तेरे सिर पै बरतु है ॥"

धरनीदास*

अन्य जनपद संतों की भाँति इन्होंने भी निष्काम भक्ति, योगसाधना और सच्ची उपासना का महत्त्व बताया है। निर्गुण एवं निराकार परब्रह्म के एकेश्वरवाद की सत्ता मानते हुए भी इन्होंने कहीं-कहीं बड़ी ही करुण दीनता और याचनाभरी विह्वलता से गिड़गिड़ाते हुए प्रभु के सगुण रूप की अभ्यर्थना की है और कहीं सखा, कहीं यार, कहीं गुरु और कहीं प्रिय के रूप में इन्होंने उसी में लय होकर तदाकार अभिव्यक्ति की है। भक्त की आत्मारूपी नारी संयोगवश अपने प्रभु प्रियतम से विछुड़ गई। वह कहीं और, स्वामी कहीं

---

*ये छपरा जिले के माँझी नामक गाँव में सं० १७१३ में पैदा हुए थे। ये जाति के कायस्थ थे। इनके घर में कारिंदागिरी का काम होता था। ये स्वयं नौकरी करते थे। अचानक इनके चित्त में प्रेरणा हुई, लिखते हैं—

लिखनी नाहिं करूं रे भाई।
मोहि राम नाम सुधि आई ॥

और। बस, वह विक्षिप्त-सी हो गई। उसका समूचा आनन्द गहन विषाद-गर्त्त में समा गया। शरीर पर न वस्त्र सुहावें और न आभूषण। भवन की सुख-सुविधा भी काटने को दौड़ती है। क्षण-क्षण प्रिय की याद दिल को बेकल कर रही है। मन भारी है, चित्त विक्षुब्ध और ज़िन्दगी का समूचा रस विरस हुआ-सा लगता है। कोई रास्ते में चलता पथिक भी तो नज़र नहीं आता जिसके ज़रिए कोई संदेश प्रिय तक पहुँचाया जाय। बेहद व्याकुलता और कसमसाती टीस इस क़दर बढ़ गई है कि मनःस्थिति भ्रान्त है, कुछ सूझ नहीं पड़ता। वह इधर आवें या इस वियोगिनी को ही कोई प्रिय तक पहुँचा दे। जो कोई प्राण प्रियतम की खोजबीन में सहयोग दे अथवा उसका कहीं अता-पता बतावे तो वह तो उसी की जीवन भर गुलामी करेगी। प्रिय के अलावा उसे और कुछ नहीं चाहिए। उसके सान्निध्य के लिए वह सारा धन-दौलत न्योछावर करने को तैयार है। ओह ! उसमें और प्रिय में कितनी दूरी है :

"पिया मोर बसैं गउरगढ़, मैं बसौं प्रयाग हो।
सहजहिं लाहु सनेह, उपजु अनुराग हो॥
असन बसन तन भूषन, भवन न भावै हो।
पल-पल समुझि सुरति, मन गहवरि आवै हो।
पथिक न मिलहि सजन जन, जिनहिं जनावों हो।
बिहवल विकल बिलखि चित, चहुँ दिसि धावों हो॥
होय अस मोहिं ले जाय कि ताहि ले आवै हो।
तेकरि होइबों लौंड़िया, जे रहिया बतावै हो॥
तबहिं त्रिया पत जाय, दोसर जब चाहै हो।
एक पुरुष समरथ, धन न चाहै हो।"

अपने अटूट विश्वास और अनन्य निष्ठा के कारण प्रभु से तादात्म्य स्थापित कर इन्होंने निम्न पद में उसे बिल्कुल दोस्त मान लिया :

"जब मेरो यार मिले दिलजानी, होइ लबलीन करौं मेहमानी।
हृदय कमल बिच आसन सारी, ले सरधा जल चरन खटारी॥
हित के चंदन चरचि चढ़ायो, प्रीति के पंखा पवन डोलायो।

भाव के भोजन परसि जेंवायों, जो उबरा सो जूठन पायो ।।
धरनी इत उत फिरहि न मोरे, सम्मुख रहहि दोऊ को जोरे ।"

प्रभु का प्रेम किस कसौटी पर परखना चाहिए ? संसार की मिथ्या और नितांत अपूर्ण प्रतीतियों के पीछे चिरकाल तक भटककर और जगह-जगह ठोकर खाकर भी उस कसौटी पर खरा नहीं उतरा जा सकता । अधाधुंध दौड़ कभी-कभी गतिरोध एवं व्यवधान का कारण बनता है । वैयक्तिक जीवन की संकीर्ण परिधि से ऊपर उठकर एकात्म्य भाव से उत्पन्न निरतिशय अभेद दृष्टि ही दरअसल प्रेम की सच्ची कसौटी है जो ब्रह्म से साक्षात्कार कर चिरन्तन सुख की उपलब्धि कराती है :

"जग में सोई जीवन जीया ।
जाके उर अनुराग ऊपजो, प्रेम पियाला पीया ।।
कमल उलटो भर्म छूटो, अजप जप जपिया ।
जनु अंधारे भवन भीतर, बारि राखो दिया ।।
काम क्रोध समो दियो, जिन्ह धरहि मे धो किया ।
माया के परिपंच जेते, सकल जानो छिया ।।
बहुत दिन को बहुत अरभो, सहजहीं सुरझिया ।
दास धरनी तासु बलि बलि, भूंजियो जिन्ह बिया ।"

इस धारणा को आत्मसात् करके ही वह तुच्छ ऐहिक सुखों की लालसा छोड़ पारमार्थिक उन्नति कर सकता है। ध्यान-धारणा, पूजा-अर्चा तथा कैवल्यपद का अनुगमन ही मंज़िल तक पहुँचने का एकमात्र साधन नहीं, बल्कि नितान्त निःस्पृह और सच्ची भक्ति ही मुख्य ध्येय की ओर अग्रसर करने वाली है । अपने सुप्रसिद्ध निम्न पद में धरनीदास ने बड़े ही सीधे-सादे, पर मार्मिक शब्दों में अपना और अपने साहब का भेद दर्शाया है :

"मैं निरगुनियाँ गुन नहिं जाना । एक धनी के हाथ बिकाना ।।
सोह प्रभु पक्का मैं अति कच्चा । मैं झूठा मेरा साहब सच्चा ।।
मैं ओछा मेरा साहब पूरा । मैं कायर मेरा साहब सूरा ।।
मैं मूरख मेरा प्रभु ज्ञाता । मैं किरपिन मेरा साहब दाता ।।
धरनी मन मानर इक ठाऊँ । सो प्रभु जीवो मैं मरि जाऊँ ।।"

निर्गुण अव्यक्त ब्रह्म के रूप में वह भले ही अगोचर अथवा हमारी पकड़ से परे हो, किन्तु प्रेम या भक्ति से ओतप्रोत साम्य स्थिति में उसका सगुण व्यक्त रूप उजागर हो जाता है। देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार तथा बाहरी हलचलों एवं चेष्टाओं का निराकरण कर कहीं-कहीं भक्ति विभोर हो ये बहुत ही प्रभुकृपा पर निर्भर और दैन्य के प्रतीक बन गए हैं :

"प्रभु तो बिनु को रखवारा।
हौं अति दीन अधीन अकर्मी बाउर बैल बिचारा।
तू दयाल चारो जुग निस्चल, कोटिन अधम उधारा॥"

एक अन्य पद में—

"प्रभु तू मेरो प्रान पियारा।
परिहरि तोहि अवर जो जाचै, तेहि मुख छीया छारा।
तो पर वारि सकल जग डारौं, जो बसि होय हमारा।"

पलटू*

पलटू की पद-रचना पर कबीर का स्पष्ट प्रभाव है, किन्तु इनकी भाषा अपेक्षाकृत परिमार्जित और ओजपूर्ण है। अधिकतर कुंडलियों में रूपकों और अन्योक्तियों द्वारा ज्ञान और भक्ति का व्याख्यापूर्ण विवेचन मिलता है। यहाँ दीन-हीन, विरह-कातर और प्रिय की स्मृति में छटपटाती अबला नहीं है, बल्कि

***इनके जीवन के सम्बन्ध में विशेष ज्ञात नहीं, किन्तु कुछ उपलब्ध तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये फैजाबाद जिले के जलालपुर नामक गाँव में पैदा हुए थे। इनके पिता कांदू बनिया थे। इनके गुरु बाबा जानकीदास थे। बाबा पलटू ने अधिकांश समय अयोध्या में बिताया। इनकी रचनाओं में कुंडलियाँ अधिक हैं। इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में किम्बदन्ती है कि इन्हें अयोध्या में कुछ साधुओं ने इनकी ख्याति और उपदेशों से चिढ़कर जिन्दा जला दिया था, फिर जगन्नाथ जी में इनका पुनः प्राकट्य हुआ और अन्ततः ये उसी में समा गए।**

"अवधपुरी में जरि मुए, दुष्टन दिया जराइ।
जगन्नाथ की गोद में, पलटू सूते जाइ॥"

यौवन में मदमस्त, बेफ़िक्र और गर्वीली नारी है जिसे पति की जरा भी पर्वाह नहीं। साज-श्रृंगार, फूलों की सेज और सभी आमोद-प्रमोद के प्रसाधनों का उपयोग करती हुई वह बेखबर सुख की नींद सोती है। गफ़लत की मदहोशी में उसे यह एहसास नहीं होता कि यह मौज-मस्ती अस्थायी है, बसंत ऋतु का उन्माद क्षणिक है और साज-सज्जा बिना कंत के व्यर्थ है:

"क्या सोवै तू बावरी चाला जात बसंत।
चाला जात बसंत कंत ना घर में आए।
धृग जीवन है तोर कंत बिन दिवस गँवाये॥
गर्व गुमानी नारि फिरै जोबन की माती।
खसम रहा है रूठि नहीं तू पठवै पाती॥
लगै न तेरो चित्त कंत को नाहिं मनावै॥
का पर करै शिंगार फूल की सेज बिछावै।
पलटू ऋतु भरि खेलि लै फिर पछितैहै अंत।
क्या सोवे तू बावरी चाला जात बसंत॥"

एक अन्य पद में सुन्दरी प्रिया को इस बात के लिए आग़ाह किया गया है कि प्रिय को पाना कोई सरल कार्य नहीं है, इसके विपरीत यदि प्रिय को पाना है तो शीश उतार कर उस शीश की गति पर थिरकते हुए नृत्य करने के समान है—

"सुंदरी पिया की पिया को खोजती।
भई बेहोस तू पिया के कै॥
बहुत सी पदमिनी खोजती मरि गईं।
रटत ही पिया पिया एक एकै॥
सती सब होत हैं जरत बिनु आगि से।
कठिन कठोर वह नाहिं झाँकैं॥
दास पलटू कहै सीस उतारि के।
सीस पर नाचु जो पिया ताकै।"

एक अन्य स्थल पर प्रिया आँखों में काजल आँज कर प्रिय को एकटक ताक रही है, वहुतेरा नैन-मुख मरोड़ कर वह पिया को रिझाने की कोशिश

में है, किन्तु देखने का न उसे ढंग मालूम और न सलीका। पलटू कहते हैं दोष काजल का नहीं बल्कि दृष्टिभंगी का है :

"ताके में है फेर फेर काजर में नाहीं।
भंगि मिली जो नाहि नफा क्या जोग के माँहि ॥
पलटू सनकारत रहा पिया को खिन खिन माँहि।
काजर दिये से का भया ताकन की ढब नाँहि ॥"

सचमुच, पवित्र प्रेम की इयत्ता कहाँ है और कहाँ है उसका ओर छोर! उस प्रेमास्पद को कहाँ खोजोगे और कहाँ पाओगे, जब तक कि वह स्वयं ही तुम्हारा पाथेय और पथ-प्रदर्शक न बने। मन रूपी चादर मैली है, उस पर न जाने कितने दाग़ और धब्बे हैं, न जाने कितने गन्दगी के पर्त के पर्त उसमें समाये हुए हैं। चादर इतनी पुरानी, जीर्ण व जर्जर हो गई है कि अब विलम्ब करने का अवसर नहीं। सत्संगति में पगे ज्ञान के साबुन से उसे धो डालिए—

"धुबिया फिर मर जायगा चादर लीजै धोय।
चादर लीजै धोय मैल है बहुत समानी ॥
चल सतगुरु के घाट भरा जहँ निर्मल पानी।
चादर भई पुरानी दिनों दिन बार न कीजै ॥
सत संगत में सौंद ज्ञान का साबुन दीजै।
छूटै कलमल दाग नाम का कलप लगावै ॥
चलिये चादर ओढ़ि बहुर नहिं भव जल आवै।
पलटू ऐसा कीजिए मन नहिं मैला होय ॥
धुबिया फिर मर जायगा चादर लीजै धोय।"

भौतिक सुखों में लिप्त रहकर भी हमारी निसर्ग भावना—कभी प्रत्यक्ष तो कभी अप्रत्यक्ष रूप में—दृश्य प्रपंच से परे किसी मूलभूत सत्ता की खोज में रहती है। ब्रह्म का साक्षात्कार ही अखण्ड सुख का प्रणेता है, साथ ही उससे एकात्म्य होने पर आत्यन्तिक सुख की उपलब्धि होती है। यह समझते हुए भी मनुष्य की चंचल वृत्ति कभी स्थिर नहीं रह पाती। वह खोज में भटकता तो रहता है, किन्तु भीतर गहरे नहीं पैठता। लहरें, भँवर और झंझावात

से तो टकराता है, किन्तु महासागर के अतल को स्पर्श करने का साहस नहीं रखता। पलटू कहते हैं वह तो तेरे करीब ही है, बिल्कुल पास, लेकिन अंदर तूने कभी झाँककर नहीं देखा। उसके अति सामीप्य का तूने कभी अनुभव नहीं किया, न उसे पाने या खोजने की कभी चेष्टा ही की :

> **"साहिब साहिब क्या करे साहिब तेरे पास ॥**
> **साहिब तेरे पास याद करु होवै हाजिर।**
> **अंदर धँसि कै देखु मिलेगा साहिब नादिर ॥"**

जगजीवन साहिब*

इनके पद्यों में निर्गुण की अपेक्षा सगुणोपासना पर अधिक जोर दिया गया है। माया के घने कंटकाकीर्ण और तिमिराच्छन्न दुर्गम पथ पर ज्ञान का दीपक जलाकर अग्रसर होना है। पर ज्ञान से भी अधिक प्रेम का आलोक चाहिए। दारुण विरह-वेदना से थकित अनन्त प्रेम की स्मृति को अन्तर में सँजोये उस त्रैलोक्य ललामभूत चिरप्रणयी को पाने के लिए थके हारे प्राणों और कसमसाती भावनाओं से आकुल वह चिरवियोगिनी उसके दर्शनों की याचना कर रही है। प्रिय के अन्वेषण में तत्पर वह वियोगिनी से योगिनी बनी, अपने समूचे अंगों में भस्म चढ़ायी और शरीर को ख़ाक माना। इस प्रकार वह वन-वन भटकती फिरी :

***ये जाति के क्षत्रिय थे। बाराबंकी जिले के सरदहा गाँव में उत्पन्न हुए थे। इनकी जन्म-तिथि माघ सुदी सप्तमी सं० १७२७ और मृत्यु बैसाख बदी सप्तमी सं० १८१७ है। इनके पिता खेती करते थे। बाबा जगजीवनदास लड़कपन में बैल चराया करते थे। बैल चराते समय जंगल में उन्होंने बुल्ला साहब और गोविन्द साहब दो संतों के दर्शन किये। इन दोनों महात्माओं के उपदेश से इनके जीवन में अकस्मात् परिवर्त्तन हुआ। ये अपने गाँव में ही रहकर भजन-पूजन करते थे। किन्तु गाँव वाले इन्हें बहुत चिढ़ाया करते थे। गाँव वालों से तंग आकर ये पास ही में दूसरे गाँव काटवा में चले गये। कहते हैं—उसी वर्ष बाढ़ में गाँव बह गया। 'ज्ञान-प्रकाश' और 'महाप्रलय' इनके दो ग्रन्थ मिलते हैं।**

"जोगिन ह्वै अंग भसम चढ़ायो, तनहिं ख़ाक करि मानी।
ढुंढत ढुंढत मैं थकित भई हौं, पिया पीर नहिं जानी।।

दु:ख-कातरा, विरहदग्धा वह निराश प्रणयिनी अपनी सखी से विनती करती है कि वह उसकी दुरवस्था और विषादमयी स्थिति का परिचय किंचित् प्रिय को तो दे आवे :

"उनहीं सो कहियो मोरि जाय।
ए सखि पैयाँ परि मैं विनवौं, काहे हमैं डारिन बिसराय।
मैं का करौं मोर बस नाहीं, दीन्ह्यो अहै मोहि भटकाय।।
ए सखि साईं मोंहि मिलावहु, देखि दास मोर नैन जुड़ाय।
जगजीवन मन मगन होऊँ मैं, रहौं चरन कमल लपटाय।।"

द्वन्द्वों से उत्पन्न उद्वेगों की अग्नि में जीवात्मा अहर्निश झुलसती रहती है। इन द्वन्द्वों से विक्षुब्ध चित्त पर संयम रखकर और भटकते मन को शान्त करके अपने श्रेष्ठ आराध्य देवता के समीप पहुँचने का वह प्रयत्न करता है तो उस आनन्दधाम रसिकराज को पाना अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है। वह ज्यों-ज्यों उनके चरणों की ओर बढ़ता है त्यों-त्यों वे चरण ज़रा दूर होते जाते हैं और कभी-कभी सच्चे भक्त को ऐसा लगता है कि वह उस दूरी को नापने में समर्थ न हो सकेगा। यथार्थ रागात्मिका भक्ति के उदय होने पर भक्त भगवत्प्रेम में विभोर हो जाता है। जैसे पतिप्राणा नारी अपने पति के वियोग में व्यग्र रहती है और प्रिय के चिरमिलन की आकांक्षा करती रहती है ठीक उसी तरह भक्त की भी दशा है :

"सखि री करौं मैं कौन उपाई।
मैं तो व्याकुल निसि दिन डोलौं उनहिं दरद नहिं आई।
काह जानि कै सुधि बिसराई कछु गति जानि न जाई।।
मैं तो दासी कलपौं पिय बिनु घर आँगन न सुहाई।
तलफि तलफि जल बिना मीन ज्यों अस दुख मोंहि अधिकाई।।

दरअसल, स्वामी निर्गुनिया है, इसलिए वश में नहीं आ रहा। ऐसी स्थिति में कैसे सेज पर गलबाहीं डालकर एक साथ सोया जाय ? पर बिना साथ सोये हृदय में शान्ति नहीं और फूल की भाँति दिल मुरझा गया है। निर्गुण प्रिय

को रिझाने के लिए जोगिन बनकर भस्म लगाई, नयन टक साधकर ध्यानावस्थित हुई। एक-एक क़दम गिनकर कठिन दुर्गम मार्ग तय किया और सुरति में अपनी वृत्ति लय करके आकाशचुम्बी अट्टालिका पर चढ़ गई। वहाँ निरन्तर प्रिय की टहल में रही और सत की सेज बिछाई जिससे कोई भेदभाव न रहे और परस्पर पार्थक्य मिट जाय।

इस प्रकार प्रेमरस भींजी प्रिया ने वैराग्य का वाना धारण किया। सब आभूषणों और शृंगार-प्रसाधनों को त्यागकर भस्म रमाई। तन-मन को विरहाग्नि में दग्ध किया, किन्तु इसके बावजूद उन्हें ज़रा भी दया न आई।

"अरी मोरे नैन भये वैरागी।
भसम चढ़ाय मैं भइऊँ जोगिनिया, सबै विभूषन त्यागी।
तलफि तलफि मैं तन मन जार्यों, उनहिं दरद नहिं लागी॥
निसु वासर मोहिं नींद हरि है, रहत एकटक लागी।
प्रीति सों नैनन नीर बहतु है, पी पी पी बिनु जागी॥"

इसके विपरीत जब भावात्मक पार्थक्य की यह दुविधा मिटी तो मन में एक अजीब मस्ती आ गई। सारी दुश्चिन्ताएँ, मनोमालिन्य, राग-द्वेष, मान-अपमान और हर्ष-विषाद की ऊहापोह भरी उलझनों से परे भगवत्प्रेम पीयूष की अविराम, अविच्छिन्न निर्झरिणी प्रवाहित हो उठी। हृदय द्रवीभूत हो एक अलौकिक आनन्द से भर गया। भगवत्प्रेम में उन्मत्त होने के कारण वाह्य चेष्टाएँ और लौकिक व्यवहार की औपचारिकताएँ विस्मृत हो गईं और भक्तवत्सल प्रेममय प्रभु की प्रतीति में उसने स्वयं को अर्पण कर दिया।

"अब मन मगन भौ मस्ताना।
भयो सीतल महा कोमल, नाहि भावै आन॥
डोरि लागों पोढ़ि गुरु तें, जगत तें बिलगान॥
अहै मता अगाध तिनका, करै को पहिचान॥
अहैं ऐसे जगत माँ कोई, कहत आहैं ज्ञान॥
ऐसे निर्मल ह्वै रहे हैं, जैसे निर्मल मान॥
बड़ा बल है ताहि के रे, थमा है असमान॥
जगजीवन गुरु चरन परि कै, निर्गुन धरि ध्यान॥"

भीखा साहिब*

अन्य समकालीन संतों की भाँति इन्होंने भी ब्रह्मज्ञान, अनहद नाद, सतगुरु महिमा, नाम महिमा और सच्ची भक्ति का निरूपण किया। प्राप्तव्य प्रियतम को पाने के लिये उन्हीं में आत्मभाव से अवस्थित होकर ज्ञान के प्रकाश द्वारा अज्ञानान्धकार को विच्छिन्न करना है, अतएव समदृष्टि और निरपेक्ष बुद्धि से अन्तःकरण को परिमार्जित कर अनन्त स्वरूप में लय होना अनिवार्य है। इसके लिए न केवल बहुविध कर्मों के विधि-निषेधों और कार्य-व्यापारों से विरत होने के लिए सचेष्ट रहना है, वरन् भक्तियोग एवं ज्ञानयोग के दुस्साध्य और कठिन मार्ग को अपनाना है। अपने एक पद में भीखा साहब कहते हैं कि इस परात्पर परब्रह्म की अविगत गति का क्या वर्णन करूँ। जैसे विद्युत् आकाश में कौंधती है और घहराती आवाज़ के साथ आकाशमंडल में ही समा जाती है, जैसे चारों ओर उमड़ घुमड़कर बादलों का घटाटोप छा जाता है और दिन में ही सूर्य छिप जाता है, उसी प्रकार अनहद नाद रात-दिन सुन पड़ता है, किन्तु वह अलक्ष्य और अविश्लेष्य है, अतः पकड़ में आने वाली चीज़ नहीं है। उससे अमृत-रस की झरझर बूँद झर रही हैं और मानो नूर बरस रहा है। एक अन्य पद में समस्त बंधनों से परे आत्यन्तिक निवृत्ति द्वारा परमात्मस्वरूप की उपलब्धि की ओर संकेत करते हुए भीखा कहते हैं—

> "मन तुम लागहु सुद्ध सरूपे।
> तन मन धन न्यौछावरि वारो वेगि तजो भव कूपे॥
> सतगुरु कृपा तहाँ लावो, जहाँ छाँह नहिं धूपे।
> पाइया करम ध्यान सो फटको जोग जुक्ति करि सूपे॥

---

* भीखा साहब आजमगढ़ के खानपुर बोहना गाँव में पैदा हुए। ये गुरु की खोज में काशी चले गये थे। वहाँ इन्हें कोई गुरु नहीं मिला तो निराश होकर पैदल ही वहाँ से चल पड़े। रास्ते में गाजीपुर जिले के भुरकुड़ा गाँव के समीप महात्मा गुलाल जी मिले। गुलाल जी एक सिद्ध महात्मा थे। उन्हीं से इन्होंने दीक्षा ली। इनकी ५० वर्ष की अवस्था में मृत्यु हुई। इनकी बनाई किताबों में सबसे प्रसिद्ध 'राम-जहाज' है।

> **निर्मल भयो ज्ञान उजिआरो गंग भयो लखि चूपे।**
> **भीखा दिव्य दृष्टि सों देखत सोंहत बोलत मु पे ।।"**

किन्तु एकमात्र इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए साधन है—अंतर्वाह्य जीवन का सम्यक् नियंत्रण और चित्तवृत्ति को सर्वथा भगवत् स्वरूप में लय कर तद्गत बुद्धि और सच्ची निष्ठा।

> **"मनुवाँ नाम भजत सुख लीया।**
> **जन्म जन्म के उरझनि पुरझनि समुझत करकत हीया।**
> **यह तो माया फाँस कठिन है का धन सुत वित तीया ।।**
> **सत शब्द तन सागर माहीं रतन अमोलक पीया।**
> **आपा तजै धँसै सो पावै ले निकसै मर जीया ।।"**

परब्रह्म की सर्वज्ञता में पैठने के लिए चित्, अचित् और ईश्वर की तत्त्वत्रयी के बीच आधार-आवेय का रहस्य क्या है, ईश्वर निस्सन्देह विश्व का आधार अर्थात् सर्वशक्तिमान तत्त्व है, वह जीवों को अपना ही अविभाज्य अंश मान कर सत्य, ज्ञान व आनन्द के योग से समन्वय को अनुष्ठित करता है और इस प्रकार वह सर्वशक्तिमान एवं सर्वव्यापी होने से आधार-आधेय दोनों है। साधना की पूर्णता ही ज्ञान-स्वरूप की कसौटी है जो अनेकत्व में एकत्व का आभास कराती है। इस अभेद के कारण ही वाह्याचारों से परे ज्वलन्त जीवन की अविच्छेद्य परम्परा से संश्लिष्ट परमानन्द की प्राप्ति होती है, लगता है मानो अंतर्प्राण किसी ऐसी विचित्र भावभंगी से अनुप्राणित हो रहा है जहाँ समरस तत्त्व एकमेक हो रहे हैं—

> **"मन में आनन्द फाग उठो री ।।**
> **इंगला पिंगला तारा देवे, सुखमन गावत होरी।**
> **बाजत अनहद डंक तहाँ धुनि, गगन में ताल परो री ।।**
> **सतसंगति चोवा अबीर करि, दृष्टि रूप लै घोरी।**
> **गुरु गुलाल जी रंग चढ़ायो, भीखा नूर भरो री ।।"**

मन में एक ऐसा आलोड़न हो रहा है जैसे फाग की धूम मच रही हो। काया-नगर में बड़ा ऊधम मचा हुआ है, होली का-सा हुड़दंग, जहाँ अबीररूपी नूर

बरस रहा है, अनहद की ताल पर पखावज बज रहे हैं, और चहुँ ओर मदमस्त राग के स्वर गुंजायमान हो रहे हैं :

"काया नगर में होरी खेल्यो उलटि गई तेहि खोरी ।।
नैनन नूर रंग उमग्यो, चुवत रहत निज ओरी ।।
गुरु गुलाल जो रंग चढ़ायो, भीखा नूर भरो री ।"

आकाश मंडल में 'अलख' का फूल खिला है जिसकी गहरी जड़ें राममय आत्मा के अन्तर से संवर्द्धन प्राप्त करती हैं । इसे देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है, इसे पहचाना तो जा सकता है, पर इसके सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता :

"रूह अलख नभ फूल्यो फूल ।
सोई केवल आतम राम मूल ।।
देखत चकित अचरज आहि ।
जो वह सो यह कहौं काहि ।।
भीखा निज पहिचान लीन्ह ।
यह सात्विक ब्रह्म स्वरूप चीन्ह ।।"

देह के मिथ्यात्व का बोध कराते हुए ये अपने एक पद में कहते हैं—

"सकल बेकार की खानि यह देहि है,
मल दुर्गंध तेहि भरो माही ।
भीखा आधार अपार अद्वैत है,
समुंद अरु बुंद कोई और नाही ।"

चरनदास*

चरनदास अपने समय के बड़े पहुँचे हुए संत थे और इनके पदों में भी प्रेमतत्त्व और भगवान की अनन्त सत्ता के प्रति करुण आत्मनिवेदन है । ज्यों

* चरनदास अलवर के पास डेहरा नामक गाँव में भाद्र शुक्ल तृतीया सं० १७६० में पैदा हुए थे । इनके पिता घूसड़ जाति के थे । पिता का नाम मुरलीधर और माता का नाम कुंजी देवी था । चरन दास ने अपने जीवन के सम्बन्ध में लिखा है :

ही भगबान से उनके जीवन का रसार्द्र सम्बन्ध जुड़ गया उनकी अंतर्वीणा की जैसे रागिनी बज उठी। उस दीनवत्सल के प्रति करुण याचना मानो कवि की अन्तर्गूढ़ भाव-निर्झरिणी उस करुणा सागर में चिरविश्राम पाने के लिए धावित हो रही हो अथवा परमात्मा के साथ जीवात्मा की अभेद सिद्धि की अनेकधा अभिव्यंजना हो—बस, यही उनकी समग्र रचनाओं में स्फुट रूप से गोचर होने वाली प्रधान धारा है।

आत्मानुभव कोई आरोपित वस्तु नहीं, वरन् क्षुद्र अहंकार से ऊपर उठकर 'स्व' का ज्ञान ही सच्चा आत्मानुभव है। जब जीवात्मा इतनी ऊँचाई पर पहुँच जाती है कि उसे हर वस्तु में ईश्वरत्व के दर्शन होते हैं तभी वह मुक्त और परमानन्द परिपूर्ण है। अतएव दर्शन-पिपासा बढ़ती जा रही है—

"हमरा नैना दरस पियासा हो।
तन गयो सूखि हाय हिते बाढ़ी जीवत हूँ चाहे आसा हो।
बिछुरन थारो मरन हमारो मुख में चलै न ग्रासा हो।
नींद न आवै रैनि बिहावै तारे गिनत अकासा हो॥
भये कठोर दरस नहिं जाने तुम कूँ नेक न साँसा हो।
हमरी गति दिन-दिन औरै ही बिरह वियोग उदासा हो॥
सुकदेव पियारे मत रहु न्यारे आनि करो उर वासा हो।
रनजीता अपनी करि जानी निज करि चरनन दासा हो॥"

डेहरे मेरो जनम जात रणजीत बखानौ।
मुरली को सुत जान• जात दूसर पहिचानौ॥
बाल अवस्था माँहि बहुरि दिल्ली में आयो।
रमत मिले शुकदेव नाम चरणदास धरायौ॥
जोग जुगति कर माफ कर ब्रह्मज्ञान दृढ़ कर गह्यो॥
आतम तन विचार के अजपा से तनमन रह्यो॥

संवत् १८३९ में इनकी मृत्यु हुई। इनके ५२ शिष्य थे। सहजोबाई और दया बाई इन्हीं की शिष्याएँ थीं। चरनदास की बानी नाम से इनके पदों का संग्रह है, जिसमें लगभग ६०० पदों का संकलन है।

इनकी इश्क दीवानी आत्मा जलरहित मछली की भाँति रात दिन तड़प रही है। हृदय में आग सी लग रही है, किन्तु नेत्रों से अश्रुवर्षा हो रही है। प्रिय की वियोग-व्यथा में कुछ भी नहीं सुहाता और अंग-प्रत्यंग व्याकुल हो अवसन्न सा हो रहा है :

"सुद्धि बुद्धि सब गई खोय री मैं इस्क दीवानी।
तलफत हूँ दिन रैन ज्यों मछली बिन पानी॥
बिन देखे मोहि कल न परत है देखत आँख सिरानी।
सुधि आए हिय में दव लागै नैनन बरखत पानी॥
ऐसे हम तलफत पिय दरसन विरह बिथा यहि भाँती।
जब ते मीत बिछोहा हूवा तब ते कछु न सुहानी॥
अंग अंग अकुलात सखी री रोम रोम मुरझानी।
बिन मनमोहन भवन अंधेरी भरि भरि आवै छाती॥
चरनदास सुकदेव मिलावो नैन भये मोहि घाती।"

इस दुस्सह स्थिति में बड़ी बेचैनी है, कहीं भी शान्ति व चैन नहीं। कल्पना भ्रांत-भ्रांत हो इतस्ततः भटक रही है और निश्चयात्मिका बुद्धि किसी प्रकार नहीं उपज रही। बड़ी दारुण अवस्था है, कभी भीतर कभी बाहर, क्षण में लेटी क्षण में बैठी, कभी घर में कभी आँगन में, और कभी सखी बातों-बातों में उसका मन बहलाने की चेष्टा करती है, किन्तु हृदय में हूक सी उठ रही है और प्यारे की दर्शन-लालसा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है—

"अंखियाँ प्रभु दरसन की प्यासी।
इक टक लागी पंथ निहारूँ तन सूँ भई उदासी॥
रैन दिना मोहि चैन नहीं है चिंता अधिक सतावै।
तलफत रहूँ कल्पना भारी निःचल बुधि नहिं आवै॥
तन गयो सूख हूक अति लागै हिरदै पावक बाढ़ी।
खिन में लेटी खिन में बैठी घर अँगना खिन ठाढ़ी॥
भीतर बाहर संग सहेली बातन ही समझावैं।
चरनदास सुकदेव पियारे नैनन ना दरसावैं॥"

भीतर ही भीतर प्रिय के सान्निध्य की अनिर्वचनीय अनुभूति जगती है

और एक अखण्ड रसमय सौंदर्य-चेतना दीप्त होकर विराट् से साक्षात्कार कराने के लिए सचेष्ट है, किन्तु नामरूपात्मक जगत् के वैविध्य से चकाचौंध जब ये मुग्ध कोमल आलोक लहरियाँ दिग्व्यापी अंधकार के कुहरे से अठखेलियाँ करती हैं तो रसमय भाव बहुत देर तक नहीं टिक पाता और तन्द्रा की भीनी आत्म-विस्मृति में खो जाता है। तब ऐसी प्रतीति होती है कि सगुण रूप की उपासना छोड़कर निर्गुणोपासना द्वारा क्यों न आत्मज्ञान की उपलब्धि की जाय। फलतः सुरति-निरति में मन अटकाकर योगसाधना साधने पर, जहाँ कि आसानी से प्रवेश नहीं, जीवन के बहुविध कार्यव्यापारों में उलझ-पुलझ कर मन अधिकाधिक भटक जाता है :

"सो नैना मोरे तुरिया तत पर अटके।
सुरति निरति को गम नहीं सजनी जहाँ मिलन को लटके॥
भूलो जगत बकत कछु औरै वेद पुरानन ठठके।
प्रीति रीति को सार न जानै बोलत भटके भटके॥
किरिया कर्म भर्म उरझे रे ये माया के भटके।
ग्यान ध्यान दोउ पहुँचत नाहीं राम रहीमा फटके॥
जग कुल रीति लोक-मर्यादा मानत नाहीं हटके।
चरनदास सुकदेव दया सूँ त्रैगुन तजि के सटके॥"

इनकी रचनाओं पर कबीर का विशेष प्रभाव पड़ा। भूत-प्रेत की उपासना करने वालों को इन्होंने कड़ी चेतावनी दी और परायी स्त्री पर कुदृष्टि रखने वाले लोगों को भी प्रताड़ित किया। हरिभक्त को इन्होंने चारों वर्णों से ऊँचा माना और योगसाधक ज्ञानी से भी अधिक भक्त की सराहना की। मनमोहन प्यारे को पाकर कैसा उल्लास जाग उठता है :

"अब घर पाया हो मोहन प्यारा।
लखो अचानक अज अविनाशी उघरि गये दृग तारा।
झूमि रह्यो मेरे आँगन में टरत नहीं कहुँ टारा।
रोम रोम हिय माहीं देखो होत नहीं छिन न्यारा।"

रैदास*

कबीर के बाद रैदास को ही सबसे अधिक ख्याति मिली। उनकी उक्तियों में जैसे स्वभावतः प्रेम का दरिया बह रहा हो। विश्व में जो कुछ सुख-ऐश्वर्य, माधुर्य-सौंदर्य-श्री, प्रेम-अनुराग, ज्ञान-विज्ञान, भक्ति एवं रसतत्त्व है उन सबका अक्षय स्रोत वही सच्चिदानन्दघन, ईश्वरों का ईश्वर, परमप्रभु परमेश्वर है जो अनादिकाल से पूर्ण, अनन्त और असीम-अव्यय रूप में सदा से इन वस्तुओं का उन्मुक्त वितरण करता आ रहा है। विषय-लिप्त जीव उस सृजनहार का चिंतन छोड़ दिखावटी और नाशवान वस्तुओं के चक्कर में पड़ा रहता है। जो अपना है, जो खाते-पीते, सोते-जागते, उठते-बैठते नित्य साथ रहता है, हर क़दम क़दम पर संरक्षण करता है और जो सर्वत्र व्याप्त तथा समूचे दृश्य-प्रसार में जिसकी अकथ्य सृजन-प्रेरणा कार्य कर रही है उस सूत्रधार परमात्मा की छाया से तू कहाँ दूर भटक जाता है। उसमें-तुझमें भेदभाव नहीं, किन्तु उसकी उपलब्धि के लिए आत्यन्तिक त्याग और अनासक्ति अनिवार्य है।

भक्तिसाधना की चरम परिणति में जहाँ भावाह्लादिनी वृत्तियों का विलय है वहाँ बाहरी तौर पर दिखाई पड़ने वाले समस्त भेद-प्रभेदों के अन्तर्गत एक परस्पर क्रमानुगत अभिन्न सम्बन्ध भी है—जैसे एक में अनन्त और अनन्त में एक की निरपेक्ष क्रीड़ा होती रहती है। ऐसी स्थिति में रागानुगा भक्ति का उदय होता है :

> **"जो तुम तोरौ राम मैं नहिं तोरूँ।**
> **तुम सो तोरि कवन सो जोरूँ॥**

*** ये जाति के चमार थे। इनकी जन्म-तिथि का निश्चय नहीं। किन्तु अनुमान है कि ये कबीर साहब के समकालीन थे। मीराबाई ने इन्हीं से दीक्षा ली थी। इन्होंने अधिकतर काशी में निवास किया। काशी-निवास में इनकी ख्याति बहुत फैल गई थी। किन्तु वहाँ के अभिमानी ब्राह्मणों ने इनका बहुत अपमान किया। 'रैदास की बानी' और 'रैदास के पद' प्रसिद्ध हैं। ये बड़े ही फक्कड़ और विरक्त संत थे। इनके बनाये गेय पदों का प्रचार भारत के कोने-कोने में है। इनके विषय में प्रसिद्ध है कि ये १२० वर्ष जीवित रहे।**

मैं अपनो मन हरि सों जोर्यों।
हरि सों जोरि सबन से तोर्यों॥"

प्रभु से 'साँची प्रीति' जुड़ गई है। भक्त और भगवान् अवस्थागत भेद भाव से परे वास्तव में अद्वैत हैं। सच्ची निष्ठा द्वारा जब साधक की वृत्ति विशुद्ध रूप में एक विराट् भावसत्ता में क्रमशः पर्यवसित होती है तो अंतर्ज्ञान के विस्तार की सीमा भी उसी अनुपात से विकसित होती जाती है जब तक कि वह अंतर्प्रदेश में उत्पन्न बोध के परम पावन प्रकाश में परिणत नहीं हो जाती। इस प्रकार जीव की प्रवृत्ति नितान्त निवृत्तिमूलक होने पर उसकी समस्त बाहरी-भीतरी क्रियाएँ इच्छाधीन हो जाती हैं और उसे ऐसा प्रतीत होने लगता है कि वह तो ईश्वर का ही अविभाज्य अंश है :

"साँची प्रीति हम तुम सँग जोड़ी, तुम सँग जोड़ी अवर सँग तोड़ी।
जो तुम बादर तो हम मोरा, जो तुम चंद हम भये चकोरा॥
जो तुम दीवा तो हम बाती, जो तुम तीरथ तो हम जात्री।
जहाँ जाऊँ तहँ तुम्हरी सेवा, तुमसा ठाकुर और न देवा॥
तुम्हारे भजन कटे भव फाँसा, भक्ति हेतु गावै रैदासा।"

'साँची प्रीति' के कारण बाद में बुद्धि समता प्राप्त करती है और धीरे-धीरे स्थितप्रज्ञ की स्थिति में आकर अन्तःकरण की विषमताएँ मिट जाती हैं। रैदास एक स्थल पर कहते हैं कि बाहर-भीतर उसी की अनुकम्पा के कण हम बटोरते रहते हैं, यद्यपि हम भ्रान्त जीव उसका प्रत्यभिज्ञान नहीं कर पाते। परम प्रेमास्पद की समग्र, सम्पूर्ण अनुभूति की उपेक्षा कर सांसारिक प्रपंचों के प्रवंचित आकर्षणों में फँसना उसी प्रकार है जैसे कोल्हू का बैल आँखों में पट्टी बाँधे एक ही वृत्त के अनन्त घुमावों में चक्कर काटता रहता है। यथार्थ के बोझिल क्षण और घिसीपिटी परम्पराओं के आवेष्टन हमारी आस्थाहीन आत्मा पर काले पर्त्त से छा जाते हैं और ऐसी स्थिति में हम भगवान से साक्षात्कार करने से वंचित रह जाते हैं। एक अन्य पद में रैदास कहते हैं कि दीन-दुनिया के ये सारे नाते-रिश्ते मैं सब कुछ तुझ पर न्योछावर करता हूँ, जरा सा बस अपना रूप-रस तो पी लेने दे। इस तन और मन को भी न्योछावर करता हूँ और ले, स्वर्ग का लोभ और नरक का भय भी छोड़ देता हूँ।

जिसका उस जगन्नियंता से परिचय होता है वह सांसारिक लिप्साओं से त्रस्त नहीं होता :

"परिचै राम रमै जो कोई, या रस पर से दुविधि न होई ।"

राम से परिचय होने पर भीतर ही भीतर ऐक्यानुभव की प्रतीति होती है और भक्ति के रसोद्रेक का ज्ञान की संपूर्ति में पर्यवसान हो जाता है जिससे लगता है मानो अमावस्या की सघन रात्रि में अकस्मात् चन्द्रमा का उदय हुआ हो, अथवा जैसे जल में तूँबा अनायास ही उतरा रहा हो । वटवृक्ष का आकार जैसे बड़ा होता है और उसकी शाखा-प्रशाखाएँ दूर तक प्रसार पाती है, किन्तु पृथ्वी के गर्भ में उसका मूल एक ऐसा उद्गमस्थल केन्द्रविन्दु है जहाँ से सबको संरक्षण और पोषण मिलता है । उसकी विशेषता है कि जहाँ वह उपजता है वहाँ उसका विलय नहीं होता :

"बट न बीच जैसा आकार, पसर्‌यो तीन लोक पासार ।
जहाँ न उपजा तहाँ बिलाई, सहज सुन्न में रह्यो लुकाई ।।"

बस, जिस अन्तर्मन में ऐसा वटवृक्ष प्रश्रय पाता है वहाँ उस सुन्दर विटप की छाँह में इन्द्रियों की अवांछनीय उछल-कूद समाप्त हो जाती है और साधनामय भक्ति एवं सारभौम प्रेम की प्रसादी मिल जाती है । पढ़े-गुने लोग अपने ज्ञान को प्रशस्त मानकर भगवद्ज्ञान के अनुसंधान को हेय मानते हैं । पर रैदास कहते हैं :

"पढ़े गुने कछु समुझी न परई, जौं लों भाव न दरसै ।
लोहा हिरन होइ धौं कैसे, जौं पारस नहीं परसै ।।
कह रैदास और असमुझ सी, चालि परे भ्रम भोरे ।
एक अधार नाम नर हरि को, जीवन प्रानधन भोरे ।।"

बड़ी ही अकृत्रिम, सीधी सरल वाणी में रैदास की उक्ति है—

"हरि सा हीरा छाँड़ि के, करे आन की आस ।
ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाषे रैदास ।"

संभावित पूर्णता की मृगतृष्णा लेकर मनुष्य निरन्तर भटकता रहता है, किन्तु उसे चरम सिद्धि हासिल नहीं होती । मोह-माया, वासना-तृष्णा और कितने ही सामान्य सम्बन्ध व लगाव काल की सीमाओं में आबद्ध कर समस्त

सदिच्छाओं को खोखला बना देते हैं। विमोह और आसक्तियाँ हमारे जीवन का जंजाल बनी रहती हैं और भीतरी सत्य के आग्रह का गला घोंट देती हैं। कुम्हार जैसे कच्ची मिट्टी से तरह-तरह के सम्भाव्य रूपाकारों का अपनी कल्पना से निर्माण करता रहता है और वे जरा सी ठेस से चूरमूर हो जाते हैं उसी प्रकार मन की भी बड़ी ही चंचल गति है, वह घटित तथ्यों के आधार पर मिथ्या कल्पना के महल खड़ा करता है, पर परिस्थितियों की दारुण चोट खाकर वे एक क्षण में ही नेस्तनाबूद हो सकते हैं। इसलिए राम की सच्ची भक्ति का सहारा चाहिए—

> **"कहु मन राम नाम सँभारि।**
> **माया के भ्रम कहाँ भूल्यो, जाहुगे कर झारि॥**
> **देखि धौं इहाँ कौन तेरो, सगा सुत नहिं नारि।**
> **तोर उतँग सब दूरि करिहैं, देहिंगे तन जारि॥**
> **प्रान गये कहो कौन तेरा, देखि सोच विचारि।**
> **बहुरि येहि कलिकाल नाहिं, जीति भावै हारि॥**
> **यहु माया सब थोथरी रे, भगति दिस प्रतिहारि।**
> **कह रैंदास सत बचन गुरु के, सो जिवतें न विसारि॥"**

रैदास का सब कुछ राम के चरणों में समर्पित हो चुका है—**"राम बिनु संसय-गाँठ न छूटै।"** एक पद में वे स्वीकारते हैं :

> **"सब में हरि है, हरि में सब है,**
> **हरि अपनो जिव जान्या।**
> **साखी नहीं और कोई दूसर,**
> **जाननहार सयाना॥"**

मलूकदास*

मलूकदास में अन्य सन्त कवियों की अपेक्षा अधिक फाकेमस्ती और

***इलाहाबाद जिले के कड़ा नामक गाँव में बैसाख कृष्ण ५ सं० १६३१ में बाबा मलूकदास जी का जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम लाला सुन्दर लाल खत्री था। इनकी मृत्यु १०८ वर्ष की उम्र में हुई थी। इनके सम्प्रदाय**

उपरामता है। वे किसी कायाकल्प और मानसकल्प की योजनाओं को मन में सँजोकर सहज रूप में किसी कायिक, बौद्धिक एवं नैतिक विकास का स्वप्न नहीं देखते रहे, बल्कि एक अजीबोग़रीब अलमस्ती और फक्कड़पन में मन, वाणी व इन्द्रियों से अतीत तत्त्वरूप में वे मगन और संतुष्ट प्रतीत होते हैं। एक पद में वे कहते हैं जिसका भावार्थ है—"सारे मोहन बाजे मेरे अंतर में बज रहे हैं, कभी मैं प्रेम का पखावज सुनता हूँ और कभी लगता है जैसे बीन बजाने वाला तो दिल के भीतर ही कहीं विद्यमान है। बाहर के मंदिरों में उसे कौन ढूँढ़ता फिरे।"

उस परम रूपरस का पान कर जब मन दीवाना हो जाता है तब ज्ञाता व ज्ञेय की भिन्नता मिट जाती है अर्थात् परम ब्रह्म के अपरोक्ष ज्ञान की किंचित् अनुभूति होने पर न ज्ञाता की पृथक् सत्ता रह जाती है और न ज्ञेय एवं ज्ञान की विभाजक रेखाएँ ही उन्हें पृथक् करती हैं, अपितु यह त्रिपुटी एकमेक हो जाती है और बावला मन किसी अकथ्य दर्द की सुखानुभूति को लिये अलमस्त हो जाता है :

"दर्द दिवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।
एक अकीदा लै रहे, ऐसे मन धीरा॥
प्रेम पियाला पीवते, विसरे सब साथी।
आठ पहर यों झूमते, ज्यों माता हाथी॥
उनकी नज़र न आवते, कोइ राजा रंक।
बंधन तोड़े मोह के, फिरते हैं निहसंक॥
साहिब मिल साहिब भये, कछु रही न तमाई।
कहैं मजूक तिस घर गये, जहँ पवन न जाई॥"

के मठ राजस्थान, गुजरात, पंजाब, बिहार, उत्तर प्रदेश और नेपाल में भी हैं। बाबा मलूकदास जी को औरंगजेब बहुत मानता था। मलूकदास जी भगवान में एकमात्र भरोसा रखते थे। इनका यह पद अत्यन्त प्रचलित है :

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका कहि गए, सब के दाता राम॥

इन्हें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही समान रूप से मानते थे।

राम का भरोसा मिल गया तो अब चिन्ता क्या है। उनका सुप्रसिद्ध पद—**'अजगर करे न चाकरी, पंछी करै न काम, दास मलूका कह गये सबके दाता राम।'** इसी मत का प्रतिपादन करता है। अर्थात् उसे पाकर समस्त दुविधाएँ मिट गईं, शारीरिक और मानसिक क्लान्तियाँ एक स्वस्थ स्तर पर उसी की प्रीति-प्रतीति में समा गई जिसके कारण द्वैत-भावना जड़मूल से विनष्ट होकर समता का भाव जगाने में सफल हुई—

> **"दीन दयाल सुने जब तें, तब तें मन में कछु ऐसी बसी है।**
> **तेरो कहाय के जाऊँ कहाँ, तुम्हरे हित की पट खैंचि कसी है॥**
> **तेरो ही आसरो एक मलूक, नहीं प्रभु सों कोउ दूजो जसी है।**
> **ए हो मुरार पुकार कहौं अब, मेरी हँसी नहिं तेरी हँसी है॥"**

तार्किक रूप में ईश्वर की भक्ति में मलूकदास विश्वास नहीं करते, बल्कि निरीह एवं निर्भर रूप में वे तो बिल्कुल प्रभु पर आश्रित रहना चाहते हैं। योग और कठोर साधना से वह नहीं रीझता। आत्मा को कसकर, मन को मारकर, इन्द्रियों का बरबस दमन करके ही ईश्वर की उपलब्धि नहीं होती, इससे तो और भी मन में कुंठाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इसके विपरीत जो अपनी सहानुभूति और संवेदना को इतना विशद और व्यापक रूप दे देता है कि दूसरों का सुख-दुःख उसकी अपनी खुशी-नाखुशी का कारण बन जाये, गर्व-गुमान को छोड़कर जो वाद-विवाद में नहीं पड़ता, दूसरों के दुर्वचन और कुशब्द भी आत्मसात् कर लेता है तभी समझो अविनाशी से उसकी भेंट हो गई :

> **"ना वह रीझै जप तप कीन्हे, ना आतम को जारे।**
> **ना वह रीझै धोती नेती, ना काया के पखारे॥**
> **दाया करै धरम मन राखै, घर में रहै उदासी।**
> **अपना सा दुख सब का जानै, ताहि मिलै अविनासी॥**
> **सहै कुसबद वाद हू त्यागै, छाड़ै गर्व गुमाना।**
> **यही रीझ मेरे निरंकार की कहत मलूक दिवाना॥"**

वस्तुतः उस अलक्ष्य को ढूँढ़ पाने के लिए कुछ बिरला ही भावबोध चाहिए, बिल्कुल निराली दृष्टिभंगी और अद्वितीय निष्ठा। साईं से साक्षात्कार करना है तो दीन-दुखियों के दर्द में उसे ढूँढ़। सत्य का उपासक बनकर

जो उस सत्य-शिरोमणि की सत्यता को अपने आप में समेटना चाहता है तो अपने में और दूसरे में अंतर न समझ, दूसरों की हमदर्दी में अपने तुच्छ स्वार्थों को न्योछावर करदे, उसकी यातनाओं को शिरोधार्य करके उन्हें सुख पहुँचा, पर-हित और दया-भावना जगाकर सबसे अमृतवाणी बोल और उस आत्मा की अंतरंगता को पहचान जो जन-जन में एकसी ही प्राणों की कलप लिये है :

"दुखिया जनि कोई दूखवै, दुखए अति दुख होय।
दुखिया रोई पुकारि है, सब गुड़ माटी होय।।
हरी डारी ना तोड़िये, लागै छूरा बान।
दास मलूका यों कहै, अपना सा जिव जान।।
जे दुखिया संसार में, खोवो तिन का दुक्ख।
दलिद्दर सौंप मलूका, लोगन दीजै सुक्ख।।
दया धर्म हिरदै बसै, बोलै अमृत बैन।
तेई ऊँचे जानिये, जिनके नीचे नैन।।
सब पानी की चूपरी, एक दया जग सार।
जिन पर आतम चीन्हिया, तेही उतरै पार।।"

दयाबाई*

दयाबाई की सहज भक्ति-भावना का उद्रेक अत्यन्त सरल और दीनवाणी में हुआ। गुरु महिमा, सुमिरन, प्रेम, वैराग्य, साधुकीर्त्ति, अजपा और भक्ति-ज्ञान का सुन्दर विवेचन इनके पदों में यत्र-तत्र मिलता है। ज्ञानमार्ग के पथिक को सांसारिक प्रलोभनों से विचलित नहीं होना चाहिए। गुरु के शब्दों को ग्रहण कर और विषय-भोगों से विमुख होकर गोविंद-रूपी गदा को ढीठ कर्मों की पीठ में दे मारो :

"गुरु सब्दन कूँ ग्रहण करि विषयन कूँ दे पीठ।
गोविंद रूपी गदा गहि मारो करमन डीठ।।"

भक्ति की चरमता पर पहुँचकर उन्मत्त प्रेम जगता है जिसमें तन-मन की सुधि भूल जाती है। प्रेम-रस की अकथ्य अनुभूति में मन कुछ ऐसा डूब जाता

*दयाबाई का जन्म सं० १७५० के लगभग माना जाता है। ये महात्मा चरनदास की शिष्या और प्रसिद्ध संत कवयित्री सहजोबाई की गुरुबहिन थीं। 'दयाबोध' और 'विनय मालिका' इनके दो ग्रंथ मिलते हैं।

प्रेम का पंथ बड़ा ही अटपटा है, जिसके दिल को इस बाँके तीर ने बेंध दिया उसकी अनोखी पीर वही जानता है जिसने उसे भुगता या झेला है :

"पंथ प्रेम को अटपटो कोइयन जानत वीर ।
क मन जानत आपनो कै लागी जेहिं पीर ॥"

आख़िर जब यह दारुण पीड़ा इतनी बढ़ गई तो वह बावली की नाईं इधर-उधर चक्कर काटने लगी । सोते-जागते, उठते-बैठते प्राणेश के विरह ने उसे बड़ा ही कातर बना दिया :

"बौरी ह्वै चितवत फिरूँ हरि आवैं केहि ओर ।
छिन उठूँ छिन गिरि परूँ राम-दुखी मन मोर ॥
सोवत जागत एक पल नाहिन बिसरौं तोहिं ।
करुनासागर दयानिधि हरि लीजै सुधि मोहिं ।"

एक अन्य स्थल पर ज्ञान की विवेचना करते हुए दयाबाई कहती हैं कि चैतन्य-रूपी आत्मा पिंड ब्रह्माण्ड में बसती है जो अद्वय और अपरिवर्त्तनीय है, वह एकरस है, न कुछ करती है और न कुछ भोगती है अर्थात् वह न उत्पन्न होती है, न मरती है और न स्वतः ही कुछ अर्थान्तर रूप से बनी है, किन्तु शरीर रूपी भ्रम कूप में यह चैतन्य स्वरूप आत्मा अवस्थित है । अज्ञान का अँधेरा जब मिट जाता है तो उस गुणातीत अलक्ष्य निरंजन की झाँकी कौंध जाती है । तब ऐसा प्रतीत होता है मानो अविद्या-रूपी रात्रि समाप्त हो गई और आत्मज्ञान-रूपी सूर्य का उजाला चारों ओर फैल गया जिसके साथ ही मोहनिद्रा भी भंग हो गई और मन नितान्त जागरूक हो उठा । उस आत्मतत्त्व के उजागर होते ही मन की समूची खिन्नता और क्षोभ की म्लानता भी स्वभावतः मिट गई :

"ज्ञान रूप को भया प्रकास ।
भयो अविद्या तम को नास ॥
सूझ पर्‌यो निज रूप अभेद ।
सहजै मिट्‌यो जीव का खेद ॥"

सहजोबाई*

सहजोबाई में अपेक्षाकृत अधिक गुरु-भक्ति, योग-वैराग्य और सच्ची भाव-निष्ठा थी। खासकर गुरु के चरणों में दृढ़ आत्मार्पण का भाव और निःस्पृह लगन थी। सहजो के मत में—वस्तुतः गुरु ने ही तो ज्ञान का दीपक हाथ में दिया जिससे रोम-रोम प्रकाशमान हो उठा और भक्ति स्फूर्त हुई :

> **"सहजो गुरु दीपक दियो, रोम रोम उजियार।**
> **तीन लोक दृष्टा भई, मिटो भरम अँधियार ॥'**

कहते हैं—गुरु श्री चरनदास जी के चरणों में इनकी इतनी अटूट श्रद्धा थी कि एक बार वे दिल्ली से बाहर भ्रमणार्थ किसी दूसरे नगर में शिष्यों के आग्रह से वहीं कुछ दिन के लिए ठहर गए। गुरु-दर्शनों से वंचित सहजोबाई इधर अत्यन्त व्याकुल हुईं और चिन्तन करते-करते ध्यान-समाधिस्थ हो गईं। अर्द्धरात्रि में अचानक ये हड़बड़ा कर उठीं और देखा कि सामने गुरु खड़े हैं। ये अत्यन्त आश्चर्य चकित रह गईं और पूछा—महाराज ! आप तो घूमने गए थे, आज कैसे आ गए। गुरु ने उत्तर दिया कि मैं तुम्हारी लगन देखकर यहाँ आ गया :

> **"बैठी ध्यान करे हिय गाढ़े,**
> **चरणदास आ सन्मुख ठाड़े।**
> **आँख उघाड़ देख प्रभु आए,**
> **हरबराय चरणन सिर नाए।**
> **पूंछी तुम रामत गए, आवन कैसे कीन।**
> **कहि तुमको अति लगन थी, याहि ते दर्शन दीन ॥"**

***ये राजपूताने के ढूसर परिवार में पैदा हुई थीं। चरनदास जी इनके गुरु थे और दयाबाई इनकी गुरु-बहन। जन्मकाल का ठीक निश्चय नहीं, किन्तु सं० १८०० में ये जीवित थीं। 'सहज प्रकाश' नामक ग्रन्थ इनका लिखा हुआ है। इसके अतिरिक्त स्फुट पदों का संकलन 'संतबानी संग्रह' नाम से हुआ था।**

सहजोबाई ने तब गुरु को जलपान कराया, चरणों पर सिर रखा, स्तुति की और गुरु ने अपना बाजू बख़्शीस में दिया और तत्पश्चात् अंतर्ध्यान हो गए। सहजो के समीप भूआ नाम की एक दूसरी साध्वी बैठी जप कर रही थी। उसने भी श्रीचरनदास का आगमन और यह सब दृश्य स्पष्ट देखा। इनकी गुरुनिष्ठा और गहरी हरिभक्ति से प्रभावित होकर तत्कालीन मुगल सम्राट् शाह आलम द्वितीय ने एक बंथला नामक गाँव और ११०० स्वर्ण-मुद्राएँ भी इन्हें भेंट स्वरूप प्रदान की थीं।

कितने ही अपने पदों में इन्होंने गुरुनिष्ठा की पराकाष्ठा ही कर दी है। हरि की कृपा से बढ़कर वे गुरु की कृपा को महत्त्व देती हैं :

"राम तजूँ पै गुरु न बिसारूँ,
गुरु के सम हरि को न निहारूँ।
हरि ने जन्म दिया जग माहीं,
गुरु ने आवागमन छुड़ाई।
हरि ने मोसूँ आप छिपायो,
गुरु दीपक दे ताहि दिखायो।
चरणदास तन मन वारूँ,
गुरू न तजूँ हरि कू तज डारूँ।"

एक अन्य स्थल पर सहजोबाई कहती हैं कि क्षणिक सुखों की चाह में जीव ऐसा फँसा हुआ है जैसे कि घी में धँसी मक्खी का उस में से निकलना दुश्वार है। परिवार-कुनबा सब जंजाल है जिसके कारण मनुष्य विषय-लिप्त रहता है और इस प्रकार वह नरदेही का कोई उपयोग नहीं कर पाता। अन्ततोगत्वा यमदूत उसे मृत्युपाश में बाँधकर ज़बरन ले जाते हैं :

"तीज तनिक सुख कारने बहुत फँसाए जीव,
लालच लागे यों फिरैं जैसे माखी घीव।
जैसे माखी घीव डूबकर निकसै नाही,
ऐसे यह नर डूब रहा कुनबे के माही।
मानुष देही पायकर सहजो डारी खोय,
यमपुर बाँधे ले चले चौरासी दुख होय।"

चारों ओर महाघोर अंधकार है, मूर्ख मनुष्य मिथ्या व नाशवान संसार को सच्चा जानकर गहरी नींद में सोता रहता है। राम तो उसके भीतर ही निवास करते हैं, किन्तु उसे दूर जानकर वह इतस्ततः उसकी खोज में भटकता रहता है :

"चौथ चहुँदिशि तिमिर है महाघोर भय मान,
मूरख नर सोवत तहाँ मिथ्या जग सच जान।
मिथ्या जग सच जान सत्य कूँ जानत नाहीं,
बन बन ढूँढ़त फिरे राम अपने ही माही।
ज्यों मेंहदी में रंग है लकड़ी मध्य हुतास,
सहजो काया खोज ले काहे रहत उदास।"

एक दूसरे पद में सहजोबाई इस विशाल संसार की बाग से तुलना करती हुई कहती हैं कि इस बाग का माली वह राम ही है जिसने इसको गुलज़ार किया है। राम को हर पत्ते-पत्ते, हर डाल-डाल की खोज खबर है अतः तू भी अपने आप को उसी डाल का एक फूल मान ले :

"मंगल माली राम है, जाका यह सब बाग,
निसि दिन ताही से रहे, वाही सेती लाग ।।
वाही सेती लाग करी जिन यह गुलजारी,
पात पात की खबर, डाल सब लागें प्यारी।
आपन हूँ कूँ मान ले उसी डाल का फूल,
चरण दास कहै सहजिया ऐसे समझो कूल ।।"

सहजो ने अनेक पदों में इस निर्गुण मत का प्रतिपादन किया कि वह सर्वातीत परमात्मा ही सर्वगत, सब में अनुस्यूत और सबका एकमात्र अभिन्न निमित्तोपदान कारण है। किन्तु मोहान्ध जीव की स्थूल दृष्टि उस नित्यपूर्ण, सर्वव्यापक, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, सर्वभेदरहित अविनाशी को ढूंढ़ पाने में असमर्थ रहती है जिससे कितने ही भ्रम और संशय उत्पन्न होते हैं। दरअसल, वह परमतत्त्व ही ऐसा है जो कभी न देखा जा सकता है, न ग्रहण किया जा सकता है और न कभी वशीभूत किया जा सकता है। उस आदिकारण सम्पूर्ण

विश्व के स्रष्टा को तभी पाया जा सकता है जबकि भेदबुद्धि रहित दृष्टि साम्य स्थिति को प्राप्त कर लेती है :

"तुरिया इक रस आतमा, इन से परे निहार।
इन्द्री मन गह ना सके, सहजो तत्त्व अपार।।
गुण तीनों से परे है, ता में रूप न रेख।
बोध रूप सहजो कहै, ब्रह्म दृष्टि कर देख।।"

अपने को बालक मानकर एक पद में वे अत्यन्त दीन-हीन और प्रभु-रूपी माँ के आश्रय की करुण याचना कर रही हैं :

"हम बालक तुम माय हमारी, पल पल मोहि करो रखवारी।
निस दिन गोदी में ही राखो, इत चित बचन चितावन भाखो।।
विषै ओर जाने नहिं देवो, डुरि डुरि जाउँ तो गहि गहि लेवो।
मैं अनजान कछू नहिं जानूँ, बुरी भली को नहिं पहिचानूँ।
जैसी तैसी तुमहीं चिन्हेव, गुरु है ध्यान खिलोना दीन्हेव।।"

और सहजो का यह सुप्रसिद्ध पद—

"प्रभु ! तुम अपनी ओर निहारो।
हमरे औगुन पर नहिं जावो, तुमहीं अपनी विरद सम्हारो।।
जुग जुग साख तुम्हारी ऐसी, वेद पुरानन गाई।।
पतित उधारन नाम तिहारो, यह सुन के मन दृढ़ता आई।
मैं अजान तुम सब कछु जानो, घट घट अंतरजामी।।
मैं तो चरन तुम्हारे लागी, हौ किरपाल दयालहि स्वामी।।
हाथ जोरि के अरज करत हौं, अपनाओ गहि बाँहीं।।
द्वार तिहारे आय परी हौं, पौरुष गुन मो में कछु नाहीं।।
चरनदास सहजिया तेरी, दरसन की निधि पाऊँ।।
लगन लगी और प्रान अड़े हैं, तुमको छोड़ि कहो कित जाऊँ।।"

दरिया साहब (बिहार वाले)*

इनके कृतित्व पर कबीर का विशेष प्रभाव पड़ा। बहुत बाल्यावस्था में

*आरा जिले के धरकंधा नामक गांव में इनका जन्म हुआ था। ये खत्री थे। इनके पिता का नाम पीरन शाह था। इनकी माँ दर्जिन थीं।

ही इन्हें इस बात का आभास हो गया था कि इन्द्रिय और मन का अनुवर्त्तन करके मानव-चैतन्य जितना ही अग्रसर होता है उतने ही विश्व-प्रपंच और भेद-व्यवधान उसे विचलित करते रहते हैं, केवल भगवत्कृपा ही पग-पग पर सहायक होती है। एक पद में दरिया साहब कहते हैं—मनुष्य का चंचल मन निरन्तर दोलायमान रहता है, जरा भी कहीं शान्ति या कल नहीं। झूले में झूलते हुए जैसे हिचकोले लगते हैं वैसे ही डाँवाडोल स्थिति जीव की भी है—कौन झूलता है, कौन झुलाता है, कौन पीढ़े पर बैठा है और कौन पेंग भर रहा है, साथ ही कौन झूलने और झुलाने में मदद कर रहा है—यह सब सूझ नहीं पड़ता। विविध कर्मों की उलझनपूर्ण प्रक्रिया उन्हें अपने पाश में बाँधकर निरन्तर झटकोले देती रहती है। किन्तु परमात्मा के अनन्त असीम महिमा-महार्णव में जो निमग्न हैं उन्हें ये बाहरी वैषम्य या विक्षेप नहीं सताते। जीवात्मा, मन, प्राण, इन्द्रियादि सभी सकाम कर्मों की ओर प्रेरित करते हुए विक्षोभ और मन की मर्यादा को भंग करने वाले सिद्ध होते हैं। आत्मज्ञ व्यक्ति ही भाँति-भाँति की भौतिक एषणाओं से निस्संग और निरासक्त रहता है :

> "सत सुकृत दूनो खंभा हो, सुखमनि लागलि डोरि।
> उरध उरध दूनो मचवा हो, इंगला पिंगला झकझोरि॥
> कौन सखी सुख विलसै हो, कौन सखी दुख साथ।
> कौन सखिया सुहागिनी हो, कौन कमल गहि हाथ॥"

इनके बनाये ग्रन्थ 'दरियासागर' और 'ज्ञानबोध' हैं। 'दरियासागर' में इनकी मृत्यु तिथि सं० १८३७ भाद्र कृष्ण ४ लिखी गई है। इनके पंथ के अनुयायियों का कहना है कि दरिया साहब १०६ वर्ष तक जीवित रहे। अनुमान है कि इनका जन्म सं० १७३१ के लगभग हो। १५ वर्ष की अवस्था के बाद इन्हें वैराग्य हो गया और परिवार का परित्याग करके सदा के लिए विरक्त हो गए। इन्होंने अपना अलग पंथ चलाया जो कुछ मुसलमानों के मतवादों से मिलता जुलता है।

कौन झुलावै कौन झूलहि हो, कौन बैठालि खाट ।
कौन पुरष नहिं झूलहि हो, कौन रोकै बाट ।
मन रे झुलावै जिव झूलहि हो, सक्ति बैठलि खाट ।
सत्त पुरुष नहिं झूलहि हो, कुमति रोकै बाट ॥''

कई बार मन बड़ा उपद्रव मचा देता है। अतएव बाहरी एवं भीतरी विकारों से विमुख होकर आत्मनिरीक्षण द्वारा विषम भाव छोड़कर सम भाव में अवस्थित होना ही आत्मोत्थान की प्रशस्त प्रेरणा है। दरिया साहब कहते हैं कि हे भाई ! मैल की परत तो तेरे भीतर है, तू ऊपरी शरीर को क्या धोता है। उस अविगति की मूर्त्ति तो तेरे महल के भीतर ही विराजमान है, तू बीच रास्ते में खड़ा क्या प्रतीक्षा कर रहा है :

''भीतर मैलि चहल कै लागी, ऊपर तन का धोवै है ॥
अविगति मूरति महल के भीतर, वाका पंथ न जोवै है ॥''

एक अन्य पद में भगवान से गिड़गिड़ाहट भरी क्षमा-याचना करते हुए ये कहते हैं :

''अबकी बार बकस मेरे साहिब ।
तुम लायक सब जोग हे ॥
गुनह बकसि हौ सब भ्रम नसि हौ ।
राखि हौ आपन पास हे ॥
ऊछै विरछि तरि लै बैठे हो ।
तहवाँ धूप न छाँह हे ॥
चाँद न सूरज दिवस नहिं तहवाँ ।
नहिं निसु होत विहान हे ॥
जुग जुग अचल अमर पद दैहै ।
इतनी अरज हमार हे ॥''

दरिया साहब (मारवाड़ वाले)*

समकालीन होते हुए भी ये बिहार वाले दरिया साहब से दूर मरुप्रदेश में

---

*दरिया साहब का जन्म मारवाड़ के जैतारन नामक गाँव में सं० १७३३ हुआ था और मृत्यु अगहन सुदी पूर्णिमा के दिन सं० १८१५ में हुई ।

साधना-रत थे। इन्होंने बड़ी ही सीधी-सादी बोलचाल की भाषा में अपने विचारों की अभिव्यक्ति की। आत्मानुभव से सिरजे पदों में कहीं-कहीं बड़ी ही गहरी अंतर्भेदिनी पैठ है :

"जन दरिया हिरदा बिचे, हुआ ज्ञान परकास।
हौद भरा जहँ प्रेम का, तहँ लेत हिलोरा दास॥"

इस प्रेम की हौद में सुखद आनन्दोल्लास की लहरों का कसमसाता आलोड़न है जिसके कारण ज्ञान-कमल प्रस्फुटित हुआ। साथ ही कुछ ऐसी अगम्य विचारधारा और गहन चिन्तन है जिसकी पृथक् व्युत्पत्ति अथवा विश्लेषण नहीं किया जा सकता, मानो ऐसे भ्रमरों का गुंजन इस कमल के चहुँ ओर है जिनका न कोई वर्ण है और न रूपरेखा। प्रेम की किरणें विकीर्ण हो रही हैं, इस नाभि-कमल से संश्लिष्ट मेरुदण्ड पर नाद की खिड़की खुली है जहाँ अनायास ब्रह्म से साक्षात्कार हो गया :

"नाभि कँवल से ऊतरा, मेरु डंड तल आय।
खिड़की खोली नाद की, मिला ब्रह्म से जाय॥"

कालान्तर में प्रेम के इस दरिया में कुछ ऐसी बाढ़ आई कि मेरुदण्ड के सहारे वह आकाशमण्डल तक चढ़कर औघट घाट को भी पार कर गया। फिर मेरु का भी उल्लंघन कर त्रिकुटी सन्ध में पहुँच गया जहाँ दु:ख व भ्रमजाल का विभेदक धुन्ध मिट गया। इस उर्ध्वलोक में अनंत चन्द्रमा उगे हुए हैं, करोड़ों सूर्य प्रकाशमान हैं। बिना बादल ही रूघन वर्षा हो रही है, छहों ऋतु और बारह मासे की सदाबहार है। वहाँ कुछ ऐसा अकथ्य, अनिर्वचनीय सुख समाया हुआ है कि मन में आनन्दोल्लास उमड़ा पड़ रहा है, अनहद नाद का

इनके पिता धुनिया का काम करते थे। इनकी कविता है :

जो धुनिया तो भी मैं राम तुम्हारा,
अधम कमीन जाति मति हीना,
तुम तो हौ सिरताज हमारा।

इनके गुरु बीकानेर के पास खियान्सर नामक गाँव में रहते थे। इनका नाम प्रेमजी था।

नूर बरस रहा है और इस दरिया की भी कोई परिसीमा या ओरछोर नहीं है :

"घुरै नगारा गगन में, बाजै अनहद तूर।
जन दरिया जहँ थिति रची, निस दिन बरसै नूर ॥"

विरह की छटपटाहट ने सुप्त आत्मा को जैसे जगा दिया है, कचोटती टीस समूचे मनःप्राणों में समा गई है, श्वास-प्रश्वास सिसक रहा है, अंतर्दाह के कारण मन सूख गया है और शरीर पीला पड़ गया है। रात में नींद नहीं आती और दिन में भूख नहीं लगती। वियोग-व्यथा इसलिए और भी अधिक बढ़ गई है क्योंकि प्रिय से परिचय नहीं है। विरहिन अपने प्रिय की खोज में वन-खण्डों में भटकती फिरी, किन्तु भेंट न हुई, अतः भीतर का दर्द ज्यों का त्यों बना रहा :

"विरहन पिउ के कारने, ढूँढन बन खँड जाय।
निस बीती पिउ ना मिला, दरद रहा लिपटाय ॥"

अपनी समस्त दुर्बलताओं और ऐहिक सुखभोग की एषणाओं में लिपटा-चिपटा जीव अंधकार में टटोलता रहता है और प्रकाश उसे दीखता नहीं। जैसे सुषुप्ति की अचेतावस्था में कुछ भी सुधबुध नहीं होती और पाँव पसारे जीव निर्द्वन्द्व सोता रहता है वैसे ही राम की भक्ति से दूर लोगों की भी दशा है :

"पाय बिसारै राम को, तीन लोक तल सोय।
जन दरिया अघ जीव का, दिन दिन दूना होय ॥"

एक अन्य पद में दरिया साहब कहते हैं कि मल को मल से धोने से काम न चलेगा, बल्कि प्रेम का साबुन और रामनाम का जल इन दोनों के संयोग से ही यह मल छूँटेगा :

"मल सेती जो मल को धोवै, सो मल कैसे छूटै
प्रेम का साबुन नाम का पानी, दोय मिल ताँता टूटै
भेद अभेद भरम का भाँडा, चोड़े पड़ पड़ फूटै।"

दरिया साहब के मत में चाहे कोई गृहस्थ हो या त्यागी, अथवा कोई संत-महात्मा ही क्यों न हो— सभी परोक्ष-अपरोक्ष रूप में माया-पाश में बँधे हैं और अच्छे-बुरे कर्मों के बन्धन ने उन्हें चारों ओर से जकड़ रखा है। मिट्टी की दीवार, हवा का खंभा, गुण-अवगुण की छत और पंचतत्त्व तथा आकार

आदि के संयोग से एक घर का निर्माण किया जिसमें भरेपूरे परिवार की ऐसी वृद्धि हुई कि :

> "मन भयो पिता मनसा भइ माई, सुख दुख दोनों भाई।
> आसा तृस्ना बहिनें मिलकर, गृह की सौंग बनाई॥
> मोह भयो पुरुष कुबुध भई घरनी, पाँचो लड़का जाया।
> प्रकृति अनंत कुटुम्बी मिलकर, कलहल बहुत उपाया॥
> लड़कों के संग लड़की जाई, ता का नाम अधीरी।
> बन में बैठी घर घर डोले, स्वारथ संग खपी री॥
> पाप पुन्न दोउ पास पड़ोसी, अनंत वासना नाती।
> राग द्वेस का बंधन लागा, गिरह बना उतपाती॥"

गुलाल साहेब*

यारी साहब की शिष्य परम्परा में गुलाल साहेब का विशिष्ट स्थान है। अनहद शब्द, नाम महिमा, विनय, भेदाभेद, माया-ब्रह्म विषयक पदों के अतिरिक्त इन्होंने भगवत्प्रेम का सुन्दर निरूपण किया है। वस्तुत: यह प्रेमरस अद्भुत है, इसकी तो किसी से तुलना ही नहीं की जा सकती। कभी-कभी अनायास साधु-संगति से बिरला ही ऐसा संयोग बन आता है। इस प्रेमरस को बिना घोटे, बिना छाने, बिना कौड़ी-दाम खर्चे बड़ी आसानी से पी लिया। फिर इसका जो नशा चढ़ा वह कभी उतरता नहीं, लगता है जैसे प्रेमरस में छककर एक अजीब मस्ती का आलम छाया हुआ है, झूम-झूम कर और भी उच्छल रसावेग उमड़ा पड़ रहा है, बड़ी ही पावन, मन को उत्फुल्ल करने वाली वाणी स्वयमेव प्रस्फुटित हो रही हैं, गहरे स्वानुभव से अभ्यन्तर स्वच्छ हो गया है। गुरु कृपा से कोई-कोई ही इस प्रेमरस के प्याले से कुछ अमृत-कण उपलब्ध कर पाता है।

---

*गुलाल साहेब का जीवन-काल सं० १७५० से १८०० तक माना गया है। ये जाति के खत्री जमादार घराने के थे। गाजीपुर जिले के भरकुंड़ा नामक गाँव में रहते थे। प्रसिद्ध संत भीखा साहब इनके शिष्य थे। जगजीवन साहब इनके गुरु भाई थे। इनके गुरु का नाम बुल्लेशाह था। भक्तिरस में ओतप्रोत इनके अनेक स्फुट पद मिलते हैं।

**"हरदम हाजिर प्रेम पियाला, पुलकि पुलकि रस लेई ॥
जीव पीव महँ पीव जीव महँ, बानी बोलत सोई ॥
सोई सभन महँ हम सबहन महँ, बूझत बिरला कोई ॥
वा की गती कहा कोई जानैं, जो जिय साचा होई ॥
कह गुलाल वे नाम समाने, मल भूले नर लोई ॥"**

प्रेम की कुछ ऐसी लौ लगी है कि जैसे कोई वियोगिन अपने चिरप्रणयी के सान्निध्य के लिए तड़पती रहती है और हर क़दम-क़दम पर टक लगाए लगाए उसी की बाट जोहती रहती है :

**"ताहि चरनवाँ चितवा लागल हो सजनी ॥
साँझि समय उठि दीपक बारल ।
कटल करमवा मनुवाँ पागल हो सजनी ॥
चललि उबटि बाट छुटलि सकल घाट ।
गरज गगनवा अनहद बाजल हो सजनी ॥"**

जैसे किसान को खेत से लगाव होता है उसी प्रकार भक्तवत्सल प्रभु के चरणों में जन की प्रीति है । हे प्रभु ! मेरे गुण-अवगुण का ख्याल मत करो :

**"जैसे प्रीति किसान खेत सों तैसो है जन प्यारो ।
भक्त वच्छल है बान तिहारो, गुन औगुन न विचारो ॥"**

जैसे भ्रमर की प्रीति खिले कमल में होती है और वह उसी के इर्दगिर्द चक्कर काटता रहता है,[१] जैसे मछली जल में और चकोर चन्द्रमा में आसक्त होता है उसी प्रकार भक्त की भगवान में निष्ठा होनी चाहिए । अन्य सन्तों की भाँति इन्होंने भी आत्मशुद्धि पर बल दिया । मायामोह में फँसा जीव का मन इस प्रकार अस्थिर और उद्विग्न बना रहता है जैसे लट्टू में डोरी तो बँधी रहती है, किन्तु वह निरन्तर चक्कर ही काटता रहता है । बीच-बीच में खंभों और आसपास की चीज़ों से टकराने के बावजूद वह अनवरत घूमता ही रहता है और उससे धीमी-धीमी ध्वनि गुंजायमान होती रहती है । एक अन्य पद में गुलाल साहेब ने ब्रह्मज्ञानहीन मनुष्य की तुलना उस अभागी क्वारी कन्या से की है जो दुर्भाग्य और अवांछनीय परिस्थितियों के कारण असमय में ही माँ बन जाती है । माथे पर कलंक का टीका लिये वह

भले ही अपने सुन्दर, सलोने शिशु को अन्तर का सींचकर दूध पिलावे और प्राणों की लौ लगाकर उसका पालन-पोषण करे, फिर भी उसे कोई सच्ची जननी के रूप में कबूलने को तैयार नहीं। इसलिए सब सांसारिक प्रपंचों और जंजाल से छूटकर उस ब्रह्मज्ञान और सच्ची आत्मप्रतीति में क्यों न रमा जाय जहाँ निरन्तर एकरसता व निर्द्वन्द्वता है :

"अवधू निर्मल ज्ञान विचारो।
ब्रह्म सरूप अखंडित पूरन, चौथे पद सों न्यारो॥
ना वह उपजै ना वह विनसै, ना भरमै चौरासी॥
है सतगुरु सतपुरुष अकेला, अजर अमर अविनासी॥
ना वाके बाल नहीं वाके माता, वाके मोह न माया॥
ना वाके जोग भोग कछु नाही, ना कहुँ जाय न आया॥
अद्भुत रूप अपार विराजै, सदा रहै भरपूरा।
कहै गुलाल सोइ जन जानै, जाहि मिलै गुरु सूरा॥"

बुल्लेशाह*

भले ही इनके पदों में उतनी अंतर्मुखता या [illegible] नहीं है, पर अपनी परम्परा के कवियों की भाँति इनका मन भी भीतर ही भीतर भगवान् की भक्ति में पगा था। अपने विचारों को व्यक्त करने का इनका बड़ा ही अनूठा और निराला ढंग है जो सीधे मर्म को छूता है। अपने एक पद में जगत् की असारता और मानव देह की नश्वरता की मिट्टी से तुलना करते हुए

---

*बुल्लेशाह यारी साहब के शिष्य थे। ये जाति के कुनबी थे। इनका असली नाम बुलाकीराम था। ये गाज़ीपुर जिले के भरकुड़ा गाँव में रहकर सत्संग-भजन करते थे। इनका समय सं० १७५०-१८५५ तक है। गुलाल साहब इनके शिष्य थे। शिष्य होने की घटना बड़ी ही विचित्र है। पहले ये गुलाल साहब के यहाँ हलवाहे का काम करते थे, किन्तु एक दिन हल छोड़कर जब ये ध्यान-मग्न बैठे थे तो गुलाल साहब ने क्रोध में इनके एक लात मारी जिससे इनके हाथ से दही छलक गया। मानस-पूजा का यह चमत्कार देख गुलाल साहब ने इन्हीं से दीक्षा ली।

वे कहते हैं कि चहुँ और मिट्टी की वहार हैं, दरअसल जीवन के संघर्षशील लम्बे पथ की सरपट दौड़ में मिट्टी के घोड़े पर मिट्टी का सवार ही चढ़ा हुआ है और मिट्टी के हथियारों को लिये मिट्टी से ही मिट्टी को मारने की चेष्टारत है। इस अभियान में मिट्टी पर मिट्टी की परत जमती रहती है, मिट्टी की मोटी तहें उत्तरोत्तर मिट्टी का अम्बार लगा रही हैं, लगता है जैसे जीवन भर मिट्टी सँजोई, मिट्टी को ही संचित किया, बाग-बगीचा या मन को आकृष्ट करने वाली दृश्य वस्तुएँ सभी में जैसे मिट्टी गुलज़ार हो रही है अर्थात् आनन्द-भोग और कर्म-चेष्टाओं में फँसा मनुष्य अपने 'स्व' को भूल जाता है, अपनी क्षमता और क्षणिक सामर्थ्य के अहंकार में वह यह विस्मृत कर देता है कि यह दृश्य-प्रपंच मिथ्या है, नाशवान है और दर्प का पुतला यह शरीर मिट्टी का मात्र लोंदा है :

"माटी खुदी करेंदी यार।
माटी जोड़ा माटी घोड़ा, माटी का असवार॥
माटी माटी नूँ मारन लागी, माटी दे हथियार॥
जिस माटी पर बहुती माटी, तिस माटी हंकार॥
माटी बाग-बगीचा माटी, माटी दी गुलजार॥
माटी माटी नूँ देखन आई, माटी दी बाहार॥
हँस खेल फिर माटी होई, पौंदी पाँव पसार॥
बुल्लेशाह बुझारत बूझी, लाह सिरों मों मार॥"

एक अन्य पद में वे जीव की तुलना सराय में ठहरे उस मुसाफिर से करते हैं जो रात्रि बीत जाने और काफ़ी दिन चढ़ जाने पर भी बेख़बर गफ़लत की गहरी नींद सोया पड़ा है। आवागमन का उसे कोई भय नहीं, कितने ही दूसरे मुसाफिर अपने डेरे-डंडे सहित जाने को तैयार खड़े हैं, पर उसे कुछ भी खोज खबर या होश नहीं—

"अब तो जाग मुसाफिर प्यारे, रैन घटी लटके सब तारे॥
आवागौन सराई डेरे, साथ तैयार मुसाफर तेरे॥
अजे न सुनदा कूच नगारे॥
करलै आज करन दी बेला, बहुरि न होसी आवत तेरा॥"

विरह सतायी दीन-हीन दुःख-जर्जर नारी की भाँति कलपती आत्मा से करुण याचना करते हुए निम्न पद में वे कहते हैं :

"कद मिलसी मैं विरहों सताई नूँ ।।
आप न आवै नाँ लिख भेजे, भट्ठि अजे ही लाई नूँ ।।
तै जेहा कोइ होर ना जाणा, मैं तनि सूल सवाई नूँ ।।
रात-दिनें आराम न मैंनूँ, खावे विरह कसाई नूँ ।।
बुल्लेसाह धृग जीवन मेरा, जौं लग दरस दिखाई नूँ ।।"

यारी साहब*

उदात्त भावाभिव्यंजना और गहरी भक्ति भरे इनके पदों से अजीब मस्ती और फक्कड़पन टपकता है। प्रेम में शराबोर इनकी वृत्ति जैसे पिया के संग होली खेल रही है। होली की धूम मची हुई है। पतिप्राणा नारी अपने प्रियतम के रूप-सौंदर्य और अनूठी छवि से अभिभूत हो उठी है। उसका एकनिष्ठ मन जैसे प्रिय से एकाकार हो उसी में रम गया है और उसे ऐसी प्रतीति हो रही है जैसे प्रिय की रूपच्छटा में सोलह कलाओं की सम्पूर्णता अथवा सूर्यचन्द्र का अनन्त प्रकाश दीप्तिमान हो उठा हो। वह बावली-सी ठगी हुई प्रिय को एकटक निहार रही है। तब से उसकी मनःस्थिति बड़ी ही विचित्र है। रात-दिन उसकी जिह्वा एक ही नाम रटती रहती है, एक ही ठौर उसकी दृष्टि केन्द्रित है—

"जब ते दृष्टि परो अविनासी, लागो रूप ठगौरी ।।"

कहीं विरहिन योगयुक्ति का ऐसा दीपक जगाए है जो बिना बत्ती, बिना तेल सारे घर को आलोकित कर रहा है :

"विरहिनी मंदिर दियना बार ।।
बिन बाती बिन तेल जुगति सों, बिन दीपक उँजियार ।।
प्रान पिया मेरे गृह आयो, रचि पचि सेज सँवार ।।"

---

*यारी साहब बड़े ही फक्कड़ मुसलमान फकीर थे। इनका जीवनवृत्त अप्राप्य है। किन्तु अनुमान है कि सं० १७२५ से सं० १७८० तक ये रहे होंगे। इनकी बानियाँ स्फुट पदों में बिखरी हुई हैं।

जैसे अंधे को हाथ फेरकर देखने से हाथी और ही तरह से सूझ पड़ता है वैसी ही गति प्रत्येक जीव की है। वह तरह-तरह की मिथ्या परिकल्पनाओं और भ्रमजाल में असलियत को नहीं पहचान पाता। ईश्वर के सच्चे स्वरूप को अपने तर्कों में उलझा देता है और नित्य-नये संशय व संदेहों में बहुमूल्य समय नष्ट करता है :

> "आँधरे को हाथी हरि हाथ जाको जैसो आयो।
> बूझो जिन जैसो तिन तैसोई बतायो है॥
> टकाटोरी दिन रैन हिये हू के फूटे नैन।
> आँधरे को आरसी में कहा दरसायो है॥
> मूल की खबरि नाहिं जा सो यह भयो मुलुक।
> वाको विसारी भोंदू डारै अरुझायो है॥
> आपनो सरूप रूप आप माहिं देखे नाहिं।
> कहै यारी आँधरे ने हाथी कैसे पायो है॥"

यारी कहते हैं कि भिन्नत्व में जब एकत्व की अनुभूति जगती है अथवा 'स्व' का ज्ञान हो जाता है तो मन स्थिर और साम्य स्थिति में पहुँच जाता है। निरन्तर झिलमिल प्रकाश अंतरंग को प्रकाशित करता रहता है। रुनझुन-रुनझुन अनहद की झंकार झंकृत होती रहती है और ऐसा लगता है कि भ्रमरों की मधुर गुंजार सारे आकाशमंडल पर छायी है। शुभ्र आलोकच्छटा की कुछ ऐसी रजत-रश्मियाँ विकीर्ण रहती है मानों मुक्ता-माणिक की वर्षा हो रही हो। नामोच्चार की निर्मल ध्वनि से न केवल एक विचित्रानुभूति अपितु चिरविश्राम की निस्संशय सुखद प्रतीति सदा होती रहती है :

> "सुन्न के मुकाम में बेचून की निसानी है।
> जिकिर रूह सोइ अनहद बानी है॥
> अगम के गम्म नाहीं झलक पिसानी है।
> कहै यारी आप चीन्हे सोइ ब्रह्म ज्ञानी है॥
> झिलमिल झिलमिल बरखै नूरा।
> नूर जहूर सदा भरपूरा॥

रुनझुन रुनझुन अनहद बाजै।
भँवर गुँजार गगन चढ़ि गाजै॥
रिमझिम रिमझिम बरखै मोती।
भयो प्रकास निरंतर जोती॥
निरमल निरमल नामा।
कह यारी तहँ लियो विश्रामा॥"

दूलनदास*

अन्य समकालीन कवियों की भाँति इनके पदों में भी निराकार ब्रह्म, नाम-स्मरण, भक्ति-विरह, प्रेम-विश्वास, दया-दीनता और सत्संगति एवं गुरु-महिमा पर सम्यक् प्रकाश डाला गया है। आत्मा रूपी नारी परमात्मारूपी प्रियतम के लिए आकुल है, कहीं भी जरा चैन नहीं, आँखें कलप-कलप कर बैरागी हो गई हैं। रात-दिन उसके नाम की रटन में मानो अन्तर्ध्वनि जग गई है। आँखों में अनवरत अश्रु-प्रवाह है। विरहाग्नि में दग्ध प्राणों में कसमसाहट है, बेकली है, प्रिय-दर्शन में अनुरक्त मन की समूची प्रेरणा जैसे सुधबुध खो बैठी है और उसी के तईं प्राणों की लौ लगाए हैं। एक अन्य पद में इस गफ़लत भरी मदहोशी का परित्याग कर शिरा-शिरा में स्फूर्ति बनकर उमगने वाले प्रभु प्रेम की उत्कट किन्तु गहरी अनुभूति का आह्वान किया गया है जहाँ हर्ष-विषाद, मिलन-विरह, सुख-दुःख तथा आशा-निराशा की मनहूस म्लानता नहीं होती, वरन् इन सबसे परे अंतरंग प्राणरस में निमज्जित होकर तद्रूप एवं स्वयंपूर्ण आत्मा धुलकर सफ़ेद चादर-सी निर्मल हो जाती है :

"प्रेमरंग रस ओढ़ चदरिया, मन तसबीह गहो रे॥
अंतर लाओ नामहिं की धुनि, करम भरम सब धोरे॥"

---

*दूलन दास जगजीवन साहब के शिष्य थे। ये १८ वीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में पैदा हुए थे और १९वीं अर्द्ध शताब्दी तक जीवित रहे। ये क्षत्रिय परिवार में लखनऊ जिले के समेसी नामक गाँव में पैदा हुए थे। इनका सत्संग स्थल सरदहा भी माना जाता है।

इस ऊहापोह को छोड़कर उस उच्च महल में यदि बसा जाय जहाँ द्वन्द्वातीत चिरतृप्ति है तो सदैव सुख ही सुख है, न कोई झंझट न झमेला। इस महल के विशाल प्रांगण में चन्द्र-ज्योत्स्ना छिटक रही है, तारों का आलोक चतुर्दिक् वातावरण को ज्योतिर्मय कर रहा है। हीरे-रत्नों और अगणित मोतियों से जड़े वितान तने हुए हैं। सुखदायी पर्यंक पर सहज बिछौना लगा हुआ है जहाँ मन निश्चित और चैन की नींद सोता है तथा स्वामी के अनूठे स्वप्नों में जग-जग कर विचित्र सुखानुभूति में विचरण करता है :

"चलो चढ़ो मन यार महल अपने ।।
चौक चाँदनी तारे झलकैं, बरनत बनत न जात गने ।।
हीरा रतन जड़ाव जड़े जहँ, मोतिन कोटि वितान बने ।।
सुखमन पलँगा सहज बिछौना, सुख सोवो को मेरे मने ।।
दूलनदास के साईं जगजीवन को आवै जग जग सुपने ।।"

अपनी समूची निरीहता और करुणाभरी याचना में इनकी वाणी बड़ी ही मार्मिक और हृदयस्पर्शी बनकर इनके मन की समूची मजबूरी और मसोस को उजागर कर रही है :

"साईं भजन ना करि जाई ।
चहत मन सतसंग करनो, अधर बैठि न पाई ।।
चढ़त उतरत रहत छिन-छिन, नाँहि तहँ ठहराई ।।"

वस्तुतः मन की बड़ी ही चंचल गति है। वाह्य परिस्थितियों वश जितनी ही हमारी इच्छाएँ बलवती होती जाती है उतनी ही तेजी से मन की चंचलता भी बढ़ती जाती है। संसार के नानाविध आकर्षणों और प्रलोभनों में मन ऐसा जकड़ा रहता है कि ईश्वर की उपासना में वह सुस्थिर नहीं हो पाता। एक पद में दूलनदास कहते हैं कि हे प्रभु ! मेरे चपल मन की डोरी को अपने चरणों में कसकर बाँध लो जिससे वह इधर-उधर भ्रमित न हो सके :

"साईं सुनहु बिनती मोरि ।
बुधि-बल सकल उपाय हीन मैं, पाँयन परौं दोऊ कर जोरि ।।
इत उत कतहूँ जाई न मनुवाँ, लागि रहै चरनन माँ डोरि ।।
राखहु दासहि पास आपने, कस को सकिहैं तोरि ।।"

समकालीन मुस्लिम फकीरों से प्रभावित इनके कुछ पदों में उर्दू-फारसी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं :

"अब तो अफ़सोस मिटा दिल का दिलदार दीद में आया है।
संतों की सुहबत में रहकर, हक हादी को सिर नाया है ।।"

तथा

"हुआ है मस्त मंसूरा चढ़ा सूली न छोड़ा हक़।
पुकारा इश्क बाजों को अहै मरना यही बरहक़ ।।
सुना है इश्क मजनूँ का, लगी लैला की रहती जक।।
जलाकर खाक तन कीन्हा, हुए यह भी उसी माफ़िक ।।
दुलनजन को दिया मुरशिद पियाला नाम का थकथक ।।
वही है शाह जगजीवन, चमकता देखिये लक़लक़ ।।"

गरीबदास*

इनकी रचनाओं पर कबीर का जबर्दस्त प्रभाव पड़ा, किन्तु प्राचीन धर्मग्रन्थों—वेद-पुराणों—से भी इन्होंने प्रचुर सामग्री ली। जगत् की निस्सारता समझते हुए भी जीव विषयासक्ति के पंक में लिपटा-चिपटा रहता है । जब तक सच्चे वैराग्य के द्वारा मोह की निवृत्ति नहीं होती तब तक चित्त के कल्मष को दूर कर आत्मतत्त्व की उपलब्धि भी नहीं होती। धर्म के स्वरूप और साधन का यथार्थ बोध कराने वाले निरपेक्ष प्रमाणभूत, अनादि, अपौरुषेय परमप्रभु की कृपा का आभास होने पर, साथ ही अन्तर्ज्ञान की उपलब्धि होने पर ही तद्विषयक व्यवहार सार्थक होते हैं। साईं के दरबार में चतुराई या कोई खास उखाड़-पछाड़ नहीं बल्कि सच्ची भक्ति व निष्ठा चाहिए । सर्वभाव से यदि एक ही लौ लगी रहे तभी कल्याण है—

"लै लागी तब जानिये हरदम नाम उचार।
एकै मन एकै दिसा साईं के दरबार ।।"

***इनका जन्म वैशाख पूर्णिमा सं० १६१४ में रोहतक जिले के छुड़ानी नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता जाट थे। इनकी मृत्यु सं० १८३५ में हुई। कबीर को ये अपना गुरु मानते थे। अल्पायु में ही इन्होंने हजारों साखियाँ और चौपाई लिख डाली थीं। संतबानी संग्रह में इनके पदों का संकलन है।**

झूठे प्रपंच और दिखावटी साजबाज की तुलना करते हुए एक पद में गरीबदास कहते हैं मानों जल की बूँदों का महल चिना गया हो। दरअसल जीव के कल्याण के लिए पंचतत्त्वों से परिपुष्ट महल चाहिए जिसमें परब्रह्म का इष्ट हो। यह महल धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थों से परिपूर्ण है, सुरत-निरत में एकनिष्ठ मन को पवन यहाँ दोलायमान नहीं करता और शिवद्वार खुलने पर चौदह भुवनों का दर्शन होने लगता है :

"पाँच तत्त के महल में नौ तत का इक और।
नौ तत से इक अगम है पारब्रह्म की पौर।।
सुरत निरत मन पवन कूँ करो एकत्तर यार।
द्वादस ऊलट समोय ले दिल अन्दर दीदार।।
चार पदारथ महल सुरत निरत मन मौन।
शिव द्वारा खुलि है जबै दरसै चौदह भौन।।"

प्रेम प्याला पीकर विरहिन साजन के रंग में रँगी मतवाली हो गई है। उसके मन और प्राण मुग्ध हो उठे हैं और वह ठगी सी, भूली सी, बौरायी सी अन्तर में न समा सकने वाले अनंत आनन्दोल्लास की अकथ कहानी कह नहीं पा रही है :

"सजन सुराही हाथ है अमृत का प्याला।
हम विरहिनी विरहै रंगी कोई पूछै हाला।।
चोखा फूल चुवाइयो विरहिनी के ताईं।
मतवाला महबूब है मेरो अलख गुसाईं।।
प्रेम पियाला पीव कर मैं भई दिवानी।
कहा कहूँ उस देस की कुछ अकथ कहानी।।"

मन भले ही चंचल हो, किन्तु वह स्वयम्भू भी तो है। परिस्थितियों के घात-प्रतिघात और अनवरत संघर्षण से अन्तर्विरोध उत्पन्न होते हैं। आत्मसात् न होने से मन की प्रतीति भी मिथ्या और अविश्वास्य बन जाती है। ज्ञान की उत्कट जिज्ञासा, जो हमारी रसधारा का उद्रेक करती है, एक बहुत बड़ी इकाई है जिसमें अन्य सभी इकाइयाँ लय हो जाती हैं, किन्तु कैसी है यह जिज्ञासा—सहज, स्वस्थ, स्वयंपूर्ण और स्वयंप्रेरक—'**मन मगन भया तब क्या गावे**।' एक अन्य पद में—

'सुन्न सरोवर हंस मन मोती चुग आया।
अगर दीप सतलोक में ले अनर झराया ॥"

सच्चा सुख, सच्ची शान्ति तो प्रभु के चरणों में ही है। वह दरदमंद दरवेश अपनी करुणा के छलकते रसकणों से बेदर्द कसाई के मन को भी बदल देता है। अन्तर्यामी की एक नज़र निहाल कर देने वाली है। उसकी कृपाकोर जिसे नसीब है वे विरले ही भाग्यवान होते हैं :

"नजर निहाल दयाल है मेरे अंतरजामी।
सोलह कला सपूरना लख बारह बानी ॥
उलट मेरुदण्ड चढ़ गये देखो सो देखा।
संख कोटि रवि झिलमिलै गिनती नहिं लेखा ॥
बरन बरन के तेज हैं पँचरंग परेवा।
मूरत कोट असंख है जा मध इक देवा ॥
धरत ऐनक दुरबीन कूँ धुन ध्यान लगावैं।
उलट कमल अरसा चढ़ैं तब नजरो आवैं ॥"

काष्ठजिह्वा स्वामी*

इनमें सीताराम की अनन्य भक्ति कूट-कूट भरी थी। इनके कई पद बहुत ही मर्मस्पर्शी है। जिन्हें राम का सहज बोध हो गया उनके लिए और रह ही क्या गया ? निम्न पद में कितनी सहज निष्ठा और निश्छल भावाभिव्यंजना है :

"चीखी चीखि चसकन से राम सुधा पीजिये।
रामचरितसागर में रोम रोम भीजिये ॥"

---

*इनका पूरा नाम देवतीर्थ काष्ठजिह्वा स्वामी था। ये काशी के निवासी थे। संस्कृत के विद्वान थे, शैव मतानुयायी थे, परन्तु अयोध्या के प्रसिद्ध वैष्णव भक्त संत रामसखे जी के प्रभाव में आकर इन्होंने वैष्णवी दीक्षा ली। देवतीर्थ ने अपनी जीभ में छेद करवा लिया था और इस छेद में लकड़ी की एक सलाई डाल रखी थी। इसलिए इनका शुभ नाम काष्ठजिह्वा प्रसिद्ध हो गया। इन्हें सीता रमैया भी कहा जाता है। 'विनयामृत', 'रामलगन' 'रामायण', 'परिचर्या', 'वैराग्य प्रदीप' और 'पदावली' इनकी बनाई हुई पुस्तकें हैं। ग्रन्थ रचना का समय सं० १८९७ माना जाता है।

इन्होंने उन लोगों को फटकारा जो मन की आस्तिकता के अभाव में राम पर अविश्वास करते हैं और गफ़लत में पड़े रहकर राम से नहीं डरते। राम नाम जो बहुत आसान है, जिसे लेने से भव पंथ पर निष्कंटक और निर्द्वन्द्व चला जा सकता है। यदि मन में पैठ नहीं, अथवा अन्दरूनी भावना जब तक उसी में नहीं रमती तब तक चाहे कुछ भी किया जाय आवागमन और जीवन-मृत्यु का भय नहीं टलता :

"समुझ बूझ जिय में बंदे, क्या करना है क्या करता है।
गुन का मालिक आपै बनता, अरु दोष राम पर धरता है।।
अपना धरम छोड़ि औरों के, पीछे धरम पकरता है।
अजब नसे की गफ़लत आई, साहब से नहिं डरता है।।
देव धरम चाहे सो करिले, आवागमन न टरता है।
प्यारे केवल राम नाम से, तेरा मतलब सरता है।।"

राम-सीता की अनेक सजीव छवियों का वर्णन भी इन्होंने कुछ पदों में किया। निम्न पंक्तियों में दोनों एक दूसरे को हँस-हँस कर पान खिला रहे हैं :

"आपुस में हँसि हँसि कै दोऊ, खात खियावत पान।
विरहत दोउ तेहि सुमन बाग में, अलि कोकिल कर गान।।
ओहि रहस्य सुखरस को कैसे, जानि सकै अज्ञान।।"

संत शिवनारायण*

ये प्रचार से दूर भक्ति-साधना में प्रवृत्त रहे और इन्होंने एक अलग पंथ चलाया। इनके पदों में भक्ति और वैराग्य दोनों का ही सम्यक् प्रतिपादन है। इनकी विरहिन आत्मा प्राणप्रियतम सैंय्या की मनुहारें कर रही है—

---

*जन्म : संवत् १७७३
मृत्यु : संवत् १८४८
गुरु : दुःखहरण
जन्म : गाजीपुर जिले के चंदवार नामक गाँव में नरौनी बाधराम के यहाँ हुआ था।

आह री, मैं कैसे सैंय्या को मनाऊँ, मुझमें तो एक भी गुण नहीं। नदी गहरी, नाव पुरानी और सखियाँ भी साथ नहीं। जाते-जाते मुझे साँझ हो गई, मेरे साथ की सभी सखियाँ तो पार उतर गईं, पर मैं बिचारी यहाँ पड़ीं रह गई। हे प्रभु ! मेरी भी नैय्या पार लगा दो, मेरी विनम्र विनय आप से है :

"गुनवा एको नहीं, कैसे मनवो सैयाँ ।
गहरी नदिया नाव पुरानी भइ गइले साँझ समंइया ।।
संग की सखी सब पार उतर गईं, मैं बपुरिन एहि ठइंया ।।
शिवनारायन बिनती करत है, पार लगा दो मेरी नइंया ।।"

एक अन्य पद में ब्रह्माकार वृत्ति का चिन्तन करते हुए उनका मन उस अपार चिदानंद घन के रसास्वाद में लय हो जाना चाहता है जहाँ गगन मंडल में अनहद नाद बज रहा है और अवर्णनीय आनन्द का अमृत स्रोत प्रवहमान है। इस आनन्द रस का जो व्यक्ति आस्वादन करते हैं वे ही निरन्तर उसे पान करते रहने की आकांक्षा रखते हैं। जो साधन पथ के पथिक हैं वे अभेद प्रतीति की रीति अपना कर तथा ब्रह्म और आत्मा में ऐक्य साधकर 'तत्त्वमसि' एवं 'सोऽहमस्मि' की अखण्ड पराबुद्धि को जगाते हैं :

"गगन गहागह अनहद बाजत, बरसत अमृत धार ।
जो जन पीवै सोइ जन पीवै, मान गुमान हकार किरतिआ ।।
गगन बीच भरि मकर तार धरि, चढ़ि गए चतुर सुजान ।
इंगला पिंगला सुषमना सुरते, कटि गए काल कराल कुमतिआ ।।"

गुरु दुःखहरण के अनुग्रह से इन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ तो ये बनवासी हो गए। इन्होंने हठयोग द्वारा शरीर और इन्द्रियों को वश में किया था। इनकी लिखी अनेक पुस्तकें हैं, किन्तु 'गुरु अन्यास' इनके सम्प्रदाय का प्रधान ग्रन्थ है। जीवन-मरण के गेय गीतों का पाठ करके या गा करके या सुन करके बड़ी तन्मयता आ जाती हैं। इस सम्प्रदाय के लोग रात्रि में 'गादी' लगाते हैं और गुरु अन्यास का अखंड पाठ करते हैं। अखंड पाठ में 'कड़ाह प्रसाद' का भोग लगता है, आरती के अनन्तर प्रसाद वितरण किया जाता है। संत शिवनारायण उच्च कोटि के पहुँचे हुए विरक्त संत और योगी थे।

ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचने की यह प्रक्रिया बड़ी ही सूक्ष्म और परिश्रमसाध्य है, किन्तु कवि की सुहागिन आत्मा बिना इस कष्ट और श्रम की परवाह किए गगन के इस मकर तार पर चढ़कर ऊपर तक पहुँचना चाहती है, बशर्ते कि प्राण प्रियतम से आलिंगनबद्ध होकर वह परस्पर प्रीति-प्रतीति को अधिकाधिक बढ़ा सके :

"जो पिय पावों अंक भरि लावों, निज परतीत बढ़ाय।"

ईश्वर-भक्ति, ईश्वर से साक्षात्कार और इन्द्रिय-निग्रह द्वारा ईश्वरोपासना के चरम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए शिवनारायण स्वामी ने जनपदीय रूपों एवं प्रतीकों का सहारा लेकर अनेक ढंग से उसे वर्णित किया। कहीं वे कहते हैं :

"अंजन आँजिए निज सोइ।
जेहि अंजन से तिमिर नासै, दृष्टि निरमल होइ।।"

कहीं कहते हैं कि सुरति रूपी धोबिन जब सरस साबुन लेकर समूचे मैल को धो डाले तभी बात बन सकती है :

"सरस साबुन सुरति धोबिन मैलि डारे धोइ।"

एक पद में ये कहते हैं—हे जोगी ! तुम नाहक इन्द्रियों को साध-साध कर मर रहे हो, पर तुमने जिह्वा को तो वश में किया ही नहीं। जैसे मछली जीभ के स्वाद के लालच में बंसी में फँसकर अपनी जान गँवा देती है उसी प्रकार रसास्वाद और विषय-वासनाओं के पंक में पड़कर तुम उससे विमुक्त नहीं हो पाते हो। तुम नाहक वैराग्य के चक्कर में क्यों पड़े हो ? जैसे सरल मृग बिना किसी से वैर-विग्रह किये चुपचाप जंगल में चरता रहता है, पर वंशी की तान के मोह में पड़कर खिचा चला आता है और व्याध द्वारा बाण के निशान से प्राण खो देता है, जैसे पतंगे नेत्रों के रसास्वाद के कारण दीपक की लौ में अपने आपको भस्म कर देते हैं, जैसे भ्रमर सुवास के लालच में पंचरस के लिए मर मिटते हैं उसी प्रकार लालची मन की भी गति है। जब तृष्णा नहीं मिटी तो तीर्थों में जाकर पत्थर पूजने से अथवा मौनी बनकर ध्यान का ढोंग रचाने से क्या लाभ ? क्योंकि जब तक मन हाथ में नहीं तब तक यह सब वाह्याचार और मिथ्याडम्बर व्यर्थ हैं :

"विषय वासना छूटत न मन से, नाहक नर वैराग करो।
जैसे मीन बाझु बंसी मँह, जिभ्या कारन प्रान हरो।
सो रसना बस कियो न जोगी, नाहक इंद्री साध मरो।
जैसे मृगा चरत जंगल में, ना काहू सों बैर करो।
बंसी के तान लगी स्रवननि में, ब्याधा बान सो प्रान हरो।
जैसे फतिंगा परै दीप में, नैना कारन प्रान हरो।
नासा कारन भँवर नास भयो, पाँचों रसबस पाँच मरो।
तीरथ जाके पाहन पूजे, मौनी ह्वै के ध्यान धरो।
शीव नरायन ई सभ झूठा, जब लग मन नहिं हाथ करो।"

मनुष्य की अधोगामिनी तथा वहिर्मुखी वृत्तियाँ इतनी बलवती हैं कि सद्वृत्तियों से उनका हर समय संघर्ष होता रहता है। इन्द्रियों की ग्राह्य क्षमता इतनी सीमित है कि उसके आगे की कल्पना करना असंभव प्रतीत होता है और नाना ऊहापोह एवं तर्क-वितर्क हमारे अन्तर्ज्ञान और अनुभूत चेतना को विचलित करते रहते हैं। हमारी आध्यात्मिक चेतना कभी-कभी भीतर-ही-भीतर केन्द्रीभूत होकर एक नव्य उदात्त शक्ति का स्फुरण करती है, तब हमें लगता है जैसे वह हमें किसी अभीष्ट केन्द्र की ओर प्रेरित कर रही है और हमें कुछ और ही विचित्र आंतरिक अनुभव हो रहे हैं। हमारा मन यदि बीच में ही बहक गया और उत्तरोत्तर पूर्णचक्र की अवस्था का धैर्यपूर्वक अनुगमन किये बिना ही उड़ चला तो परकटे पक्षी की तरह पंख फड़फड़ा वह फिर ज़मीन पर गिर पड़ेगा। वस्तुतः ज्ञान की तेज धार शिथिल मन-प्राणों में भय की सिहरन उत्पन्न कर देती है :

"जब मन बहकै उड़ि चलै, तब आनै ब्रह्म ज्ञान।
ज्ञान खंग के देखते, डरपै मन के प्रान॥"

कभी-कभी प्रत्येक इन्द्रिय का निर्दिष्ट व्यापार अपने तन्मात्रा के भीतर होने वाले स्पन्दन से ही टकराकर रह जाता है। मोह और भ्रम के गहन आवर्त्त उसे भयानक जल के थपेड़ों और झकोरों से त्रस्त कर देते हैं। ये प्रबल कशाघात उसे ज़रा भी स्थिर नहीं रहने देते। एक पद में ये कहते हैं—अरे

ओ ! तू अपने आप को संभाल ले। विलम्ब न कर, क्योंकि जब साँझ हो जाएगी और अंधकार फैल जाएगा तो तू कैसे पार उतरेगा ?

"सुनु रे मन कहल मोर, चेत करहु घर जहाँ तोर ।।
मोह मया भ्रम जल गम्भीर, बहै भयावन रहै न थीर ।।
लहरि झकोरै लै दूसरि आस, काल करम कर निकट वास ।।
आप देखि पंथ धरु सबेर, का भुलि भुलि जग करु अबेर ।।
साँझ समै जब घेरु अंधार, तब कैसे जइब उतर पार ।।"

इनके विषय में प्रसिद्ध है कि जब बाल्यावस्था में इन्हें वैराग्य हुआ तो पथ-प्रदर्शक गुरु की खोज में ये निकल पड़े। संत दुखहरन का शिष्यत्व इन्होंने स्वीकार किया। गुरु के चरणों में इनकी अनन्य निष्ठा जागृत हुई और उन्हीं में अनवरत ध्यानलीन रहने से इनमें दिव्यज्ञान का प्रकाश पैदा हुआ। अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'गुरु अन्यास' के बारह खंडों—क्रमशः आरम्भखंड, योगखंड, साहुखण्ड, चोरखण्ड, गमनखण्ड, कामिनीखण्ड, यमखण्ड, दशावतारखण्ड, चार युगखण्ड, नायकाखण्ड, भक्तखण्ड में योग साधना एवं भगवद्भक्ति की सभी अवस्थाओं तथा क्रमशः इन प्रक्रियाओं में गुज़रने के अनुभूत साधनों का विशद विवेचन है। अभीष्ट वस्तु की सिद्धि का ज्ञान हमारे अनन्तिम प्रयत्नों से साध्य हो सकता है, किन्तु संत शिवनारायण कहते हैं कि इन कष्टकारक चेष्टाओं में हरि का नामोच्चार ही सबसे सरल उपाय है। सारे संशय-भ्रम समूचे तर्क-ऊहापोह और मन की समस्त चिंता-दुविधाएँ सच्चे नाम-जप से ही समाप्त हो जाती हैं :

"हरि नाम सजीवन खानि खोजो मन गहिके।
मूल अमूल मूल सब हरता,
संशय सकल नशानी, जागे जेहिके ।।
सत गुरु करि उतरो भवसागर,
आगर हो तुम प्रानी, तन मन महिके ।।"

एक दूसरे पद में ये कहते हैं कि हरि नाम की खेती क्यों नहीं करते, तुम्हारा कुछ खर्च थोड़े ही होगा :

"खेती करो हरी नाम की,
यही पार गंगा वहि पार जमुना, बिचवे मड़रिया हरिनाम की,
पाँच पच्चीस तीनों बैलवा, अवगी लगी गुरु ज्ञान की
शिवनारायन कही समुझावें, कौड़ी लगी न छदाम की।"

संत-समाज की ज्ञान-कचहरी लगी हुई है। संतोष-रूपी तख्त पर मन-रूपी राजा विराज रहा है, विवेक-रूपी दरबान मुस्तैद खड़ा है, अंतर्ज्योति का का छत्र सिर पर जगमगा रहा है, मुक्ति जहाँ पानी भरती है, काम-क्रोध को मारकर भगा दो, माथा का मूँड़ मुंडाओ, आशा-तृष्णा की गर्दन काट दो जिसने ऐसा ज्ञान चलाया। कायारूपी गढ़ में भक्ति जगी है, श्वेत ध्वजा फहरा रही है और नाम-रूपी खज़ाने की सुरक्षा के लिए संत-रूपी सैनिक तैनात खड़े हैं :

"वरणों संत-समाज जिनकी ज्ञान कचहरी।
संतोष तखत पर मन है राजा, विवेक भये दरबानी।
जगमग ज्योति छत्र सिर ऊपर, मुक्ती भरे जहाँ पानी।
काम क्रोध को मारि निकालो, माया के मूड़ मुड़ावो।
आशा तृष्णा की गरदन मारी, जिन ऐसो ज्ञान चलाई।
काया गढ़ भीतर भक्ती जगी है, श्वेत ध्वजा फहराई।
क्षमा गरीबी संत सिपाही, नाम खज़ाना भारी।
काया के दफ्तर मन कर शीतल, ज्ञान के तखत बिदाई।
शिवनारायण आये जगत में, सबसे कहा बुझाई।"

•

धरमदास*

धरमदास ने भी अन्य समकालीन कवियों की भाँति लोकभाषा में अपनी अद्वैत और भक्तिरस सिक्त वाणी में भगवान् की सर्वव्यापकता का आभास कराया। इनकी प्रणयी आत्मा की कसक भी वैसी ही है जैसी कि

---

*इनका जन्म १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में माना जाता है। ये कबीर के प्रसिद्ध शिष्यों में से थे। इनका जन्म रीवाँ के पास बांधोगढ़ में हुआ था। किन्तु काशी में रहकर इन्होंने कबीर के साथ सत्संग किया और उनके प्रिय शिष्य हो गये। उनके बाद ये ही उनकी गद्दी के अधिकारी हुए।

प्रेमासक्ति और परस्पर गहरे अनुराग में होती है। अचानक उन्मत्त बावली बाला घूमने निकली तो रास्ते में प्राण-प्रियतम से भेंट हो गई। दर्शनों के लालच में वह बौरायी आगे बढ़ गई और प्रिय उसके चित्त को चुराकर ले गया। वह भटकती रही और उनके पुनः दर्शन पाने के लिए जोगिन-भेष में इतस्ततः ढूँढ़ने निकली, पर प्रियतम न मिला। अरे ! मेरा पिया किस देश में बसता है ?

"मोरा पिया बसै कौन देस हो।
अपने पिया को ढूँढन हम निकलीं, कोई न कहत सनेस हो।
पिया कारन हम भई हैं बावरी, धरो जोगिनिया के भेस हो।"

प्रिय से मिलन-उत्कंठा इतनी बढ़ गई है कि दर्शन की अधिकाधिक चाह बलवती होती जा रही है। वैराग्य तो भूल गया, साहेब के नित्य गुण-कथन में ही समूचा समय बीत रहा है :

"सजन से प्रीति मोहि लागी, दरस को भयो अनुरागी ।।
नहीं बैराग मोहिं आवै, साहेब के गुन नितै गावै ।।
अमर न भूषन तनै साजूँ, पिया को देखि हँस हुलसूँ ।।
भया है गैब का डंका, चलो जहँ देस है बंका ।।
बिना ऋतु फूल एक फूला, भँवर रंग देखि कै भूला ।।
तकत छवि टरै ना टारी, होय तिस बरन बलिहारी ।।
कहै धरमदास कर जोरी, साहेब से अरज है मोरी ।।

विरह व्यथा इतनी मसोस रही है कि अब तो पिय के बिना नींद नहीं आती। कोई कहता है कि वे कहीं बहुत ही नजदीक बसते हैं और कोई उन्हें बहुत दूर बताता है। चलते-चलते पैर थक गए हैं। आगे चलती हूँ तो पंथ नहीं सूझता और पीछे पाँव नहीं पड़ते। ससुराल जाती हूँ तो पिय की पहचान नहीं होती और नैहर में जाते लज्जा आती है :

पिया बिनु मोहि नींद न आवे।
खन गरजै खन बिजली चमकै, ऊपर से मोहि झाँकि दिखावै ।।
सासु ननद घर दासनि आहैं, नित मोहि विरह सतावै ।।
जोगि ह्वै कै मैं बन-बन ढूँढ़ूँ, कोऊ न सुधि बतलावै।"

चलते-चलते पैर थक गए, आँखों में धूल पड़ गई, किसी चरम लक्ष्य पर

पहुँचने के लिए आगे बढ़ती हूँ तो न वहाँ गाँव है न ठाँव है :

"चलत-चलत मोरे चरन दुखित भे, आँखिन परिगै धूर।
आगे चलूँ पंथ नहीं सूझै, पाछे परै न पाँव।
सासुरे जाऊँ पिया नहिं चीन्हें, नैहर जात लजाउँ।
इहाँ मोर गाँव उहा मोर पाही, बीचे अमरपुर धाम।
धरमदास बिनवै कर जोरी, तहाँ गाँव न ठाँव।"

कहीं अबोध बालक के रूप में ये गिड़गिड़ाते हैं—हे प्रभु ! आप मेरे माता-पिता हैं—जैसे बच्चा हर तरह की शैतानी और अपराध करता है फिर भी माता-पिता अपनी उदारता के अंचल में समेटकर उसे क्षमा कर देते हैं, वैसे ही हे करुणानिधान शरणागत वत्सल प्रभु ! तुम मेरा भी प्रतिपालन करो। मैं तुम्हारे आश्रित हूँ, मुझमें और तुममें कोई अंतर नहीं, तन और मन में समान रूप से पैठने वाले हे दीनबंधु अंतर्यामी ! तुमने मुझे क्यों भुला दिया :

"साहेब ! दीनबंधु हितकारी।
कोटिन ऐगुन बालक करई, माता-पिता चित एक न धारी।
तुम गुरु माता-पिता जीवन कै, मैं अति दीन दुखारी।
प्रनतपाल करुनानिधान प्रभु, हमरी ओर निहारी।
मोरे तुम्हीं सत सुकृति ही, अंतर और न धारी।
जानत ही जन के तन-मन की, अब कसु मोहि बिसारी।"

जीवन-नौका डगमगा रही है। कारण—काम, क्रोध, लोभ की लहरों ने विचलित कर दिया है, मोह-पवन की झकझोर, अंतर में लोभ की घुमड़न कपट की अनगिनत जलभँवरें बेड़े को अटकाये हुए हैं, पर सागर पार जाना अत्यन्त कठिन प्रतीत हो रहा है। ऐसा लगता है जैसे मेरी जीवन-नौका डूब जाएगी, मुझे उबारो मेरे स्वामी !

"साहेब बूड़त नाव अब मोरी।
काम क्रोध की लहर उठतु है, मोह पवन झकझोरी।
लोभ मोरे हिरदे घुमरतु है, सागर वार न पारी।
कपट की भँवर परतु है बहुतै, वा में बेड़ा अटको।

काल फाँस लियो है दूवारे, श्राया सरन तुम्हारी।
धरमदास पर दाया कीन्हीं, काटि फंद जिव तारी।"

एक अन्य पद में :

"साहेब मेरी ओर निहारो।
हौं अपराधी बहुत जुगन को, नइया मोर उबारो।
बदी छोर सकल सुखदाता, करुनामय करत पुकारो।
सीस चढ़ाइ पाप की मोटरी, आयो तुम्हारे दुवारो।
को अस हमरे भार उतारे, तुमहीं हेतु हमारो।"

मायारूपी पिशाचिनी धनुषबाण लिये खड़ी है जो तक-तककर बड़ी निर्दयता पूर्वक निशाना बना रही है। त्रस्त आत्मा प्रभु को पुकार रही है। कितने दुःख-जंजाल, कितने सांसारिक झंझट और प्रपंच, कितनी चिन्ता-कृमियाएँ नित्य कचोटती रहती है, इसलिये साहेब ही आधार हैं, उन्हीं में मन की वृत्तियाँ लय हो जाना चाहती हैं, व्याकुल, निराश्रय और भटके मन को ऐसा एहसास होता है जैसे सब कुछ प्रभुमय है :

"का संझा का प्रात सबेरा, जहँ देखूँ तहँ साहब मेरा।
अर्ध उर्ध बिच लगन लगो है, साहब घट में कीन्हा डेरा।"

दामोदर पंडित*

ये महानुभाव पंथ के बड़े ही विरक्त और दार्शनिक मनोवृत्ति के संत थे। स्वयं इनकी पत्नी बड़ी भक्त थीं और उन्हीं की प्रेरणा से इन्होंने संन्यास लिया था। दंभ और लोभ ने सामान्य प्राणियों को अपने पाश में जकड़ रखा है।

***ये महानुभाव पंथ के अनुयायी थे। इनकी पत्नी हिरांबा ने इनका मार्गदर्शन किया। कहते हैं—एक बार इनके पत्नी-गुरु घर जीमने आए। तभी इनकी कन्या अत्यन्त मरणासन्न हो गई, पर इनकी पत्नी गुरु-अतिथि की सेवा में ही लगी रहीं। अन्त में इस वज्रपात से दोनों के मन में बड़ी विरक्ति हुई और दोनों ने संन्यास ले लिया। संगीत में रुचि होने के कारण अधिकतर इन्होंने गेय पदों की रचना की है।**

ज्यों-ज्यों अहंकार और अंदरूनी तामस बढ़ता जाता है त्यों-त्यों और भी कुत्सित मनोवृत्तियाँ हावी होती जाती हैं। एक पद में :

'जता जता दंभ करेगा,
तेता बंधन पावे।"

एक अन्य पद में ये कहते हैं—हे भाई! तुम फटा चिथड़ा क्यों नहीं पहनते जिससे चोरों का भय ही न रहे। जो सब द्वन्द्वों से परे निर्द्वन्द्व और निरावरण हैं वे बेखबर हो घने जंगल में भी सोते रहते हैं :

"चिथड़ा फाटा तुटा पहेरी
उपरि चोर न आवे।
येहि रहनि जे चालति,
ते जंगल मध्ये सोवे।"

एक अंधा और एक लंगड़ा दोनों मिलकर चले। अंधे ने लंगड़े को पीठ पर बैठा लिया। और इस प्रकार एक ने दूसरे के सहायतार्थ अपनी कार्य-क्षमता का उपयोग किया जिससे विघ्नकारी पक्ष समाप्त हो गया :

"एक अंधा एकु पंगा भाई, एकरणे एक लिया खांदी।
दोई पुरुष मिलकर एकचि हुवा, तो दृष्टि पक्षि विवादी रे।"

अपनी चौपदियों द्वारा इन्होंने औघड़ और कनफटे साधुओं पर भी व्यंगोक्तियों द्वारा प्रहार किया। जीव की विचित्र स्थिति पर इनके मन में संताप और खिन्नता है। कोई सोता है, कोई जगता है, सब अजीबो-ग़रीब खामख़ालियों में बहक रहे हैं, कपट की मूठ का सहारा लेकर आगे बढ़ने का दंभ और भी भ्रांत करने वाला है :

"एक जागा एक सुत्ता भया रे, खबना भगि चढ़िबो।
भँवरि देत सुता खान खाइ एर निहुल वास पाइबो।
कट भूलिबो रे कट भूलिबो रे कापट मूठ बुझाइ।
तत्त्व बीचार न जारणति जोइ, तो बिथ्या पंडित म्हनाई।
आगे नागा पाछे कंथा पहिरे, लोक लाज न धरे।
अष्ट भोग भोगि मंगल गाई, तो न्हान याँ कलसीं न्हाये रे।"

नामदेव*

समकालीन मराठी संतों में इनका स्थान बहुत ऊँचा था। वैराग्य एवं निवृत्ति की ओर इनका अधिक झुकाव तो है ही, प्रभु की सर्वव्यापकता का भी इन्हें सच्चा आभास है :

"भाई रे इन नैनन हरि पेखो।
हरि की भक्ति साधु की संगति, सोई यह दिल लेखो।
चरन सोई जो नचत प्रेम से, कर सोई जो पूजा।।
सीस सोई जो नवै साधु के, रसना और न दूजा।।
यह संसार हाट को लेखा, सब को बनि जहिं आया।।
जिन जस लादा तिन तस पाया, मूरख मूल गँवाया।
आतम राम देह धरि आयो, ता में हरि को देखो।।
कहत नामदेव बलि बलि जैहों, हरि भाजे और न लेखो।।"

दिखावटी योग-यज्ञ अथवा तीर्थ-व्रतदान इनसे काम नहीं चलता, भला क्या ओस मे प्यास बुझ सकती है ?

"जोग जग्य ते कहा सरै, तीरथ व्रत दाना।
ओसै प्यास न भागि है, भजिये भगवाना।।"

प्राण प्रियतम को रिझाने के लिए बावली बधू उत्सुक है। मुग्ध अनुरक्ति की मिलन-उत्कंठा लिये वह अपना साज-शृंगार कर रही है :

"मैं बउरी मेरा राम भरतार।
रचि रचि ताकउ करऊ सिंगार।"

प्रिय से मिलने के लिए वह इतनी व्याकुल है कि उसे लोकनिंदा की भी

*महाराष्ट्र में चन्द्रभागा नदी के तट पर पंढरपुर गांव में नामदेव जी का जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम दमासेर दरजी था। माता का नाम गोना बाई था। जन्म काल सं० १३२७ माना जाता है। कुछ लोग सं० १४२७ भी मानते हैं। इनके गुरु प्रसिद्ध नाथपंथी संत ज्ञानेश्वर हैं। पंढरपुर के भगवान बिठोबा इनके इष्टदेव थे। इनके बनाए ग्रन्थों में 'नामदेव जी का पद', 'राग सोरठ का पद', 'नामदेव जी की वाणी' और 'नामदेव जी की साखी' अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

पर्वाह नहीं। वह डंके की चोट अपने प्रणय को दुनिया के सामने कबूलना चाहती है। प्रिय के चरणों में सर्वस्व समर्पित करके उसकी प्रणयी आत्मा अपने 'स्व' को उसी में निःशेष कर देना चाहती है :

"भले निंदऊ भले निंदऊ भले निंदऊ लोग,
तनु मनु राम पिआरे जोगू।
वादु विवादु काहु सिउ न कीजै,
रसना राम रसाइनु पीजै।
अब जीउ जानि ऐसी बनि आई,
मिलऊ गुपाल नीसानु बजाई।
उसतुति निंदा करै नरु कोई
नामें श्रीरंगु मेतल सोई।"

यह दृश्यमान प्रपंच भी वस्तुतः उस परब्रह्म से भिन्न नहीं है। जल में उठने वाली तरंगें अथवा फेन-बुलबुले जैसे जल से भिन्न नहीं हैं उसी प्रकार पृथकत्व की प्रतीति होते हुए भी हरि की रची यह समूची सृष्टि उसी लीला-लास्य की अनूठी निर्मिति है।

"जलतरंग अस फेन बुदबुदा, जलते भिन्न न कोई।
इहु परपंचु पारब्रह्म की लीला बिचरत आन न होई॥
कहत नामदेव हरि की रचना देखहु रिदै बिचारी।
घट घट अंतरि सरब निरंतरी केवल एक मुरारी॥"

एक अन्य पद में नामदेव कहते हैं कि यदि हरि से सच्चा लगाव हो तो स्वयमेव शून्य समाधि में वृत्तियाँ लय हो जाती हैं। जब कुंडलिनी हर मोड़ को पार कर ऊपर की ओर गतिशील होती है तो स्वभावतः आत्म ज्योति का ब्रह्मज्योति से साक्षात्कार होता है। सबसे अतीत और सब व्याधियों से परे वहाँ अनहद नाद की गूँज है। इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा पवन की गति पर बँधी रहती हैं। चन्द्र और सूर्य दोनों का प्रकाश मिलकर ब्रह्मज्योति को और भी भासमान करता है। आनन्दपूरित आत्मा आध्यात्मिक आलोक से जाज्वल्यमान हो उठती है :

"सबहि अतीत अनाहदि राता, आकुलकै घरि जाऊगो॥
इडा पिंगुला अउरु सुखमना पऊनै बंधि रहाऊगो॥

चंदु सूरजु दुइ समकरि राखऊ ब्रह्म ज्योति मिलि जाऊगो ।।
तीरथ देखि न जल महि पैसऊ जीअ जन्त न सतावउगौ ।।
अठसठि तीरथ गुरु दिखाए घटही भीतरि नाऊगो ।।
पंच सहाई जनकी सोभा भलै भलै न कहावऊगो ।।
नामा कहै चितु हरि सिऊ राता सुन्न समाधि पावऊगो ।।"

कर्म-बंधन के अटूट धागे मायामोह में जकड़े रहते हैं। मन पंछी पिंजरे में आबद्ध जैसे छटपटाता रहता है, उसी प्रकार जीव की भी विवश स्थिति है—'मन पंछीया मत पड़ पिंजरे, संसार माया-जालु रे।' एक पद में बड़ी ही गिड़गिड़ाहट और दीनहीन वाणी में ये कहते हैं :

"मो करि तूं न विसारि तू न विसारि ।।
तूँ न विसारि रामईआ ।।"

एक अन्य पद में :

"मन की बिरथा मनु ही जानै कै बूझल आगै कहीए ।।
अंतरजामी राम खांई मैं उस कैसे चहीए ।।"

जैसे भूखे की प्रीति अनाज में होती है, प्यासा पानी के लिए छटपटाता है, मूर्ख व्यक्ति परिवार में फँसा रहता है, जैसे कामासक्त नारी पुरुष को खोजती रहती है और लोभी व्यक्ति धन की चाह में रहता है तथा कामी को कामिनी प्यारी होती है उसी तरह नामदेव की निष्ठा भी नारायण में हो गई है

"जैसी भूखे प्रीति अनाज, त्रिखावंत जल सेती काज ।।
जैसी मूढ़ कुटंब पराइण, ऐसी नामे प्रीति नाराइण ।।
जैसी पर पुरखा रत नारी, लोभी नर धन का हितकारी ।।
कामी पुरख कामिनी पिआरी, ऐसी नामे प्रीति मुरारी ।।"

सदना जी*

जीवहिंसक और निम्नकुलोत्पन्न होने पर भी भगवान के चरणों में इनकी सहज निष्ठा थी। संभवत: विषम परिस्थितियों और अवांछनीय वाता-

*१५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कसाई परिवार में इनका जन्म हुआ था। किन्तु ये जीव-हत्या नहीं करते थे। वस्तुतः हिंसा की ग्लानि ने ही इनमें जीवन की क्षण भंगुरता का आभास कराया।

वरण ने इनमें प्रखर आत्म जागरूकता भर दी और इन्हें स्वयं का बोध हो गया। कैसी निरीह उक्ति है :

"मैं नाहीं कछु हौं नहीं, कछु अहि न मोरा।
औसर लज्जा राख लेहु, सदना जन तेरा॥"

जीवन को सुखपूर्वक जीने की चाह में मनुष्य सदा भूला रहता है। अनेक झंझट-झमेलों में उलझ-पुलझ कर तो वह अपनी शक्ति और कार्य-क्षमता क्षीण करता है, पर जो असली ईश्वर की आराधना या सर्वाधिक सरल प्रभुभक्ति है उसकी वह जरा भी पर्वाह नहीं करता। जैसे चातक स्वाति-बूंद की खोज में भटकता रहता है और उसे प्राप्त न करने के कारण प्राण तज देता है तो फिर यदि समुद्र भी मिल जाय तो वह व्यर्थ है :

"एक बूँद जस कारने, चातक दुख पावै।
प्रान गये सागर मिले, पुनि काम न आवै॥"

बस, इसी तरह नित-नये ऊहापोह और क्लांतियाँ मन-प्राणों को जर्जर कर देती हैं। भटकते-भटकते यदि बिलम गया और मरणोपरान्त डूब जाने पर नौका मिली भी तो किस काम की, तब कौन चढ़ेगा और किसे चढ़ाया जाएगा :

"प्रान जो थके थिर नहीं, कैसे बिरमावो।
बूड़ि मुए नौका मिलै, कहु काहि चढ़ावो॥"

गोंदा महाराज*

गोंदा महाराज ने अधिकतर अभंग छंदों का प्रयोग किया है। उनके विषय में प्रसिद्ध है कि वे नामदेव के पुत्र थे, यद्यपि उनमें पिता का-सा रचना-कौशल नहीं है। उनके पदों में अधिकतर पिता की चमत्कारपूर्ण जीवन-घटनाओं का ही उल्लेख मिलता है। मुस्लिम बादशाह ने एक बार नामदेव के आगे एक गाय का क़त्ल कर दिया और फिर उसे आज्ञा दी कि इस गाय को ज़िन्दा करो, अन्यथा तुम्हें मुसलमान बना दिया जायगा, क्योंकि तुम सच्चे फकीर नहीं, बल्कि उसका ढोंग रचे हुए हो। नामदेव बहुत घबराये। पंढरपुर

***नामदेव के ये पुत्र कहे जाते हैं। इन्होंने मराठी अभंग छन्दों में अपने पिता नामदेव की कतिपय जीवन-घटनाओं का ही उल्लेख किया है। इनका जन्म-संवत् लगभग १२७२ है।**

दूर है, हाय ! मेरे विठ्ठल स्वामी किधर हैं ? हे गोपाल लाल ! शीघ्र आओ और मेरी लज्जा रखो। इस प्रसंग का वर्णन करते हुए गोंदा लिखते हैं :

"नामा रोवे झुरझूर बहे अश्रून का पूर।
बिठू पसिने में चूर। पंढरपुर में डूबे हैं।।
रुकिमण चुरती पदम पाव। घबर गये बिठूराव।
रुकिमण कहे प्रभु राव। क्या बलाय मुजे कहो।।
देवकरे आटो प्रांत। करे घबरे घबरे बात।
नामदेव की कहत। हकीकत बुरी है।।
रुकिमणि कहे जल्दी जाव। नामदेव को मनाव।
उस पापी को जलाव। जाव जाव सितावी।।"

भक्त को संकट में जानकर विठ्ठलनाथ का आसन हिल गया। वे फौरन मदद के लिए दौड़ पड़े :

"अकस्मात् हुई बात। उठकर बैठे दिनानाथ।
चल दिया उसी बख्त। मैं दिनानाथ आया हूँ।।
बिठू कहे नामदेव। उस गाय को हाथ लगाव।
जान उसकी खुलाव। जलदी जाव गाय उठेगी।।
उठकर खड़ी रहे गाय। हर हर बोले बम्भवराय।
नामदेव को लगाय। बिठूराय गले से।।"

एकनाथ*

एकनाथ पर संत ज्ञानेश्वर का विशेष प्रभाव था। भक्ति और नीति के

*एकनाथ का जन्म पैठण में हुआ। इनके जन्म के सम्बन्ध में एक निश्चित मत नहीं है। डॉ. रानाडे ने उनका काल सन् १५३३ से सन् १५९९ अर्थात्, शक संवत् १४५६ से १५२१ के बीच माना है। बाल्यावस्था में ही इनके माता-पिता की मृत्यु हो गई थी, पितामह ने इनका लालन-पालन किया। इनके जीवन में अनेकों चमत्कारिक घटनाएँ होती रहीं। ये महाराष्ट्र के सिद्ध संत माने जाते हैं। इनके बनाए ग्रन्थ हैं : चतुःश्लोकी भागवत, श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध पर टीका, रुक्मिणी स्वयंवर, प्रह्लाद चरित्र, शुकाष्टक, स्वात्मसुख, रामायण। इनके ग्रन्थों में भक्ति, ज्ञान एवं नीति के उपदेश मिलते हैं। एकनाथ हरिनाम संकीर्तन के समर्थक सिद्ध संत थे।

इनके पदों में अमृत-रस जैसे झरता रहता है । जन-सामान्य तक अपनी भावनाओं को पहुँचाने के लिए इन्होंने बड़ा ही सरल और सुबोध वाणी में रूपकों और प्रतीकों के सहारे ब्रह्मज्ञान व आध्यात्मिक रस को संचरित किया । एक पद में अत्यन्त मधुर उलहने के रूप में ग्वालिन नंद के छोकरे से कहती है :

"मैं दधी बेचन चली मथुरा,
तुम केंव थारे नंद जी के छोरा ।"

ग्वालिन पानी की गगरी लिये चली आ रही है । बीच में कृष्ण को खड़ा देखकर पूछती है कि हे नंद जी के छोरा ! तुम यहाँ क्यों खड़े हो ! इस पर नटखट कृष्ण उसकी चुनरी फाड़ देते हैं और गोरस भरी गगरी फोड़ देते हैं :

"भक्ति का आँचला पकड़ा हरी, मत खेंचों मोरी फाटी चुनरी ।
अहंकार का मोरा गगरा फोरा, ह्वाको गोरस सब ही गीरा ।"

एक अन्य पद में ग्वालिन धमका रही है कि कन्हैया ! तू मेरी लाल साड़ी दे दे, अन्यथा तेरे माँ-बाप यशोदा व नंद से तेरी शिकायत करूँगी :

"दे दे दे मारी कन्हया लाल साड़ी छे ।
तुम भलो नंद जी नंदन लाल छे ।।
मैं तो आई मथुरा हाट छे ।
बिगरी तूँ क्या धरे घाट छे ।।
ज्याकर बोलूँगी जशोदा नंद छे ।
तारी खोड़ तोड़ूँगी हात छे ।।"

कन्हैया के ऊधम और शरारत की वह यशोदा से शिकायत करती है । हे यशोदा ! देख, तेरे छोकरे ने मेरी गगरी फोड़ दी । यमुना का जल लिये चली आ रही थी, हाथ पकड़कर खींच लिया और बीच रास्ते में ही मेरी गगरी ढुलका कर उसने मुझे गाली दी :

"देखे देखेगे जशोदा माय छे ।'
तोरे छोरियानें मुजे गारी देव छे ।।
जमुना के पानी में ज्यावछे ।
बीच मील के घागरिया फोड़ छे ।।

मैने ज्याके हात पकर छे।
देखे आप ही रोव छे ॥"

ग्वालिन का यह उपालंभ माँ को सहन नहीं हुआ। वह उल्टे ही उसे डाँटती है :

"मैं ज्यावगी छोर कर तोरे गाँव छे।
तूँ खोरी मत कर मोरे लाल छे ॥
मोरे घर तू आकर लाल छे।
माखन चुरावत अपने हात छे ॥
मैं कहूँगी तोरे मात छे ॥
किसन ने चोरी करी मोरी घर छे ॥
कहे एका जनार्दन लाल छे।
चरन पकरू मी तुमछे ॥"

भक्तिरस से ओतप्रोत कितने ही आकर्षक चित्र गोपालकृष्ण के आँके गए। कहीं गोपियाँ शिकायत करती हैं कि श्याम ने मेरी चोटी खींच ली, कहीं चुनरी-घाघरी फाड़ दी, कहीं जब वह आँगन में चुपचाप बैठी थीं तो ऊपर गाय की बछड़ी छोड़ दी और सारा दही गिरा दिया। कहीं माखन चुरा लिया, कहीं आधी रात सोते हुए शोरगुल करके निद्रा भंग कर दी और कहीं सरेआम गुरुजनों के बीच मध्य चौराहे पर उनकी फज़ीहत कर दी। कुछ पदों में बाजीगर का खेल, उसके करिश्मे और हुनर की चर्चा इन्होंने बड़ी ही सजीव भाषा में की है। तमाशा चल रहा है। बाजीगर क्रोध का बिच्छू पिटारी से बाहर निकाल कर दिखाता है जिसका विष जपी-तपी-संन्यासी तक के सिर पर चढ़ जाता है, काम एवं विषय-वासनाओं रूपी सर्प और ममता रूपी नागिन जो अनायास डसती रहती है :

"देखो, कैसा खेल बनाया है।
चल चल चल क्रोध का बिच्छू बाहेर काढ़ा
उसका वीख शिरकु चाढ़ा, जपी तपी संन्यासी की खोड़ तोड़
समज के देखो रे बिच्छू ने नांगी मारा रे
छनन न न कहने लगा, चल चल चल ये देखो बाहेर निकला

काम विषय का साप, तमाशा देखो मेरे बाप
विनंदा तो से काटे आपे आपे, अरे रे रे रे, काटा रे, काटा
नजर ध्यान करो रे नजर ध्यान करो
तो साप दूर करे, चल चल चल, ये देखो ममता नागन आई रे भाई भाई
तिने लो डंख मारा रे मारा, ठ न न न न
भागो रे भाई भागो, दवड़ो रे, दवड़ो रे गुरु चरण पर दवड़ो
तो ऐसा करूँ की गुरु के पाँव कबी न छोड़ो।"

बाजीगर का यह खेल बड़ा ही अलवेला है। झूठे भुलावों और तरह-तरह की कौतुक-क्रीड़ाओं में जीवन-शक्ति का क्षय होता रहता है। बाहरी चतुराई और काम करने के अजीबोग़रीब तौर-तरीकों को अपनाकर व्यक्ति अपने आपको और दूसरों को भी भुलावे में डालता रहता है। वचन-चातुरी का प्रयोग कर वह बाजीगर की भाँति स्वयं शब्दजाल में बात का बतंगड़ बनाकर असलियत को भूल जाता है :

"देखो मिया बाजेगिरी का खेल, हाँडी बाग बड़ा आलबेला
हात हलावे पांव हालावे भोले भाले लोक भुलावे
आवे हांडी बाग बाप बड़ा क्या बेय बड़ा
बेटे आगे बाप खड़ा, गुरु बड़ा क्या चेला बड़ा
चेले आगे गुरु खड़ा, चेला तो प्रेम महल में चढ़ा
धनि बड़ा क्या चाकर बड़ा, चाकर आगे धनी खड़ा
सास बड़ी क्या बहू बड़ी, बहु• आगे सास खड़ी
बिबी बड़ी क्या बाँदी बड़ी, बाँदी आगे बीबी खड़ी
निराधार की लेकर छड़ी, बिबी खसम की छाती पर चढ़ी
तैं बड़ा क्या मैं बड़ा मेरे आगे तैं खड़ा
तैं नहीं मैं नहीं आलम छाया मेरे गुरु
ग्यानी कूँ ग्यान लगाऊं लोभे अंबे को उड़ावु
फुंक मारू तो जा जा जा, बोध के पहाड़ पर जा।"

इन बाजीगरी के खेल-तमाशों और प्रपंचों से परे एकनाथ कहते हैं कि संतों का संग ही श्रेयस्कर है जो ज्ञान का बोधक है :

"भला संतन का संग
खावे बोधन की भंग
सदा अनंद मो दंग, ऐसा मलंग फकीर ॥"

जीवन के नितान्त सीधे-सच्चे लक्ष्य की ओर निर्देश करते हुए वे कहते हैं :

"दिल मो याद करो रे
जनम को सारथक करो रे।"

अनंत महाराज*

अनंत महाराज निर्गुण मतावलम्बी हैं और वैराग्य एवं निवृत्ति की ओर इनकी प्रवृत्ति दीख पड़ती है :

"नाम रूप नहिं रंगत वाको,
खोज सुहावत संत सदा को।
ऐसो बाँको भाव विलासी,
जग सो न्यारो जग अभिलासी ॥"

ब्रह्मज्ञानी होते हुए भी इनकी आत्मा वियोग-व्यथा से पीड़ित प्राणप्यारे की कसक लिये छटपटा रही है। माधव की वेणु की ध्वनि मानो उनकी स्नेह-समाधि को भंग कर रही है। एक पद में सुहागिन अपनी सखी से कहती है कि मुरली की मधुर ध्वनि में ही नाद समाया हुआ है और समता को मैं साँवरे पर न्योछावर करती हूँ :

"सुन-सुन सखि समता वारो,
मंगल गावत गीत साँवरो।
मुरली माही नाद जगावै,
अनुरागों की गम सम जावै।"

---

*अनंत महाराज अहमदनगर के निवासी थे, वे बाद में आकर पैठण में बस गए और वहीं एकनाथ भगवान के मंदिर में भक्ति-साधना में प्रवृत्त हुए। इनके बनाये कुछ चित्र भी इस मंदिर में उपलब्ध हुए हैं। इनके बारे में कुछ ज्ञात नहीं, पर सँभवत: 'वे अब से १०० वर्ष पूर्व हुए हैं। ये ज्ञानमार्गी संत थे। गेय पदों के अतिरिक्त चौपाई-छंदों का प्रयोग किया है।

प्रिय के अनुराग में सुखभरी सुहागिन जोगिन बन गई। सांसारिक गति को छोड़कर अपनी ही निरपेक्ष, निर्लिप्त भावशून्या की लय में खो गई है। 'स्व' और 'पर' से परे उसका प्रेम सीमाबद्ध नहीं, वरन् सहसा असीम और मुक्त हो उठा है। उसकी रसवत्ता प्यारे के सम्मोहन में अवसाद और मूक व्यथा में परिणत हो गई है :

> "भयि मैं जोगिन पिय अनुरागी,
> लगन लागी तब से मति जागी।
> भव भरमो को त्यज के धायी,
> निज सुखदायी निशिदिन गायी।
> मन समजायी मन के न्यायी,
> कुँवर कन्हायी की गत पायी।"

प्रिय की याद इतनी अवसन्न किये है कि उसे शरीर की सुधबुध भी नहीं रह गई है। हरि की स्वप्निल स्मृतियों में खोई और उनके विरह से विभ्रान्त वह अपने को सबसे न्यारी ही महसूस कर रही है :

> "पिय के खातर मति अनुरागी,
> सुख सुहागनि चैतन जागी।
> निज लय लागी भव गति भागी,
> दुविधा जग की सब ही त्यागी।
> तन की सुध नहिं इह संसारी,
> सबसे न्यारी हरि की प्यारी।"

एक अन्य पद में प्रिय की प्रतीक्षा करते-करते वियोगिन अपना परिज्ञान खो बैठी है। उसका चिन्तन और भावबोध अपने स्वयं की यथार्थता को विस्मृत कर चुका है और संज्ञातीत उसका मन प्रणय-परिधि के अतल तल में समा गया है :

> "नहि हूँ भोगी नहि हूँ त्यागी,
> सोवत नहि हूँ नहि हूँ जागी।
> नहि भव रोगी विरह वियोगी,
> निज लय लागी पिय से जोगी।"

प्रियतम का मिलना कठिन है। संताप और वेदना से हताश वह बावली हुई जा रही है, पर प्रियतम नहीं रीझता :

"आली रिजे नहि साँवरो, जिय मेरो आजि भयो बावरो।
भयि मति वैरागी अनुतापें सदाचारी भेद तुरयो सेदकारी
भव भोंवरो अभिमान घनी त्यजी भाव प्रेम संग कीजो।
लोकलाज आज तुट्यो नेह नावरो।

एक पद में अनंत महाराज कहते हैं कि हे मन ! कपट की वह लकुटी फेंक दे जिस पर कुमति की तहें लिपटी हुई तुझे गुमराह कर रही हैं :

"मनवा कपट की लकटी लपेट भइ मति तापरमेट।
कूद परो रे निरमल डोही जामो अनुभव रेट॥"

तुलसी साहेब (हाथरस वाले)*

हाथरस वाले इन तुलसी साहेब के बारे में प्रसिद्ध है कि ये गोसाईं तुलसीदास जी के अवतार थे जिनमें तीव्र वैराग्य के साथ-साथ भक्ति और ज्ञान का अद्भुत समन्वय था। अकस्मात् भक्ति के आवेश में ये पदों की रचना किया करते थे। पुरानी परम्परा के साधु होते हुए भी इन्होंने अपने तर्क के तीखे बाणों से कितनी ही बेहूदी परम्पराओं, झूठे विश्वासों और प्राचीन रीति-रूढ़ियों पर प्रहार किया। संसार-चक्र में फँसे मनुष्य का अनवरत दानवी अध्यवसाय अपने तई स्वार्थों की पूर्ति करने के निमित्त ही हुआ करता है। जीवन के नाना प्रपंचों और उलझनों के अंधड़ में उसका मन तिनके की तरह छटपटाता रहता है, आशा और आकांक्षाएँ नित्य-निरन्तर बलवती होती रहती हैं, किन्तु उनका कोई समाधान नहीं हो पाता, लगता है जैसे जगती के दो दुकूलों के बीच का पाट लाँघना असम्भव है। जीवन की लम्बी दौड़ के दौरान समानान्तर किनारों से टकरा-टकराकर उसका जीवन छिन्नभिन्न हो जाता है, उस पार जाने के लिए वह लहरों पर ही हाथ मारता रहता है,

---

***जन्मकाल सन् १७७८ और मृत्यु सन् १८४८ के लगभग। ये हाथरस में रहते थे, वहीं इनकी समाधि भी है। इनके प्रसिद्ध ग्रंथ घटरामायण, शब्दावली, रत्नसागर हैं। ये बड़े ही विरक्त अवधूत संत थे।**

जब तक कि सुख-दुःख की इन अनन्त लहरों पर ही झूलते-फूलते उसकी श्वासों का यातायात अचानक रुक नहीं जाता। यों वह कितनी ही तमन्नाओं को लिये इस अगम्य सागर में विलुप्त हो जाता है। जीव की भटकन तो तभी समाप्त होती है जबकि वह भक्तिरूपी अमृतकुंड में अवगाहन कर लेता है। एक पद में ये कहते हैं :

> **"भक्ति पदारथ सार, यह नर जग जाने नहीं।**
> **जग के विषय विकार, सो सब समझे साँच करि।"**

वास्तव में, भक्ति-तत्त्व को ग्रहण न कर मनुष्य थोथी बातों में अधिक लगा रहता है—यह तो ऐसे ही है जैसे कोई असली चून को फेंककर चोकर सँजोए और उसी की उपलब्धि के लिए लगातार श्रम करता रहे :

> **"हिरदे नर यह बड़े अभागे, सार छाँड़ि चूकर में लागे॥**
> **कहो वे फुलके चहें बनाये, चूकर के फुलके किन खाये॥**
> **यह जग चूकर रीति समाना, संत चून फुलके पर ध्याना॥**
> **चूकर में नहीं भूख नसावे, यहि कारन कहि कर गोहरावे॥**
> **सूप ज्ञान सज्जन गहे, फूफर देत निकार।**
> **सार हिये अंदरु धरे, पल-पल करत विचार॥"**

सायुज्य के लिए सर्वात्मकता अनिवार्य है अर्थात् जब ऐसा ज्ञान हो जाता है तब समूचे संसार से एकात्म्य स्थापित हो जाता है, न किसी से घृणा होती है और न रागद्वेष। जैसे हलवाई जब जलेबी बनाता है तो रस में डाल देने पर वह खींचकर रस अपने भीतर जज़्ब कर लेती है ऐसे ही यदि सत्संगति का रस अघाकर पी लिया जाय तो दुर्बुद्धि नष्ट हो जाती है। भ्रमर पुष्प के भीने रस में अपने आप को शराबोर कर उसी में लय हो जाता है, मधुमक्खी शहद के रंग में पग जाती है और नीम के कीड़े को नीम इतना प्यारा होता है कि ज़हर-सी कड़ुवाहट को भी वह अमृत जानकर आत्मसात् कर लेता है। सर्वान्तर्यामी में भी कुछ ऐसी ही निष्ठा चाहिए। हंस और बगुला के शरीर का रंग लगभग एक-सा ही है, किन्तु दोनों में कितना अन्तर है :

> **"सज्जन हंस मुक्ति पद पावे, बग बपुरा मछरी को चावे।**
> **यह जग अंध असज्जन जाने, संतन का मति कहा पिछाने॥"**

जब तक जीव भोगेन्द्रियों के जड़-बंधनों से मुक्त नहीं होता तब तक उसमें ब्रह्मज्ञान का प्रकाश पुंजीभूत नहीं हो पाता और ऐसी स्थिति में वह दिग्भ्रमित होकर भटकता रहता है। तुलसी साहेब एक पद में कहते हैं कि मनुष्य हड़काये कुत्ते की भाँति इधर-उधर मारा-मारा चक्कर काटता रहता है और वह दिशाहीन, लक्ष्यहीन सबकी उपेक्षा सहता है :

"ज्यों कूकर हड़काना होई, मारे मार करे सब कोई।
जो घर कोइ के पग धारे, दुरदुर करि के मारि निकारे।
ऐसे जीव भया हड़काया, आवागमन नहिं सुख पाया।
जुगन-जुगन बंधन पड़े, कर्म काल के द्वार।
नर्क-स्वर्ग की सुधि नहीं, दुख-सुख बारम्बार।"

माता-पिता, स्त्री-पुत्र और परिवार के झूठे ममता-माया के बंधन भीतर-ही-भीतर कचोटते रहते हैं। यम का भय उसी प्रकार त्रस्त किये रहता है जैसे लकड़ी का घुन उसमें संश्लिष्ट हो शनैः-शनैः उसी को खाता रहता है :

"यह जम जाल घेरि घुन खाई, जैसे कीट काठ के माहीं।
घुन-घुन खाय काठ को भाई, यो संसय सब जग घुन खाई।
रात दिवस कोई चैन न पावे, संसय सुपने जाइ सतावे।
जुगन-जुगन परिपाटी आई, यों जिव पड़ा भूल के माही।"

एक अन्य पद में ये कहते हैं कि मनुष्य की आँखों में भ्रम के जाले पड़े हैं जब तक कोई जर्राह सुरति रूपी सलाई से उसमें नश्तर लगाकर साफ़ न करे तब तक कैसे निस्तार हो :

"आँखी में जाले पड़े, काढ़े कौन न किनारि।
जब सथिया नस्तर भरे, सुरति सलाई डारि।।"

प्रिय के देश से दूर सुहागिन सुन्दरी अपने नैहर के मोहजाल में पड़ी है। भला प्रियतम से बिछुड़कर कैसे निर्वाह होगा ? हरदम प्राण-प्रियतम के संग रहकर ही सब दुःख-क्लेश मिट जाएँगे, इसलिए हे सुन्दरी ! नैहर का मोह छोड़ दे और पिया के देश चल :

"सोहागिन सुन्दरी, तुम बसहु पिया के देस।
नैहर नेह छाँड़ि देवो री, सुन सतगुर उपदेस।
कोटि करो इहाँ रहन न पैहो, क्या धनि रंक नरेस।

> प्रभु के देस परम सुख पूरन, निरभय सुनत सँदेस।
> जरा मरन तन एक न व्यापै, सोक मोह नहिं लेस।
> सब से हिल मिल बैर बिसन तज, परम प्रतीत प्रवेस।
> दम पर दम हरदम प्रीतम संग, तुलसी मिटा कलेस।"

केसवदास*

इनकी भक्ति-साधना का मूलाधार भी अहंकार की निवृत्ति द्वारा समस्त चित्तवृत्तियों को केन्द्रित कर अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति है। सत्य की बात तो सभी करते हैं, पर वस्तुतः सत्य है क्या—यह कोई नहीं समझ पाता। अन्तर्मुखी मन ज्ञान और भक्ति के समन्वय मे एक नये कर्तव्याकर्त्तव्य की चेष्टाओं को उद्बुद्ध करता है अर्थात् भीतरी बोध होने से न केवल कर्मों को ही नई प्रेरणा मिलती है, वल्कि मनोरागों में क्रान्ति उपस्थित होकर गूढ़ आत्म-चिन्तन जगता है। यह तुच्छ जीवन, यह ख़ाक का ढाँचा उस पाक परवरदिगार से एकमेक हो कुछ और ही हो जाता है। कुछ और ही ढंग की ख़ासियत व खूबी हासिल करता है :

> "ख़ाक के गात में पाक साहिब मिल्यो,
> सुनि गुरु बचन परतीत आई।
> पाँच अरु तीन पच्चीस कलिमल कटे,
> आप को साफ कर तुही साई॥
> सिफत क्या करौं सोह अवर नहिं दूसरो,
> बैन सँग बोलता आप माहीं।
> सेत दरियाव जगमगति प्रभु केसवा,
> मिलि गयो बुंद दरियाव माहीं॥"

अविनाशी दूल्हे ने मन को मोह लिया है। उसका निरंकार, निरंजन, निर्लेप स्वरूप मन में धँस गया है। तू और मैं तथा मेरे-तेरे का भेदभाव मिट गया है। जैसे भ्रमर कमल के रस का आस्वाद पा जाता है, पतंगा दीपक के प्रकाश से आत्मैक्य स्थापित कर लेता है, सीप यद्यपि समुद्र के अगम्य जल में पड़ा रहता है, किन्तु स्वाति की बूँद से उसे हेत है और वह उसी के लिए

---

* जन्मकाल लगभग अठारहवीं शताब्दी (वि.) का प्रारंभ है। ये जाति के वैश्य और संत यारी साहिब के शिष्य थे।

मुंह बाए प्रतीक्षा करता रहता है, जैसे मछली पानी के बिना नहीं रह सकती उसी प्रकार हे प्रभु ! तुमसे आत्मरति हो गई है, तुम्हारे बिना मेरी पलक भी नहीं झँपती :

"प्रिय थारै रूप भुलानी हो ।
प्रेम ठगौरी मन रह्यो, सुख स्वाद बखानी हो ।
दीपक ज्ञान पतंग सों, मिलि जोति समानी हो ।।
सिंधु भरा जल पूरना, सुख सीप समानी हो ।
स्वाँति बूंद सों हेतु है, ऊर्ध मुख लगानी हो ।।
नैन स्रवन मुख नासिका, तुम अन्तरजामी हो ।।
तुम बिनु पलक न दीजिए, जस मीन अरु पानी हो ।।
व्यापक पूरन दसौ दिसि, परगट पहिचानी हो ।
केसो यारी गुरु मिले, आतम रति मानी हो ।।"

इस स्वरूप की उपलब्धि के लिए हरिजू से अटूट प्रीति जुड़ गई है । तन-मन-प्राणों का अनजाने में ही पिया को दान दे डाला । रोम-रोम में जो आनन्द-रस समा गया है उससे सुख सौभाग्य का आलोक बिखर गया है :

"म्हारे हरिजू सूँ जुरलि सगाई हो ।
तन मन प्रान दान दै पिय को, सहज सरूपम पाई हो ।।
अमर सुहाग भाग उँजियारो, पूर्व प्रीति प्रगटाई हो ।
रोम-रोम मन रस के बस भइ, केसो पिय मन भाई हो ।।"

एक पद में प्रणयोन्माद में मदमस्त होली की धूम मची हुई है । दर्शन की प्यासी सखियाँ झाँझ-मृदंग-डफली की गत पर आनन्द-क्रीड़ा में निमग्न हैं। अगर, अबीर, कुंकुम और सुगन्धित केशर चहुँ ओर छायी है, आकाशमंडल में मानो धकापेल मची हुई है। प्राणप्रिय से मिलन-उत्कंठा के कारण हृदय मचल रहे हैं, प्राणों में कसमसाहट है, सुरति सुहागिन अविनाशी से भेंट करने के लिए उत्सुक है और मंद-मंद मुस्कराहट से उनकी सुंदर मुख-छवि को निरख रही है :

"फेंट गहि छवि निरख रही है, मंद मंद मुसुकात ।
फगुवा दान दरस प्रभु दीजै, केसो जन बलि जात ।।"

कारण—कंत निराला है । उसकी किसी से तुलना नहीं की जा सकती ।

उसके प्रेम के छलकते अमृत रस-कण दिन रात ढुलक-ढुलककर एक विचित्र रसभींजी आनन्दाभूति से ओतप्रोत कर रहे हैं :

> "निरमल कंत संत हम पाया।
> कोटि सूर जाकी निर्मल काया॥
> प्रेम विलास अमृत रस भरिया,
> अनुभो चँवर रैन दिन ढुरिया॥"

ब्रजवासी तुलसीदास*

इनकी पद-रचना का ढंग बड़ा ही निराला है। जीवन की क्षणभंगुरता का आभास कराते हुए इन्होंने ऋतुओं और बारहमासे की तात्कालिक यथार्थता में ही मनुष्य की सारी शक्ति का ह्रास और नित्य-नये प्रपंचों में लगे रहने के कारण बहुमूल्य समय को यों ही नष्ट कर देने का बहुत सुन्दर विवेचन किया है। चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, सावन, भादो, क्वार, कार्त्तिक, अगहन, पौष, माघ तथा फाल्गुन की गुलकारी चहल-पहल और चाव-खुशियों में ही अनगिन प्रहर और क्षणों की समूची आस्था और कर्मचेष्टा निहित रहती है। स्वप्न की सी मिथ्यात्व की भ्रान्ति और मोहमाया की विषय-तृष्णा में वह समूचा समय गुज़ारता रहता है और इस प्रकार जीवन की सीमित अवधि पल-पल, क्षण-क्षण उत्तरोत्तर घटती रहती है :

> "घटत छिन-छिन अवधि तेरी, जायगी मिलि खाख रे।
> कठिन काल कराल सिर पर, करि अचानक घात रे॥
> नाम बिन जमदंड त्रासन, कोई नँ दैहै हाथ रे।
> सार केवल नाम हरि को, ताहि नाँहि विसार रे॥"

उदाहरणार्थ—जैसे जेठ की धूप बड़ी तीखी होती है, असह्य गर्मी तो परेशान करती ही है, किन्तु बिना हरिनाम के त्रयताप की लपटें और मृगतृष्णा

---

*ये हाथरस वाले तुलसी साहेब के समकालीन थे, किन्तु दोनों ही एक दूसरे से अपरिचित भक्ति-साधना में तल्लीन हो अलग-अलग देश के कोने में बसकर पद-रचना किया करते थे। ये बुंदेलखण्ड के प्रसिद्ध संत थे, किन्तु ब्रज की संस्कृति और कृष्ण-प्रेम का इन पर प्रभाव था।

और भी शरीर को जलाती रहती है। संतोष, दया, क्षमा और शील की शीतल छाया साधु-संगति के बिना दुर्लभ है, इसका एकमात्र उपाय यही है :

"कोटि-कोटि उपाय कर मन, जीव जरनि न जाय रे।
पियौ अमृत नाम हरि को, तुरत तपति बुझाय रे ॥"

श्रावण मास में संसार-सागर और भी उफनता है, उसमें बड़ी-बड़ी तरंगे और पानी के थपेड़े जोर मारते हैं जो अपने प्रचंड बहाव में बहाकर नियंत्रण नहीं रहते देते। भला जीवन की जीर्ण नौका इस स्थिति में कैसे टिकेगी !

"नाव जीरण बोझ भारी, नाहिं वारापार रे।
जात बूड़यो मूढ़ अंधे, परयो माँझाधार रे।
बैठि नाम जहाज हरि के, उतरु पैले पार रे।"

जैसे पक्षी रात में इधर उधर से आकर वृक्ष पर बसेरा लेते हैं, किन्तु सुबह होते ही अलग-अलग दिशाओं में उड़ जाते हैं, नदी के घाट पर जाने के लिए मार्ग में कितने ही पथिक मिलते हैं, किन्तु नाव पर चढ़कर पार उतरते ही वे अपने-अपने निर्दिष्ट पथ पर चल देते हैं। बस :

"ऐसे ही चल जात सब जग, जात नहिं कोइ साथ रे।
नेह कर भगवान सों, जग में सखा पितु मातु रे ॥"

जीव की दुर्दशा और संसार-चक्र में निरन्तर फँसे रहने की उसकी मजबूरी उसे चैन नहीं लेने देती। एक पद में ये कहते हैं :

"हरि विमुख शठ जीव कतहूँ, नाहिं पावत सुख रे।
जगत सोवत फिरत इत उत, छिन छिन घटतु रे।
सुबस रसना पाइ के, हरि नाम काहे न रटतु रे ॥"

गुरु रामदास (पंजाब वाले)*

पंजाबी पुट लिए इनकी भक्ति सम्बन्धी बानियाँ बड़ी ही लोकप्रिय हुईं।

---

*गुरु रामदास जी का समय संवत् १५८१ से संवत् १६३८ माना जाता है। इनका जन्म लाहौर में हुआ, किन्तु माता-पिता का बचपन में ही देहावसान हो गया। इनकी नानी ने इनका लालन-पालन किया। ये बड़े ही सच्चे भक्त और दीन दुखियों के हितकारक थे। इनके सबसे छोटे पुत्र गुरु अर्जुनदेव ही इनके बाद गद्दी के मालिक हुए जो रामदासपुर की गद्दी थी।

अपने कथन की साक्षी में इन्होंने हिन्दू शास्त्रों और पुराणों के कथा-प्रसंगों के अनेक हवालों पर भी प्रकाश डाला। हिरण्यकशिपु जैसे पापी का बध करके भक्त प्रह्लाद के उद्धार की चर्चा करते हुए वे एक पद में कहते हैं :

"हरिणाखसु दुस्दु मारिआ प्रहलादु तराइआ।
गिआन अंजन जिस दिआ अगि आन अँधेरे विनासु॥"

एक बानी में ये कहते हैं—हे प्रभु ! सारा खेल यह तेरा है, इसी में भूलकर हम भटक रहे हैं। निरन्तर नीच कर्मों में ही हमारी प्रवृत्ति है। हे गुणवंत ! मेरे सभी अमगुणों को बख्श :

"मेरे राम ! इहि नीच करम हरि मेरे।
गुणवंता हरि हरि दइआलु करि किरपा अवगुण सभि मेरे।"

हरि-दर्शनों के लिए मन तड़प रहा है। जैसे पानी के बिना तृषावंत की प्यास नहीं बुझती वैसे ही प्रभु-प्रेम का तीर दिल को बेंध रहा है :

"हरि दरसन को मन बहुत तपते।
जिउ त्रिखावंत बिनु नीर।
मेरे मनि प्रेम लगो हरि तीर।"

इनकी आत्मा-रूपी प्रेयसी प्राणप्यारे के लिए कलप रही है—हे सखि ! मेरी अंतर्व्यथा, मेरी वेदना को कैसे वे जानेंगे ? कौन मेरी सब बातें उन तक पहुँचाएगा ? हे सखियों ! मेरे प्रभु का गुण-गान करो, उनकी चर्चा से मेरे अंतर्प्राणों को गुंजायमान कर दो, अन्यथा हरि-दर्शन के बिना कैसे आशा पूरी होगी, कैसे शांति मिलेगी :

"हमरि वेदन हरि प्रभु जाने, मेरे मन अंतर को पीर।
मेरे हरि प्रीतम की कोई बात सुनावै सो भाई सो मेरा वीर।
मिलु-मिलु सखी गुण कहु मेरे प्रभु के ले सतिगुर की धीर।
जन नानक की हरि आस पुजावहु, हरि दरसन शांति सरीर।"

अन्य सन्तों की भांति गुरुकृपा ही इन्होंने भक्ति का सोपान माना। न सिर्फ़ गुरु जहाज है, बल्कि वह खेवनहार भी है और गुरु की कृपा के बिना किसी का पार उतरना भी असंभव है :

"गुरु जहाज, केवट गुरु, गुरु बिन तर्यो न कोई।"

एक अन्य पद में ये कहते हैं कि बिना गुरु के ज्ञान कैसा, क्योंकि गुरु की उद्‌बोधक वाणी में ही सारे अमृत समाये हैं। ओ अंधे ! अभिमान रूपी अंधता नष्ट तो तभी होगी जब ज्ञान अंजन गुरु कृपा करके तेरी आँखों में आजेंगे :

"गिआनु अंजनु गुरु दीया अभिमान अन्धरे
हरि किरपा ते संत भेटिया, नानक मन परगासि।"

तुकाराम बुवा*

महाराष्ट्रीय वारकरी सम्प्रदाय में तुकाराम बुवा बड़े ही लोकप्रिय प्रख्यात संत हुए। निर्गुण और अद्वैत का प्राधान्य होते हुए भी भगवान कृष्ण के सगुण साकार बालरूप की उपासना भी इनकी प्रमुख मान्यता है। ईश्वर व्यापक रूप में सर्वत्र समाया हुआ है। यह विराट् सृष्टि प्रभुमय है। उसी का बोध, उसी का आभास पग-पग पर प्रतिपादित होता है :

"विष्णुमय जग वैष्णवाचा धर्म।"

एक पद में तुकाराम कहते हैं कि मनुष्य की कमज़ोरी है कि वह सच को पकड़ नहीं पाता, अतएव झूठ पर टिके रहने के कारण वह निरन्तर रोता रहता है :

"सच्चा नहीं पकड़ सके झुटा झुटे रोय।"

यह सारा संसार, ये दृश्य वस्तुएँ सब मिथ्या हैं, सब नाशवान, केवल

---

*इनकी जन्म एवं मृत्युतिथि में मतभेद है, किन्तु अनुमान है कि ये संवत् १५१० से संवत् १५७१ के बीच रहे होंगे। अपनी लोकोन्मुख भक्ति-साधना के कारण महाराष्ट्र में इन्होंने अत्यन्त ख्याति प्राप्त की। इनकी पत्नी जीजाई थीं जिनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि सन् १६३० के दक्षिण प्रान्त और गुजरात के भीषण अकाल के समय अन्न अन्न चिल्लाते हुए बड़ी हृदय-विदारक मौत मरीं। ये अधिक पढ़े-लिखे न थे, पर इनके मुख से काव्यस्रोत झरता रहता था। 'अस्सल गाथा' इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

हरिभजन ही सच्चा अवलम्ब है, उसे ही जीवन का सुपरिणाम कहा जा सकता है :

> "कवण का मंदिर कवन की झोंपरी।
> येक रामबीन सब ही फुकरी।
> कवण की काया कवण की माया।
> येक रामबीन सर्व ही जाया।
> कहे तुका सब ही चलन्हारा।
> येक रामबीन नहीं वासरा।"

एक अन्य पद में ये कहते हैं कि तृष्णा रूपी स्यार पीठ पर चढ़ा बैठा है जिसकी चपेट से कोई ही विरला बचता है। तुका भयग्रस्त हो मुंह फेरे बैठा है और मार्ग में केवल राम की ही बाट जोह रहा है :

> "ऊपर स्वार बैठे त्रुस्णा पीठ।
> नहीं बांचें कोई जावे लूट।
> देष ही डर फीर बैठा तुका।
> जोवत मारग राम ही येका।"

अनन्त आपत्ति-विपत्तियों, विघ्न-बाधाओं, दुःख-मुसीबतों से संकुल इस संसार-रूपी महासागर में असंख्य तरंगाघातों का मुकाबिला करने के लिए हम निरन्तर हाथ-पैर मारते रहते हैं, कितने ही शिलाखण्डों से टकराकर क्षत-विक्षत होते रहते हैं, अपनी धारणाओं और कर्म-चेष्टाओं को दरगुज़र करते रहते हैं, पर असली वस्तु को नहीं पकड़ पाते। उत्साह की न्यूनता, सच्ची व्याकुलता, मुमुक्षा या जिज्ञासा के अभाव में हम नाना प्रकार के बहाने बनाकर लक्ष्यभ्रष्ट हो जाते हैं जिससे शनैः-शनैः हमारी शक्ति का ह्रास होता रहता है। परमार्थ पथ पर अग्रसर होने के लिए स्थूल बुद्धि से परे महत्तर बोध या अन्तर्ज्ञान हो तभी बात बन सकती है। एक पद में तुकाराम कहते हैं कि यदि वह मार्गदर्शक प्रभु प्रेम की रस्सी गले में बाँधकर उधर ही खेंच ले जाय तो फिर क्या कहना :

> "प्रेम रसड़ी बाँधी गले।
> पैच च्यलें उधर॥"

इस जगत्-जंजाल में मनुष्य वस्तुतः अकेला है। जाति-कुल, कुनबा-परिवार, मित्र-सखा, पुत्र-कलत्र सभी के जड़-बंधन, जो गले में फाँस की तरह अटके हुए हैं, निरन्तर हमारी चैतन्यशक्ति को कुंठित करते रहते हैं। तुकोवा कहते हैं :

"अधिक जाती कुल नहिं जानूँ ।
जाने नारायन सो प्रानी मानूँ ।"

सबसे सरल तरीका, सीधा-सच्चा रास्ता है कि सब कुछ छोड़कर भगवान् के चरणों में न्योछावर हो जाय :

"कब मरूँ पाऊँ चरण तुम्हारे ।
ठाकुर मेरे जीवन प्यारे ।।"

समर्थ रामदास*

यद्यपि अन्य समकालीन संतों की भाँति इन्होंने भी अद्वैत मत का प्रतिपादन किया, तथापि लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर अन्ततोगत्वा भक्ति को ही सरल और सर्वोपरि माना। वाह्य संसार की सत्यता के सम्बन्ध में हमारा जितना दृढ़ बोध है उससे और ही संस्कार बद्धमूल होते रहते हैं। निरामय, निर्गुण, निराकार ब्रह्म ज्ञान की सूक्ष्म दृष्टि से ही परखा जा सकता है, किन्तु मायारूपी दर्पण में वह भिन्न-भिन्न रूप में भासता रहता है :

"ब्रह्म एकचि असे, परि ते बहुविध भासे ।"

यदि ऐसी धारणा प्रबल हो जाय कि यह दृश्यमान जगत् मिथ्यात्वेन हमारे शुभ-अशुभ अनुष्ठानों और कर्म-अकर्म के विधि-निषेधों के आडम्बर की प्रतीतिमात्र है जो नानाविध प्रपंचों के चक्रवात में पड़कर हमें गुमराह करता हैं तो बहुत कुछ सत्पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा मिल सकती है। बहिर्मुखी

*समर्थ रामदास का असली नाम नारायण था, जाम्भ गाँव में चैत्र शुक्ल नवमी (शक संवत्सर १५३०) के दिन इनका जन्म हुआ। सात वर्ष की उम्र में इनके पिता की मृत्यु हो गई। विवाह-मंडप में ही 'सावधान' सुनते ही सावधान हो गए। घर से भागकर नासिक के पास गोदावरी की धार में एक पांव से खड़े होकर 'श्री राम जय राम जय जय राम' का जप किया। इसी प्रकार बारह वर्ष तक तपस्या की, पुनः बारह वर्ष तक तीर्थों में भ्रमण करते रहे। शिवाजी इनके कृपापात्र शिष्य थे। 'दासबोध' इनका सुप्रसिद्ध ग्रंथ है।

विषय-वासनाओं के प्रबल प्रवाह में गतिरोध उत्पन्न कर प्रत्यक् चेतन की ओर अभिमुख होना ही श्रेयस्कर है, किन्तु ये सब कठोर साधना और जबर्दस्त इन्द्रिय-निग्रह द्वारा ही संभव है। एक पद में समर्थ कहते हैं कि तू घट-घट में उस अन्तर्यामी राम को क्यों नहीं देखता। जड़-चेतन, स्थावर-जंगम, जल-थल, सप्त-सागर, तृण-तरुवर, काष्ठ-पाषाण, चन्द्र-सूरज, आकाश और पृथ्वी सभी में तो वह विद्यमान है, उसका स्पष्ट प्रतिबिम्ब सर्वत्र झलक रहा है—

'घट-घट साहिया रे अजब अलामिया रे।''

एक अन्य पद में ये कहते हैं :

''राम न जाने नर तो क्या जी।
धन दौलत सब माल खजीना।
और मुलुख सर किया तो क्या जी।
गोकुल मथुरा मधुवन द्वारका॥
और अयोध्या कर आया तो क्या जी।
गंगा गोमती रेवा तापी॥
और बनारस तो न्हाया तो क्या जी।
दर्वेश शवड़ा जंगम जोगी॥
और कानाफाड़ी हुआ तो क्या जी।
आत्मज्ञान की खबर न जाने॥
और ध्यानन बक हुआ तो क्या जी।
वेद पुरान की चर्चा घनी है॥
और शास्तर पढ़ आया तो क्या जी।
रामदास प्रभु, आत्म रघूवीर।
इस नयन नहिं छाया तो क्या जी॥''

बहिणाबाई*

मीरा की भाँति ये भी कृष्णभक्त थीं। असमय में ही विधवा होने पर इनमें

*बहिणाबाई तुकाराम की शिष्या थीं। विधवा होते ही इनके चित्त में वैराग्य और भक्ति का उद्रेक हुआ। कुछ लोग इन्हें रामदास की शिष्या भी कहते हैं। इनकी अधिकांश रचनाएँ कृष्णभक्ति-परक हैं।

आध्यात्मिक रुचि जगी और ये संसार से विरक्त होकर आत्मसाधनारत हो गई। कृष्ण को ही इन्होंने अपना स्वामी, अपना भर्तार मान लिया। 'गौलण' (गोपी) शीर्षक के अन्तर्गत इनके अनेक पद मिलते हैं जिसमें गोपी अपने उपास्य प्रियतम से मिलने के लिए व्याकुल है। रूपलोलुप अंतर्प्रदेश में प्रबल झंझावात है, हाहाकार और करुण क्रन्दन है जैसे उसके समस्त प्रयास, सम्पूर्ण वृत्तियाँ, मन-प्राण अपने परम प्रेष्ठ के पाद-पद्मों में न्योछावर है :

"हरि बंध गयो मेरो प्रान
बहिना कहे सब भूल गये
मेरा हरी सु लगा है मन ।।"

अपने सच्चे साहब में उनका मन इतना एकनिष्ठ हो चुका है कि वे उसी की चाकरी, उसी की चरण-सेवा की दासता में चिर-चिरान्त के लिए रम जाना चाहती हैं :

"सच्चा साहेब तूँ एक मेरा
काहे मुजे फिकीर
महाल मुलुख परवा नहीं
क्या करूँ पील पथीर
गोविंद चाकरी पकरी
पथरी पकरी तेरी ।।
साहेब तेरी जिकीर करते
माया परदा हुवा दूर
चारो दीख भाई पीछे रहते हैं
बंदा हुजूर ।।
मेरा भी पन सटकर
साहेब पकरे तेरे पाय
वहिनी कहे तुमसे गोविंद
तेरे पर बलि जाय ।।"

संसार नाशवान है। जीना-मरना तो लगा ही रहता है, उससे डरना क्या। शरीर जब अस्तित्व में आया तो जन्म और मृत्यु दोनों ही उपाधियों को साथ लेकर अग्रसर हुआ। ज़िन्दगी की दौड़ में मौत पीछा करती रही और अवसर आने पर उसने अपनी विनाशक छाया में समेट लिया। अतएव मौत का भय नहीं, केवल देखना यह है कि हमने जीवन-काल में क्या किया, क्या खोया, क्या पाया, सत्कार्य किये अथवा दुष्कार्यों में ही समूचा जीवन नष्ट कर दिया :

"जनम मरन ये दोनों भाई
मोकले तन के साथ
मोती परे सो आपही मरेंगे
बदनामी झुठी बात ॥
जैसे करना वैसा भरना
संचित ये ही प्रमान
तारनहार तो न्यारा है रे
हकीम वो रहिमान ॥"

अर्चा-पूजा के विधि-विधान से अनभिज्ञ बहिणाबाई अपनी निर्व्याज्य निश्छल भक्ति प्रभु के चरणों में अर्पित करना चाहती हैं :

"जय जय कृष्ण कृपाला
हो जी नहीं किया जप-तप दान
तुम क्यों प्रगट भयो कहा जानो
अर्चन बंदन कछु पालो होय अचंबा मानो ॥
बहिणी कहे कहा जन्म को संचित प्राप्त भए इस बेला ।
चार भुजा हरि भुज को दिखावा येई अहो घटा नीला ॥

बयाबाई*

बयाबाई की गुरु के चरणों में अनन्य निष्ठा थी। वे रामदास की शिष्या

*इनके जीवन के सम्बन्ध में अधिक ज्ञात नहीं कि अपने पदों में इन्होंने अपने आप रामदास की शिष्या बताया है। इनके पदों में विरक्ति और आत्मविभोर दैन्य का भाव है। इनके अधिकतर ज्ञानपरक पद हैं।

थीं और उनके वचनामृत का देश-विदेश में भ्रमण करके प्रचार करना चाहती थीं। गुरु के प्रति इनकी आत्मविभोर आस्था है :

"क्या कहूँ रे गुरुनाथ की बात में
मस्त भया है दिल मेरा रंग में
लाल रंग में सफेद खुला है।
कोइ नहिं जाने आप भुला है।
जब गुरु के पग लीन होना
रामदास गुरु पथ की दासी।
दास बया फिरे देस बिदेसी।"

गुरु के चरणों में इनकी इतनी दृढ़ प्रतीति है कि वे अपनी समूची वृत्ति को उसी में लय करके सुधबुध भूल गई हैं :

"ध्याइये गुरुपग अघमोचन। सुखदायक भवाब्धि तम
चिद्गगन में आसन खुला। जापर सद्गुरु राज रमीला ॥
सूर्यचन्द्र वो दिवटि जलत है
जब देखा तब डूब गई तन।"

चूंकि बयाबाई कुछ अर्से तक उत्तर भारत का भी भ्रमण करती रहीं, अतः इनकी भाषा में उर्दू-फ़ारसी का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा। उदाहरणार्थ एक पद :

"अल्ला हे बेफिकीर मे कहाँ जावो रे।
जाहाता वोही खड़ा येहि मेरे नैन रे।
नजर के सदर में खल्के हजर होरे
रात-दिन जाहा नही सोहि खुदा पायोरे।
जी लिया जान लिया मेरा मुजाका नहीं
जब बेयान हुवा, आज कुछ सुनता नहि रे।
पल-पल के खेल न्यारे जिसके हजारो हुवे,
रंगातीत मेरा साईंदास बया को मिला रे।"

केशव स्वामी*

निर्गुणोपासक होने के बावजूद इनमें सगुण भक्ति भी कूट-कूटकर भरी थी। निराकार-निरंजन का ध्यान करने पर आनन्दघन मनमोहन श्याम की मूर्ति ही इनकी चेतना में कौंध जाती थी। एक पद में इसी भावाभिव्यंजना से प्रेरित हो ये लिखते हैं :

"लागी हो गोविंदा से पिरती
हृदय कमल में जब तब देखूँ, परम सुन्दर भरो श्याम की मूरती ॥"

ये स्वयं जैसे असहाय, हीन-दीन अबला हैं जो स्वामी के मिलन की तड़प लिये बेहद व्याकुल और अस्थिर चित्त हैं। हे पीताम्बर वीर ! आज मिलो न ! आपके दर्शन बिना एक क्षण भी चैन नहीं।

"आज मिलो पीताम्बर वीर।
तुम ज्यात शरीर विकल मेरो चित्त रहत नहीं क्षण एक थीर।"

एक अन्य पद में वह कहती हैं कि मैं हरि के भक्तिरस का प्याला ले लूंगी और जो माँगेगा, जो उसके लिए करुण-याचना करेगा उसी के रिक्त पात्र को भर दूँगी :

"हरिरस प्याला ले लेऊँगी मैं ॥
जो माँगे उसे भर देऊँगी, निज मतवाली न होऊँगी मैं ॥
मदन गोपाल के गुण गाऊँगी, कर बिन ताली बजाऊँगी मैं ॥"

प्यारे अलबेले लाल से ऐसी प्रीति जुड़ गई है कि सोते-जागते, उठते-बैठते उसी में वृत्ति तदाकार हो गई है। साईं के प्रेमरस में वह इतनी पग गई है कि यद्यपि उपेक्षित और उपराम वह उनसे विलग पड़ी है तथापि उन्हीं में समूचा प्राण-रस मानो उसका समा गया है :

---

*केशव स्वामी शक संवत् १६०० के लगभग पैठण में पैदा हुए। कहते हैं कि ये शिवाजी के समकालीन थे। इनके पद बिखरे हुए मिलते हैं जो सगुण और निर्गुण दोनों मत का प्रतिपादन करते हैं। राम में इनकी अनन्य निष्ठा है। इनकी समाधि हैदराबाद में है।

"लालन सूँ मेरी प्रीति जरी हो।
ज्यागति सोवति राम की मुरती, देखती हुँ ज्याहाँ तहाँ खरी हो।
प्रेमनीर नयन बरसन लागो, लोकन सुँ सब लाज उरी हो।
कहा कहूँ कछु कहत न आवे, शाम बदन देख भुल लही हो।
केशव को प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल वाके विलगी परी हो।"

जब-जब लाल की मूर्ति नज़र पड़ती है कुछ अद्भुत दशा हो जाती है और इस प्रकार मुखारविन्द पर वह टकटकी लगाये रहती है कि उसकी लाज-शर्म और लोक-मर्यादा सब भूल गई है, यहाँ तक कि उनके चरणों में ध्यानस्थ हो वह अपने तन-मन की सुधि भी विस्मृत कर बैठी है :

"लालच देखो मेरे लोचन की हो।
जब-जब लाल की मुरती देखत, अदूयुन ही पुरत धन इनकी हो।
शाम बदन सूँ निशदिन लग रही, लाज बिसर गई लोकन की हो।
केशव साईं के चरण सूँ लीन भई, याद नहीं कछु तन धन की हो।"

चरम प्रेम में मन की गति बड़ी ही विचित्र हो जाती है। रात-दिन प्राणों की लौ अंतश्चेतना को द्योतित किये रहती है और मन का मन से एकमेक गुंफन हो जाता है :

"क्या कहूँ माई अब हरि सुख पाई,
सकल ही गति मेरी हरि ने चुराई।
हरि गुण माला पेरी हूँ मन में,
हरि के चरण के थीर रहूँ मधुबन में।
निशिदिन मन में हरि सुँ लगाई,
हरि के भजन सुँ प्राण जगाई।
हरि सुँ निबरी जन सुँ मैं बिगरी,
केशव साही के संग सब बिसरी।"

*मध्व मुनीश्वर

माध्व सम्प्रदायी वैष्णव मत के अनुयायी होने के कारण इनके मराठी अभंग पदों में भक्तिरस प्रवहमान है, किन्तु इनकी अनेक रचनाओं पर सूफी मत का भी प्रभाव है। जीवात्मा 'इश्क हक़ीक़ी' का उन्माद लिये परमात्मा रूपी माशूक के लिए तड़प रही है। आशिक बेहाल है, मुखड़ा देखने को तरस रहा है, पर कपट के घूँघट ने मिथ्यावरण से विभेद डाल रखा है। चातक प्यास से व्याकुल है, मेहर की वर्षा से प्यास बुझाने की उसकी तमन्ना है। दिल के कागज़ पर गुरु के हाथों तस्वीर अंकित करनी है, अतएव उससे सामीप्य-लाभ के लिए ये अभ्यर्थना कर रहे हैं :

"माशुक तेरा मुखड़ा दिखाव।
कपट का घुँघट खोल सिताबी इष्क मिठाई चखाव।
आशक का तेरा जिवड़ा चातक, कर मेहर बरखाव।
दिल कागज पर सूरत तेरी, गुरु के हाथ लिखाव।
मध्व मुनीश्वर साईं तेरा अस्सल नाम सिखाव।"

यह तड़प, यह छटपटाहट ईश्वर रूपी माशूक के लिए है, पर दुनियाबी माशूक तो बड़ी खतरनाक है, उसके मोहपाश में पड़ना अपनी झूँठी बेखुदी को बढ़ावा देना है :

"कौन करारी चीज़ है माशुक, जिस पर आशक होना।
दम लेनकु कहुँ नहिं जागा, झूठा बखुद भरोसा॥"

एक पद में ये कहते हैं कि देह रूपी पिंजरे में प्राण रूपी पंछी वंदी है, जो दो दिन का मेहमान है। इस झूठी काया और झूठी माया में विलम कर कीमती समय गुज़र जाता है, आखिर मौत ही तो इसका परिणाम है :

***मध्व मुनीश्वर का असल नाम महादेव है। इनके पिता नारायणाचार्य ऋग्वेदी और माध्व सम्प्रदाय के वैष्णव थे। जन्म का पता नहीं, किन्तु मृत्यु शक सम्वत् १६५३ के मार्गशीर्ष की पूर्णिमा को हरिनाम कीर्तन करते हुए हुई थी।**

"बंदे मत कर इतना मान ।
क्यों नहीं सुनता क्यों नहीं गुनता, तेरा दिल सैतान ।।
झुटी काया झुटी माया, आखर मौत निदान ।।"

हृदय अभीप्सा का प्रज्ज्वलित अग्निकुंड है। वासना की कराल लपटें चहुँ ओर अपनी चपेट में समो लेना चाहती हैं, अमृत की शीतल वर्षा ही उसका उपशमन कर सकती है। घोर भयावनी अंधेरी रात में जैसे कोई भटक जाता है और उसे रास्ता सूझ नहीं पड़ता, उस महल तक पहुँचने के लिए कौन-सी सीधी पगडण्डी है और कौन-सा है मुख्य द्वार—यह सब बड़ी समझदारी से ढूँढ़ना है :

"अपने महल कु अकल से जाना घोर अंधारी रात ।"

दिव्य प्रेम यदि है तो उससे आसक्ति नहीं, अनासक्ति जगती है। अनासक्ति के तत्त्व प्रबल होकर उत्तरोत्तर 'अहं' से मुक्त करते हैं और दूसरों के प्रति समर्पण व परहित की भावना को प्रश्रय देते हैं। व्यावहारिक जीवन की कशमकश और झमेले, नित्य-नये प्रपंच, रात-दिन की हाय-हाय सारी सद्प्रवृत्तियों को खोखला बना देती है। ज्यों-ज्यों सांसारिक कर्मबन्धन हमें अधिकाधिक जकड़ते हैं, हमारी चेष्टाएँ और प्रयास कष्टकारक व श्रमसाध्य तो सिद्ध होते हैं, पर उसका कुछ सुपरिणाम नहीं होता। कारण—साईं बड़ा बाजीगर है, वह तरह-तरह के क्रीड़ा-कौतुक से जीव का मन बहलाता रहता है :

"बड़ा बाजीगर । साईं बड़ा बाजीगर ।
बाजीगर को बाजी झूठी । अकेला आखर ।।
सबकी नजर बंद करकर । दिखावता है पर ।
एक पर के पलख म्याने । छत्तीस कबूतर ।।
एक रस्सी का साँप करे । जबू न उसका जहर ।
लहर चढते शहर भुलाना । इस चौक में कहर ।।
हांडी बाग का गला काटे । मारे पेट में छुरी ।
जीवना मरना वैसा झुटा, बात तैसी बुरी ।।"

वास्तव में जगत् अंधा हो गया है 'अंधारे जग अंधा' और अंधेरे में भटकने के कारण वह अपने मार्ग से भी विचलित हो गया है। माया में तो

फँसा है, पर आश्चर्य कि वह उस माया के सृजनहार साईं को सलाम नहीं करता 'माया का गुलाम न करे साईं कु सलाम', भला ऐसे कृतघ्न को राम कैसे मिलेगा ? राम का सहारा, राम के चरणों में निष्ठा बड़ी मोटी बात है, मगर इन्सान की मोटी अक्ल में यह बात नहीं धँसती। पैदा करने वाले उस परवरदिगार को कोई याद नहीं करता। उसकी इस ग़फ़लत पर डाँट फटकारते हुए ये एक पद में कहते हैं :

"जिन्ने तुजकू पैदा किया कर उसका संदेशा रे।
इन्द्रजाल तव प्रपंच सारा सुत बंध्येचा जैसा रे।
तन जोवन आशक हुवा। क्या पाया आराम रे।
इन्द्रिय जन्म मुखा तें भावुनी, नेणसी आत्माराम रे।
क्यों गफलत में गाफल हुवा। किस लालच पर प्यारे।
किग्रास नहीं किये कुफर से। क्यों करहि हुवा दिवाना रे।।

शिवदिन केसरी*

महाराष्ट्र की नाथ-परम्परा के प्रमुख संत होने के कारण इनके पदों में ज्ञान और भक्ति दोनों का समन्वय है। ज्ञान के अमृत-तत्त्व का स्वाद जब मिल जाता है तो भगवान का प्रेम स्वयं ही मन में प्रकाशित होता है। भक्ति और ज्ञान का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है, एक-दूसरे के पूरक। भक्ति और प्रेम यदि सच्चा है तभी दिव्य-ज्ञान में प्रवेश पाया जा सकता है :

"तत्त्वबोध का प्याला पावे गगन मगन में लपटा।"

संसार की क्षणभंगुरता ही व्यक्ति के सामने सत्य-सी भासती है और वह इसी में प्रवृत्त होकर वास्तविक सत्य में नहीं पैठ पाता। बाहरी संघर्षों के संघात से तमसाच्छन्न जड़त्व ही मन-बुद्धि को आक्रान्त करता रहता है। ऐसी दशा में यथार्थ गन्तव्य नहीं सूझ पड़ता और प्रमाद, स्खलन तथा संशय-संकुल

***शिवदिन केसरी नाथ सम्प्रदाय के संत थे। इनका जन्म शक सम्वत् १६२० और मृत्यु शक सम्वत् १६९६ की शिवरात्री के दिन हुई। पैठण में 'गंगा' के किनारे इनका मठ है। शिवदिन केसरी का पूर्व नाम शिवदिन नाथ था।**

राह में भटकता रहता है। किन्तु कौन किसका साथी है, कौन किसको उंगली पकड़कर सत्पथ पर ले जाए, नितान्त एकाकी, संगी-साथी के बिना स्वयं ही अपना मार्ग खोजना पड़ता है :

"किसका कौन संघाती बाबा।
अकेला आवे अकेला जावे, हात हुजुर की पाती।
तन मन धन जो गर्वहि मत कर, कहत पुरान की पोथी।"

एक अन्य पद में ये कहते हैं—ओ दीवाने ! दिल के आइने में साहेब की तस्वीर आँककर उसी की मेहर की कामना कर—"नैन आरसा देख दिवाने कर साहिब से मेहरा।" यह जिन्दगी स्वप्नवत है—"सुपना सी जिंदगानी जानी," अतएव किसी गुमान में न रह और 'इदमित्थं' समझकर चित्त की धारणाओं और मनोवृत्तियों के रुख को लक्ष्यभ्रष्ट न होने दे। सारी दुनिया का पालनहार वह हज़रत अल्ला है और हमेशा हिफाज़त करता रहता है। धरती जाज़म है, आकाश तम्बू और सृष्टि की हर वस्तु मनुष्य की सुख-सुविधा के लिए सिरजी गई है। पर यह माया का प्रसार, संसारी जंजाल और सुख-सुविधाएं सब व्यर्थ का आडम्बर है। वैरागी फकीर को क्या चाहिए :

"सत की भिच्छा दे मेरी माई मन का आटा भरपूर।
बार-बार हम नहि आने के हरदम हार खुसी।
सोना रूपा धेला पैसा ओ कुच हम ना चाहे।
प्रेम की भिच्छा ला मेरी माई हम पंची परदेसी॥"

उनकी आत्मा-रूपी सुहागिन बड़ी असमंजस में है। किस वैरिन ने साजन को बहकाया है। वह उससे दूर क्यों है, किधर भटक गया ? मुद्रा-भस्म, कान में कुंडल, हाथ में झोली लिये अलख ज़गाता वह सैलानी साजन क्यों नहीं सम्मुख आता :

"किन बैरिन ने वैर कियो री।
साजन को बहिराय दियो री॥"

सब कुछ न्यौछावर है उस प्राणप्रियतम पर। निंदा-स्तुति का कुछ भय नहीं, वही लाल गुँसाई तो मन का राजा है :

"उस पर वारि जाऊँ रे, उनके पायाँ लागुँ रे।"

ऐसी प्रेम-प्रीति की रीति ही कुछ निराली है, अणु-अणु में मानो साईं व्याप्त हो। एक पद में ये कहते हैं :

"प्रेम प्रीति से रहिए।
अलख पलख मो सारा। सब घट देखे साईं हमारा।
अजपा जप करता है। कर बिन मन मनका फिरता है।
आसक केसरि घर का। शिवदिन बंदी उसके घर का।"

अमृतराय*

इन्होंने मराठी में पहली बार 'कटाव' छंद में भक्तिरस का स्रोत बहाया। इस रचना शैली में तुक की अपेक्षा पद-प्रवाह भाषानुसार ध्वनित होता चलता है और आँखों के समक्ष चित्रसृष्टि कर देता है। कहीं इनके पद में वह चित्र है जब भोले बालक कृष्ण ने खेल-खेल में मिट्टी खा ली थी और व्रजबालाओं ने यशोदा माँ से जाकर शिकायत कर दी। यशोदा ने पुत्र को पकड़कर छड़ी से मारा, किन्तु जब उन्होंने चुनौती दी :

"आव देखो म्हारे मुख माही !
बदन पसारत तामो, कै कै प्रकार के रूप दीप दीपांतर
शशि सूरज नव लाख तारागण
पंचतत्त्व तेजाम्बर धरणी, पवन पाणी चारों बानी
चारों देह चतुर्दस लोक,
गया परयाग, विष्णु कांची, अवंतिका, द्वारावति, गोकुल, कुल सुरबर
सनक सनन्दन
विद्याधर बहु, विविध देखकर, जसुमत मनमों थकीत होकर।
कीरत बखानत
पूरन ब्रह्म परमात्म सनातन, पुरान पावन, पूतना शोषण
चंचल के चित्तन के चालक, त्रिभुवन पालक !
बालक होकर तुम जीते हम हारे।"

---

*अमृतराय मध्व मुनीश्वर के प्रिय शिष्य थे। ये विदर्भ में बुलढ़ाना ज़िले के फत्तेखड़ा ग्राम के निवासी थे। बाद में औरंगाबाद को अपना कार्यक्षेत्र चुना और वहीं रहने लगे। इनका जन्म सन् १६९८ ई० और मृत्यु सन् १७५३ में हुई।

कहीं द्रौपदी के चीरहरण का दृश्य, कहीं भगवान् कृष्ण के कारागार में जन्म लेने के बाद की अद्‌भुत, आश्चर्यकारी बाल-रूपच्छटा, कहीं 'धोरी धुमरी' कारी पियरी, हरी विचित्रा, कपिला बरनी' गायों और बछड़े-बछड़ियों के झुंड का अलबेले गोपों के साथ हरीभरी चरगाहों में आनन्द-कल्लोल और विहार, साथ ही कहीं अकथ्य, अवर्णनीय आनन्द के वे क्षण जब कार्त्तिक मास की शरद् पूर्णिमा की ज्योत्स्ना-स्नात रात्रि में नटवर नागर ने गोप-बालाओं के साथ रास रचाया था। ज्योंही वंशी की ध्वनि कानों में पड़ी :

"धुन कान मो बैठी गोपिका पूत छोड़ पति छोड़ निकसिया,
दध मंथन जल्दी डारत है
कंडन पिसना, पछोड़ना सब, खाना-पीना,
न्हाना धोना देना आना-जाना
काम-काज घर बार छोड़ के।
रीत-भीत सब लज्जा छाँड़ी दौर करत डर नहीं चित्त मो।"

रामजन्म, लंकावर्णन, कृष्णनृत्य, सुदामा चरित्र आदि प्रसंग 'कटाव' पद में बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किये गए। सुदामा तीन बाँस की बनी एक टूटी-फूटी झोंपड़ी में रहता था—हमेशा फ़िक्रमन्द, पेट भरने के लिए चिन्तित, फटे-चिथड़े, उघाड़ा-नंगा, किन्तु पत्नी से कृष्ण की प्रायः रोज ही चर्चा होती। द्वारिका का प्रतापी राजा, दीन-वत्सल, त्रिभुवनपति, सुदामा का बालसखा। एक दिन पत्नी ने उकसाया :

"कबीला कहे वो किसन कौन है। नहीं जाय मिलते सबब कौन है।
अप्स रोज उसकी बड़ाई करो। किसी काम की भी अनामत धरो।
सुदामा कहै मैं सिधारू फजर। पड़ा दस्त खाली धरू क्या नजर।
कबीला गयी एक हम साह के। मुठी तीन चुड़वे दिये लाय के।
फटा एक कपड़ा बदन पर हता। कहू देखने कू भी शाबूत न था।
उसी बीच चुड़वे दिये बाँधकर। चला याद करता किसन का जिकर।।"

सुनसान रास्ता, बीहड़ पथ, जंगल पार करके वह कृष्णधाम पहुँचा। मुख्यद्वार पर द्वारपाल ने रास्ता रोक लिया :

"किले पास जाकर ज्यों थाडा रहे। पुकारे ज्यों दरबान तू कौन है।
बिरादर हमारा किसन है जिगर। सिताबी करो तुम उसी को खबर।
इसम है सुदामा कहो जायकर। वही ज्यानता है करो मत फिकर।"

द्वारपाल बड़े संशय में पड़ गया। यह ऐसा फटेहाल भगवान् का सखा ! बड़ी अजब बात है 'कहत है दिलो मो ये कंगाल है, किसन का बिरादर अजब बात है'। किन्तु ज्यों ही प्रभु ने सुदामा के आने की बात सुनी, एकदम दौड़कर गले लगा लिया :

"लगाया गले प्रेम आँसू चले। मिले वो किसन के गले से गले।
पकड़ दस्त उसका महल मो चले। और भी बिरादर गले से मिले।
बिठाया उसे न्याय के तख़्त पर। बजाये नगारे उसी वक्त पर।"

माधव महाराज*

ये अमृतराय के शिष्य थे और इन्होंने भी उन्हीं की भाँति कटाव छंद का बड़ी कुशलता से प्रयोग किया। इनमें राम की सगुण भक्ति थी। सच्ची निष्ठा में तर्क और युक्तिवाद व्यवधान उपस्थित करते हैं। जो लोग घमंड और मग़रूर में चूर होकर रामनाम को नहीं भजते उनकी कड़ी भर्त्सना करते हुए वे एक पद में कहते हैं :

"क्यों करता मगरूरि काफर भजता क्यों नहिं रामधनी।"

अहर्निश कड़े संघर्षों और अगणित घात-प्रतिघातों की अपेक्षा रामनाम भजना बड़ा ही सरल है। उलटे नामजप से बाल्मीकि का उद्धार हुआ। राम की कृपा से समुद्र में पत्थर तर गए। रावण, खरदूषण, शूर्पणखा, अहिरावण जैसे भीषण असुरों का वध करके बन्दर विजयी हुए और बाली जैसे दुर्द्धर्ष वीर का मानमर्दन हुआ। भगवान् की लय लगी तो राजा भर्तृहरी ने भी अपने समूचे राजपाट, सुख-वैभव और रानियों का मोह त्यागकर वैराग्य का बाना धारण कर लिया और घर-घर भीख माँगकर खाया। इसी प्रकार राजा गोपीचन्द ने सोलह सौ रानियों और उच्च अट्टालिकाओं से एकदम मुख मोड़कर सत्स्वरूप का अनुसन्धान किया :

---

*माधव महाराज अमृतराय के कृपापात्र शिष्य थे। रामभक्त संत थे। महाराष्ट्र में इनके कई पद अत्यंत लोकप्रिय हैं।

"घर घर भिक्षा माँगे भर्तृहरी, महाल मुलख सब त्यज रानी।
गोपीचंद सोला सौ रानी, धड़ मन्दिर है सात खणी।"

इनका एक और बड़ा ही प्रसिद्ध पद है जो प्रभाती के समय गाया जाता है। प्रभात बेला में माता कौशल्या राम को जगा रही हैं। एक ओर बंदीजन गंधर्व गुणगान और नृत्यादि में निमग्न हैं, शिव-पार्वती दर्शनार्थ द्वार पर खड़े हैं तथा दूसरी ओर सुरनरमुनि ब्रह्मादि देवता, चारों सनकादिक ऋषि और वेदपाठी विप्र समुदाय रघुकुल यश का विस्तार से सस्वर पाठ कर रहे हैं। भगवान् की प्रतीक्षा और दर्शन-लालसा की उत्कंठा में बड़ा कोलाहल मचा हुआ है:

"सुन प्रिय बचन उठे रघुनन्दन नैनन पलख उघारी।
चितवन अभय देत भक्तन को मुक्त भये नर नारी।
भरत शत्रुघन छत्र चँवर लिये जनकसुता लियो झारी।
मेवा पान लियो कर लछिमन भर कंचन को थारी।
कर अस्नान दान नृप दीन्हें, गो गज कंचन भारी।
जय जयकार करत धन्य माधव रघुकुल जस विस्तारी।"

*देवनाथ महाराज

ये भागवत सम्प्रदाय में दीक्षित निवृत्तिमार्गी साधक होते हुए भी श्री हनुमान जी के अत्यन्त भक्त थे। कहते हैं कि हनुमान जी ने कई बार इन्हें दर्शन भी दिए। अन्य वैरागी साधुओं की भाँति इन्होंने भी दृश्यमान संसार को नितान्त अस्थायी माना और उसमें अनुरक्त व धन की चाह में लगे व्यक्ति को उस प्रवासी की संज्ञा दी जिसे केवल थोड़े ही दिन इधर रहना है। वह देशान्तरवासी इस संसार रूपी हाट में सौदा लेने आया है। रात में आया, दिन में उसे चले जाना है। इस सौदे का निर्वाह कोई विरला ही कर पाता है, क्योंकि उसे बड़ा विकट घाटा उठाना पड़ता है। हे भाई! तू भूला-भूला

---

*ये ग्राम सुर्जी (विदर्भ) में पैदा हुए। इनका जन्मकाल सन् १७५४ ई० और मृत्यु सन् १८२१ ई० है। हनुमान जी का इन्हें इष्ट था। इन्होंने हनुमान स्वामी के आदेश से गोविन्दनाथ से दीक्षा ली थी। दीक्षित होने पर गाँवों में घूमते रहे। इनके जीवन में अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाएँ घटित हुई थीं।

क्या फिरता है, जब यह तन खाक में मिल जाएगा तब पछताएगा। कैसा अजब तमाशा है। आया तो था केवल चंद रोज के लिए, मगर भाईबन्द, पत्नी और पुत्रों के चक्कर में पड़कर 'स्व' को भूल गया। जैसे बाज तीतर को को झपट लेता है उसी तरह किसी दिन काल के गाल में समा जाएगा। जैसा नंगा आया था वैसे ही नंगा चला जाएगा, अतएव इस अन्धकाराच्छन्न पथ पर तू बहुत सँभल-सँभल कर चल :

"धनमान प्रवासी क्या करना।
दो दिन की जिंदगानी यारो आखरकू है मरना॥
रात बसे और दीन चले, संसार है हाट।
सवदा लेके विरला नीभा, बड़ा विकट है घाट॥
भूला भूला क्यंब फिरे, कर दिन दिवाने ! पाक !
आखरकू पस्तावेगा होगी तन की खाक।
भाई जोरू लरका आखरकू कोई नहीं आपना रे !
देख अमरपद, अमर नहीं क्या संपत क्या राज।
काल आवेगा ले जावेगा, जैसे तितर को बाज।
नंगा होकर आना जाना कोई नहिं आवे साथ।
काल ज्यालसी परी है गहरी अंधारी रात।
देवनाथ गोविंद कहे निरख निरख पग धरना रे !"

एक अन्य पद में ये कहते हैं कि आत्मज्ञान की इस शरीररूपी क्यारी में बीज नहीं बोया जाता। यद्यपि आत्मज्ञान के ये बीज घट-घट में निहित हैं तथापि प्रभुकृपा बिना ये उजागर कैसे हों। एक तो मायाच्छन्न अँधेरी रात, दूसरे गहरी नींद में भरपूर सोया अज्ञानान्ध जीव। भला कैसे निस्तार हो। पिपीलिका अर्थात् चींटीसमूह-सा सघन इस जग का प्रसार है। कीड़े-मकोड़ों की भाँति अगणित प्राणी इस पृथ्वी पर रेंग रहे हैं, जिनमें अपने आपको पहचानने की न शक्ति है, न सामर्थ्य। हर क़दम जिन्दगी की राह पर हम भटक जाते हैं, कहाँ है परम लक्ष्य, चरम निष्पत्ति ? ऐसे मार्ग का अनुसरण करना चाहिए जहाँ प्रभुप्रेम से साक्षात्कार हो सके अर्थात् सीधे सच्चे रास्ते पर चलते रहो जब तक कि तुम्हारी पदचाप दिव्यता के आरोही अलापों का

अनुसरण न करने लगे। रास्ता खाली और निर्द्वन्द्व है, केवल दूर तक चलने की निष्ठा और लगन चाहिए :

"नेक राह सो चलना बाबा ! आखरकू है मरना।
फकीर देखे जिकीर मिटावों अव्वल खाली रस्ता।
जल्दी पकड़ो नहिं तो डाले फांसी आय फिरस्ता।
करो सितावी मर्दो ! उठके पीर क़दम सो मिलना ॥"

दिल में जो ख्वाहिशें हैं वे पूरी नहीं होतीं और अगर थोड़ी-बहुत पूरी भी होती हैं तो वे केवल आंशिक रूप में ही। भ्रामक सुखों की मिथ्या परिकल्पनाओं में रमकर मन उस परितृप्ति और परितोष को नहीं स्पर्श कर पाता जो जीवन में आवश्यक है। यदि वह समझ सके :

"मैं हूँ बे कहाँ का, कौन कहाँ सो आया।
ये सार विचार न पाया।
संसार नरक का मूल, नाहक लपटाया।
कर याद गुरु वस्ताद, पकर ले पाया।"

साँवलिया प्यारे से प्रीति जुड़ गई। भला कैसे चैन आवे ? रात-दिन मन कलपता रहता है। प्रेम दीवानी मनःस्थिति में समूची सांसारिक रीति-नीति उल्टी ही उल्टी नज़र आ रही है :

"आज मोरी साँवरिया सों लागी प्रीत।
रैन दिन मोहे चैन परे नहिं, उलट भई सब रीत।
कहा करों, कित जाऊँ सखी री ! कैसि चली अब नीत।
देवनाथ प्रभुनाथ निरंजन, निसिदिन गावे गीत।"

यमुना की लहरों से कल्लोल करती जब मुरली की तान मुखरित हो उठी तो सहसा मनमोहन के सम्मोहन में वह बावली हो गई, तन-मन की सुधबुध जाती रही। उस मादक राग से स्पंदित और रोमांचित वह वृन्दावन तक खिच आई और प्राण-प्रियतम के रूप को निरख उसी से तादात्म्य स्थापित कर लिया :

"जमुना तट पे निकट बजावे मधुर धुनी मुरली की।
सुन कानहू भई बावरी सूध न तन-मन की ॥

आधि रैन सुख चैन सखी री, मैं पिय संग सोई।
सुनत नाद मदमस्त धौर के बिंदरावन आई।।
कह री बजाई बंसी कान्ह ने मधुर लहर बाकी।
सुनत डार घर बार निकसीं मैं बुद्ध सखी बहकी।।
गरज गरज के बरसे मेंह बुंद बरी रणके।
आधि रात अंधियारी परी री बीच दामिनी चमके।।
देवनाथ प्रभु नाथ निरंजन नंदलाल कान्हा।
देख लपट रही पग सों सखी री निरख रूप नैना।।"

'स्व' और 'पर' से परे इस वंशी की ध्वनि पर मदमस्त हो फागुन मास में व्रजनारियाँ होली खेल रही हैं। ज्ञान का गुलाल, ध्यान का अबीर, भक्ति का रंग और प्रेम की पिचकारी हाथ में लिये वे सभी मदमस्त हो रही हैं :

"फागरण मास माहे खेलत फाग री
सब मिलिया ब्रिजनारी
ग्यान गुलाल और धान अबिर की, हाथ लई भर जोरी
भक्ती को रंग सुरंग बनायो री, प्रेम करी पिचकारी
ऐसो भई मतवारी सखी सब कान्ह को देखन आई
कैसी मोहन बंसी बजाई।।"

मन पूर्णानंद में मग्न है। श्याम-रस में विभोर समूचे व्यवधान और भेद-प्रभेद मिट गए हैं। एक पद में :

"समरस रम रह्यो मानस मो वृत्ति भई अविकारी।
देवनाथ प्रभु अन्तर बाहिर छाय रह्यो सब माही।।"

*दयालनाथ महाराज

ये नाथमत में दीक्षित देवनाथ के शिष्य थे। मुख्यतः इन्होंने कृष्णभक्ति

---

*ये आख्यान कविताओं के संतकवि थे। कृष्ण में इनकी अनन्य भक्ति थी। इनका जन्म सन् १७८८ में और मृत्यु सन् १८३६ ई० में हुई। संतान की मृत्यु के बाद इनमें आत्मज्ञान हुआ और वैराग्य का बाना धारण कर लिया। हैदराबाद में इनकी अब भी समाधि है।

परक पद लिखे, यद्यपि गणपति, शिव, बिठोवा आदि पर भी पद-रचना की। सगुण, साकार, चिन्मय भगवान् कृष्ण का वर्णन तथा ब्रज युवराज की मधुरिम क्रीड़ाएँ इन्होंने अत्यन्त सरल और सजीव भाषा में छंदबद्ध कीं। गो वत्स चारक नन्दनन्दन बाँकेबिहारी झुरमुट में गोपियों के साथ क्रीड़ा-कल्लोल कर रहे हैं। ढोलक की गत पर पायल और घुँघरू की छमाछम मची हुई है। एक दूसरे पद में पुलिन पर छबीले नटनागर तो गाय चरा रहे हैं, किन्तु नंदप्यारी राधिका वंशी बजा रही हैं। दूसरी गोपियाँ बड़ा उत्पात मचाये हैं। कोई मुकुट, कोई मुरली, कोई मोतियों की माला और कोई पीताम्बर के लिए छीना-झपटी कर रही है। भाँति-भाँति का ऊधम मचाकर वे कृष्ण को चिढ़ा रही हैं :

"एक गोपी ने मुकुट लिया है, एक सखी ले गई पामरी।
एक मुरली कर की ले भागी, एक मोतन माला तोरी॥
पीतांबर एक सखी ले गई, आस-पास सब दे दे तारी।
सरस बनी है नंद की लरकी, कहत खिजावत सब नारी॥
राधा जू के चरण कमल पर, सीस नमाओ कर जोरी।
तब छोरूँ देवनाथ दयालू, कहो तुम जीते हम हारी॥"

कालिय मान-मर्दन प्रसंग में अचानक खेलते-खेलते भगवान यमुना में कूद पड़े और जल में अंतर्ध्यान हो गए। जब गोकुल में यशोदा और नंद को विदित हुआ तो एकदम उनकी हालत बिगड़ गई। उन्होंने समझा अब कृष्ण वापिस नहीं लौटेंगे :

"सोचत जसुमति पीटत छतिया, तोरत माल गिराई।
नंद हि सोचत कहत प्राण की धन की कोन बराई॥
पाछ्ठ-पाछ्ठ बालक मेरो, आगे चले बल भाई।
आस-पास ग्वालन के छोरे, शोभा बरन न जाई॥
पहेरे कौन मुगुट और अंगिया, बस्तर डारो जराई।
कौन पिवे मेरो दूध कन्हैया मूरत शाम गवाई॥"

किन्तु शोक-विह्वल माता-पिता और गोप-गोपियाँ जब इस प्रकार हताश और मृतप्राय हो रहे थे तभी :

"नाथ्यो कालिय बाहर आये सब लोगन के साईं।"

कहीं गोपियाँ कृष्ण के साथ होली खेल रही हैं, कहीं माखन चुराकर कृष्ण भाग रहे हैं, कहीं वंशीवट के नीचे त्रिभंगी मुद्रा में खड़े वे बाँसुरी की तान पर थिरक रहे है और कहीं सखी-सखाओं के साथ बड़ी होड़ और धपड़-चौथ मची हुई है। एक पद में एक गोपी सिर पर गगरी रखे पानी भरने जा रही थी, बीच रास्ते में गिरधारी मिल गए, बस फिर क्या था :

"मैं जमुना जल भरन जाति थी, बीच मिले गिरधारी।
गगरि फूट गई चुनरि भीज गई, सास नणद दे गारी।।"

एक गोपी की कृष्ण ने चुनरी फाड़ दी। इस प्रकार सबके सामने लोक-लज्जा और मर्यादा का उल्लंघन करने वाले कृष्ण कन्हैया को वह डांट रही है :

"तू मत फार चुनरिया हमारी।
दइ मारे तुज लाज न आवत।
माखन माँगत हाथ पसारी।"

एक पद में गोपियाँ उद्धव को उलाहना दे रही हैं। वह ज्ञान का उपदेश देना चाहता है, किन्तु वे केवल दो टूक बातों में ही उसके तर्कों को निर्मूल सिद्ध कर देती हैं :

"शाम सो लगाई प्रीत और न ज्यानो ऊधो।
कहाँ तेरो ग्यान ध्यान, कहा करत है बखान।।
जदुपद सो हमारो प्राण, वहै गयो है सुधो।
शाम सुन्दर सगुण ध्यान तापरसो वारो प्राण।।
धरहि राखो ब्रह्मज्ञान, हमसे कहा बोधो।
कमलापत कमल नयन अधरत बजावे बैन।।
छतिया पे दिन रयन, खेलत यो माधो।
देवनाथ प्रभु दयाल, कियो हमारो ऐसे हाल।।
मथुरा मो है खुशाल, बैठे लाल यारो।।"

गुलाबराव महाराज*

विदर्भ प्रांत के ये संत अंधे होते हुए भी उद्भट विद्वान् और मधुराद्वैत दार्शनिक थे। सांख्ययोग, वेदान्त और अन्य प्राचीन धर्मग्रन्थों को आत्मसात् कर इन्होंने भागवत् रहस्यों के साथ-साथ कतिपय व्यावहारिक धर्मबोध का भी प्रतिपादन किया। भगवान् कृष्ण की पतिरूप में इन्होंने उपासना की। कहा जाता है कि भावविभोर हो ये कुंकुम, मंगलसूत्र आदि नारी के सौभाग्यचिह्नों को धारण कर उपासना-रत हो जाते थे। इन्होंने कितने ही ऐसे गेय पदों की रचना की जिसमें पतिप्राणा नारी के प्रिय-वियोग की मर्मान्तिक वेदना का दिग्दर्शन कराया गया है। चिरमिलन की आतुर प्रतीक्षा में उसकी स्मृतियों के दुःख-संभार को लिये मन का आश्वासन जैसे डगमगा गया है—हे स्वामी! मैं और कुछ नहीं चाहती, केवल तुम्हारे पदारविन्द में आश्रय चाहती हूँ, तुम्हारे चरणों के सहारे पड़ी रहना चाहती हूँ :

> **"सुनिये मेरि पुकार माधव !**
> **औरन से मैं जिकिर न करती जामें बहुत विकार माधव।**
> **नहीं चाहती हूँ सायुजता मैं नहिं जोगकु अधिकार माधव।**
> **ज्ञानेश्वर प्रभु करुणाबल तें तुम्हारे पग लगनार माधव।"**

हरि के चरणों में वृत्ति इतनी रम गई है कि उन्हें पाने के लिए सारे विषय-भोग, सांसारिक प्रपंच और दुनियादारी के बंधन मिथ्या और दुखद प्रतीत होते हैं। जब सारी दुनिया हँस रही है तो प्रभु के चरणों को पाने के लिए मेरी अंतरात्मा क्यों रो रही है? आखिर मैं कौन सी राह पकड़ूँ? कहाँ मिलेगा वह श्यामसुन्दर? घर-गृहस्थी में हाय-हाय मची हुई है। चितानल में जल रही हूँ, पति-पुत्र, भाई-कबीले सबको खाने-खिला ने का दायित्व मेरे मन को त्रस्त कर रहा है, इसलिए भवग्लानि हो गई है और वर्णाश्रम के विधिनिषेध को मैंने भगवान् के चरणों में अर्पण कर दिया है :

***कहा जाता है इन्हें स्वप्न में संत ज्ञानेश्वर ने मंत्रदीक्षा दी थी। ये विद्वान् प्रतिभावान् और विरक्त अंधे संत थे। इनके बनाए ग्रंथों में—सम्प्रदाय सुरतरु, भागवत रहस्य, व्यवहार धर्मबोध, सूक्ति रत्नावली, पदांची गाथा आदि प्रसिद्ध हैं। संवत् १८०२ में विदर्भ जिले के माधान गाँव में इनका जन्म हुआ था।**

"हरि मोरे सब सुख के दाता ।
और हमरा कोई नहिं जन मारूँगी संसार को लाता ।
कोई मुझे तो जूती लगावत कोई शिरपे धरत है छाता ।
कोई तो प्रेम से गुण मोरे गावत करत कोई तो दोख की बाता ।
स्तुति अरु निंदा शब्दमात्र है मैं तो हूँ निःशब्द की ज्ञाता ।
वर्णाश्रम यह विधि निषेध को मैं तो कृष्ण चरण धरूँ माथा ।"

ज्योंही वेणु का स्वर कानों में पड़ा सब घर-गृहस्थी की मोह-ममता त्याग उस ध्वनि की लय पर बावली सी दौड़ पड़ी :

"कल तुमने वेणु बजा चित्त मोह लीयो ।
सुनि आवाज बौरि भई सदन छोर दीयो ।"

एक अन्य पद में वह श्याम की दग़ाबाजी पर उन्हें डाँट रही है—हे नंदलाल ! तुम हमसे मत बोलो । वन-वन भटकती और ढूँढ़ती हे प्रभु ! एक तो मैं तुम्हारे पास आई, पर तुम मेरी उपेक्षा कर रहे हो । तुम्हें ब्रज में गोपियाँ प्यारी हैं, हरदम तुम उन्हीं के पास जाते रहते हो, मेरे घर क्षण भर के लिए भी तुम आना पसंद नहीं करते । अगर तुम गोपियों के घर एक दिन की भी नागा कर दो तो वे तुमसे बोलना पसंद नहीं करेंगी, पर मेरे घर आये तुम्हें एक वर्ष बीत गया, मेरा मन तुम्हें टेर रहा है, आज तुम मेरे हाथ से निकल गए तो तुम्हें दौड़कर पकड़ लूँगी और तुम्हारी अलकावलियों से हे करुणावल्लभ ! भरपूर खेलती रहूँगी :

"मोसूँ बोलना नंदलाल, तुम तो दगलबाज गोपाल ।
मेरी आस तुमको नहीं हमें तुम्हारी आस ।।
बन बन धूँडत प्रभु आई, तुम्हरे पास ।
और गोपी तुमकु प्रभु बहु प्यारी ब्रजमाहि ।।
तिन घर सब दिन जात हो मो घर घड़ि भर नाहिं ।
एक दिन तुम ना गये तो नहिं बोलेंगी और ।।
मम घर आने वर्ष भया है टेरत हो मन ठौर ।
आज तुम जो निकल गये तो कर पकरौंगी दौर ।।
अलकावलि बल्लभ करुणा रस खेलोंगी सुख भरो" ।

एक और पद में हताश बाला बहुत गिड़गिड़ाकर कहती हैं :

"मेरी इतनी बात सुनो
आँखी भर सपने में तो भी रूप दिखावो अपनो ।"

संत ज्ञानेश्वर इनके गुरु थे जिनकी इन्होंने जननी के रूप में वंदना की। गुरु के चरणों में निःस्पृह प्रेम और सच्ची लगन ही मंगलमय पथ पर अग्रसर करने वाली है :

"काहू के भावे मन आतम को ग्यान अति काहू के भावे मन जोग हठराज है।
काहू के कर्मन की आस नित चित्त लगी काहू के मनमाही पंडित समाज है।
काहू मन साज बाज काहू मन लाज काज काहू के मानस में सुन्दर सुखराज है।
मैं गरीब हूँ अनाथ जोरि कहूँ दोय हात ज्ञानदेव दीनानाथ मेरे शिरताज है।"

***गुंडा केशव**

ये भी विदर्भ प्रांत के नाथपंथी संत थे। भक्तिपरक और ज्ञानपरक दोनों प्रकार के द्विपद छंदों में इतनी गहरी भक्तिभावना के विविध पक्ष सामने उभर कर आए हैं। आत्मबोध की स्थिति में ही गहरी अनुभूति जगती है। विरह और आध्यात्मिक वेदना की कसक कभी-कभी उन्मत्त प्रेम की खुमारी में परिणत हो मतवाला बना देती है, ऐसा प्रेम गूँगा है, उसकी व्याख्या या विश्लेषण नहीं किया जा सकता :

"निज बोध मो गुंग हमेशा प्रेम खुमारी आई।"

किन्तु जब तक सच्चा विश्वास नहीं जगेगा, नीयत साफ़ नहीं होगी तब तक परस्पर संघर्षण बिना भीतर उजाला कैसे होगा ? जब तक इस भीतरी वोध द्वारा उस सूक्ष्मतर गुणों के नियन्ता गुणातीत स्वामी के गुणों में न पैठा जाय तब तक उसे कोई क्या खाक समझेगा ? भला कोई फकीर बिना खुदा को बूझे ज़िन्दा ही कैसे रह सकता है ? जिसके मन में कोई भेदभाव, लाग-लपेट, छलछद्म नहीं है, जो पाक दिल है और उस दीदार से सच्ची लौ

---

*संवत् १७५२ में ये जीवित थे। जन्म-मृत्यु तिथि ज्ञात नहीं। ये विदर्भ में यवतमाल जिले के विडूल गाँव के रहते वाले थे। इनके गुरु के बारे में कोई जानकारी नहीं है।

लगाए रखता है वही प्रेम-डोरी के सहारे निर्द्वन्द्व गगन मंडल पर चढ़ जाता है। उस अलक्ष्य के सम्मुख प्राणरूप से व्याप्त हो वह उसके परमतत्त्व का आभास पा जाता है :

"बजुद पाख दिल्ल से लगन्न से जीकिर।
च्यढ़ा प्रेम धागे गगन्न देहरे॥
सो ही मस्त गुंडे आलख हाजरे।
सुनो राम रहीमान येकी हीसाब॥"

प्रेम की सच्ची लगन जब लग जाती है तो कुछ निराली ही दशा हो जाती है। उस परम प्राण-प्रियतम को पाये बिना फिर किसी प्रकार चैन नहीं पड़ता :

"लगी है प्रेम लगन कि याद।
पीया बिन जीयेरा केकर जोये,
खुदस्ते बुनियाद॥
मेहरबक्ष दयाल अजीज कुँ,
और न ज्यानु वादा॥"

एक अन्य पद में ये कहते हैं कि जो पृथ्वी और आकाश में समाया हुआ है, अणु-अणु में जिसके अस्तित्व की प्रतीति हो रही है उसे तू ओ बन्दे ! क्यों नहीं पहचान पा रहा है ? सारे संसार का मालिक तो वही एक साहेब है जो निरंजन निरंकार का ज्योतिपुंज है :

"भरा है ज्यमीं आसमानि ज्याहणू, कहे दास गुण्डे उसकूँ पछ्याणु,
जगत् का धनी येक साहेब यही है, निरंज्यन निरंकार ज्योति भरी है।"

माणिक महाराज*

महाराष्ट्र के ये एक अज्ञात संत हैं जिनका जीवनवृत्त विदित न होते हुए भी अनेक पदों द्वारा उनके भक्तिभाव का आभास मिला है। अन्य सभी सन्तों के समान इनमें भी अनन्य गुरु-निष्ठा है। गुरु के चरण, गुरु की कृपा और

---

*माणिक महाराज के जन्म का पता नहीं, इनका समाधि स्थान हुमणाबाद में है। सन् १६११ में इनका समाधि स्थान बनाया गया था।

गुरु का संरक्षण ही जीवन का निस्तार कराने वाला है, गुरु ही दरअसल हाथ पकड़कर सही दिशा का निदश करता है :

"गुरु जी ! तोरे पैंया पर सीस धरूँ।
तेरे नाम का ध्यान धरूँ, तेरे काज मरूँ।
अापने तन की चाम निकाल के, चरण पनैया करूँ।
माणिक कहे तेरी सूरत प्यारी, नैनन बीच भरूँ।"

भगवान् राम, भगवान् कृष्ण, भगवान् शिव और श्री हनुमान का स्वरूप वर्णन इन्होंने अत्यन्त सजीव भाषा में किया। हे भोला ! तेरी वह मूर्ति मुझे अच्छी लगती है जिसके कान में कुंडल के रूप में सर्प लहलहा रहे हैं और व्याघ्रचर्म को तूने शरीर पर धारण किया है, साथ ही नाम लेते ही जिससे काल भी थरथर काँपने लगता है। श्री हनुमान जी के सम्बन्ध में :

"देखो देखो सखि रे छ्व बाला की।
शेषाचल पर अाप विराजे, चौकी हनुमत लाला की
मोर मुकुट मस्तक पर सोहे, बहुत लगी लड़ माला की
माणिक के मन सुमरत बाला, फासा कटे भवजाला की।"

कुँवर कन्हैया के भोले आकर्षक रूप का तो कहना ही क्या ! साँवली सूरत और रसीली आँखें जिनकी दोनों हाथों से बलैय्या लेने की इच्छा होती है और जिस नंदलाल प्रभु के दर्शनों के लिए हृदय व्याकुल है :

"मैं तो वारि रे सैया ! तोरे पर से
सावलि सूरत रसभरी अखिया लेउगि बलया दोनों कर से
माणिक प्रभु वो नंदलाला ! दर्शन पर जिया तरसे ॥"

साँवरे कान्हा की बाँसुरी की मधुर ध्वनि और उन्मादकारी लय आलोड़न पैदा करने वाली है। उसके सुरीले प्रकम्पन पर थिरककर मानों सुधबुध खो जाती है :

'साँवरे कान्हा ने बाँसुरी बजाई तो,
लोक परलोक में सब थकित रह गए—
नन्दकुमार साँवरो कान्हा बाँसुरी बजाई
शुक सनक व्यास मुनि ध्रुव प्रल्हाद नारद मुनि,

थम रहे स्थिर देह सूध विसराई
चकित भये सब देव ब्रह्म विष्णु महादेव
त्रिभुवन मो नारद भरे सुनत शेषशायी
स्थिर रहे जमुन निर, डुल भये विमानी सुर
माणिकदास मगन भये, हरि के गुण गाई ।"

यों ऊपर वर्णित सभी जनपद संतों की कविताएँ भले ही भाव-सौष्ठव, रूप-रस, शिल्प-विधान और चित्रात्मक प्रतीकों की व्यंजना की दृष्टि से इतनी उत्कृष्ट और उच्चकोटि की न बन पड़ी हों, किन्तु इतना तो निर्विवाद है कि उनकी यह सरल, निर्व्याज भावाभिव्यंजना मूलतः निरपेक्ष, पर तत्त्वतः काल-प्रवाह की उस सापेक्ष स्थिति की द्योतक है जहाँ जन-चेतना उन्मुक्त रूप से उससे तादात्म्य स्थापित करने में समर्थ हुई है। इन संतों में कष्ट-कल्पना अथवा दिमाग़ी कसरत से सिरजे जटिल उद्गारों की कशमकश नहीं है, बल्कि इन्होंने अपनी निर्भीक ओजस्वी वाणी से जन-जन में भक्ति और ज्ञान का संचार किया। आध्यात्मिक साधना कठिन है, पर सच्ची निष्ठा यदि है तो किसी प्रपंच की आवश्यकता नहीं, तब राम-नाम के 'ढाई अच्छर' ही प्रर्याप्त हैं। बौद्धिक तर्कों के सहारे यदि हम सत्य को खोजने निकलेंगे तो हमारी स्थिति अँधेरे में टटोलने के सदृश होगी। न जाने कितने परस्पर विरोधी व्यवधान हमारे सामने आएँगे। बुद्धि हताश होकर इसी निष्कर्ष पर पहुँचेगी कि सत्य की खोज व्यर्थ है, केवल किसी मिथ्या कल्पना के पीछे भटकना है।

अतएव परम सत्य को पाने के लिए किसी महत्तर बोधशक्ति या सूक्ष्म चैतन्य को जागरूक बनाना चाहिए। साथ ही उस कल्पनातीत सत्ता का आभास पाने के लिए निस्संशय अंतर्ज्ञान और गहरी अंतर्नुभूति अपेक्षित है। अधिकतर जनपद संतों ने अनेक तौर-तरीकों के माध्यम से इसी अन्तर्भाव को उजागर किया। कहीं कुंडलिनी योग द्वारा आत्मज्योति का ब्रह्मज्योति से साक्षात्कार दर्शाया गया है :

"गगन गरजि मध जाइये, तहाँ दीसै तार अनंत रे।
बिजुरी चमकि घन बरषि है, तहाँ भीजत हैं सब संत रे।।"

(कबीर)

कही आकाशमंडल में ऐसे अद्भुत महल की कल्पना की गई है जहाँ सहज ही मनमाधव प्यारे से भेंट हो सकती है :

"बंगला खूब बनाया बे
उसमो माधव सोया बे ।।
पंचतत्त की भीत बनाई तीन गुनन का गारा
रामनाम की छान छबाई चानेहारा न्यहारा ।
उस बंगले कु नव दरवाजे बीच पवन का खंभा ।
आवे जावे सब कोई देखे, यही बड़ा अचंभा ।
आशा दुराशा माया नाचे मन मो ताल बजावे ।
सुरत निरत मिरदंग बजावे, राग छतीसा गावे ।
बंगला खूब बनाया बे
उसमो माधव सोया बे ।।"

(संत सिद्धेश्वर)

कहीं आत्मा प्रेयसी अपने परमात्मा प्रियतम की बाट जोहती हुई न जाने कितने युग-युगान्तरों से भटक रही है :

"हरि बिन रहिया न जाए जिहिरा
कब की थाडी देखे राहा ।
क्या मेरे लाल कवन चुकी भई
क्या मोहि पासिति बेर लगाई ।
कोई सखी हरि जावे बुलवान
बारहि डारूँ उस पर ये तन ।
तुका प्रभु कब देख पाऊँ
पासी आऊँ फेर न जाऊँ ।"

(तुकाराम)

जो अभागे राम को नहीं भजते और दूसरे तरीकों से ज्ञान हासिल करने की चेष्टा करते हैं उन्हें धिक्कार है। वे रामनाम के तत्त्व में न पैठकर पोथियों की धूल ही फाँकते रहने का दंभ भरते हैं :

"तू राम न जपहि अभागी
वेद पूरान पढ़त तउ पांडे, खर चंदन जैसे भारा
राम नाम तत समझत नाहीं, अन्त पड़ै मुख छारा।।"

(नामदेव)

कहीं ममत्त्व बुद्धि और वाह्येन्द्रियों की फलासक्ति को छोड़कर अंतःकरण की शुद्धि और तत्त्वज्ञान की उपलब्धि की सतत चेष्टा में निरत होने की प्रेरणा दी गई है। संसार का आकर्षण मृगतृष्णावत् है, पर उसे सच समझकर मनुष्य उस कृत्रिम जल की ओर ही बार-बार प्रवृत्त होता है। इसके विपरीत चित्त का समाधान कर लेने वाला व्यक्ति इन काम्य कर्मों की व्यर्थता समझकर जब विषयासक्त नहीं होता तो प्रभुभक्ति उत्पन्न होने के कारण उसके कल्याण में किंचित् भी विलम्ब नहीं होता :

"दादू बेगि बार नहिं लागै,
हरि सौं सबै सरै।"

इस प्रकार जीवन की असारता का दिग्दर्शन कराते हुए भक्तिरस का अजस्र स्रोत इन जनपद संतों की कलावाणी में ध्वनित होकर लोकमानस को रससिक्त करता रहा। इनकी विशेषता है कि लोकोत्तर अनुभूति को अति साधारण बनाकर इन्होंने प्रेषणीय बनाया। तत्कालीन देशकाल की विषम परिस्थितियों से लोहा लेते हुए ठोस ज़मीन पर खड़े होकर इन्होंने जनता पर सीधा प्रभाव डाला और उन्हीं में घुल-मिलकर बोलचाल की भाषा में उन्हीं के मन की बात अपने ढंग से प्रस्तुत की।

कबीर की बानी

गुरुदेव बिन जीव की कल्पना ना मिटै
गुरुदेव बिन जीव का भला नाहीं,
गुरुदेव बिन जीव का तिमर नासै नहीं
समुझि विचार ले मनै माहीं।
राह बारीक गुरुदेव तें पाइये
जनम अनेक की अटक खोलै,
कहै 'कबीर' गुरुदेव पूरन मिलै
जीव और सीव तब एक तोलै॥

करौ सतसंग गुरुदेव से चरन गहि
जासु के दरस तें मर्म भागै,
सील औ साँच संतोष आवै दया
काल की चोट फिर नाहिं लागै।
काल के जाल में सकल जिव बंधिया
बिन ज्ञान गुरुदेव घट अँधियारा,
कहै 'कबीर' जन जनम आवै नहीं
पारस परस पद होय न्यारा।

गुरुदेव के भेव को जीव जाने नहीं
जीव तो अपनी बुद्धि ठानै,
गुरुदेव तो जीव को काढ़ि भव-सिन्धु तें
फेरि लै सुक्ख के सिंध आनै।
बंद करि दृष्टि को फेरि अंदर करै
घट का पाट गुरुदेव खोलै,
कहत 'कब्बीर' तू देख संसार में
गुरुदेव समान कोई नांहि तोलै॥

दुलहनी गावहु मंगलचार,
हम घरि आए हो राजाराम भरतार ।।टेक।।
तन रत करि मैं मन रत करिहूँ, पंचतत्त बराती ।
रामदेव मोरै पाहुनैं आये, मैं जोबन मैं माती ।।
सरीर-सरोवर बेदी करिहूँ, ब्रह्मा वेद उचार ।
रामदेव संग भांवरि लैहूँ, धनि-धनि भाग हमार ।।
सुर तेंतीसू कौतिग आये, मुनिवर सहस अठ्यासी ।
कहैं कबीर हम व्याहि चले हैं, पुरिष एक अबिनासी ।।

अब मैं पाइबो रे पाइबौ ब्रह्मगियान,
सहज समाधें सुख में रहिबौ, कोठि कलप विश्राम ।।टेक।।
गुर कृपाल कृपा जब कीन्हीं, हिरदै कँवल बिगासा ।
भागा भ्रम दसौं दिसि सूझ्यो, परम जोति प्रकासा ।।
मृतक उठ्या धनक कर लीयै, काल अहेड़ी भागा ।
उदया सूर निस किया पयाना, सोवत थैं जब जागा ।।
अविगत अकल अनूपम देख्या, कहता कह्या न जाई ।
सैंन करै मनही मन रहसै, गूँगै जानि मिठाई ।।
पहुप विना एक तरवर फलियां, निब कर तूर बजाया ।
नारी बिना नीर घट भरिया, सहज रूप सो पाया ।।
देखत कांच भया तन कंचन, बिन बानी मन माना ।
उठ्या विहंगम खोज न पाया, ज्यूं जल जलहि समाना ।।
पूज्या देव बहुरि नहीं पूजौ, न्हाये उदिक न नाउं ।
भागा भ्रम ये कही कहंता, आये बहुरि न आऊं ।।
आपै मैं तब आपा निरष्या, अपन मैं आपा सूझ्या ।
आपे कहत सुनत पुनि अपना, अपन मैं आपा बूझ्या ।।
अपनैं परचै लागी तारी, अपन मैं आप समाना ।
कहै कबीर जे आप बिचारै, मिटि गया आवन जाना ।।

इहि यत राम जपहु रे प्रानी, बूझौ अकथ कहाणी ।
हरि कर भाव होई जा ऊपरि, जागति रैनि बिहानी ।।टेक।।
डाइन डारै सुन हा डोरै, स्यंथ रहैं बन थेरै ।
पंच कुटुम्ब मिलि झूझन लागे, बाजत सबत संघेरै ।।
रोहै मृग ससा बन घेरै, पारधी बाण न मेलै ।
सायर जलै सकल वन दाझै, मंछ अहेरा खेलै ।।
सोई पंडित सो तत ग्याता, जो इहि पदहि बिचारै ।
कहै कवीर सोइ गुर मेरा, आप तिरै मोहिं तारै ।।

एक अचंभा देखा रे भाई, ठाढ़ा सिंह चरावै गाई ।।टेक।।
पहलै पूत पीछैं भई माइ, चेला कै गुर लागै पाइ ।।
जल की मछरी तरवर व्याई, पकड़ि बिलाई मुरगै खाई ।
बैलहि डारि गूंनि घरि आई, कुत्ता कूँ ले गई बिलाई ।।
तलि करि साखा ऊपरि कर मूल, बहुत भांति जड़ लागे फूल ।
कहै कबीर या तप कौं बूझै, ताकू तीन्यूं त्रिभुवन सूझै ।।

संतौ भाई आई ग्यान की आंधी रे ।
भ्रम की टाटी सबै उडाणीं, माया रहै न बांधी ।।टेक।।
हित चत की द्वै थूनी गिरांनी, मोह बलींडा तूटा ।
त्रिस्नां छांनि परी घर ऊपरि, कुबुधि का भांडा फूटा ।।
जोग जुगति करि संतौ बांधी, निरचू चुवै न पाणी ।
कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जाँणी ।।
आंधी पीछै जो जल बूठा, प्रेम हरी जन भीना ।
कहै कबीर भान के प्रगटे, उदित भया तम षीना ।।

हिंडोला तहां झूलै आतम राम।
प्रेम भगति हिड़ोलना, सब संतन कौ विश्राम ।।टेक।।
चंद सूर दोइ खभवा, बंक नालि की डोरि।
झूलैं पंच पियारियां, तहां झूलै जीय मोर ।।
द्वादस गन के अंतरा, तहां अमृत को ग्रास।
जिनि यहु अमृत चाषिया, सो ठाकुर हम दास ।।
सहज सुनि को नेहरौ, गगन मंडल सिरि मौर।
दोऊ कुल हम आगरी, जौ हम झूलैं हिंडोल ।।
अरध उरध की गंगा जमुनां, मूल कबल कौ घाट।
षट चक्र की गागरी, त्रिवेणी संगम बाट ।।
नाद व्यंद की नावरी राम नाम कनिहार।
कहै कबीर गुण गाइ ले, गुर गंमि उतरौ पार ।।

मैं बुनि करि सिराना हो राम, नाल करम नहिं ऊबरे ।।टेक।।
दखिन कूट जब सुनहां भूंका, तब हम सगुन विचारा।
लरके परके सब जागत हैं, हम धरि चोर पसारा हो राम ।।
ताना लीन्हा बाना लीन्हा, लीन्हें गोड के पऊबा।
इत उत चितवन कठवन लीन्हा, मांड चलवना डऊवा हो राम ।।
एक पग दोइ पग त्रेपग, संधे सधि मिलाई।
करि परपंच मोट बधि आयो, किल किल सबै मिटाई हो राम ।।
नाना तपन करि बाना बुनि करि, छाक परी मोहि ध्यान।
कहै कबीर मैं बुनि सिराना, जानत है भगवाना हो राम ।।

मन रे जागत रहिये भाई।
गाफिल होइ बसत मति खोवै, चोर मुसै घर जाई ।।टेक।।
षट चंक्र की कनक कोठरी, बस्त भाव है सोई।
ताला कूँची कुलफ के लागे, उघड़त बार न होई ।।

पंच पहरवा सोइ गए हैं, बसतैं जागण लागी ।
जुरा मरण व्यापै कुछ नाहीं, गगन मंडल लै लागी ।।
करत विचार मन-ही-मन उपजी, ना कहीं गया न आया ।
कहै कबीर संसा सब छूटा, राम रतन धन पाया ।।

चलन चलन सबको कहत है, ना जानौं बैकुंठ कहाँ है ।।टेक।।
जोजन एक प्रमिति नहीं जानैं, बातनि हीं बैकुंठ बखानैं ।
जब लग है बैकुंठ की आसा, तब लगि नहिं हरि चरन निबासा ।।
कहें सुनें कैसे पतिअइए, जब लग तहां आप नहीं जइये ।
कहै कबीर यहु कहिये काहि, साध संगति बैकुंठहि आहि ।।

अपनै मैं रंगि आप तपौ जानूं, जिहि रंगि जानि ताही कूं मानूं ।।टेक।।
अभि अंतरि मन रंग समाना, लोग कहैं कबीर बौराना ।
रंग न चीन्हें मूरिख लोई, जिहि रंगि रंग रह्या सब कोई ।।
जे रंग कबहूं न आवै न जाई, कहै कबीर तिहिं रह्या समाई ।

झगरा एक नबेरौ राम, जे तुम्ह अपनै जन सूं काम ।।टेक।।
ब्रह्मा बड़ा कि जिनि रु उपाया वेद बड़ा कि जहां थें आया ।
यहु मन बड़ा कि जहां मन मानैं, राम बड़ा कि रामहिं जानैं ।।
कहै कबीर हूँ खरा उदास, तीरथ बड़े कि हरि के दास ।

दास रामहिं जानि है रे, और न जानैं कोइ ।।टेक।।
काजल देइ सबै कोई, चषिचाहन मांहि बिनान ।
जिनि लोइनि मन मोहिया, ते लोइन परवान ।।
बहुत भगति भौ सागरा, नाना विधि नाना भाव ।
जिहि हिरदै श्री हरि भेटिया, सो भेद कहूं कहूं ठाउं ।
दरसन सीमा का कीजिए, जौ गुन नहीं होत समान ।
सींधव नीर कबीर मिल्यौ है, फटक मिलै पखान ।।

मैं डोरै डोरै जाऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि ग्राऊंगा ।।टेक।।
सूत बहुत कछु थोरा, ताथैं लाइ लै कंथा डोरा।
कंथा डोरा लागा, जब जुरा मरण भौ भागा ।।
जहां सूत कपास न पूनी, तहां बसै इक मूनीं।
उस मूनीं सूं चित लाऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि ग्राऊंगा ।।
मेर डंड इक छाजा, तहां बसै इक राजा।
तिस राजा सूँ चित लाऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि ग्राऊंगा ।।
जहां बहु हीरा धन मोती, तहां तत लाइ लै जोती।
तिस जोतिहि जोति मिलाऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि ग्राऊंगा ।।
जहां ऊगै सूर न चंदा, तहां देष्या एक ग्रनंदा।
उस ग्रानंद सू चित लाऊंगा, तौ मैं बहुरि न भोजलि ग्राऊंगा ।।
मूल बंधु इक पावा तहां सिद्ध गणेस्वर रावा।
तिस मूलहिं मूल मिलाऊंगा तौ मैं बहुरि न भौजलि ग्राऊंगा ।।
कबीर तालिब तौरा तहां गोपत हरी गुर मोरा।
तहां हेत हरि चित लाऊंगा तौ मैं बहुरि न भौजलि ग्राऊंगा ।।

भाई रे बिरले दोस्त कबीर के यहु तत बार बार कासों कहिए।
मानण घड़ण संवारण सम्रथ ज्यूँ राषै त्यूँ रहिए ।।टेक।।
ग्रालम दूनी सबै फिर खोजी हरि बिन सकल ग्रयाना।
छह दरसन छयानवैं पाषंड ग्राकुल किनहूं न जाना ।।
जप तप संजम पूजा ग्ररचा जोतिग जग बौराना।
कागद लिखि जगत भुलाना मनहीं मन न समाना ।।
कहै कबीर जोगी ग्ररु जंगम ए सब झूठी ग्रासा।
गुरु प्रसादि रटौ चात्रिग ज्यूँ निहचै भगति निवासा ।।

कितेक सिव संकर गए ऊठि,
राम समाधि ग्रजहूं नहीं छूटि ।।टेक।।
प्रलै काल कहूं कितेक भाष गये इंद्र से ग्रगणित लाष।
ब्रह्मा खोजि परख्यौ गहि नाल कहै कबीर वै राम निराल ।।

सो कछू विचारहु पंडित लोई,
जाके रूप न रेष वरण नहीं कोई ।।टेक।।
उपलैं प्यंड प्रान कहां थे आवैं मुवा जीव जाइ कहां समावे ।
इंद्री कहां करहि विश्रामा सो कत गन गया जो कहता रामा ।।
पंचतत तहां सबद न स्वाद अलप निरंजन विद्या न वाद ।
कहै कबीर मन मनहि समाना तब आगम निगम झूठ करि जाना ।।

पंडित बात बंदते झूठा,
राम कह्यां दुनियां गति पावै पांड कह्या मुख मीठा ।।टेक।।
पावक कह्यां पाव न दाझै जल कहि तृषा बुझाई ।
भोजन कह्या भूख जे भाजै तो सब कोइ तिरि जाई ।।
नरके साथि सूवा हरि बोलै हरि परताप न जानै ।
जो कवहूं उड़जाइ जंगल में बहुरि न सुरतैं आनै ।
साची प्रीति विपै माया सूं हरि भगति सूं हांसी ।।
कहै कबीर प्रेम नहीं उपज्यौ वांध्यौ जमपुरि जासी ।

जौ पैं करता बरण विचार,
तौ जनमत तिनि डांडि किन सारै ।।टेक।।
उतपति व्यंद कहां थे आया,
जोति धरी अरु लागी माया ।।
नहीं को ऊँचा नहीं को नीचा,
जाका प्यंड ताही का सीचा ।।
जे तूं बाभन बमनी जाया,
तौं आन बाट है काहे न आया ।।

जे तूं तुरक तुरंकनी जाया
तौ भीतरि खतना क्यूं न कराया ।।
कहै कबीर मधिम नहीं कोई,
सो मधिम जा मुखि राम न होई ।।

कथता बकता सुरता सोइ आप बिचारै ग्यानी होई ।।टेक।।
जैसें अगिन पवन का मेला चंचल चपल बुधि का खेला ।
नव दरवाजे दसूँ दुवार बूझि रे ग्यानी ग्यान विचार ।।
देही माटी बोले पवना बूझि रे ग्यानी मूवा स कौना ।
मुई सुरति बाद अहंकार, वह मूवा जो बोलनहार ।।
जिस कारनि तटि तीरथि जाहीं, रतन पदारथ घटहीं माहीं ।
पढ़ि पढ़ि पंडित वेद बखानौं, भीतरि हूति बसत न जाणौं ।।
हूं न मूवा मेरी मुई बलाइ, सो न मुवा जो रह्या समाइ ।
कहै कबीर गुरु ब्रह्म दिखाया, मरता जाता नजरि न आया ।।

हम न मरैं मरिहैं संसारा, हम कूं मिल्या जियावनहारा ।।टेक।।
अब न मरौं मरनै मन माना, तेई मुए जिनि राम न जाना ।
साकत मरै संत जन जीवै, भरि भरि राम रसाइन पीवै ।।
हरि मरिहैं तो हमहूं मरिहैं, हरि न मरै हम काहे कूं मरिहैं ।
कहै कबीर मन मनहि मिलावा, अमर भए सुख सागर पावा ।।
कौन मरै कौन जनमैं आई, सरगा नरक कौने गति पाई ।।टेक।।

पंचतत अबिगत थैं उतपनां, एकैं किया निवासा ।
बिछुरे तत फिरि सहजि समाना, रेख रही नहीं आसा ।।
जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहरि भीतरि पानी ।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यहु तत कथौ गियानी ।।
आदैं गगना अंतैं गमनां, मधे गगना भाई ।
कहै कबीर करम कित लागै, झूठी संक उपाई ।।

कौन करै कहु पंडित जना, सो समझाई कहौ हम सना ।।टेक।।
माटी माटी रही समाई, पवनै पवन लिया संगि लाई ।
कहै कबीर सुनि पंडित गुनी, रूप मूवा सब देखै दुनीं ।।

जे को करै मरन है मीठा,
गुरु प्रसाद जिनहीं मरि दीठा ।।टेक।।
मूवा करता मुइज करनी, मुई नारि सुरति बहु धरनी ।।
मूवा आपा मूवा मान, परपंच लेइ मूवा अभिमान ।
राम रमे रमि जे जन मूवा, कहै कबीर अविनासी हूवा ।।

जस तूं तस तोहिं कोई न जान ।
लोग कहैं सब आनहि आन ।।टेक।।
चार वेद चहुं मत का विचार, इहि भ्रमि भूलि परख्यौ संसार ।
सुरति सुमृति दोई कौ बिसवास, वाझि परख्यौ सब आसा पास ।।
ब्रह्मादिक सनकादिक सुर नर, मैं बपुरौ धूं का मैं का कर ।
जिहि तुम्ह तारौ सोई पैं तिरई, कहै कबीर नातर बांध्यौ मरई ।।
लोका तुम्ह ज कहत हौ नंद कौ नंदन नंद कहौ धुं काकौ रे ।
धरनि अकास दोऊ नहिं होते तब यहु नंद कहां थौ रे ।।टेक।।
जामैं मरै न संकुटि आवै नांव निरंजन जाकौ रे ।
अविनासी उपजै नहिं बिनसै संत सुजस कहैं ताकौ रे ।।
लख चौरासी जीव जंत मैं भ्रमत भ्रमत नंद याकौ रे ।
दास कबीर कौ ठाकुर ऐसो भगति करै हरि ताकौ रे ।।

निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई ।
अबिगति की गति लखी न जाई ।।टेक।।
चारि बेद जाकै सुमृत पुराना नौ व्याकरना मरम न जाना ।
सेस नाग जाकै गरड़ समाना चरन कवल कवला नहिं जाना ।।
कहै कबीर जाकै भेदै नाहीं निज जन बैठे हरि की छांही ।।

मैं सबनि मैं औरनि मैं हूं सब ।
मेरी बिलगि बिलगि बिलगाई हो,
कोई कहौ कबीर कोई कहौ राई हो ॥टेक॥
ना हम बार बूढ़ नाहीं हम ना हमरैं चिलकाई हो।
पठए न जाऊं अरवा नहीं आऊं सहजि रहु हरि आई हो ॥
वोढन हमरै एक पछेवरा लोक बोलैं इकताई हो।
जुलहै तनि बुनि पान न पावल फारि बुनी दस ठाँई हो ॥
त्रिगुण रहित फल रमि हम राखल तब हमारौ नाऊ राम राई हो।
जग मैं देखौं जग न देखै मोहि इहि कबीर कछु पाई हो ॥

लोका जानि न भूलौ भाई ।
खालिक खलक खलक में खलिक सब घट रह्यौ समाई ॥टेक॥
अला एकै नूर उपनाया ताकी कैसी निंदा ।
ता नूर थैं सब जग कीया कौन भला कौन मंदा ॥
ता अला की गति नहीं जानीं गुरि गुड़ दीया मीठा ।
कहै कबीर मैं पूरा पाया सब घटि साहिब दीठा ॥

राम मोहिं तारि कहां लै जैहो ।
सो बैकुंठ कहौ धूं कैसा करि पसाव मौंहि दैहो ॥टेक॥
जे मेरे जीव दोइ जानत हौ तौ मोहि मुकति बताओ ।
एक मेक रमि रह्या सबनि मैं तौ काहे भरमावौ ॥
तारण तिरण जबै लग कहिए तब लग तत न जाना ।
एक राम देख्या सबहिन में कहै कबीर मन माना ॥

सोहं हंसा एक समान, काया के गुण आनहि आन ॥टेक॥
माटी एक सकल संसारा, बहु विधि मांडे घड़ै कुंभारा ॥
पंच वरन दस दुहिये गाइ, एक दूध देखौ पतियाइ ॥
कहै कबीर संसा करि दूरि, त्रिभुवन नाथ रह्या भरपूर ॥

प्यारे राम मन ही मना।
कासूं कहूँ कहन कौं नाहीं, दूसर और जनां ।।टेक।।
ज्यूं दरपन प्रतिब्यंब देखिए, आप दवासूँ सोई।
संसौ मिट्यौ एक कौ एकै, महा प्रबल जब होई ।।
जौ रिझऊं तो महा कठिन है, बिन रिझयैं थैं सब खोटी।
कहै कबीर तरक दोइ साधै, ताकी मति है मोटी ।।

काजी कौन कतेब वपानैं।
पढ़त-पढ़त केते दिन बीते, गति एकै नहीं जानैं ।।टेक।।
सकति से नेह पकरि करि सुनति, यहु नवदूं रे भाई।
जौर षुदाई तुरक मोहि करता, तौ आपै कटि किन जाई ।।
हौं तौ तुरक किया करि सुनति, औरति सौं का कहिये।
अरध सरीरी नारि न छूटै, आधा हिंदू रहिये ।।
छाड़ि कतेब राम कहि काजी, खून करत हौ भारी।
पकरी टेक कबीर भगति की, काजी रहे झषमारी ।।

पढ़ि ले काजी वंग निवाजा।
एक मसीति दसौं दरवाजा ।।टेक।।
मन करि मका करि देही, बोलनहार जगत गुरु ये ही।
उहां न दोजग मिस्त मुकांमा, इहां ही राम इहां रहिमांना ।।
बिसमल तामस भरंम क दूरी, पचूं भषि ज्यूं होई सबूरी।
कहै कबीर मैं भया दिवाना, मनवां मुसि मुसि सहजि समाना ।।

मुलां करि ल्यौ न्याव खुदाई ।
इहि विधि जीव का भरम न जाई ।।**टेक**।।
सरजी आनैं देह बिनासै, माटी बिसमल कीता ।
जोति सरूपो हाथि न आया, कहौ हलाल क्या कीता ।।
वेद कतेब कहौ क्यूं झूठा, झूठा जोनि बिचारै ।
सब घटि एक एक जानैं, भी दूजा करि मारै ।
कुकड़ी मारै बकरी मारै, हक हक करि बोलै ।
सबै जीव सांई के प्यारे, उबरहुगे किस बोलै ।।
[illegible] नहीं [illegible] नहीं चीन्हां, उसदा खोज न जानां ।
कहै कबीर भिसति छिटकाई दो जग ही मन माना ।।

या करीम बलि हिकमत तेरी,
खाक एक एक सूरति बहु तेरी ।।**टेक**।।
अर्ध गगन मैं नीर जमाया, बहुत भांति करि नूरनि पाया ।।
अवलि आदम पीर मुलाना तेरी, सिफति करि भए दिवाना ।।
कहै कबीर यहु हेतु विचारा, या रब या रब यार हमारा ।।

काहे री नलिनी तू कुमिलानी,
तेरी ही नालि सरोवर पानी ।।**टेक**।।
जल मैं उतपति जल में बास, जल में नलनी तोर निवास ।।
ना तलि तपति न ऊपर आगि, तोर हेतु कहु कासनि लागि ।।
कहै कबीर जे उदिक समांन, ते नहीं मूए हमारे जान ।।

इब तूं हसि प्रभू मैं कछु नाहीं,
पंडित पढ़ि अभिमान नसाहीं ।।**टेक**
मैं मैं मैं जब लग मैं कीन्हां तब लग मैं करता नहीं चीन्हां ।।
कहै कबीर सुनहु नर नाहा ना हम जीवत न मूंवाले माहा ।।

अब का डरौं डर डरहि समाना,
जब थैं मोर तोर पहिचाना ।।टेक।।
जब लग मोर तोर करि लीन्हा, मैं मैं जनमि जनमि दुःख दीन्हां ।।
आगम निगम एक करि जाना, ते मनवां मन मांहि समाना ।।
जब लग ऊंच नीच करि जाना, ते पसुवा भूले भ्रम नाना ।।
कहै कबीर मैं मेरी खोई, तबहि राम अवर नहीं कोई ।।

अवधू जोगी जग मैं न्यारा ।
मुद्रा निरति सुरति करि सींगी, नाद न षंडै धारा ।।टेक।।
बसै गगन मैं दुनी न देखै, चेतनि चौकी बैठा ।
चढ़ि अकास आसरण नहीं छाड़ै, पीवै महारस मीठा ।।
परगट कंथां मांहै जोगी, दिल मैं दरपन जोवै ।
सहंस इकीस छ सै धागा, निहचल नाकै पोवै ।।
ब्रह्म अगनि में काया जारै, त्रिकुटी संगम जागै ।
कहै कबीर सोई जोगस्वर, सहज सुनि ल्यौ लागै ।।

अवधू गगन मंडल घर कीजै ।
अमृत झरै सदा सुख उपजै, बक नालि रस पीवै ।।टेक।।
मूल बांधि सर गगन समाना, सुषमन यों तन लागी ।
काम क्रोध दोऊ भया पलीता, तहां जोगणी जागी ।।
मनवां जाइ दरीबै बैठा, मगन भया रसि लागा ।
कहै कबीर जिय संसा नाहीं, सबद अनाहद बागा ।।

अवधू मेरा मन मतिवारा ।
उन्मनि चढ़्या गगन रस पीवै, त्रिभुवन भया उजियारा ।।टेक।।
गुड़ करि ग्यान करि महुवा, भव भाठी करि भारा ।
सुषमन नारी सहजि समानीं, पीवै पीवन हारा ।।
दोउ पुड़ जोड़ि चिगाई भाठी, चुया महारस भारी ।
काम क्रोध दोइ किया बलीता, छूटि गई संसारी ।।
सुनि मंडल मैं मंदला बाजै, तहां मेरा मन नाचै ।
गुर प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमता काछै ।।

बोलौ भाई राम की दुहाई ।
इहि रसि सिव सनकादिक माते, पीवत अजहूं न अघाई ।।टेक।।
इला प्यंगुला भाटी कीन्हीं, ब्रह्म अगिन पर जारी ।
ससि हर सूर द्वार दस मूंदे, लागी जोग जुग तारी ।।
मन मतिवाला पीवै राम रस, दूजा कछू न सुहाई ।
उलटी गंग नीर बहि आया, अमृत धार चुवाई ।।
पंच जने सो संग कर लीन्हें, चलत खुमारी लागी ।
प्रेम पियालै पीवन लागे, सोवत नागिनी जागी ।।
सहज सुनि मैं जिन रस चाष्या, सतगुर थैं सुधि पाई ।
दास कबीर इहि रसि माता, कबहूं उछकि न जाई ।।

भाई रे चून बिलूंटा खाई ।
बाघनि संगि भई सबहिन कै, खसम न भेद लहाई ।।टेक।।
सब घर फोरि बिलूंटा खायो, कोई न जाने भेव ।
खसम निपूतौ आंगणि सूतौ, रांठ न देइ लेव ।।
पाड़ोसनि पनि भई बिरानी, मांहि हुई घर घालै ।
पंच सखी मिलि मंगल गावैं, यहु दुःख याकौं सालै ।।
द्वै द्वै दीपक धरि धरि जोरा, मंदिर सदा अँधारा ।
घर घेहर सब आप सवारथ, बाहरि किया पसारा ।।
होत उजाड़ सबै कोई जानै, सब कहू मन भावै ।
कहै कबीर मिलै जे सतगुर, तौ यहु चून छुड़ावै ।।

माया तजू तजी नहीं जाइ ।
फिर फिर माया मोहि लपटाइ ।।टेक।।
माया आदर माया मान, माया नहीं तहां ब्रह्म गियान ।।
माया रस माया कर जान, माया कारनि तजै परान ।।
माया जप तप माया जोग, माया बाँधे सबहि लोग ।।
माया जल थलि माया आकासि, माया व्यापि रही चहुँ पासि ।
माया माता माया पिता, अति माया अस्तरी सुता ।।
माया मारि करै व्यौहार, कहै कबीर मरे मेरा अधार ।।

काहे रे मन दह दिसि धावै ।
विषिया संगि संतोष न पावै ।।टेक।।
जहां-जहां कलपै तहां-तहां बधना ।
रतन कौ थाल कियौ तै रधना ।।
जौ पै सुख पइयत इन मांहीं,
तौ राज छाड़ि कत बन कौं जाहीं ।।
आनंद सहत तजौ विष नारी,
अब क्या झीपै पतित भिषारी ।।
कहै कबीर यहु सुख दिन चारि,
तजि विषिया भजि चरन मुरारी ।।

जियरा जाहि गौ मैं जांनां
जो देख्या सो बहुरि न पेख्या माटी सू लपटाना ।।टेक।।
बाकुल बसतर किता पहरिवा, का तप वनखंडि वासा ।
कहा मुगधरे पांहन पूजै, काजल डारै गाता ।।
कहै कबीर सुर सुनि उपदेसा, लोका पंथि लगाई ।
सुनौ संतौ सुमरौ भगत जन, हरि बिन जनम गवाई ।।

सांई मेरे मन साजि दई एक बेखी,
हस्त लोक अरु मैं तैं बोली ।।टेक।।
इक झंझर समसूत खटोला,
त्रिसनां बाव चहूं दिसि डोला ।।
पांच कहार का मरम न जाना,
एकै कह्या एक नहीं मांनां ।।
भूमर धाम ऊहार न छावा,
नैहरि जाति बहुत दुख पावा ।।
कहै कबीर वर यह दुख सहिए,
राम प्रीति करि सगहीं रहिये ।।

झूठे तन कौ कहा रखइए,
मरितै तौ पल भरि रहण न पइये ।।टेक।
पीर पांड़ घृत प्यंड संवारा,
प्रान गये ले बाहरि जारा ।।
चोबा चंदन चरचत अंगा,
सो तन जरै काठ के संगा ।।
दास कबीर यहु कीन्ह विचारा,
इक दिन ह्वै है हाल हमारा ।।

देखहु यहु तन जरता है,
घड़ी पहर विलंबौ रे भाई जरता है ।।टेक।।
काहे कौं एता किया पसारा,
यहु तन जरि बरि ह्वै है छारा ।।
नव तन द्वादस लागी आगी,
मुगध न चेतै नख सिख जागी ।।
काम क्रोध घट भरे बिकारा,
आपहि आप जरै संसारा ।।
कहै कबीर हम मृतक समाना,
राम नाम छूटे अभिमाना ।।

तन राखनहारा को नाहीं,
तुम्ह सोचविचारि देखौ मन मांही ।।टेक।।
जौर कुटंब अपनौं करि पारचो,
मूंड ठोकि ले बाहरि जारचो ।।
दगाबाज लूटैं अरु रोवैं,
जारि गाड़ि पुर षाजहिं षोवैं ।।
कहत कबीर सुनहु रे लोई,
हरि बिन राखनहार न कोई ।।

राम थोरे दिन कौं का धन करनां,
धंधा बहुत निहाइति मरना ।।टेक।।
कोटी धज साह हस्ती बध राजा,
क्रिपन को धन कौनैं काजा ।।
धन कै गरब राम नहीं जाना,
नागा ह्वै जम पै गुदराना ।।
कहै कबीर चेतहु रे भाई,
हंस गया कछु संग न जाई ।।

मेरी मेरी दुनियां करते, मोह मछर तन धरते ।
आगैं पीर मुकदम होते, वे भी गए यौं करते ।।टेक।।
किसकी ममां चचा पुनि किसका, किसका पगुड़ा जोई ।
यह संसार बजार मड्या है, जानैगा जन कोई ।।
मैं परदेसी काहि पुकारौं, इहां नहीं को मेरा ।
यहु संसार ढूंढि सब देखा, एक भरोसा तेरा ।।
खांहि हलाल हराम निवारैं, भिस्त तिनहु कौं होइ ।
पंच तत का मरम न जानै, दोजगि पड़िहैं सोइ ।।
कुटुंब कारणि पाप कमावै, तू जांणौं घर मेरा ।
ए सब मिले आप सवारथ, इहां नहीं को तेरा ।।
सायर उतरौ पंथ संवारौ, बुरा न किसी का करणां ।
कहै कबीर सुनहु रे संतो, ज्वाब खसम कू भरणां ।।

रे या मैं क्या मेरा क्या तेरा,
लाज न मरहि कहत घर मेरा ।।टेक।।
चारि पहर निस भोरा, जैसे तरवर पंषि बसेरा ।
जैसे बनियें हाट पसारा, सब जग का सो सिरजनहारा ।।
ये ले जारे वै ले गाड़े, इनि दुखिइनि दोऊ घर छाड़े ।
कहत कबीर सुनहु रे लोई, हम तुम्ह विनसि रहैंगा सोई ।।

नर जाणैं अपर मेरी काया, घर घर बात दुपहरी छाया ।।टेक।।
मारग छांड़ि कुमारग जावै, आपण मरै और कूं रोवैं।
कछू एक किया कछू एक करणां, मुगध न चेतै निहचै मरणां।।
ज्यूं जल बूंद तैसा संसारा, उपजत बिनसत लगै न बारा।
पंच पंषुरिया एक सरीरा, कृष्ण कमल दल भवर कबीरा।।

मन रे अहरषि बाद न कीजै, अपना सुकृत भरि भरि लीजै ।।टेक।।
कुंभरा एक कमाई माटी, माटी, बहु विधि जुगति बणाई।
एकनि मैं मुकताहलि मोती, एकत व्याधि लगाई।।
एकनि दीना पाट पटंबर, एकनि सेज निवारा।
एकनि दीनी गरै गूदरी, एकनि सेज पयारा।।
सांची रही सूंम की संपति, मुगध कहै यहु मेरी।
अंत काल जब आइ पहूंता, छिन मैं कीन्ह न बेरी।।
कहत कबीर सुनों रे संतो, मेरी मेरी सब झूठी।
चड़ा चीथड़ा चूहड़ा ले गया, तणीं तणगती टूटी।।

हड़ हड़ हड़ हड़ हंसती है, दीवानपना क्या करती है।
आडी तिरछी फिरती है, क्या च्यों च्यों म्यौं म्यौं करती है ।।टेक।।
क्या तू रंगी क्या तूं चंगी, क्या मुख लोडें कीन्हा।
मीर मुकदम सेर दीवानी, जंगल केर षजीना।।
भूले भरमि कहा तुम्ह राते, क्या मदुमाते माया।
राम रंगि सदा मतिवाले, काया होइ निकाया।।
कहत कबीर सुहाग सुंदरी, हरि भजि है निस्तारा।
सारा खलक खराब किया है, मानस कहा विचारा।।

हरि जननी मैं बालिक तेरा,
काहे न औगुण बकसहु मेरा ।।टेक।।
सुत अपराध करे दिन केते, जननी के चित रहें न तेते।।
कर गहि केस करै जौ धाता, तऊ न हेत उतारै माता।
कहै कबीर एक बुधि बिचारी, बालक दुखी दुखी महतारी।।

मैं गुलाम मोहिं बेचि गुसाईं,
तन मन धन मेरा रामजी कै ताईं ॥टेक॥
आनि कबीरा हाटि उतारा।
सोई गाहक सोई बेचनहारा॥
बेचे राम तो राखे कौन।
राखै राम तो बेचै कौन॥
कहै कबीर मैं तन-मन जार्‌या।
साहिब अपना छिन न बिसार्‌या॥

हरि मेरा पीव माई हरि मेरा पीव,
हरि बिन रहि न सके मेरा जीव।
हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया,
राम बड़े मैं छुटक लहुरिया।
किया स्यंगार मिलन कै तांई,
काहे न मिलो राजा राम गुसाईं।
अब की बेर मिलन जो पाऊँ,
कहैं 'कबीर' भौजल नहिं आऊँ।

किया सिंगार मिलन कै तांई,
हरि न मिले जग-जीवन गुसांई।
हरि मेरो पि रहो हरि की बहुरिया,
राम बड़े मैं तनक लहुरिया।
धनि पिय एकै संग बसेरा,
सेज एक पै मिलन दुहेरा।
धन्न सुहागिन जो पिय भावै,
कहि कबीर फिर जनमि न आवै।

अवधू ऐसा ज्ञान विचारी
ताथे भई पुरिष थें नारी।
नां हूँ परनी ना हूँ क्वांरी
पूत जन्यू द्यौ हारी,
काली मूड़ कौ एक न छोड्यो
अजहूँ अकन कुवांरी।
ब्राह्मन कै ब्रम्हनेठी कहियो
जोगी कें घरि चेली,
कालिमा पढ़ि-पढ़ि भई तुरकनी
अजहूँ फिरों अकेली।
पीहरि जाऊँ न रहूँ सासुरै
पुरषहि अंगि न लाऊँ,
कहै कबीर सुनहु रे सन्तो
अंगहि अँग न छुवाऊँ।

मैं सासने पीव गौंहनि आई।
सांई संग साध नहीं पूगी
गयो जोबन सुपिना की नांई।
पंच जना मिलि मंडप छायो
तीनि जनां मिलि लगन लिखाई,
सखी सहेली मंगल गावें
सुख-दुःख माथै हलद चढ़ाई।
नाना रंगैं भांवरि फेरी
गांठि जोरि बैठे पति ताई,
पूरि सुहाग भयो बिन दुल्हा
चौक कै रंगि धर्‌यो सगौ भाई।
अपने पुरिप मुख कबहुँ न देख्यो
सती होत समभी समभाई,
कहै कबीर हूँ सर रचि मरिहूँ
तिरौ कंत लै तूर बजाई।

कब देखूँ मेरे राम सनेही,
जा बिन दुख पावै मेरी देही।
हूँ तेरा पंथ निहारूँ स्वामी,
कब रे मिलहुगे अंतरजामी।
जैसे जल बिन मीन तलपै,
ऐसे हरि बिन मेरा जियरा कलपै।
निस दिन हरि बिन नींद न आवै,
दरस पियासी राम क्यों सचुपावै।
कहै कबीर अब बिलंब न कीजै,
अपनों जानि मोहि दरसन दीजै।

हरि कौ बिलोवनौं बिलोइ मेरी माई,
ऐसौ बिलोई जैसे तत न जाई।
तन करि मटकी मनहिं बिलोइ,
ता मटकी में पवन समोइ।
इला प्यंगुला सुषमन नारी,
वेगि बिलोइ ठाढ़ी छछिहारी।
कहै कबीर गुजरी बौरानी,
मटकी फूटी जोति समानी।

भलैं नींदौ भलैं नींदौ भलैं नींदों लोग,
तन-मन राम पियारे जोग।
मैं बौरी मेरे राम भतार,
ता कारनि रचि करों सिंगार।
जैसे धुबिया रज मल धोवै,
हर तप रत सब निंदक खोवै।
निंदक मेरे माई-बाप,
जनम-जनम के काटे पाप।

निंदक मेरे प्रान आधार,
बिन बेगारि चलावै भार।
कहै कबीर निंदक बलिहारी,
आप रहै जन पार उतारी।

जो चरखा जरि जाय बड़ैया ना मरै।
मैं कातों सूत हज़ार चरखुला जिन जरै।
बाबा मोर ब्याह कराव अच्छा बरहि तकाय,
जौ लौं अच्छा वर न मिलै तौ लौं तुवहिं बिहाय।
प्रथमें नगर पहूँचते परि गौ सोग संताप,
एक अचंभा हम देखा जो बिटिया ब्याहल बाप।
समधी के घर समधी आए आए बहू के भाय,
गोड़े चू हा दै दै चरखा दियो दिढ़ाय।
देव लोक मर जायेंगे एक न मरै बढ़ाय,
यह मन रंजन कारणै चरखा दियो दिढ़ाय,
कहहि कबीर सुनौ हो संतो चरखा लखै जो कोय,
जो यह चरखा लखि परै ताको आवागमन न होय।

परौसनि मांगे कंत हमारा
पीव क्यूं बौरी मिलहि उधारा।
मासा मांगे रती न देउं
घटै मेरा प्रेम तो कासनि लेउं।
राखि परोसनि लरिका मोरा,
जे कछु पाउं सु आधा तोरा।
बन-वन ढूंढौं नैन भरि जोऊँ,
पीव न मिलै तो विलखि करि रोउँ।
कहै कवीर यहु सहज हमारा,
बिरली सुहागिन कंत पियारा।

हरि ठग जग की ठगौरी लाई।
हरि के वियोग कैसे जीऊँ मेरी माई।
कौन पुरिष को काकी नारी
अभिअंतर तुम्ह लेहु विचारी।
कौन पूत को काको बाप,
कौन मरे कौन करै संताप।
कहै कबीर ठग सों मन माना,
गई ठगौरी ठग पहिचाना।

को बीनै प्रेम लागौ री, माई को बीनै।
राम रसायन माते री, माई को बीनै।
पाई पाई तू पुतिहाई,
पाई की तुरिया बेच खाई री, माई को बीनै।
ऐसे पाई पर विथुराई,
त्यूं रस आनि बनायो री, माई को बीनै।
नाचै ताना नाचै बाना,
नाचै कूंच पुराना री, माई को बीनै।
करगहि बैठि कबीरा नाचै,
चूहै काट्या ताना री, माई को बीनै।

बहुत दिनन थैं मैं प्रीतम पाये,
भाग बड़े घर बैठे आये।
मंगलचार मांहि मन राखों,
राम रसायन रसना चाखों।
मंदिर मांहि भया उजियारा,
लै सूती अपना पीव पियारा।
मैं रे निरासी जै निधि पाई,
हमहिं कहा यहु तुमहिं बड़ाई।
कहै कबीर मैं कछू न कीन्हा,
सखी सुहाग राम मोहिं दीन्हा।

अब मोहिं ले चल नणद के बीर,
अपने देसा ।
इन पंचन मिलि लूटी हूँ
कुसंग आहि विदेसा ।
गंग तीर मोरि खेती बारी
जमुन तीर खरिहाना,
सातों विरही मेरे नीपजे
पंचू मोर किसाना ।
कहै कबीर यहु अकथ कथा है
कहता कही न जाई,
सहज भाइ जिहि ऊपजै
ते रमि रहै समाई ।

मेरे राम ऐसा खीर बिलोइतै ।
गुरु मति मनुवा अस्थिर राखहु
इन विधि अमृत पिओइयै ।
गुरु कै बाणि बजर कल छेदी
प्रगट्या पद परगासा,
शक्ति अधेर जेबड़ी भ्रम चूका
निहचल सिव घर बासा ।
तिन बिनु बाणै धनुष चढ़ाइयै
इहु जग बेध्या भाई,
दह दिसि बूड़ी पवन झुलावै
डोरि रही लिव लाई ।
उनमन मनुवा सुन्नि समाना
दुविधा दुर्मति भागी,
कहु कबीर अनुभौ इकु देख्या
राम नाम लिव लागी ।

उलटि जात कुल दोऊ बिसारी,
सुन्न सहज महि बुनत हमारी।
हमरा झगरा रहा न कोऊ,
पंडित मुल्ला छाड़ै दोऊ।
बुनि-बुनि आप पहिरावों,
जहं नहीं आप तहाँ ह्वै गावों।
पंडित मुल्ला जो लिखि दिया,
छांड़ि चले हम कछू न लीया।
रिदै खलासु निरखि ले मीरा,
आपु खोजि खोजि मिलै कबीरा।

जन्म-मरन का भ्रम गया गोविंद लव लागी।
जीवन सुन्न समानिया
गुरु साखी जागी।
कासी ते धुनि उपजै
धुनि कासी जाई,
कासी फूटी पंडिता
धुनि कहां समाई।
त्रिकुटी संधि मैं पेखिया
घटहू घट जागी,
ऐसी बुद्धि समाचारी
घट माँहि तियागी।
आप आपते जानिया
तेज तेज समाना,
कहु कबीर अब जानिया
गोविंद मन माना।

गगन रसाल चुए मेरी भाठी।
संचि महारस तन भया काठी।
वाकों कहिए सहज मतिवारा,
जीवत राम रस ज्ञान विचारा।

सहज कलालनि जौ मिलि आई,
आनंदि माते अनदिन जाई।
चीन्हत चीत निरंजन लाया,
कहु कबीर तौ अनुभव पाया।

अब न बसूं इहि गांइ गुसांई,
तेरे नेवगी खरे सयाने हो राम।
नगर एक यहां जीव धरम हता
बसैं जु पंच किसाना,
नैनूं निकट श्रवनूं रसनूं
इंद्री कह्या न मानें हो राम।
गांइकु ठाकुर खेत कुनापै
काइथ खरच न पारै,
जौरि जेबरी खेति पसारै
सब मिलि मोको मारै हो राम।
खोटो महतो विकट बलाही
सिर कसदम का पारै,
बुरौ दिवान दादि नहिं लागै
इक बांधैं इक मारै हो राम।
धरम राइ जब लेखा मांगा
बाकी किकसी भारी,
पांचि किसाना भाजि गये हैं
जीव धर बांध्यो पारी हो राम।
कहै कबीर सुनहु रे संतो
हरि भजि बाँध्यो भेरा,
अब की बेर बकसि बंदे कों
सब खत करौं निबेरा

राम बिन तन की ताप न जाई ।
जल में अगनि उठी अधिकाई ।।**टेक**।।
तुम्ह जलनिधि में जलकर मीना ।
जल में रहौं जलहि बिन पीना ।।
तुम्ह पिंजरा में सुवना तोरा ।
दरसन देहु भाग बड़ नोरा ।।
तुम्ह सतगुर मैं नोतम चेला ।
कहैं कबीर राम रंमू अकेला ।।

मन रे हरि भजि हरि भजि हरि भजि भाई ।
जा किन तेरा कोई नाहीं ता दिन राम सहाई ।।**टेक**।।
तंत न जानूं मत न जानूं जानूं, सुन्दर काया ।
मीर मलिक छत्रपति राजा, ते भी खाये माया ।।
वेद न जानूं भेद न जानूं, एकहि रामा ।
पंडित दिसि पछिवारा कीन्ह, मुख कीन्हौं जित नामा ।।
राजा अंबरीक कै कादणि, चक्र सुदरसन जारै ।
दास कबीर कौ ठाकुर ऐसो, भगत की सरन ऊबारै ।।

डगमग छांड़ि दे मन बौरा ।
अब तौ जरें बरें बनि आवै, लीन्हो हाथ सिधौरा ।।**टेक**।।
होई निसंक-मगन है नाचो, लोभ मोह भ्रम छाड़ौ ।
सूरौ कहा मरत थैं डरपै, सती न संचै भाड़ो ।।
लोक बेद कुल की मरजादा, इहै गलै मैं पासी ।
आधा चलि करि पीछा फिरिहैं, है है जग मैं हासी ।।
यहु संसार सकल है मेला, राम कहैं ते सूचा ।
कहै कबीर नाव नहीं छांड़ौ, गिरत वरत चढ़ि ऊँचा ।।

का सिधि साधि करौं कुछ नाहीं,
राम रसाइन मेरी रसना माहीं ।।टेक।।
नहीं कुछ ग्यान ध्यान सिधि जोग, ताथैं उपजै नाना रोग ।
का बन मैं बसि भये उदास, जे मन नहीं छाड़ै आसा पास ।।
सब कृत काच हरी हित सार, कहैं कबीर तजि जग व्यौहार ।

चलौ बिचारी रहौ संभारी, कहता हूँ ज पुकारी ।
राम नाम अंतर गति नाही, तौ जनम जुवा ज्यूं हारी ।।टेक।।
मूंड़ मुड़ाई फूलि का बैठे, काननि पहरि मंजूसा ।
बाहरि देह षेह लपटानी, भीतरि तो घर मूसा ।।
गालिब नगरी गांव बसाया, हाम काम अहंकारी ।
घालि रसरिसा जब जम खैंचे, तब का पति रहै तुम्हारी ।।
छांड़ि कपूर गांठि विष बांध्यौ, मूल हुवा न लाहा ।
मेरे राम की अभय पद नगरी, कहै कबीर जुलाहा ।।

ते हरि के आवैहि किहि कामा ।
जे नहीं चीन्हैं आतमरामा ।।टेक।।
थोरी भगति बहुत अहंकारी ।
ऐसे भगता मिलै अपारा ।।
भाव न चीन्हैं हरि गोपाला ।
जानि अरहट कै गलि माला ।।
कहै कबीर जिनि गया अभिमाना ।
सो भगता भगवंत समाना ।।

कहा भयौ रचि स्वांग बनायौ ।
अंतरिजामी निकटि न आयौ ।।टेक।।
विषई बिषै ढिठावै गावै ।
राम नाम मनि कबहूँ न भावै ।।

पापी परलै जाहि अभागे।
अमृत छाड़ि विषै रसि लागे ।।
कहै कबीर हरि भगति न साधै ।
भग मुषि लागि मूये अपराधी ।।

सब दुनीं सयानीं मैं बौरा ।
हम बिगरे बिगरौ जिनि औरा ।।टेक।।
मैं नाहीं बौरा राम कियौ बौरा ।
सतगुर जारि गयौ भ्रम मोरा ।।
विद्या न पढ़ूं वाद नहीं जानूं ।
हरि गुन कथत सुनत बौरानूं ।।
काम क्रोध रोऊ भये विकारा ।
आपहि आप जरै संसारा ।।
मीठी कहा जाहि जो भावै ।
दास कबीर राम गुन गावै ।।

अब मैं राम सकल सिति पाई ।
आन कहूँ तौ राम दुहाई ।।टेक।।
इहि चिति चापि सब रस रीठा ।
राम नाम सा और न मीठा ।।
औरै रसि है है कफ गाता ।
हरि रस अधिक अधिक सुखदाता ।।
दूजा बणिज नहीं कछु बाषर ।
राम नाम दोऊ तत आषर ।।
कहै कबीर जे हरि रस भोगी ।
ताकूं मिल्या निरंजन जोगी ।।

रे मन जाहि जहां तोहि भावै ।
अब न कोई तेरे अंकुस लावै ।।टेक।।
जहां-जहां जाइ तहां-तहां रामा ।
हरि पद चीन्हि कियौ बिश्रामा ।।
तन रंजित तब दुखियत दोई ।
प्रगट्यौ ग्यान जहां-तहां सोई ।।
लीन निरंतर बपु बिसराया ।
कहै कबीर सुख-सागर पाया ।।

बहुरि हम काहे कूं आवहिगे ।
बिछुरे पंचतत की रचना, तब हम रामहि पांवहिगे ।।टेक।।
पृथी का गुण पाणी सोष्या, पानी तेज मिलावहिगे ।
तेज पवन विलि पवन सबद मिलि, सहज समाधि लगावंहिगे ।।
जैसे बहु कंचन के भूषन, ये कहि गालि तवावंहिगे ।
ऐसे हम लोक बेद के बिछुरे, सुनिहि मांहि समांबहिगे ।।
जैसे जलहि तरंग तरंगनीं एसै हम दिखलावहिगे ।
कहै कबीर स्वामी सुखसागर, हंस मिलावहिगे ।

अवधू काम धेन गहि बांधी रे ।
भांडा भजन करे सबहिन का कछू न सूझै आंधी रे ।।टेक।।
जौ व्यावै तौ दूध न देहई, ग्यामण अमृत सरवै ।
कौली घाल्या बीडरि चालै, ज्यूं घरौं त्यूं दरवै ।
तिहिं धेन थैं इंछया पूगी, पाकडि खूटैं बांधी रे ।
ग्वाड़ा माहैं आनंद उपनौं, खूटै दोऊ बांधी रे ।।
साईं माई सासु पुनि साईं, साईं याकी नारी ।
कहै कबीर परम पद पाया, संतौ लेहु विचारी ।।

ऐसा ग्यान बिचारि लै लै लाइ ल ध्याना ।
सुनि मंडल मैं घर किया, जैसे रहै सिचांना ।।टेक।।
उलट पवन कहां राखिये, कोई भरम विचारै ।
साधै तीर पताल कूं, फिरि गगनहि मारै ।।
कंसा नाद बजाव ले, धुनि निमसि ले कंसा ।
कंसा फूटा पंडिता, धुनि कहां निवासा ।।
प्यंड परे जीव कहां रहै, कोई मरम लखावै ।
जीवत जिस घरि जाइये, उघै मुषि नहीं आवै ।।
सतगुर मिलै त पाईये, ऐसी अकथ कहाणी ।
कहै कबीर संसा गया, मिले सारंग पाणी ।।
अकथ कहांणी प्रेम की कछू कही न जाई ।

गूंगे केरी सरकरा बैठे मुसकाई ।।टेक।।
भीमि बिना अरु बीज बिन तरवर एक भाई ।
अनत फल प्रकासिया गुर दिया बताई ।।
मन थिर बैसि बिचारिया रामहि ल्यौ लाई ।
झूठी अन मैं गिस्तरी सब थोथी बाई ।।
कहै कबीर सकति कछु नाहीं गुर भया सहाई ।
आवण जाणी मिटि गई, मन मनहि समाई ।।

जाइ पूछौ गोविंद पढिया पंडिता, तेरा कौन गुरू कौन चेला ।
अपणों रूप कौं आपहि जाणों, आपैं रहैं अकेला ।।टेक।।
बांझ का पूत बाप बिन जाया, बिन पाऊं तरवरि चढ़िया ।
अस बिन पाषर गज बिन गुड़िया, बिन षंडे संगाम जुड़िया ।।
बीज बिन अंकुर पेड़ बिन तरवर, साषा तरवर फलिया ।
रूप बिन नारी पुहप बिन परमल, बिन नीरे सरवर नरिया ।।

देव बिन देहुरा पत्र बिन पूजा, बिन पाषां भवर बिलंबिया।
सूरा होइ सो परम पद पावै, कीट पतंग होइ सब जरिया॥
दीपक बिन जोति जोति बिन दीपक, हद बिन अनाहद सबद बागा।
चेतना होइ सु चेति लीज्यौ, कबीर हरि के अंगि लागा॥

ऐसा अद्भुत् मेरे गुरि कथ्या मैं रह्या उमेषै।
मूसा हस्ती सौं लडै कोई बिरला पेषै॥टेक॥
मूसा पैठा बांबि मैं, लारै सापणि धाई।
उलटि मूसै सापणि गिली, यहु अचिरज भाई॥
चींटी परबत ऊपण्यां ले राख्यौ चौडै।
मुर्गा मिनकी सू लडै, झल पाड़ी दौड़े॥
सुरहीं चूंपै बछतलि, बछा दूध उतारै।
ऐसा नवल गुणी भया, सारदूलहि मारै॥
भील लुक्या बन बीझ मैं, ससा सर मारै।
कहै कबीर ताहि गुर करौं, जो या पदहि बिचारै॥

अवधू जागत नींद न कीजै।
काल न खाई कलप नहीं व्यापै, देही जुरा न छीजै॥टेक॥
उलटी गंगा समुद्रहिं सोखै, ससिहर सूर गरासै।
नव ग्रिह मारि रोगिया बैठे, जल मैं व्यंब प्रकासै॥
डाल गह्या थैं मूल न सूझै, मूल गह्यां फल पावा।
बंबई उलटि शरप कौं लागी, धरणि महा रस खावा॥
बैठि गुफा मैं सब जग देख्या, बाहिर कछू न सूझै।
उलटै धनकि पारधी मार्यौ, यहु अचरज कोइ बूझै॥
औंधा घड़ा न जल मैं डूबै, सूधा सूभर भरिया।
जाकौं यहु जग घिणा करि चालै, ता प्रसाद निस्तरिया॥

अंबर बरसै धरती भीजै, यहु जाणै सब कोई।
धरती बरसै अंबर भीजै, बूझै बिरला कोई।।
गावणहारा कदे न गावै अणबोल्या नित गावै।
नटवर पेषि पेषना पेषै अनहद बेन बजावै।।
कहणीं रहणीं निज तत जाणैं, यहु सब अकथ कहाणीं।
धरती उलटि अकासहि ग्रासै, यहु पुरिसा की बाणीं।।
बाझ पियालै अमृत सोख्या, नदी नीर भरि राख्या।
कहै कबीर ते बिरला जोगी, धरणि महारस चाख्या।।

राम गुन बेलड़ी रे, अवधू गोरखनाथ जांणी।
नाति सरूप न छाया जाकैं, बिरध करै बिन पांणीं।।टेक।।
बेलड़िया द्वै अणीं पहूंती, गगन पहूंती सैली।
सहज बेलि जब फूलणि लागी, डाली कूपल मेल्ही।।
मन कुंजर जाइ बाड़ी बिलंब्या, सतगुर बाही बेली।
पंच सखी मिलि पवन पयंप्या बाड़ी पांणी मेल्ही।।
काटत बेली कूपले मेल्ही सींचताड़ी कुमिलांणीं।
कहै कबीर ते बिरला जोगी सहज निरंतर जाणीं।।

राम राइ अविगत बिगति न जानं।
कहि किम तोहि रूप बषानं।।टेक।।
प्रथमे गगन कि पुहमि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पवन कि पाणीं।
प्रथमे चंद कि सूर प्रथमे, प्रभू प्रथमे कौन बिनाणीं।।
प्रथमे प्राण कि प्यंड प्रथमे, प्रभू प्रथमे रकत कि रेतं।
प्रथमे पुरिष कि नारि प्रथमे प्रभू, प्रथमे बीज कि खेतं।।
प्रथमे दिवस कि रणि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पाप कि पुन्यं।
कहै कबीर जहां बसहु निरंजन, तहां कुछ आहि कि सुन्यं।।

अवधू सों जोगी गुर मेरा, जों या पद का करै नबेरा ।।टेक।।
तरवर एक पेड़ बिन ठाड़ा, बिन फूला फल लागा ।
साखा पत्र कछु नहीं वाकै, अष्ठ गगन सुख बागा ।
पैर बिन निरति करा बिन बाजै, जिभ्या हीणां गावै ।
गावणहारे कै रूप न रेखा, सतगुर होइ लखावै ।।
पंषी का खोज मीन का मारग, कहै कबीर विचारी ।
अपरंपार पार परसोंतम, वा मूरति की बलिहारी ।।

अब मैं जांणिबौ रे केवल राइ की कहांणीं ।
मंझा जोती राम प्रकासै, गुर गमि बांणीं ।।टेक।।
तरवर एक अनंत मूरति, सुरता लेहु पिछांणीं ।
साखा पेड़ फूल फल नांही, ताकी अमृत बांणीं ।।
पुहप वास भवरा एक राता, बारा ले डर धरिया ।
सोलह मझैं पवन झकोरै, आकासे फल फलिया ।।
सहज समाधि बिरष यहु सोंच्या, धरती जल हर सोंष्या ।
कहै कबीर तास मैं चेला, जिनि यहु तरवर पेष्या ।।

रे मन बैठि कितै जिनि जासी,
हिरदै सरोबर है अबिनासी ।।टेक।।
काथा मधे कोटि तीरथ, काथा मधे कासी ।
काथा मधे कवलापति, काया मधे बैकुंठवासी ।।
उलटि पवन षटचक्र निवासी, तीरथराज गंग तट बासी ।
गगन मंडल रबि ससि दोइ तारा, उलटी कूंची लागि किबारा ।।
कहै कबीर भई उजियारा, पंच मारि एक रह्यौ गिनारा ।

आई गवनवां की सारी, उमिरि अबहीं मोरी बारी।
साज समाज पिया लै आये, और कहरिया चारी।
बम्हना बेदरदी अचरा पकरि कै, जोरत गठिया हमारी।

सखी सब पारत गारी।
विधि गति वाम कछु समझ परत ना, बैरी भई महतारी।
रोय रोय अंखियां मोर पोंछत, घरवां से देत निकारी।

भई सब कौ हम भारी।
गवन कराय पिया लै चाले, इत उत वाट निहारी।
छूटत गांव नगर से नाता, छूटै महल अटारी।

करम गति टरै नाहिं टरू।
नदिया किनारे बलम मोर रसिया, दीन्ह घुंघट पट टारी।
थरथराय तन कांपन लागे, काहू न देख हमारी।

पिया लै आये गोहारी।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह पद लेहु बिचारी।
अब के गौना बहुरि नहिं औना, करिले भेंट अंकबारी।

एक बेर मिलि ले प्यारी।
यही घड़ी यह बेला साधो ॥टेक॥
लाख खरच फिर हाथ न आवै, मानुष जनम सुहेला।
ना कोई संगी ना कोई साथी, जाता हंस अकेला ॥
क्यों सोया उठि जागु सबेरे, काल मरेदा सेला।
कहत कबीर गुरू गुन गावो, झूठा है सब मेला ॥

करम गति टारे नाहिं टरी ॥टेक॥
मुनि बशिस्ट से पंडित ज्ञानी, सोधि के लगन धरी।
सीता हरन मरन दसरथ को, बन में बिपति परी॥
कहं वह फंद कहां वह पारधि, कहं वह मिरग चरी।
सीता को हरि लेग्यो रावन, सोने की लंक जरी॥
नीच हाथ हरिचंद बिकाने, बलि पाताल धरी।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृग, गिरगिट जोनि परी॥
पांडव जिनके आपु सारथी, तिन पर विपति परी।
दुर्जोधन को गर्ब घटायो, जदु कुल नास करी॥
राहु केतु औ भानु चंद्रमा, विधि से जाग परी।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, होनी हो के रही॥

बीती बहुत रही थोरी सी ॥टेक॥
खाट पड़े नर भीखन लागे, निकसि पान गयो चोरी सी।
भाई वंद कुटुंब अब आये, फूक दियो मानों होरी सी॥
कहै कबीर सुनो भई साधो, सिर पर देत हैं भौंरी सी।

चल सतगुरु की हाट, ज्ञान बुधि लाइये।
कीजे साहिब से हेत, परम पद पाइये॥
सतगुरु सब कुछ दीन्ह, देत कछु ना रह्यो।
हमहिं अभागिनि नारि, सुख तजि दुख लह्यो॥
गई पिया के महल, पिया संग ना रची।
हृदे कपट रह्यो छाय, मान लज्जा भरी॥
जहवां गैल सिलहली, चढ़ौं गिरि-गिरि पड़ौं।
उठौं सम्हारि सम्हारि, चरन आगे धरौं॥
जो पिय मिलन की चाह, कौन तेरे लाल हो।
अधर मिलो न जाय, भला दिन आज हो॥

भला बन संजोग, प्रेम का चोलना ॥
तन-मन अरपौ सीस, साहिब हंस बोलना ।
जो गुरु रूठे होयं, तो तुरत मनाइये ।
हुइये दीन अधीन, चूक बकसाइये ॥
जो गुरु होय दयाल, दया दिल हेरि हैं ।
कोटि करम कटि जायं, पलक छिन फेरि हैं ॥
कहै कबीर समुझाय, समुझ हिरदे धरो ।
जुगन-जुगन करो राज, ऐसी दुर्मति परिहरो ।

बालम आओ हमारे गेह रे, तुम बिन दुखिया देह रे ॥टेक॥
सब कोई कहै तुम्हारी नारी, सो को यह संदेह रे ।
एक मेक ह्वै सेज न सौवै, तब लगि कैसो सनेह रे ॥
अन्न न भावै नींद न आवै, गृह बन धरै न धीर रे ।
ज्यों कामी को कामिनि प्यारी, ज्यों प्यासे को नीर रे ॥
है कोई ऐसा परउपकारी, पिय से कहै सुनाय रे ।
अब तो बेहाल कबीर भयो है, बिन देखे जिव जाय रे ॥

ये अंखियां अलसानी हो, पिय सेज चलो ॥टेक॥
खंभ पकरि पतंग अस डोलै, बोलै मधुरी बानी ।
फुलन सेज बिछाय जो राख्यो, पिया बिना कुम्हिलानी ॥
धीरे पांव धरौ पलंगा पर, जागत ननद जिठानी ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, लोक लाज बिलछानी ॥

प्रीति लगी तुम नाम की, पल बिसरै नाहीं।
नजर करो अब मिहर की, मोहि मिलौ गुसाईं ॥
विरह सतावै मोहि को, जिव तड़पै मेरा।
तुम देखन की चाव है, प्रभु मिला सबेरा ॥
नैना तरसै दरस को, पल पलक ना लागै।
दर्दवंद दीदार का, निसि बास जागै ॥
जो अब कें प्रीतम मिलैं, करु निमिख न न्यारा।
अब कबीर गुरु पाइया, मिला प्रान पियारा ॥

मन लागो मेरो यार फकीरी में ॥**टेक**॥
जो सुख पावो नाम भजन में, सो सुख नाहि अमीरी में।
भला बुरा सब को सूनि लीजै, कर गुजरान गरीबी में ॥
प्रेम नगर में रहनि हमारी, भलि बनि आई सबूरी में।
हाथ में कूड़ी बगल में सोटा, चारो दिसि जागीरी में ॥
आखिर यह तन खाक मिलौगा, कहा फिरत मग़रूरी में।
कहै कबीर सुनो भाई साधो साहिब मिलै सबूरी में ॥

घूंघट का पट खोल रे, तो-को पीव मिलैंगे ॥**टेक**॥
घट-घट में वहि सांई रमता, कटुक बचन मत बोल रे।
धन जोबन का गर्व न कीजै, झूठा पचरंग चोल रे।
सुन्न महल में दियना बारि ले, आसा से मत डोल रे।
जोग जुगत से रंग महल में, पिय पाये अनमोल रे।
कह कबीर आनंद भयो है, बजता अनहद ढोल रे।

गुरु नानक की बानी

साचा नामु अराधिया, जन्म लै भन्न जाहि।
नानक करनी सार है, गुरमुख घड़िया राहि॥
क्या लीता धनवंतिया, क्या छोड़्या निर्धनियां।
नानक सच्चे नाम विनु, अग्गे दोवें सक्खणियां॥
इक सूही दूजी सोहणी, तीजी सो भावंती नारि।
सुइने रुप्पे पच्चरी, नानक विनु नावें कुड़्यार॥
अट्ठे पहर मचंदड़ा, कच्चै कूड़े कम।
नाम अराधन ना मिले, नानक हीन करम॥
सहस स्याणप नाम विनु, करि देखै सभि वाद।
सोई स्याणप नानका, इरदे जिनके याद॥
भूषण पहिरे भोजन खाये फूल वहे नर अंधु।
नानक नामु न चेतनी, लागि रहे दुर्गंधु॥

सूरा एह न आखियन, जो लड़नि दलां में जाय।
सूरे सोई नानका, जो मनणु हुकम रजाय॥
हिरदे जिनके हरि बसै, सो जन कहियहि सूर।
कही न जाई नानका, पूरि रह्या भरपूर॥

कूड़े करहिं तकदबरी, हिन्दू मूसलमान।
लहन सजाई नानका, विनु नावैं सुलतानु॥
मन को दुबिधा ना मिटै, मुक्ति कहां ते होय।
कउड़ी बदले नानका, जन्म चल्या नर खोइ॥

कलियां थी उधल्ले भये, धउलियों भये सुपैदु ।
नानक मना मनों दियां, उज्जरि गइया खेदु ।।
जागो रे जिन जागना, अब जागनि की बारि ।
फेरि कि जागो नानका, जब सोवउ पांउ पसारि ।
जिन मुह मिलनि मुबारखां, लक्खां मिलै असीस ।
ते मुंह फेर नपाई यहि, तन-मन सहे कसीस ।।
इक दब्बहि इक साड्यिहि, इक दिचनि ढंड लुड़ाइ ।
गई मुबारख नानका, है है पहुती आय ।।
मित्रां दोस्तां माल धन, छड्डि चले अति भाई ।
संगि न कोई नानका, उह हंस अकेला जाइ ।।

मैं धरि तेरी साहिबा, और नहीं परवाहि ।
जगत पदधारणू पंथ सिर, गिरणवें लेंदा साहि ।।
जेही पिरीति लगंदिया, तोड़ निबाहू होई ।
नानक दरगह जांदियां, ठक न सक्कै कोई ।।
सै सै बारी कट्टियै, जे सीस कीचै कुरबान ।
नानक कीमति ना पवै, परिया दूर मकान ।।

जित बेले अमृत बसे, जीयां होवे दाति ।
तित बेले तू उठि बहु, त्रिह पहरे पिछली राति ।।
खत्री ब्राह्मण शूद्र वैस, जातीं पूछि न देई दाति ।
नानक भागे पाइयै, त्रिह पहिरे पिछली राति ।।

सबद न जानउ गुरू का, पार परउ कित बाट।
ते नर डूबे नानका, जिनका बड़ बड़ ठाट॥
धर अंबर बिच बेलड़ी, तहं लाल सुगंधा बूल।
भक्खर इक नां आयो, नानक नहीं कबूल॥

रंडियां एह न आखियन, जिनके चलन भतार।
रंडियां सेई नानका, जिन बिसरिया करतार॥
देखि अजाड़ां जट्टियां, पसंगु मुहुरणु किगड़।
तत्ते तावड़ ताइयहि, मुहि मिलनीयां अंगियार॥
देखि कै सूड़ी झोंपड़ी, चोरी करदे चोरु।
वसि पये धर्मराय दै, कड्ढि लये सभ खोरु॥
बरतु नेमु तीरथु भ्रमें, बहुतेरा बोलगि कूड़।
अंतरि तीरथु नानका, सोधन नाहीं मूड़॥
लै फुरमान दिवान दा, खसि प्यादे खाहि।
वाहीं वढ्ढे मारियहि, मारे दे कुरलाहिं॥
पाधे मिस्तर अंधुले, काजी मुल्ला कोरु।
(नानक) तिनांपास न भिटोयै, जो सबदे दे चोरु॥

साधो रचना राम बनाई।
इक बिनसै इक इस्थि मानै, अचरज लख्यौ न जाई।
काम क्रोध मोह बस प्रानी, हरि मूरति बिसराई॥
झूठा तन साचा करि मान्यो, ज्यों सुपना रैनाई।
जो दीसै से सकल विनासै, ज्यों बादर की छांई॥
जन नानक जग जानौ मिथ्या, रहौ राम सरनाई।

यह मन नेक न कह्यो करै
सीख सिखाय रह्यो अपनी सी, दुरमति तें न टरै।
मद माया बस भयो बावरो, हरिजस नहिं उचरै॥
करि परपंच जगत के डहकै, अपनो उदर भरै॥
स्वान पूंछ ज्यों होय न सूधों, कह्यौ न कान धरै।
कहु नानक भजु राम नाम नित, जा तें काज सरै॥

मन की मनही मांहि रही।
ना हरि भजे न तीरथ सेवे, चोटी काल गही।
दारा मीत पूत रथ संपति, धन-जन पूर्न मही॥
और सकल मिथ्या यह जानो, भजन राम सही।
फिरत फिरत बहुते जुग हारयो, मानस देह लही॥
नानक कहत मिलन की बिरिया, सुमिरत कहा नहीं।

रे मन कौन गति होइ है तेरी।
एहि जग में राम नाम, सो तो नहिं सुन्यो कान।
विषयन सों अति लुभान, मति नाहिन फेरी॥
मानस को जनम लीन्ह, सिमरन नहिं निमिष कीन्ह।
दारा सुत भयो दीन पगहुं परी बेरी॥
नानक जन कह पुकार, सुपने ज्यों जग पसार।
सिमरत नहिं क्यों मुरार, माया जा की चेरी॥

भाई मैं मन की मान न त्यागो।
माया के मद जनम सिरायो, राम भजन नहिं लाग्यो।
जम को दंड परयो सिर ऊपर, तब सोबत तें जाग्यो॥
कहा होत अब के पछिताये, छूटत नाहिन भाग्यौ।
यह चिंता उपजी घट में जब, गुरु चरनन अनुराग्यो॥
सुफल जनम नानक तब हुआ, जो प्रभु जस में पाग्यो।

साधो मन का मान तियागो।
काम क्रोध संगत दुर्जन की, ता तें अहि निसि भागो।
सुख दुख दोनों सम कर जानै, और मान अपमाना ॥
हर्ष सोक तें रहै अतीना, तिन जग तत्व पिछाना।
अस्तुति निंदा दोऊ त्यागै, खोजै पद निरवाना ॥
जन नानक यह खेल कठिन है, किनहूँ गुरमुख जाना।

जा में भजन राम को नाहीं।
तेहि नर जनम अकारथ खोयो, यह राखो मन माहीं।
तीरथ करै बर्त पुनि राखै, नहिं मनुवां वस जाको ॥
निफल धर्म ताहि तुम मानो, साच कहत मैं याको।
जैसे पाहन जल में राख्यो, भेदै नहिं तेहि पानी ॥
तैसे ही तुम ताहि पिछानो, भगति हीन जो प्रानी।
कलि में मुक्ति नाम तें पावत, गुरु यह भेद बतावै।
कहु नानक सोई नर गुरुवा, जो प्रब के गुन गावै।

जो नर दुख में दुख नहिं मानै।
सुख सनेह अरु भय नहिं जाके, कंचन माटी जानै।
नहि निंदा नहिं अस्तुति जाके, लोभ मोह अभिमाना ॥
हर्ष सोक तें रहै नियारो, नाहिं मान अपमाना।
आसा मनसा सकल त्यागि कै, जग तें रहै निरासा।
काम क्रोध जेहि परसै नाहिन तेहि घट ब्रह्म निवासा।
गुरु किरपा जेहिं नर पै कीन्हीं, तिन यह जुगति पिछानी।
नानक लीन भयो गोविंद सो, ज्यों पानी संग पानी ॥

या जग मीत न देख्यो कोई।
सकल जगत अपने सुख लाग्यो, दुख में संग न होई।
दारा मीत पूत संबंधी, सगरे धन सों लागे।।
जबहीं निरधन देख्यो नर को, संग छाड़ि सब भागे।
कहा कहूं या मन बौरे को, इन सों नेह लगाया।।
दीनानाथ सकल भयभंजन, जस ताको बिसरायो।
स्वान पूंछ ज्यों भयो न सूधो बहुत जतन मैं कीन्हो।।
नानक लाज बिरद की राखो, नाम तिहारो लीन्हो।।

मुरसिद मेरा महरमी, जिन मरम बताया।
दिल अंदर दीदार है, खोजा तिन पाया।।
तसबी एक अजूब हैं, जा में हरदम दाना।
कुंज किनारे बैठि के, फेरा तिन्ह जाना।
क्या बकरी क्या गाय है, क्या अपनो जाया।
सब को लोहू एक है, साहिब फरमाया।।
पीर पैगंबर औलिया, सब मरने आया।
नाहक जीव न मारिये, पोषन को काया।।
हिरिस हिये हैबान है, बसि करिले भाई।
दाह इलाही नानका, जिसे देवे खुदाई।।

हरि जू राख लेहु पत मेरो।
काल को त्रास भयो उर अंतर, सरन गह्यो अब तेरो।
भय करने को बिसरत नाहीं, तेहिं चिंता तन जारो।।
किये उपाय मुक्ति के कारन, दह दिसि को उठि धाया।
घट ही भीतर बसैं निरंतर, ता को मर्म न पाया।।
नाहीं गुन नाहीं कुछु जप तप, कौन करम अब कीजै।
नानक हार पर्यौ सरनागत, अभय दान अब दीजै।।

काहे रे बन खोजन जाई ।
सर्ब निवासी सदा अलेपा, तोही संग समाई ।
पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है, मुकर माहिं जस छाई ।
तैसे ही हरि बसै निरंतर, घट ही खोजो भाई ।
बाहर भीतर एकै जानो, यह गुरु ज्ञान बताई ।।
जन नानक बिन आपा चीन्हे, मिटै न भ्रम की काई ।

अब मैं कौन उपाय करूँ ।
जेहि विधि मन को संसय छूटै, भव निधि पार परूं ।
जनम पाय कछु भलो न कीन्हें, ता तें अधिक डरूं ।।
गुरु मत सुन कछु ज्ञान न उपज्यो, पसुवत उदर भरूं ।
कहु नानक प्रभु बिरद पिछानो, तब हौं पतित तरूं ।।

अब मेरे प्रीतम प्रान पियारे ।
प्रेम-भक्ति निज नाम दीजिये, द्याल अनुग्रह धारे ।
सुमिरौं चरन तिहारे प्रीतम, रिदे तिहारी आसा ।।
संत जनां पै करौं बेनती, मन दरसन को प्यासा ।
बिछुरत मरन जीवन हरि मिलते, जन को दरसन दीजै ।।
नाम अधार जीवन धन नानक, प्रब मेरे किरपा कीजै ।

अब जी यही मनोरथ मेरा ।
कृपा निधान द्याल मोहि दीजै, करि संतन का चेरा ।
प्रात काल लागों जन चरनी, निशि बासर दरसन पावों ।।
तन मन अरप करौं जन सेवा, रसना हरि गुन गावों ।
सांस-सांस सुमिरों प्रभु अपना, संत संग नित रहिये ।।
एक अधार नाम धन मेरा, आनंद नानक यह लहिये ।

भाई मैं केहि विधि लखो गुसाईं ।
महा मोह अज्ञान तिमिर में, मन रहियो उरझाई।
सकल जनम भ्रम ही भ्रम खोयो, नहिं इस्थिर मति पाई।।
विषयासक्त रह्यो निसि बासर, नहिं छूटी अधमाई।
साधु संग कबहूं नहिं कीन्हा, नहिं कीरति प्रब गाई।।
जन नानक में नाहीं कोउ गुन, राखि लेहु सरनाई।

अब हम चली ठाकुर पहिं हार ।
जब हम सरन प्रभू की आई, राख प्रभु भावे मार।
लोगन की चतुराई उपमा, ते बैसंदर जार।।
कोई भला कहुभावे बुरा कहु, हम तन दियो है ढार।
जो आवत सरन ठाकुर प्रभु तुम्हरी, तिस राखो किरपाधार।
जन नानक सरन तुम्हारी हरिजी, राखो लाज मुरार।

राम सुमिर राम सुमिर एही तेरो काज है ।
माया को संग त्याग, हरि जू की सरन लाग।
जगत सुख मान मिथ्या, झूठो सब साज है।।
सुपने ज्यों धन पिछान, काहे पर करत मान।
बारू की भीत तैसे, बसुधा को राज है।।
नानक जन कहत बात, बिनसि जैहै तेरो गात।
छिन-छिन करि गयो काल्ह, जैसे जात आज है।।

चेतना है तो चेत ले निसि दिन में प्रानी।
छिन-छिन अवधि बिहात है, फूटै घट ज्यों पानी।
हरि गुन काहे न गावही, मूरख अज्ञाना।।
झूठे लालच लागि के, नहिं मर्म पिछाना।
अजहूं कछु बिगरयो नहीं, जो प्रभु गुन गावै।।
कहु नानक तेहिं भजन तें, निरभय पद पावै।

सब कछु जीवत को व्यौहार ।
मात-पिता भाई सुत बांधव, अरु पुनि गृह की नार ।
तन तें प्रान होत जब न्यरे, टेरत प्रेत पुकार ।।
आध घरी कोऊ नहिं राखै, घर तें देत निकार ।
मृग तृस्ना ज्यों जग सपना यह, देखो हृदे विचार ।।
कहु नानक भजु राम नाम नित, जातें होत उधार ।

इस दम दा मैंनूं की बे भरोसा ।
आया आया न आया न आया ।।
सोच विचार करै मत मन में ।
जिसने ढूंढा उसे न पाया ।।
या संसार रेन दा सुपना ।
कहिं दीखा कहिं नाहिं दिखाया ।।
नानक भक्तन के पद परसे ।
निस दिन राम चरन चित लाया ।।

साधो यह तन मिथ्या जानो ।
या भीतर जो राम बसत हैं, साचो ताहि पिछानो ।
यह जग है संपति सुपने की, देख कहा ऐड़ानो ।।
संग तिहारे कछू न चालै, ताहि कहा लपटानो ।
अस्तुति निंदा दोऊ परिहरि, हरि कीरति उर आनो ।।
जन नानक सबही में पूरन, एक पुरुष भगवानो ।

प्रभु जी तूं मेरे प्रान अधारे ।
नमस्कार डंडौत बंदना, अनिक बार जाऊं बलिहारे ।
ऊठत बैठत सोवत जागत, इहु मन तुझे चितारे ।।
सूख दूख इस मन की बिरथा, तुझ ही आगे सारे ।
तूं मेरी ओट बल बुधि धन तुमहीं, तुमहिं मेरे परिवारे ।।
जो तुम करो सोई भल हमरे, पेख नानक सुख चरना रे ।

विसरत नाहिं मन तें हरी।
अब यह प्रीति महा प्रबल भई, आन विषय जरी।
बूंद कहां तियागि चातक, मीन रहत न धरी॥
गुन गोपाल उचारत रसना, टेंव यह परी।
महा नाद कुरंग मोह्यो, बेध तीच्छन सरी॥
प्रभु चरन कमल रसाल नानक, गांठ बांध परी।

हौं कुरबाने जाउं पियारे, हौं कुरबाने जाउं।
हौं कुरबाने जाऊं तिन्हां दे, लैं जो तेरा नाऊँ।
लैन जो तेरा नाऊं तिन्हां दे, हौं सद कुरबाने जाऊं।
काया रंगन जे थिये प्यारे, पाइये नाउं मजीठ।
रंगन वाला जे रंगे साहिब, ऐसा रंग न डीठ॥
जिनके चोलड़े रतड़े प्यारे, कंत तिन्हां के पास।
धूड़ तिन्हां को जे मिले जी को, नानक की अरदास॥

गोविंद जी तूं मेरे प्रान अधार।
साजन मीत सहाई तुमहीं, तूं मेरो परिवार।
कर बिसाल धार्‌यो मेरे माथे, साधु संग गुन गाये॥
तुम्हरी कृपा तें सब फल पाये, रसिक नाम धियाये।
अबिचल नींव धराई सतगुरु, कबहूं डोलन नाहीं॥
गुर नानक जब भये दयाला, सर्व सुखां निधि पाहीं।

दादू

(दादू) गैब मांहि गुरुदेव मिल्या, पाया हम परसाद ।
मस्तक मेरे कर धरया, देख्या अगम अगाध ।।
(दादू) सतगुरु सू सहजै मिल्या, लीया कंठ लगाइ ।
दाया भई दयाल की, तब दीपक दिया जगाइ ।।

सतगुरु काढ़े केस गहि, डूबत इहि संसार ।
दादू नाव चढ़ाइ करि, कीये पैली पार ।।
दादू उस गुरुदेव की, मैं बलिहारी जाउं ।
जेंह आसन अमर अलेख था, ले राखे उस ठाउं ।।

(दादू) सतगुरु मारे सबद सों, निरखि निरखि निज ठौर ।
राम अकेला रहि गया, चीत न आवै और ।।
सबद दूध घृत राम रस, कोइ साध बिलोवण हार ।
दादू अमृत काढि ले, गुरुमुखि गहै बिचार ।।
देवै किरका दरद का, टूटा जोड़ै तार ।
दादू साधै सुरति को, सो गुरु पीर हमार ।।
सतगुरु मिलै तो पाइये, भक्ति मुक्ति भंडार ।
दादू सहजै देखिये, साहिब का दीदार ।।
(दादू) सतगुरु माला मन दिया, पवन सुरति सूं पोइ ।
बिन हाथों निसदिन जपै, परम जाप यूं होइ ।।
(दादू) यहु मसीत यहु देहुरा, सतगुरु दिया दिखाइ ।
भीतरि सेवा बंदगी, बाहिर काहे जाइ ।।
मन ताजी चेतन चढ़े, ल्यौ की करै लगान ।
सबद गुरू का ताजना, कोइ पहुँचै साध सुजान ।।

दादू नौका नांव है हरि हिरदै न बिसारि।
मूरति मन माहें बसै, सासै सांस संभारि॥
सांसै सांस संभालता, इक दिन मिलि है आइ।
सुमिरन पैंड़ा सहज का, सतगुरु दिया बताइ॥
दादू राम संभालि ले, जब लग सुखी सरीर।
फिर पीछै पछताहिगा, जब तन-मन धरै न धीर।

मेरे संसा को नहीं, जीवन मरन का राम।
सुपनैं ही जनि बीसरै, मुख हिरदै हरि नाम॥
हरि भजि साफल जीवना, पर उपगार समाइ।
दादू मरण तहं भला, जहं पसु पंखी खाइ॥
(दादू) अगम बस्त पानैं पड़ी, राखी मांझि छिपाइ।
छिन छिन सोई संभालिये, मति पै बीसरी जाइ॥
(दादू) राम नाम निज औषधी, काटै कोटि विकार।
बिषम व्याधि ये ऊबरै, काया कंचन सार॥
(दादू) गह सुख सरग पयाल के, तोल तराजू बाहि।
हरि सुख एक पलक्क का, ता सम कह्या न जाय॥
कौन पटंतर दीजिए, दूजा नाहीं कोइ।
राम सरीखा राम है, सुमिर्‌यां ही सुख होइ॥
नांव लिया तब जाणिये, जे तन-मन रहै समाइ।
आदि अंत मध एक रस, कबहूं भूलि न जाइ॥

(दादू) सबदै बंध्या सब रहे, सबदै सबही जाय।
सबदैं ही सब ऊपजै, सबदैं सबै समाय॥
(दादू) सबदैं ही सचु पाइये, सबदैं ही संतोष।
सबदैं ही स्थिर भया, सबदैं ही भागा सोक॥

(दादू) सबदैं हो सूषिम भाय, सबदैं सहज समान ।
सबदैं ही निर्गुण मिलै, सबदैं निर्मल ग्यान ।।
(दादू) सबदै ही मुक्ता भया, सबदै समझैं प्राण ।
सबदै ही सूझैं सबै, सबदै सुरझै जाण ।।
पहली किया आप थे, उतपत्ती ओंकार ।
ओंकार थैं ऊपजै, पंच तत्त आकार ।।
पंच तत्त थैं घट भया, बहु बिधि सब विस्तार ।
दादू घट थैं ऊपजे, मैं तैं बरण बिचार ।।

एक सबद सैं ऊनवै, वर्षन लागै आइ ।
एक सबद सौं बीखरै, आप आप कौं जाइ ।।
(दादू) सबद बाण गुर साध के, दूरि दिसंतर जाइ ।
जेहि लागे सो ऊबरे, सूते लिये जगाइ ।।
सबद जरै सो मिलि रहै, एकै रस पूरा ।
कायर भागे जीव ले, पग मांडे सूरा ।।
सबद सरोवर सूभर भरया, हरि जल निर्मल नीर ।
दादू पीवै प्रीति सौं, तिन के अखिल सरीर ।।

मन चित चातक ज्यूं रटै, पिव पिव लागी प्यास ।
दादू दरसन कारने, पुरवहु मेरी आस ।
(दादू) बिरहिनि दुख कासनि कहै, कासनि देइ संदेस ।
पंथ निहारत पीव का, बिरहिनि पलटे केस ।।
ना बहु मिलै ना मैं सुखी, कहु क्यूं जीवन होई ।
जिन मुझकौं घायल किया, मेरी दारू सोई ।

(दादू) मैं भिख्यारी मंगिता, दरसन देहु दयाल ।
तुम दाता दुख भंजिता, मेरी करहु संभाल ।।
दीन दुनी सदबै करौं, टुक देखण दीदार ।
तन मन भी छिन-छिन करौं, भिस्त दोजग भीवार ।।

बिरह अगिन तन जालिये, ज्ञान अगिनि दौ लाइ ।
दादू नख-सिख पर जलै, तब राम बुझावै आइ ॥
अंदर पीड़ न ऊभरै, बाहर करै पुकार ।
दादू सो क्यों करि लहै, साहिब का दीदार ॥
(दादू) कर बन सर बिन कमान बिन, मारै खैंचि कसीस ।
लागी चोट सरीर में, नख सिख सालै सीस ॥
(दादू) बिरह जगावै दरद कौं, दरद जगावै जीव ।
जीव जगावै सुरति कौं, पंच पुकारै पीव ॥

(दादू) नैन हमारे ढीठ है, नाले नीर न जाहिं ।
सूके सरां सहेत वै, करंक भये गये गलि मांहिं ॥
(दादू) जब बिरहा आया दरद सौं, तब कड़वे लागे काम ।
काया लागी काल है, मीठा लागा नाम ॥
जे कबहूं बिरहिनि मरैं, तौ सुरति बिरहिनि होइ ।
दादू पिव पिव जीवतां, मुवा भी टरै सोइ ॥
मीयां भैंडा आव घर, वांढी वत्तां लोइ ।
दुखड़ मुंहडे गये, मरां बिछोहे रोइ ॥

जोग समाधि सुख सुरति सौं, सहजैं सहजैं आव ।
मुक्ता इवारा महल का, इहै भगति का भाव ॥
ल्यौ लागी तब जाणिये, जे कबहूं छूटि न जाइ ।
जीवत यौं लागी रहै, मूवां मंझि समाई ॥
मन ताजी चेतन चढ़े, ल्यौ की करै लगाम ।
सबद गुरू का ताजना, कोई पहुंचै साध सुजान ॥
आदि अंत मधि एक रस, टूटै नहिं धागा ।
दादू एकै रहि गया, जब जाणै जागा ॥
अर्थ अनूपम आप है, और अनरथ भाई ।
दादू ऐसी जानि करि, तासौं ल्यौ लाई ॥

सुरति अपूठी फेरि करि, आतम माहैं आण।
लाहि रहै गुरुदेव सौं, दादू सोई सयाण॥
जहं आतम तहं राम है, सकल रह्या भरपूर।
अंतरगति ल्यौ लाइ रहु, दादू सेवग सूर॥
एक मना लागा रहै, अंत मिलैगा सोइ।
दादू जाके मन बसै, ताकौं दरपन होइ॥
दादू निबहै त्यूं चलै, धरि धीरज मन माहिं।
परसैगा पिव एक दिन, दादू थाकै नाहिं॥

(दादू) जे साहिब कौं भावैं नही, सो बाट न बूझी रे।
साईं सों सन्मुख रही, इस मन सौं जूझी रे॥
दादू अचेत न होइये, चेतन सौं चित लाइ।
मनवां सोता नींद भरि, सांई संग जगाई॥
आया पर सब दूरि करि, राम नाम रस लागि।
दादू औसर जात है, जागि सकै तो जागि॥
दुख दरिया संसार है, सुख का सागर राम।
सुख सागर चलि जाइये, दादू तजि बेकाम॥

(दादू) भांती पाये पसु पिरी, हांणो लाइ न बेर।
साथ सभोई हल्यौ, पोइ पसंदो केर॥
काल न सूझें कंध पर मन चितवै बहु आस।
दादू जिव जाणों नहीं, कठिन काल की पास॥
जहं जहं दादू पग धरे, तहां काल का फंद।
सिर ऊपर सांधे खड़ा, अजहुं न चेतै अंध॥
यहु बन हरिया देखि करि, फूल्यौ फिरै गंवार।
दादू यहु मन मिरगला, काल अहेड़ी लार॥
कहतां सुनता देखतां, लेतां देतां प्राण।
दाद सो कतहू गया, माटी धरी मसाण॥

पंथ दुहेला दूरि घर, संग न साथी कोय।
उस मारग हम जाहिंगे, दादू क्यों सुख सोइ॥
काल भाल में जग जलै, भाजि न निकसै कोइ।
दादू सरणैं साच कै, अभय अमर पद होइ॥
ये सज्जन दुर्जन भये, अंति काल की बार।
दादू इनमें को नहीं, विपति बटावणहार॥
काल हमारा कर गहे, दिन दिन खेंचत जाइ।
अजहुं जीव जागै नहीं, सोवत गई विहाइ॥

धरती करते एक डग, दरिया करते फाल।
हांकौ परवत फाड़ते, सो भी खाये काल।

जाती नूर अलाह का, सिफाती अरवाह।
सिफाती सिजदा करै, जाती बे परवाह॥
वार पार नहिं नूर का, दादू तेज अनंत।
कीमति नहिं करतार की, ऐसा है भगवंत॥
जिये तेल तिलन्नि में जीयें गंधि फुलन्नि।
जीयें माखण षीर में, ईयें रब रुहन्नि॥

जब हम ऊजड़ चालते, तब कहते मारग माहिं।
दादू पहुंचे पंथ चलि, कहैं यहु मारग नाहिं॥
द्वै पष उपजी परिहरै, निर्पष अनभै सार।
एक राम दूजा नहीं, दादू लेहु विचार॥
दादू संसा आरसी, देखत दूजा होई।
भरम गया दुभिध्या मिटी, तब दूसर नाहीं कोइ॥

देखि दिवाने है गये, दादू खरे सयान।
कार पार कोइ ना लहै, दादू है हैरान॥
पारन देवै आपणा, गोप बूझ मन माहिं।
दादू कोई ना लहै, कैतै आवैं जाहिं॥

समरथ सब विधि साइयां, ताकी मैं बलि जाउं।
अंतर एक जु सो वसै, औरां चित्त न लाउं॥
ज्यूं राखें त्यूं रहेंगे, अपणे बल नाहीं।
सबै तुम्हारे हाथि है, भाजि कत जाहीं॥
दादू दूजा क्यूं कहै, सिर परि साहिब एक।
सो हम कूं क्यूं वीसरै, जे जुग जाहिं अनेक॥
कर्म फिराबै जोव कौं, कर्मों कौं करतार।
करतार कौं कोई नहीं, दादू फेरनहार॥
आप अकेला सव करै, औरूं के सिर देइ।
दादू सोभा दास कूं, अपना नाम न लेइ।

तिल-तिल का अपराधी तेरा, रती रती का चोर।
पल-पल का मैं गुनही तेरा, बक्सौ औगुण मोर॥
गुनहगार अपराधी तेरा, भाजि कहां हम जाहिं।
दादू देख्या सोधि सब, तुम लिन कहिं सू समाहिं।
आदि अंत लौं आई करि, सुकिरत कछू न कीन्ह।
माया मोह मद मंछुरा, स्वाद सबै चित दीन्ह॥
दादू बंदीवान है, तू वंदी छोड़ दिवान।
अब जनि राखौ बंदि में, मीरां मेहरबान॥
दिन-दिन नौतन भगति दे, दिन-दिन नौतम नांव।
दिन-दिन नौतम नेह दे, मैं वलिहारी जांव॥
साईं सत संतोष दे, भाव भगति वेसास।
सिदक सबूरी सांच दे, मांगे दादू दास॥
पलक मांहि प्रगटै सही, जे जन करै पुकार।
दीन दुखी तब देखि करि, अति आतुर तिहिं बार॥
आगे पीछैं संगि रहै, आप उठाये भार।
साध दुखी तब हरि दुखी, ऐसे सिरजन हार॥

अंतरजामी एक तूं, आतम के आधार।
ते तुम छाड़हु हाथ थैं, तौ कौण संवाहणहार॥

तुम हौ तैसी कीजिये, तौ छूटैंगे जीव।
हम हैं ऐसी जनि करौ, मैं सदिकै जाऊं पीव॥
साहिब दर दादू खड़ा, निसि दिन करै फुकार।
मीरां मेरा मिहर करि, साहिब दे दीदार॥
तुम कूं हमसे बहुत हैं, हम कूं तुम से नाहिं।
दादू कूं जनि परिहरौ, तूं रहु नैनहुं माहिं॥
(दादू) सहजैं सहज होइगा, जे कुछ रजिया राम।
काहे कौं कलपै मरै, दुखी होत बेकाम॥
(दादू) मनसा बाचा कर्मना, साहिब का बेसास।
सेवग सिरजनहार का, करै कौन की आस॥
(दादू) च्यंता कीयां कुछ नहीं, च्यंता जिव कूं खाय।
हूणा था सो है रह्या, जाणा है सो जाइ॥
(दादू) राजिक रिजक लिये खड़ा, तेवै हाथौं हाथ।
पूरिक पूरा पासि है, सदा हमारे साथ॥

कोटि अचारी एक बिचारी, तऊ न सर भरि होइ।
आचारी सब जग मर्‌या, बिचारी विरला कोइ॥
सहज बिचार सुख में रहै, दादू बड़ा बमेक।
मन इंद्री पसरैं नहीं, अंतरि राखै एक॥
(दादू) सोचि करै सो सूरमा, करि सोचै सो कूर।
करि सोच्यां मुख स्याम है, सोच करयां लख नूर॥
जो मति पीछैं ऊपजै, सो मति पहिली होइ।
कबहुं न होवै जी दुखी, दादू सुखिया सोइ॥

सांचा नांव अलाह का, सोई सति करि जाणि ।
निहचल करि ले बंदगी, दादू सो परवाणि ।।
दुइ दरोग लोग कौं भावै, साईं साच पियारा ।
कौण पंथ हम चलैं कहौ धौं, साधौ करौ बिचारा ।।
औषद खाइ न पछि रहै, विषम व्याधि क्यों जाइ ।
दादू रोगी बावरा, दोस बैद कौं लाइ ।।
जो हम जाण्या एक करि, तौ काहे लोक रिसाइ ।
मेरा था सो मैं लिया, लोगौं का क्या जाइ ।।
दादू पैड़े पाप के, कदे न दीजै पांव ।
जिहिं पैड़े मेरा पिव मिलै, तिहिं पैड़े का चाव ।।
ऊपरि आलम सब करै, साधू जन-घट मांहि ।
दादू एता अंतरा, ताथैं बनती नाहिं ।।
झूठा साचा करि लिया, विष अमृत जाना ।
दुख कौं सुख सबके कहै, ऐसा जगत दिवाना ।
सांचे का साहिब धणी, समरथ सिरजनहार ।।
पाखंड की यहु पिर्थभी, परपंच का संसार ।।
(दादू) पाखंड पीव न पाइये, जे अंतरि साच न होइ ।
ऊपरि थैं क्योहीं रहौ, भीतर के मल धोइ ।।
जे पहुंचे ते कहि गये, तिनकी एकै बाति ।
सबै सयाने एक मति, उनकी एकै जाति ।

(दादू) मनही मांहै समझि करि, मनहीं माहिं समाइ ।
मन ही माहैं राखिये, बाहरि कहि न जनाइ ।।
जरण जोगी जुगि-जुगि जीवै, झरना भरि-भरि जाय ।
दादू जोगी गुमरखी, सहजैं रहे समाइ ।

जीवत माटी है रहै, साई सनमुख होइ।
दादू पहिली मरि रहै, पीछै तौं सब कोइ ॥
आपा गर्व गुमान तजि, मद मछर हंकार।
गहै गरीबी बंदगी, सेवा सिरजन हार ॥
(दादू) मेरा वैरी मैं मुवा, मुझै न मारै कोउ।
मैं ही मुझ कौं मारता, मैं मरजीवा होइ ॥
मेरे आगे मैं खड़ा, ताथैं रह्या लुकाइ।
दादू परगट पीव है, जे यहु आपा जाइ ॥
दादू आप छिपाइये, जहां न देखै कोई।
पिव कौं देखि दिखाइये, त्यों-त्यौं आनंद होइ ॥
(दादू) साई कारण मांस का, लोही पानी हौइ।
सूकै आटा अस्थि का, दादू पावै सोइ ॥

(दादू) मेरे हिरदे हरि बसै, दूजा नाहीं और।
कहौ कहां धौ राखिये, नहीं आन कौं ठौर ॥
(दादू) पीव न देख्या नैन भरि, कंठि न लागी धाइ।
सूती नहि गल बांहि दे, बिच ही गई बिलाइ ॥
प्रेम प्रीति इसनेह बिन, सब झूठे सिंगार।
दादू आतम रत नहीं, क्यों मानै भरतार।
(दादू) हूं सुख सूती नींद भरि, जागे मेरा पीव।
क्यों करि मेला होइगा, जागै नाहीं जीव ॥
सुंदरि कबहूं कंत का, मुख सौं नाव न लेइ।
अपणे पिव के कारणे, दादू तन मन देह ॥
तन भी तेरा मन भी तेरा, तेरा प्यंड परान।
सब कुछ तेरा तू है मेरा, यहु दादू का ज्ञान ॥
(दादू) नीच ऊंच कुल सुंदरी, सेवासारी होइ।
सोई सोहागनि कीजिये, रूप न पीजै धोइ ॥

मांस अहारी मद पिवै, विषै विकारी सोइ।
दादू आतम राम बिन, दया कहां थैं होइ ।।
आपन कौं मारै नहीं, पर कौं मारन जाहि।
दादू आपा मारै विना, कैसे मिलै खुदाय ।।

काल जाल थैं काढ़ि करि, आतम अंगि लगाइ।
जीव दया यहु पालिये, दादू अमृत खाइ ।।
भवहीरगा जे पिरथमी, दया विहूरगा देस।
भगति नहीं भगवंत की, तहं कैसा परवेस ।।
काला मुंह करि करद का, दिल थैं दूरि निवार।
सब सूरति सुबहान की मुल्लां गुग्ध न मोरि ।।

निगुरगा गुरग मानै नहीं, कोटि करै जे कोइ।
दादू सब कुछ सौंपिये, सो फिर बैरी होइ ।।
दादू सगुगा लीजिये, निगुरगा दीजै डारि।
सगुरगा सन्मुख राखिये, निर्गुरग नेह निवारि ।।
दादू दूध पिलाइये, विषहर विष करि लेइ।
गुरग का अवगुरग करि लिया, ताही कौं दुख देइ ।।
मूसा जलता देख करि, दादू हंस दयाल ।।
मानसरोवर ले चल्या, पंखा काटै काल ।।

सहज रूप मन का भया, जब द्वै द्वै मिटी तरंग।
ताता सीला सम भया, तब दादू एकै अंग ।।
कुछ न कहावै आप कौं, काहू संगि न जाइ।
दादू निर्पष है रहै, साहिब सौं ल्यौ लाइ।

ना हम छाड़ैं ना गहैं, ऐसा ज्ञान विचार ।
मद्धि भाइ सेवैं सदा, दादू मुकति दुवार ।।
बैरागी मन में बसै, घरबारी घर माहिं ।
राम निराला रहि गया, दादू इनमैं नाहिं ।।

सतगुर चंदन बावना, लागे रहै भुवंग ।
दादू विष छाड़ैं नहीं, कहा करै सतसंग ।।
कोटि बरस लौ राखिये, बंसा चंदन पास ।
दादू गुण लीये रहै, कदै न लागै बास ।।
कोटि बरस लौं राखिये, लोहा पारस संग।
दादू रोम का अंतरा, पलटै नाहीं अंग ।।
कोटि बरस लौं राखिये, पत्थर पानी मांहि।
दादू आड़ा अंग है, भीतर भेदै नाहिं ।।

(दादू) जा कारन जग ढूंढ़िया, सो तौ घट ही माहिं ।
मैं तैं पड़दा भस्म का, ता थैं जानत नाहिं ।।
सब घटि माहं रमि रह्या, विरला बूझै कोइ ।
सोई बूझै राम को, जो राम सनेही होइ ।।

साधू जन संसार में, पारस परगट पाइ ।
दादू केते ऊधरे, जेते परसे आइ ।।
साधू जन संसार में, सीतल चंदन वास ।
दादू केते ऊधरे, जे आये उन पास ।।
जहं अरंग अरु आक थे, तहं चंदन ऊग्या माहि ।
दादू चंदन करि लिया, आक कहै को ताहिं ।।

साध मिलै तब ऊपजै, हिरदे हरि का हेत ।
दादू संगति साध की, कृपा करै तब देत ।।
जब देखौ तब दीजियौ, तुम पै मांगो येहु ।
दिन प्रति दरसन साध का, प्रेम भगति दिढ़ देहु ।।
दादू चंदन करि कह्या, अपणां प्रेम प्रकास ।
दस दिसि परगट है रह्या, सीतल गंध सुवास ।।
पर उपगारी संत सब, आये यहि कलि मांहि ।
पिवैं पिलावैं राम रस, आप सुवारथ नांहि ।।
साध सवद सुख बरखि है, सीतल होइ सरीर ।
दादू अंतर आतमा, पीवै हरि जल नीर ।।
औगुण छांड़ै गुण गहै, सोई सिरोमणि साध ।
गुण औगुण थैं रहित है, सो निज ब्रह्म अगाध ।।
बिष का अमृत करि लिया, पावक का पाणी ।
बांका सूधा करि लिया, सो साध बिनाणी ।।

पहिली न्यारा मन कर, पीछे सहज सरीर ।
दादू हंस बिचार हौं, न्यारा कीया नीर ।।
मन हंस मोती चुणै, कंकर दीया डारि ।
सतगुरु कहि समझाइया, पाया भेद बिचारि ।।
दादू हंसा परेखिये, उत्तिम करणी चाल ।
बगुला बैसे ध्यान धरि, परतषि कहिये काल ।।
गऊ बच्छ का ग्यान गहि, दूध रहै ल्यौ लाइ ।
सींग पूंछ पग परिहरै, अस्थन लागै धाइ ।।

सेवग सेवा करि डरै, हम थे कछु न होइ ।
तूं है तैसी बंदगी, करि नहिं जानै कोय ।।

फल कारण सेवा करै, याचै त्रिभुवन राव।
दादू सो सेवग नहीं, खेलै अपना डाव ।।
सूरज सन्मुख आरसी, पावक किया प्रकास।
दादू सांई साध विच, सहजैं निपजै दास ।।

ज्ञानी पंडित बहुत हैं, दाता सूर अनेक।
दादू भेष अनंत हैं, लागि रह्या सो एक ।।
कनक कलस विष सूं भरया, सो किस आवै काम।
सो धनि कूटा चाम का, जा में अमृत राम ।।
स्वांग साध वहु अंतरा, जेता धरनि अकास।
साधू राता राम सूं, स्वांग जगत की आस ।।
(दादू) स्वांगी सब संसार है, साधू कोई एक।
हीरा दूरि दिसंतरा, कंकर और अनेक ।।
दादू एकै आतमा, साहिब है सब माहिं।
साहिब के नाते मिलै भेष पंथ के नाहिं ।।
(दादू) जग दिखलावै बावरी, षोडस करै सिंगार।
तहं न संवारै आप कूं, जहं भीतर भरतार ।।

प्रम भगति जब ऊपजै, निहचल सहज समाध।
दादू पीवे प्रेम रस, सतगुर के परसाद ।।
दादू राता राम का, पीवै प्रेम अघाइ।
मतवाला दीदार का, मांगे मुक्ति बलाइ ।।
ज्यूं अमली के चित अमल है, सूरे के संग्राम।
निरधन के चित धन बसै, यों दादू के राम ।।
जो कुछ दिया हम कौं, सो सब तुमहीं लेहु।
तुम बिन मानै नहीं, दरस आपड़ा देहु ।।

भोरे भोरे तन करै, बंड करि कुरबाण।
मीठा कौड़ा ना लगै, दादू तोहू साण ॥
जग लग सीस न सौंपिये, तब लग इसक न होइ।
आसिक मरणै ना डरै, पिया पियाला सोइ ॥
इसक मुहब्बत मस्तमन, तालिब दर दीदार।
दोस्त दिल हरदम हजूर, यादगार हुसियार ॥
दादू इसक अलाह का, जे कबहूं प्रगटै आय।
(तौ) तन मन दिल अरवाह का, सब पड़दा जलि जाय ॥
दादू पाती प्रेम की, बिरला बांचै कोइ।
वेद पुरान पुस्तक पढ़ें, प्रेम बिना क्या होइ ॥
प्रीती जो मेरे पीव की, पैठी पिंजर माहिं।
रोम रोम पिव पिव करै, दादू दूसर नाहिं ॥
आसिक मासूक ह्वै गया, इसक कहावै सोइ।
दादू उस मासूक का, अल्लहि आसिक होइ ॥
इसक अलह की जाति है, इसक अलह का अंग।
इसक अलह औजूद है, इसक अलह का रंग ॥

नारी सेवग तब लगैं, जब लग साईं आस।
दादू परसै आन को, ताकी कैसी आस ॥
कीया मन का भावताँ, मेटी आज्ञा कार।
क्या मुख ले दिखलाइये, दादू उस भरतार ॥
पतिव्रता के एक है, बिभिचारणि के दोइ।
पतिबरता ब्रिभिचारणी, मेला क्यों करि होइ ॥
पुरिष हमारा एक है, हम नारी बहु अंग।
जे जे जैसी ताहि सौं, खेलै तिस ही रंग ॥

दादू कथड़ी और कुछ, करणी करैं कुछ और।
तिन थैं मेरा जिव डरै, जिनके ठीक न ठौर ॥

आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै बिकार ।
निरवैरी सब जीव सौं, दादू यहु मति सार ।।
किस सौं बैरी ह्वै रह्या, दूजा कोई नाहिं ।
जिसके अंग थैं ऊपज्या, सोई है सब माहिं ।।
जहां राम तहं मैं नहीं, मैं तहं नाहीं राम ।
दादू महल बरीक है, दुइ को नाहीं ठाम ।।

पहिली था सो अब भया, अब सो आगै होइ ।
दादू तीनौं ठौर को, बूझै बिरला कोइ ।।
जे मन बेध प्रीति सौं, ते जन सदा सजीव ।
उलटि सामने आप में, अंतर नाहीं पीव ।।
देह रहै संसार में, जीव राम के पास ।
दादू कुछ व्यापै नहीं, काल झाल दुख त्रास ।।
दादू छूटै जीवतां, मूआं छूटै नाहिं ।
मूआं पीछैं छूटिये, तौ सब आये उस मांहि ।।
संगी सोई कीजिये, जे इस्थिर इहि संसार ।
ना वहु खिरै न हम खपैं, ऐसा लेहु विचार ।।
संगी सोई कीजिये, सुख दुख का साथी ।
दादू जीवण मरण का, सो सदा संगाती ।।
कबहूं न बिहड़ै सो भला, साधू दिढ़ मति होंइ ।
दादू हीरा एक रस, बांधि गांठड़ी सोइ ।।

आपा उरझें उरझिया, दीसै सब संसार ।
आपा सुरझें सुरझिया, यहु गुर ग्यान बिचार ।।
सब गुण सब ही जीव के, दादू व्यापैं आइ ।
घर माहैं जामै मरै, कोइ न जाणै ताहि ।।

दादू वेली आतमा, सहज फूल फल होइ ।
सहज सहज सतगुर कहै, बूझै बिरला कोइ ॥
हरि तरवर तत आतमा, बेली करि विस्तार ।
दादू लागै अमर फल, कोइ साधू सीचणहार ॥
दया धर्म का खड़ा, सत सौं बधता जाइ ।
संतोष सौं फूलै फलै, दादू ऊमर फल खाइ ॥
माया विहड़ै देखता, काया संग न जाइ ।
कृत्तम विहड़ै बावरे, अजरावर ल्यौ लाइ ॥
जेते गुड़ व्यापैं जीव कौं, तेते तैं तजै रे मन ।
साहिब अपड़े कारणे, भलो निबाह्यो पन ॥

(दादू) जैसे माहैं जिव रहै, तैसी आवै वास ।
मुख बोलै कव जाणिये, अंतर का परकास ॥
मति बुधि बिवेक विचार बिन, माणस पसू समान ।
समझाया समझै नहीं, दादू परम गियान ॥
काचा उछलै ऊफड़ै, काया हांडी माहिं ।
दादू पाका मिलि रहै, जीव ब्रह्म द्वै नाहिं ॥
अंधे हीरा परखिया, कीया कौड़ी मोल ।
दादू साधू जौहरी, हीरे मोल न तोल ॥
(दादू) साहिब कसै सेवग खरा, सेवग कौं सुख होइ ।
साहिब करै सो सब भला, बुरा न कहिये कोइ ॥

साहिब है पर हम नहीं, सब जग आवै जाइ ।
दादू सुपिना देखिये, जागत गया बिलाइ ॥
(दादू) माया का सुख पंच दिन, गर्व्यौ कहा गंवार ।
सुपिनैं पायौ राज धन, जात न लागैं बार ॥

कालरि खेत न नीपजै, जे वाहै सौ वार।
दादू हाना बीज का, क्या परि मरै गंवार ॥
राहु गिलै ज्यौं चंद कौं, गहन गिलै ज्यौं सूर।
कर्म गिलै यौं जीव कौं, नखसिख लागै पूर ॥
कर्म कुहाड़ा अंग बन, काटत बारंबार।
अपने हाथौं, आप कौं, काटत है संसार ॥
(दादू) सबको बड़िजै खार खलि, हीरा कोइ न लेइ।
हीरा लेगा जौहरी, जो मांगे सो देइ ॥
सुर नर मुनियर बसि किये, ब्रह्मा विस्नु महेस।
सकल लोक के गिर खड़ी, साधू के पग हेठ ॥
(दादू) पहली आप उपाई करि, न्यारा पद निर्बाण।
ब्रह्मा विस्नु महेस मिलि, बंध्या सकल अंधाण ॥
दादू बाधे वेद विधि, भरम करम उरझाइ।
मरजादा माहैं रहै, सुमिरण किया न जाइ ॥
(दादू) माया मीठी बोलणी, नै नै लागै पाइ।
दादू पैसे पेट में, काढ़ि कलेजा खाइ ॥
भंवरा लुब्धी बास का, कँवल बँधाना आइ।
दिन दस माहैं देखतां, दून्य् गये बिलाइ ॥

(दादू) निरंतर पिउ पाइया, तीन लोक भरिपूर।
सब सेजौं साईं बसैं, लोग बतावैं दूरि ॥
दादू देखौं निज पीव कौं, दूसर देखौं नाहिं।
सबै दिसा सौं सोधि करि, पाया घट ही माहिं ॥
बुहुप प्रेम बरिषैं सदा, हरि जन खेलैं फाग।
ऐसा कौतिग देखिये, दादू मोटे भाग ॥
(दादू) देही माहै दोइ दिल, इक खाकी इक नूर।
खाकी दिल सूझै नहीं, नूरी मंझि हजूर ॥

(दादू) जब दिल मिला दयाल सौं, तब अंतर कुछ नाहिं ।
ज्यों पाला पानी कौं मिल्या, त्यौं हरि जन हरि माहिं ॥

साई सूर जे मन गहै, निमखि न चलने देइ ।
जब हीं दादू पग भरै, तब हीं पाकड़ि लेइ ॥
जब लगि यहु मन थिर नहीं, तब लगि परस न होइ ।
दादू मनवां थिर भया, सहजि मिलैगा सोइ ॥
यहु मन कागज की गुड़ी, उड़ि चढ़ी आकास ।
दादू भीगै प्रेम जल, तब आइ रहै हम पास ॥
सो कुछ हम थैं ना भया, जा पर रीझै राम ।
दादू इस संसार में, हम आए बेकाम ॥
इंद्री स्वारथ सब किया, मन मांगै सो दीन्ह ।
जा कारण जग सिरजिया, सो दादू कछू न कीन्ह ॥
(दादू) ध्यान धरें का होत है, जे मन नहि निर्मल होइ ।
तौ बग सबहीं ऊधरें, जे यहि बिधि सीझै कोइ ॥
(दादू) जिनका दर्पण ऊजला, सो दर्पण देखै माहिं ।
जिनकी मैली आरसी, सो मुख देखै नाहिं ।
जागत जहं जहं मन रहै, सोवत तहं तहं जाइ ॥
दादू जे जे कन बसै, सोइ सोइ देखै आइ ।
जहं मन राखै जीवतां, मरतां तिस घरि जाइ ॥
दादू बासा प्राण का, जहं पहली रह्या समाइ ।
जीवत लूटै जगत सब, मिरतक लूटैं देव !
दादू कहाँ पुकारिये, करि करि मूए सेव ॥

(दादू) जिहि घर निंद्या साध की, सो घर गये समूल ।
तिनकी नींव न पाइये, नांव न ठांव न धूल ॥
(दादू) निंद्या नांव न लीजिये, सुपनै हीं जिनि होय ।
ना हम कहैं न तुम सुणौ, हम जिनि भाखै कोइ ॥

अणदेख्या अनरथ कहैं, कलि प्रथमी का पाप ।
धरती अंवर जब लगैं, तव लग करैं कलाप ।।
(दादू) निंदक वपुरा जिन मरै, पर उपकारी सोइ ।
हम कूं करता ऊजला, आपण मैला होइ ।।

(दादू) जे मुझ होते लाख सिर, तौ लाखौं देती यारि ।
रह मुम दीया एक सिर, सोई सौंपे नारि ।।
सूरा चढ़ि संग्राम कौं, पाछा पग क्यों देइ ।
साहिब लाजै भाजतां, धृग जीवन दादू तेइ ।।
काहर काम न आवई, यहु सूरे का खेत ।
तन मन सौंपे राम कौ, दादू सीस सहेत ।।
जब लग लालच जीविका, तब लग निर्भय [illegible] न जाइ ।
काया माया तन तजै, जव चैड़े रहै बजाइ ।।
काया कवज कमान करि, सार सबद करि तीर ।
दादू यहु सर सांधि करि, भारै मोटे मीर ।।
(दादू) तन मन काम करीम के, आवै तौ नीका ।
जिसका तिस कौं सौंपिये, सोच क्या जी का ।।
दादू पाखर पहरि करि, सबकों झूझण जाइ ।
अंगि उघाड़ै सूरिवां, चोट मुँहै मुँह खाइ ।।
(दादू कहै) जे तू राखै साइयां, तौ मारि न सक्कै कोइ ।
वाल न बंका करि सकै, जे जग बैरी होइ ।।

जिनि सत छाड़ै वावरे, पूरिक है पूरा ।
सिरजे की सब चिंत है, देबे कौं सूरा ।।टेक।।
गर्भ बास जिन राखिया, पावक थैं न्यारा ।
जुगति जतन करि सींचिया, दे प्राण अधारा ।।
कुंज कहां धरि संचरै, तहं को रखवारा ।
हेम हरत जिन राखिया, सो खसम हमारा ।।

जल थल जीव जिते रहैं, सो सब कौं पूरै ।
संपट सिला में देत है, काहें नर झूरै ॥
जिन यहु भार उठाइया, निरबाहै सोई ।
दादू छिन न बिसारिये, ता थैं जीवन होई ॥

मनां भजि राम नाम लीजे ।
साध संगति सुमिरि सुमिरि, रसना रस पीजे ।
साधू जन सुमिरण करि, केते जपि जागै ॥
अगम निगम अमर किये, काल कोइ न लागे।
नीच ऊंच चिंतन करि, सरणागति लीये ॥
भगति मुकति अपणी गति, ऐसै जन कीये ।
केते तिरि तीर लागे, बंधन भव छूटे ॥
कलिमल विष जुग जुग के, राम नाम खूटे ॥
भरम करम सब निवारि, जीवन जपि सोई ।
दादू दुख दूर करण, दूजा नहिं कोई ॥

नांउ रे नांउ रे सकल सिरोमणि नांउ रे,
मैं बलिहारी जांउ रे ॥टेक॥
दूतर तारै पारि उतारै, तरक निवारै नाउं रे ।
तारणहारा भौजल पारा, निर्मल सारा नाउं रे॥
नूर दिखावै तेज मिलावै, जोति जगावै नाउं रे ।
सब सुख दाता अमृत राता, दादू माता नाउं रे ॥

कागा रे करंक परि बोलै ।
खार मांस अरु लगहीं डोलैं ॥टेक॥
जा तन कौं रचि अधिक संवारा ।
सो तन ले माटी में डारा ॥

जा तन देखि अधिक नर फूले।
सो तन छांड़ि चल्या रे भूले।।
जात न देखि मन में गरबाना।
मिलि गया माटी तजि अभिमाना।।
दादू तन की कहा बड़ाई।
निमख माहीं माटी मिलि जाई।।

सजनी रजनी घटनी जाइ।
पल पल छीजै अवधि दिन आवै, अपनौ लाल मनाइ।।**टेक**।।
अति गति नींद कहा सुख सोवै, यहु औसर चलि जाइ।
यहु तन बिछुरें बहुरि कहं पावै, पीछैं ही पछिताइ।।
प्राण पति जागै सुंदरि क्यों सोवै, उठि आतुर गहि पांइ।
कोमल बचन करुणा करि आगैं, नख सिक्ख रहु लपटाइ।।
सखी सुहाग सेज सुख पावै, प्रीतम प्रेप बढ़ाइ।
दादू भाग बड़े पिव पावै, सकल सिरोमणि राइ।।

मन रे राम बिना तन छीजै।
जब यहु जाइ मिलै माटी में, तब कहु कैसे कीजै।।**टेक**।।
पारस परसि कंचन करि लीजै, सहज सुरति सुखदाई।
माया बेलि बिषै फल लागे, तापर भूलि न भाई।।
जब लग प्राण प्यंड है नीका, तब लग ताहि जिनि भूलै।
यहु संसार सेंबल के सुख ज्यूं, ता पर तू जिनि फूलै।।
औरे येह जानि जग जीवन, समझि देखि देखि सचु पावै।
अंग अनेक आन मति भूलै, दादू जिनि डहकावै।।

वाला सेज हमारी रे, तूं आव हौं वारी रे।
हौं दासी तुम्हारी रे ॥टेक॥
तेरा पंथ निहारूं रे, सुंदर सेज संवारूं रे।
जियरा तुम पर वारूं रे ॥
तेरा अंगना पेखौं रे, तेरा मुखड़ा देखौं रे।
जब जीवन लेखौं रे ॥
मिलि सुखड़ा दीजै रे, यह लाहड़ा लीजै रे।
तुम देखें जीजै रे ॥
तेरे प्रेम की माती रे, तेरे रगड़े राती रे।
दादू वारणै जाती रे ॥

तेरे नांउ की वलि जाऊं, जहां रहौं जिस ठाऊं ॥टेक॥
तेरे बैनों की बलिहारी, तेरे नैनहुं ऊपरि वारी।
तेरी मूरति की बलि कीती, वारि वारि हौं दीती ॥
सोभित नूर तुम्हारा, सुंदर जाति उजारा।
मीठा प्राण पियारा, तूँ है पीव हमारा ॥
तेज तुम्हारा कहिये, निर्मल काहे न लहिये।
दादू बलि बलि तेरे, आव पिया तूँ मेरे ॥

हरि रस माते मगन भये।
सुमिरि सुमिरि भये मतवाले, जामण मरण सब भूलि गये ॥
निर्मल भगति प्रेम रस पीवैं, आन न दूजा भाव धरैं।
सहजैं सदा राम रंगि राते, मुकति वैकुंठे कहा करैं ॥
गाइ गाइ रसलीन भये हैं, कछू न मांगैं संत जनाँ।
और अनेक देहु दत आगै, आन न भावै राम बिनाँ ॥
इकटक ध्यान रहै ल्यौ लागे, छाकि परे हरि रस पीवैं।
दादू मगन रहैं रसमाते, ऐसैं हरि के जन जीवैं ॥

अजहुं न निकसै प्राण कठोर ।।टेक।।
दरसन बिना बहुत दिन बीते, सुंदर प्रीतम मोर ।
चारि पहर चारौं जुग बीते, रैनि गँवाई मोर ।।
अवधि गई अजहूँ नहिं आस, कतहुँ रहे चित चोर ।
कबहूँ नैन निरखि नहिं देखे, मारग चितवत तोर ।।
दादू ऐसे आतुर बिरहणि, जैसे चंद चकोर ।

आवै राम दया करि मेरे, बार बार बलिहारी तेरे ।।टेक।।
बिरहनि आतुर पंथ निहारै, राम राम कहि पीव पुकारै ।
पंथी बूझै मारग जोवै, नैन नीर जल भरि भरि रोवै ।।
निज दिन तलफ रहै उदास, आतम राम तुम्हारे पास ।
बप बिसरै तन की सुधि नाहीं, दादू बिरहनि मिरतक माहीं ।।

कतहूं रहे हो बिदेस, हरि नहिं आये हो ।
जनम सिरानौ जाइ, पिव नहिं पाये हो ।।
बिपति हमारी जाइ, हरि सैं को कहै हो ।
तुम्ह बिन नाथ अनाथ, बिरहनि क्यूं रहै हो ।।
पिव के बिरह बियोग, तन की सुधि नहिं हो ।
तलफि तलफि जिव जाइ, मिरतक है रही हो ।।
दुखित भई हम नारि, कब हरि आवैं हो ।
तुम्ह बिन प्राण अधार, जिव दुख पावै हो ।
प्रगटहु दीनदयाल, बिलम न कीजै हो ।
दादू दुखी बेहाल, दरसन दीजै हो ।।

कौण बिधि पाइये रे, मीत हमारा सोइ ।।टेक।।
पास पीव परदेस है रे, जब लग प्रगटै नाहिं ।
बिन देखे दुख पाइये, यहु सालै मन माहिं ।।

जब लग नैन न देखिये, परगट मिलै न आइ।
एक सेज संगहि रहै, यहु दुख सह्या न जाइ ॥
तब लग नेड़े दूरि है, जब लग मिलै न मोहिं।
नैन निकट नहिं देखिये, संगि रहे क्या होइ ॥
कहा करौं कैसे मिलै रे, तलफै मेरा जीव।
दादू आतुर बिरहनी, कारण अपने पीव ॥

हमरे तुमहीं हौ रखपाल।
तुम बिन और नहीं कोउ मेरे, भौ दुख मेटणहार।
वैरी पंच निमष नहिं न्यारे, रोकि रहे जम काल।
हा जगदीस दास दुख पावै, स्वामीं करो संभाल ॥
तुम बिन राम दहैं ये दुंदर, दसों दिसा सब साल।
देखत दीन दुखी क्यों कीजे, तुम हौ दीनदयाल ॥
निर्भय नांव हेत हरि दीजे, दरसन परसन लाल।
दादू दीन लीन करि लीजे, मेटहु सबै जंजाल।

क्यौं बिसरै मेरा पीव पियारा।
जीव कि जीवन प्राण हमारा ॥टेक॥
क्यौं कर जीवै मीन जल बिछुरें, तुम बिन प्राण सनेही।
च्यंतामणि जब कर थैं छूटैं, तब दुख पावै देही ॥
माता बालक दूध न देवै, सो कैसें करि पीवै।
निर्धन का धन अनत भुलाना, सो कैसैं करि जीवै ॥
परब्रह्म राम सदा सुख अमृत, नीझर निर्मल धारा।
प्रेम पियाला भरि भरि दीजै, दादू दास तुम्हारा ॥

भाई रे घर ही में घर पाया ॥
सहजि समाइ रह्या ला माहीं, सतगुरु खोज बताया ॥
ता घर काज सबै फिरि आया आपै आप लखाया।
खोलि कपाट महल के दीन्हे, थिर अस्थान दिखाया ॥

भय श्रौ भेद भरम सब भागा, साच सोई मन लाया।
प्यंड परे जहां जिव जावै, ता में सहज समाया॥
निहचल सदा चलै नहिं कबहूं, देख्या सबमें सोई।
ताही सूं मेरा मन लागा, श्रौर न दूजा कोई॥
श्रादि श्रंत सोई घर पाया, इब मन श्रनत न जाई।
दादू एक रँगै रंग लागा, तामें रह्या समाई।

मेरे तुमहीं राखणहार, दूजा को नहीं।
ये चंचल चहुं दिसि जाइ, काल तहीं तहीं ॥टेक॥
मैं केते किये उपाइ, निहचल ना रहै।
जहं बरजैं तहं जाइ, मदमातौ बहै॥
जहँ जाणैं तहँ जाइ, तुम थ ना डरै।
ता स्यौं कह्या बसाइ, भावै त्यूं करै॥
सकल पुकारैं साध, मैं केता कह्या।
गुर श्रंकुस मानै नाहिं, निरभै है रह्या॥
तुम विन श्रौर न कोइ इस मन को गहै।
तूँ राखै राखणहार, दादू तौ रहै॥

मूल सीचि बधै ज्यूं बेला सो तत तरवर रहै श्रकेला ॥टेक॥
देवी देखत फिरैं ज्यूं भूले खाइ हलाहल बिष कौं फूले।
सुख कौं चाहै पड़ै गल पासी, देखत हीरा हाथ थैं जासी॥
केइ पूजा रचि ध्यान लगावैं, देवल देखैं खबरि न पावैं।
तौरैं पाती जुगति न जानी, इहि भ्रमि रहे भूलि श्रभिमानी॥
तीरथ बरत न पूजै श्रासा, बनकंडि जाहीं रहैं उदासा।
यूं तप करि करि देह जलावैं, भरमत डोलैं जनम गंवावैं॥
सतगुर मिलै न संसा जाई, ये बंधन सब देइ छुड़ाई।
तब दादू परम गति पावै, सो निज मूरति माहिं लखावै॥

मन रे तूँ देखै सों नाहीं, है सो अगम अगोचर माहीं ।।टेक।।
निस अँधियारी कछू न सूझै, संसै सरप दिखावा ।
ऐसै अंध जगत नहिं जानै, जीव जेवड़ी खावा ।।
मृग-जल देखि तहाँ मन धावै, दिन दिन झूठी आसा ।
जहँ जहँ जाइ तहाँ जल नाहीं, निहचै मरै पियासा ।।
भरम विलास वहुत विधि कीन्हा, ज्यौं सुपिनैं सुख पावै ।
जागत झूठ तहां कुछ नाहीं, फिरि पीछैं पछितावै ।।
जब लग सूता तबलग देखै, जागत भरम बिलाना ।
दादू अंत इहां कुछ नाहीं, है सो सोधि सयाना ।।

न्यंदक बाबा वीर हमारा, बिनहीं कौड़े कहै विचारा ।
कर्म कोटि के कुसमल काटै, काज संवारै बिनहीं साटै ।।
आपण डूबै और कहौं तारै, प्रीतम पार उतारै ।।
जुगि जुगि जीवौ न्यंदक मोरा, राम देव तुम करौ निहोरा ।
न्यंदक बपुरा पर-उपगारी, दादू न्यंद्या करै हमारी ।

हम पाया हम पाया रे भाई ।
भेप बनाइ ऐसी मनि आई ।।टेक।।
भीतर का यहु भेद न जानै ।
कहै सुहागनि क्यूं मन मानै ।।
अंतर पीव सौं परचा नाहीं ।
भई सुहागनि लोगन माहीं ।।
साईं सुपिनै कबहु न आवै ।
कहिबा ऐसैं महल बुलावै ।।
इन बातन मोहिं अचिरज आवै ।
पटम कियें पिव कैसैं पावै ।।
दादू सुहागनि ऐसैं कोई ।
आपा मेटि राम रत होई ।।

सुंदरदास

जल को सनेही मीन बिछुरत तजै प्रान ।
मणि बिनु अहि जैसे जीवन न लहिये ।।
स्वाति बुंद को सनेही, प्रगट जगत मांहि ।
एक सीप दूसरो सु, चातक हु कहिये ।।
रवि को सनेही पुनि, कमल सरोवर में ।
ससि को सनेही हू, चकोर जैसे रहिये ।।
तैसे ही सुंदर एक, प्रभु सूं सनेह जोरि ।
और कछु देखि, काहू ओर नहिं बहिये ।।

एक सही सब के उर अन्तर, ता प्रभु कूं कहु काहि न गावै ।
संकट माहिं सहाय करै पुनि, सो अपनो पति क्यूं बिसरावै ।।
चार पदारथ और जहां लगि, आठहु सिद्धि नवौ निधि पावै ।
सुदर छार परौ तिनके मुख, जो हरि कूं तजि आन कूं ध्यावै ।।

गोविंद के किये जीव, जात है रसातल को ।
गुरु उपदेसे से तो, छूटै जमफंद तें ।।
गोविंद के किये, जीव बस परे कर्मन के ।
गुरु के निवाजे से, फिरत है स्वछंद तें ।।
गोविंद के किये, जीव बूड़त भवसागर में ।
सुंदर कहत गुरु काढ़ै दुख द्वंद तें ।।
और हू कहाँ लौ कछू, मुख तें कहूँ बनाय ।
गुरु की तौ महिमा, अधिक है गोविंद तें ।।

सो गुरुदेव लिपै न छिपै कछु,
सत्य रजो तम ताप निवारी।
इंद्रिय देह मृषा करि जानत,
सीतलता समता उर धारी।
व्यापक ब्रह्म विचार अखंडित,
द्वैत उपाधि सबै जिन टारी।
सबद सुनाय संदेह मिटावत,
सुंदर वा गुरु की बलिहारी।

हम कूँ तौ रैन दिन, संक मन माहिं रहै।
उनकी तौ बातिन में, ठीकहु न पाइये ॥
कबहूं संदेसा सुनि, अधिक उछाह होइ।
कबहुंक रोंइ रोंइ, आंसुन बहाइये ॥
औरन के रस बस, होइ रहे प्यारे लाल।
आवन की कहि कहि, मह कूँ सुनाइये ॥
सुंदर कहत ताहि, काटिये सुकौन भांति।
जोइ तरु आपने सु, हाथ तें लगाइये ॥

पीव को अंदेसो भारी, तो सूँ कहूँ सुन प्यारी।
यारी तोरि गये सों तौ, अजहूं न आये है ॥
मेरे तौ जीवन प्राण, निसि दिन उहै ध्यान।
मुख सूँ न कहूँ आन, नैन उर लाये हैं ॥
जब तें गये बिछोहि, कल न परत मोहिं।
ता तें हूँ पूछत तोहि, किन बिरमाये है ॥
सुंदर बिरहिनी को, सोच सखी बार बार।
हम कूँ बिसार अब, कौन के कहाये है ॥

स्वासोंस्वास राति दिन सोहं सोहं होइ जाप ।
याही माला बारंवार दृढ़ के धरतु हैं ॥
देह परे इंद्री परे अन्तःकरण परे ।
एकही अखंड जाप ताप कूं हरतु है ॥
काठ की रुद्राच्छ की रु सूतहू की माला और ।
इनके फिराये कछु कारज सरतु है ॥
सुंदर कहत तातें आतमा चैतन्य रूप ।
आप को भजन सो तो आपही करतु है ॥

जैसे ईख रस की मिठाई, भांति भांति भई ।
फेरि करि गार, ईख रस ही लहतु है ॥
जैसे घृत थीज के, डरा सो बाँधि जात पुनि ।
फेर पिघले तें, वह घृत ही रहतु है ॥
जैसे पानी जमि के, पषाण हू सों देखियत ।
सो पषाण फेरि, पानी होय के बहतु है ॥
तैसे ही सुंदर यह, जगत है ब्रह्म मै ।
ब्रह्म सो जगतमय, वेद सु कहतु है ॥

ब्रह्म निरंतर व्यापक अग्नि, अरूप अखंडित है सब माहीं ।
ईसुर पावक रासि प्रचंड जू, संग उपाधि लिये बताहीं ॥
जीवत अनंत मसाल चिराग, सु दीप पतंग अनेक दिखाहीं ।
सुंदर बैत उपाधि मिटै जब, ईसुर जीव जुदे कछु नाहीं ॥

असन वसन बहु, भूषण सकल अंग ।
संपति बिबिधि भांति भर्यो सब घर है ॥
स्रवण नगारो सुनि छिनक में छांड़ि जात ।
ऐसे नहिं जानै कछु मेरो वहां मर है ॥

मन में उछाह रण माहिं टूक टूक होइ।
निर्भय निसंक वाके रंचहू न डर है॥
सुंदर कहत कोउ, देह को ममत्व नाहिं।
सूरमा को देखियत, सीस विनु घर है॥

पांव रोपि रहै, रण माहिं रजपूत कोऊ।
हय गज गाजत जुरत जहाँ दल है॥
बाजत जुझाऊ सहनाई सिंधु राग पुनि।
सुनतहि कायर की, छूटि जात कल है॥
झलकत बरछी, तिरछी तरवार वहै।
मार मार करत परत खल भल है॥
ऐसे जुद्ध में अडिग्ग सुंदर सुभट सोइ।
घर माहि सूरमा, कहावत सकल है॥

देह ओर देखिये तौ, देह पंचभूतन को।
ब्रह्मा अरु कीट लग देह ही प्रधान है॥
प्राण ओर देखिये तौ, प्राण सबही के एक।
छुधा पुनि तृषा दोऊ, व्यापत समान है॥
मन ओर देखिये तौ, मन को सुभाव एक।
संकल्प बिकल्प करै, सदा ही अज्ञान है॥
आतम बिचार किये, आतमा ही दीसै एक।
सुंदर कहत कोऊ दूसरो न आन है॥

एकहि कूप तें नीरहि सींचत, ईख अफीमहि अंब अनारा।
होत उहै जल स्वाद अनेकनि, मिष्ट कटूक खटा अरु खारा॥
त्यूँही उपाधि संजोग तें आतम, दीसत आहि मिल्यो सविकारा॥
काढ़ि लिये सुविवेक विचार सुं, सुंदर सुद्ध सरूपहि न्यारा॥

घेरिये तौ घेरे हू, न आवत है मेरो पूत ।
जोई परबोधिये सो कान न धरतु है ।।
नीति न अनीति देखै, सुभ न असुभ पेखै ।
पल ही में होती, अनहोती हू करतु है ।।
गुरु की न साधु की न लोक बेदहू की संक ।
काहू की न मानै न तौ काहू तैं डरतु है ।।
सुंदर कहत ताहि, धीजिये सु कौन भांति ।
मन की सुभाव, कछु कह्यो न परतु है ।।

पलही में मरि जाय, पलही में जीवतु है ।
पलही में पर हाथ, देखत बिकानी है ।।
पलही में फिरै, नवखंड हू ब्रह्मांड सब ।
देख्यो अनदेख्यो सो तौ, या तें नहिं छानो है ।।
जातो नहिं जानियत, आवतो न दीसै कछु ।
ऐसे ही बलाइ अब, तासूं पर्यो पानी है ।।
सुंदर कहत याकी, गति हूँ न लखि परै ।
मन की प्रतीत कोऊ, करै सो दिवानो है ।।

तो सो न कपूत कोऊ, कितहूँ न देखियत ।
तो सों न सपूत कोऊ, देखियत और है ।।
तू ही आप भूलै महा, नीचहू तें नीच होइ ।
तू ही आप जानै तौ, सकल सिर मौर है ।।
तू ही आप भ्रमै तब, जगत भ्रमत देखै ।
तेरे स्थित भये सब, ठौर ही को ठौर है ।।
तू ही जीव रूप तू ही, ब्रह्म है अकासवत ।
सुंदर कहत मन, तेरो सब दौर है ।।

और तौ बचन ऐसे, बोलत है पसु जैसे।
तिन के तौ बौलिवे में, ढंगहूँ न एक है॥
कोऊ रात दिवस, बकत ही रहत ऐसे।
जैसी विधि कूप में, बकत मानो मेक है॥
बिबिधि प्रकार करि, बोलत जगत सब।
घट घट प्रतिमुख बचन अनेक है।
सुंदर कहत तातें बचन बिचारि लेहू।
बचन तो वहै जा में, पाइये बिवेक है॥

बोलिये तौ तब जब, बोलिबे की सुधि होइ।
न तौ मुख मौन गहि, चुप होइ रहिये॥
जोरिये तौ तब जब, जोरिबे की जानि परै।
तुक छंद अरथ अनूप जा में लहिये॥
गाइये तौ तब जब, गाइबे को कंठ होइ।
स्रवण के सुनत ही मन जाइ गहिये॥
तुक-भंग-छंद-भंग, अरथ मिलै न कछु।
सुंदर कहत ऐसी, बाणी नहीं कहिये॥

एकनि के बचन, सुनत, अति सुख होइ।
फूल से झरत हैं, अधिक मनभावने॥
एकनि के बचन तौ, असि मानौ बरसत।
स्रवन के सुनत, लगत अलखावने॥
एकनि के वचन कटुक कहु विष रूप।
करत मरम छे-दुक्ख उपजावने॥
सुंदर कहत घट घट में बचन भेद।
उत्तम मध्यम अरु अधम सुहावने॥

भावै देह छूटि जाहु कासी माहिँ गंगा तट।
भावै देह छूटि जाहु, छेत्र मगहर में॥
भावै देह छूटि जाहु, बिप्र के सदन मध्य।
भावै देह छूटि जाहु, स्वपच के घर में॥
भावै देह छूटि देस, आरजें अनारज में।
भावै देह छूटि जाहु बन में नगर में॥
सुंदर ज्ञानी के कछु संसय रहत नाहिं।
सुरग नरक सब, भागि गयो नर में॥

जगत में आइके, बिसार्‌यो है जगतपति।
जगत कियो है सोई जगत भरतु है॥
तेरे निसि दिन चिंता, औरहि परी है आइ।
उद्यम अनेक, भाँति भाँति के करतु है॥
इत उत जायके, कमाई करि लाऊँ कछु।
नेक न अज्ञानी नर धीरज धरतु है॥
सुंदर कहत एक प्रभु के, बिस्वास बिनु।
बादहि कूँ वृथा सठ पचि के मरतु है॥

धीरज धारि बिचार निरंतर, तेहि रच्यो सोइ आपुहि ऐहै।
जेतिक भूक लगी घट प्राणहिं, तेतिक तू अन्यारहि पैहै॥
जो मन में तृस्ना करि धावत, तौ तिहुं लोक न खात अघैहै।
सुंदर तू मत सोच करै कछु, चोँच दई जिन चूनहु दैहै॥

द्वंद विना बिचरै बसुधा पर, जा घट आतम ज्ञान अपारो।
काम न क्रोध न लोभ न मोह, न राग न द्वेष न म्हरु न थारो॥
जोग न भोग न त्याग न संग्रह, देह दसा न ढंक्यो न उधारो।
सुंदर कोउक जानि सकै यह, गोकुल गाँव को पैंडोहि न्यारो॥

ज्ञानी कर्म करै नाना विधि, अहंकार या तन को खोवै ।
कर्मन को फल कछू न जोवै, अंतःकरण वासना धोवै ।।
ज्यूँ कोऊ खेती कूँ जोतत, लेकरि बीज भूमि के बोवै ।
सुंदर कहै सुनो दृष्टांतहि, नाँगि नहाई कहा निचोवै ।।

विधि न निषेध कछु भेद न अभेद पुनि ।
क्रिया सो करत दीसै यूँही नित प्रीत है ।।
काहू कूँ निकट राखै, का कूहू तौ दूर भाखै ।
काहू सूँ नेरे न दूर ऐसी जाकी मति है ।।
रागहू न द्वेष कोऊ, सोक न उछाह दोऊ ।
ऐसी विधि रहै कहूँ रति न विरति है ।।
बाहिर व्योहार ठानै, मन में सुपन जानै ।
सुंदर ज्ञानी की कछु, अद्भुत गति है ।।

तमोगुण बुद्धि सोतौ, तवा के समान जैसे ।
ताके मध्य सूरज की, रंचहू न जोत है ।।
रजोगुण बुद्धि जैसे, आरसी की आँधी ओर ।
ताके मध्य सूरज को, कछुक अद्योत है ।।
सत्वगुण बुद्धि जैसे, आरसी को सूधी ओर ।
ताके मध्य प्रतिबिंब सूरज की पोत है ।।
त्रिगुण अतीत जैसे प्रतिबिंब मिटि जात ।
सुंदर कहत एक सूरज ही होत है ।।

देह के सँजोग ही तें, सीत लगै घाम लगै ।
देह के सँजोग ही तें छुधा तृषा पौन कूँ ।।
देह के सँजोग ही तें कटुक मधुर स्वाद ।
देह के सँजोग कहै खाटो खारो लौन कूँ ।।

देह के सँजोग कहै मुख तें अनेक बात।
देह के सँजोग ही, पकरि रहै मौन कूँ॥
सुंदर देह के सँजोग दुःख मानै सुख मानै।
देह के संजोग गये, दुःख सुख कौन कूँ॥

छीर नीर मिले दोऊ, एकठे हो होइ रहे।
नीर जैसे छाड़ि हंस, छीर कूं गहतु है॥
कंचन में और धातु, मिलि करि बनि पर्यो।
सुद्ध करि कंचन सुनार ज्यूं लहतु है॥
पावक हूँ दारू मध्य, दारू ह सों होइ रह्यो।
मथि करि काढै वह, दारू कूँ दहतु है॥
तैसे ही सुंदर मिल्यो, आतमा अनातमा जु।
भिन्न भिन्न करै सो तो सांख्य ही कहतु है॥

धूलि जैसो धन जाके, सूलि सो संसार सुख।
भूलि जैसो भाग देखौ अंत कैसी यारी है॥
पाप जैसी प्रभुताई, स्राप जैसो सनमान।
बड़ाई बिच्छुन जैसी, नागिनी सी नारी है॥
अग्नि जैसो इंद्रलोक, बिघ्नि जैसो बिधि लोक।
कीरति कलंग जैसी, सिद्ध सी ठगारो है॥
बासना न कोई बाकी ऐसी मति सदा जाकी।
सुंदर कहत ताहि, वंदना हमारी है॥

है दिल मैं दिलदार सही, अँखियाँ उलटी करि ताहि चितैये।
आब में खाक में बाद में आतस, जानि में सुंदर जानि जनैये॥
नूर में नूर है तेज में तेजहि, ज्योति में ज्योति मिलै मिलि जैये।
क्या कहिये कहते न बनै कछु, जो कहिये कहते हि लजैये॥

काहू कूँ पूछत रंक, धन कैसे पाइयत।
कान देके सुनत, स्रवन सोई जानिये।।
उन कह्यो धन हम, देख्यो है फलानी ठौर।
मनन करत भयो, कब धर आनिये।।
फेरि जब कह्यो धन, गड्यो तेरे घर माहिं।
खोदन लाग्यो है तब, निदिध्यास ठानिये।।
धन निकस्यो है जब, दारिद गयो है तब।
सुंदर साक्षातकार, नृपति बखानिये।।

न्याय सास्त्र कहत है, प्रगट ईसुरवाद।
मीमांसाहि सास्त्र महिं कर्मबाद कह्यो है।।
वैसेपिक सास्त्र पुनि, कालवादी है प्रसिद्ध।
पातंजलि सास्त्र माहिं, योगवाद लह्यो है।।
सांख्य सास्त्र माहिं पुनि प्रकृति पुरुपवाद।
वेदांत जु सास्त्र तिन, ब्रह्मवाद गह्यो है।।
सुंदर कहत पटसास्त्र, माहिं भयो वाद।
जाके अनुभव ज्ञान, वाद में न वह्यो है।।

ज्ञानी की सी वात कहै, मन तौ मलिन रहै।
वासना अनेक भरि, नेक न निवारि है।।
जैसे कोऊ आभूपण, अधिक बनाई राखै।
कलई ऊपरि करि, भीतर भंगारी है।।
ज्यूंही मन आवै त्यूंही, खेलत निसंक होइ।
ज्ञान सुनि सीखि लियो, ग्रन्थ न विचारी है।।
सुंदर कहत वाके, अटक ना कोऊ आहि।
जोई वा सूँ मिलै जाइ, तीही कूँ बिगारी है।।

देह सूँ ममत्व पुनि गेह सूँ ममत्व।
सुत दारा सूँ ममत्त, मन माया में रहतु है।।
थिरता न लहै जैसे, कंदुक चौगान माहिं।
कर्मनि के बस मार्‍यो, धका कूँ बहतु है।
अंतःकरण सदा, जगत सूँ रचि रह्यो।
मुख सूँ बनाय बात ब्रह्म की कहतु है।।
सुंदर अधिक मोहिँ, याही तें अचंभो आहि।
भूमि पर पर्‍यो कोऊ चंद कूँ गहतु है।।

जो कोइ जाइ मिलै उन सूँ नर, होत पवित्र लगै हरि रंगा।
दोष कलंक सबै मिटि जाइसु, नीचहु जाई जु होत उतंगा।।
ज्यूँ जल और मलीन महा अति, गंग मिल्या हुइ जातहि गंगा।
सुंदर सुद्ध करै ततकाल जु, है जग माहिं बड़ो सतसंगा।।

प्रीति प्रचंड लगै पर ब्रह्महिं, और सबै कछु लागत फीको।
सुद्ध हृदय मन होइ सु निर्मल, द्वैत प्रभाव मिटै सब जी को।।
गोष्टि रु ज्ञान अनंत चलै जहँ, सुंदर जैसो प्रबाह नदी को।
ताहितें जानि करौ निसि बासर, साधु को संग सदा अति नीको।।

अपने न दोष देखे, और के औगुण पेखे।
दुष्ट को सुभाव, उठि निंदा ही करत है।।
जैसे कोई महल संवारि राख्यो नीके करि।
कीरी तहाँ जाय छिद्र ढूंढत फिरतु है।।
भोरही तें साँझ लग, साँझही तें भोर लग।
सुंदर कहत दिन ऐसे ही भरतु है।।
पाँव के तरे की नहीं सूझे आगे मूरख कूँ।
और सूँ कहत तेरे, सिर पै बरतु है।।

सर्प डसै सु नहीं कछु तालुक, बीछू लगै सु भले करि मानौ।
सिंहहु खाय तु नाहिँ कछु डर, जो गज मारत तौ नहिं हानौ॥
आगि जरौ जल बूड़ि मरौ, गिरि जाइ गिरौ कछु भै मत आनौ।
सुंदर और भले सवही यह, दुर्जन संग भलो जिनि जानौ॥

आपनु काज संवारन के हित, और कु काज विगारत जाई।
आपनु कारज होउ न होउ, बुरो करि और कुँ डारत भाई॥
आपहु खोवत औरहु खोवत खोइ दुनों घर देत वहाई।
सुंदर देखत ही वनि आवत, दुष्ट करै नहिं कौन बुराई॥

किधौं पेट चूल्हो कीधौं, भाठि किधौ भाड़ आहि।
जोइ कछु झोंकिये, सो सब जरि जातु है॥
किधौं पेट थल किधौं, बापि किधौ सागर है।
जेतो जल परै ते तो, सकल समातु है॥
किधौं पेट दैत किधौं, भूत प्रेत राच्छस है।
खाउं खाउं करै कछु, नेक न अघातु है॥
सुंदर कहत प्रभु, कौन पाप लायो पेट।
जव ही जनम भयो, तव ही को खातु है॥

जो दस बीस पचास भये सत।
होइ हजार तु लाख मँगैगी॥
कोटि अरव्व खरव्व असंख्य।
पृथ्वीपति होन कि चाह जगैगी॥
स्वर्ग पताल को राज करौं।
तृष्ना अधिकी अति आग लगैगी॥
सुंदर एक संतोष विना सठ।
तेरी तो भूख कभी न भगैगो॥

गेह तज्यो पुनि नेह तज्यो, पुनि खेह लगाइ के देह सँवारी।
मेघ सहै सिर सीत सहै तन, धूप समय जु पंचागिनि बारी॥
भूख सहैं रहि रूख तरे, सुंदरदास सहै दुख भारी।
डासन छाड़ि के कासन ऊपर, आसनि मारि पै आस न मारी॥

मेघ सहै सीत सहै, सीस पर घाम सहे।
कठिन तपस्या करि कद मूल खात है॥
जोग करै जज्ञ करै, तीरथ रु व्रत करै।
पुन्य नाना विधि करै मन में सुहात है॥
और देवी देवता उपासना अनेक करै।
आँबन की हौस कैसे आक डोड़े जात है॥
सुंदर कहत एक रवि के प्रकास बिनु।
जेंगना की जोति कहा रजनी बिलात है॥

रसिक प्रिया रस मंजरी, और सिंगारहि जान।
चतुराई करि बहुत विधि, बिषय बनाई आन॥
बिषय बनाई आन, लगत बिषयिन कूँ प्यारी।
जागे मदन प्रचंड, सराहै नखसिख नारी॥
ज्यूं रोगी मिष्ठान खाइ, रोगहि बिस्तारै।
सुंदर ये गति होइ, रसिक जो रस प्रिया धारै॥

कामिनी की तनु मानु कहिये सघन बन।
वहां कोऊ जाय सो तौ भूले ही परतु है॥
कुँजर है गति कटि केहरी को भय जा में।
बेनी काली नागिनीऊ फन कूँ धरतु है॥
कुच हैं पहार जहाँ काम चोर रहै तहाँ।
साधि के कटाच्छ बान प्रान कूँ हरतु है॥
सुंदर कहत एक और डर जामैं अति।
राच्छसी बदन खांऊ खांउ ही करतु है॥

मातु पिता युवती सुत बाँधव ।
लागत है सब कूँ अति प्यारो ॥
लोक कुटुंब खरो हित राखत ।
होइ नहीं हम तें कहुँ न्यारो ॥
देह सनेह तहाँ लग जानहु ।
बोलत है मुख सबद उचारो ॥
सुंदर चेतन सक्ति गई जब ।
बेगि कहै घरबार निकारो ॥

तू कछु और विचारत है नर ।
तेरो विचार धर्‌यो ही रहैगो ।
कोटि उपाय करै धन के हित ॥
भाग लिख्यो तिननोहि लहैगो ।
भोर कि सांझ घरी पल माँझ सु ।
काल अचानक आइ गहैगो ॥
राम भज्यो न कियो कुछ सुकिरत ।
सुंदर यूँ पछताय रहैगो ॥

सोवत सोवत सोइ गयो सठ, रोवत रोवत कै बेर रोयो ।
गोवत गोवत गोइ धर्‌यो धन, खोवत खोवत तैं सब खोयो ॥
जोवत जोवत बीति गये दिन, बोवत बोवत लै बिष बोयो ।
सुंदर सुंदर राम भज्यो नहिं, ढोवत ढोवत बोझहिं ढोयो ॥

कार उहै अबिकार रहै नित, सार उहै जु असारहि नाखै ।
प्रीति उहै जु प्रतीति धरै उर, नीति उहै जु अनीतिन भाखै ॥
तंत उहै लगि अंत न टूटत, संत उहै अपनो सत राखै ।
नाद उहै सुनि बाद तजै सब, स्वाद उहै रस सुंदर चाखै ॥

प्रीति सी न पाती कोऊ प्रेम से न फूल और।
चित्त सों न चंदन सनेह सों न सेहरा ॥
हृदय सों न आसन सहज सों न सिंहासन।
भाव सी न सेज और सून्य सों न गेहरा ॥
सील सों न स्नान अरु ध्यान सों न धूप और।
ज्ञान सों न दीपक अज्ञान तम केहरा ॥
मन सी न माला कोऊ सोहं सो न जाप और।
आतम सों देव नाहिं देह सों न देहरा ॥

•

जा सरीर माहिं तू अनेक सुख मानि रह्यो।
ताहि तू बिचार या में कौन बात भली है ॥
मेद मज्जा मांस रग रग में रकत भर्‌यो।
पेटहू पिटारी सी में ठौर ठौर मली है ॥
हाड़न सूँ भर्‌यो मुख हाड़न के नैन नाक।
हाथ पाउ सोऊ सब हाड़न की नली है ॥
सुंदर कहत याहि देखि जनि भूले कोई।
भीतर भँगार भरी ऊपर तौ कली है ॥

सुंदर और न ध्याइये, एक बिना जगदीस।
सो सिर ऊपर राखिये, [illegible] ॥
सुंदर पतिव्रत राम सों, सदा रहै इक तार।
सुख देवै तो अति सुखी, दुख तो सुखी अपार ॥
जो पिय को व्रत लै रहै, कंत पियारी सोइ।
अंजन मंजन दूरि करि, सुंदर सनमुख होइ ॥
प्रीतम मेरा एक तू, सुंदर और न कोइ।
गुप्त भया किस कारने, काहि न परगट होइ ॥

सुंदर सतगुरु यों कह्या, सकल सिरोमनि नाम ।
ता कौं निसु दिन सुमरिये, सुख सागर सुखधाम ॥
हिरदे में हरि सुमिरिये, अंतरजामी राइ ।
सुंदरु नीके जतन सौं, अपनौं वित्त छिपाइ ॥
रंक हाथ हीरा चढ़्यो, ता कौ मोल न तोल ।
घर घर डोलै बेचतो, सुंदर याही मोल ॥
राम नाम मिसरी पियें, दूरि जाहि सब रोग ।
सुंदर औषध कटुक सब, जप तप साधन जोग ॥
राम नाम जाके हिये, ताहिं नवैं सब कोय ।
ज्यों राना की संक तें, सुंदर अति डर होइ ॥
सुंदर सब ही संत मिलि, सार लियों हरि नाम ।
तक्र तजी घृत काढ़ि कै, और क्रिया किहिँ काम ॥
लीन भया विचरत फिरै, छीन भया गुन देह ।
दीन भई सब कल्पना, सुंदर सुमिरन येह ॥
भजन करत भय भागिया, सुमिरन भागा सोच ।
जाप करत जौंरा टल्या, सुंदर साची लोच ॥
सुंदर भजिये राम को, तजिये माया मोह ।
पारस के परसे विना, दिन दिन छीजै लोह ॥
प्रीति सहित जे हरि भजैं, तब हरि होहिँ प्रसन्न ।
सुंदर स्वाद न प्रीति विन, भूख विना ज्यों अन्न ॥
एक भजन तन सौं करै, एक भजन मन होइ ।
सुंदर तन मन के परे, भजन अखंडित सोइ ॥
जाही कौं सुमिरन करै, ह्वै ताही को रूप ।
सुमिरत कीये ब्रह्म के, सुंदर ह्वै चिदरूप ॥

सुंदर अंदर पैठि करि, दिल में गोता मारि ।
तौ दिल ही में पाइये, साई सिरजनहारि ॥
सखुन हमारा मानिये, मत खोजै कहुँ दूर ।
साईं सीने बीच है, सुंदर सदा हजूर ॥

जो यह उसका ह्वै रहै, तो वह इसका होइ।
सुंदर बातौं ना मिलै, जब लग आप न खोइ॥
सुंदर दिल की सेज पर, औरति है अरवाह।
इसको जाग्या चाहिये, साहिब बेपरवाह॥
जो जागै तौ पिय लहै, सोयें लहिये नाहिं।
सुंदर करिये बंदगी, तो जाग्या दिल माहिं॥

दादू सतगुरु बंदिये, सो मेरे सिर-मौर।
सुंदर बहिया जायथा, पकरि लगाया ठौर॥
सुंदर सतगुरु बंदिये, सोई बंदन जोग।
औषध सबद दिवाइ करि, दूर कियो सब रोग॥
परमेसुर अरु परम गुरु, दोनों एक समान।
सुंदर कहत बिसेष यह, गुरु तें पावै ज्ञान॥
सुंदर सतगुरु आपु तें, किया अनुग्रह आइ।
मोह निसा में सोवतें, हमकौं लिया जगाइ॥
सुंदर सतगुरु सारिखा, कोऊ नहीं उदार।
ज्ञान खजीना खोलिया, सदा अटूट भंडार॥
समदृष्टी सीतल सदा, अद्भुत जाकी चाल।
ऐसा सतगुरु कीजिये, पलमें करै निहाल॥
सुंदर सतगुरु मिहर करि, निकट बताया राम।
जहाँ तहाँ भटकत फिरैं, काहे को बेकाम॥
गोरखधंधा लोह में, कड़ी लोह ता माहिं।
सुंदर जानै ब्रह्म में, ब्रह्म जगत ह्वै माहिं॥
परमातम से आतमा, जुदे रहे बहुकाल।
सुंदर मेला करि दिया, सतगुरु मिले दयाल॥
परमातम अरु आतमा, उपज्या यह अविवेक।
सुंदर भ्रमतें दोय थे, सतगुरु कीए एक॥

सुंदर सूता जीय है, जाग्या ब्रह्म स्वरूप ।
जागन सोवन तें परे, सतगुरु कह्या अनूप ।
मूरख पावै अर्थ कौं, पंडित पावै नाहिं ।
सुंदर उलटी बात यह, है सतगुरु के माहिं ॥
सुंदर सतगुरु ब्रह्ममय, पर सिप की चम दृष्टि ।
सूधी ओर न देखई, देखै दर्पन पृष्ठ ॥
सुंदर काटै सोध करि, सतगुरु सोना होइ ।
सिप सुवरन निर्मल करै, टांका रहै न कोइ ॥
नभमनि चिंतामनि कहै, हीरामनि मनिलाल ।
सकल सिरोमनि मुकटमनि, सतगुरु प्रगट दयाल ॥
सुंदर सतगुरु आप नें, अतिही भये प्रसन्न ।
दूरि किया संदेह सब, जीव ब्रह्म नहिं भिन्न ॥
सुंदर सतगुरु हैं सही, सुंदर सिच्छा दीन्ह ।
सुंदर वचन सुनाइ कै, सुन्दर सुन्दर कीन्ह ॥

मारग जोवै बिरहिनी, चितवै पिय की ओर ।
सुंदर जियरे जक नहीं, कल न परत निस भोर ॥
सुंदर बिरहिनि अधजरी, दुःख कहै मख रोइ ।
जरि बरि कै भस्मी भई, धुवाँ न निकसै कोइ ॥
ज्यौं ठगमूरी खाइ कै, मुखहिं न बोलै बैन ।
टुगर टुगर देख्या करै, सुंदर बिरहा ऐन ॥
लालन मेरा लाडिला, रूप बहुत तुझ माँहि ।
सुंदर राखै नैन में, पलक उघारै नाँहि ॥
अब तुम प्रगटहु राम जी, हृदय हमारे आइ ।
सुंदर मुख संतोष है, आनंद अंग नमाइ ॥

धरनीदास की बानी

अजहुँ मिलो मेरे प्रान-पियारे।
दीनदयाल कृपाल कृपानिधि ।।
करहु छिमा अपराध हमारे।
कल न परत अति बिकल सकल तन ।।
नैन सकल जनु बहत पनारे।
मांस पचो अरु रक्त रहित भे ।।
हाड़ दिनहुँ दिन होत उधारे।
नासा नैन स्त्रवन रसना रस ।।
इंद्री स्वाद जुआ जनु हारे।
दिवस दसो दिसि पंथ निहारत ।।
राति बिहात गनत जस तारे।
जो दुख सहत कहत न बनत मुख ।।
अंतरगत के हौ जानन हारे।
धरनी जिव झिलमलित दीप ज्यों ।।
होत अंधार करो उजियारे।

पानी से पैदा किये सुनु रे मन बौरे,
ऐसा खसम खुदाय कहाई रे।
दाह भयो दस मास को सुनु रे मन बौरे,
तर सिर ऊपर, पांई रे।।

आंच लगी जब आग की सुनु रे मन बौरे,
आजिज हैं अकुलाई रे।
कौल कियो मुख आपने सुनु रे मन बौरे,
नाहक अंक लिखाई रे॥
अब की करिहों बंदगी सुनु रे मन बौरे,
जो पइहों मुकलाई रे।
जग आये जंगल परे सुनु रे मन बौरे,
भरम रहे अरु अरुझाई रे॥
पर की पीर न जानिया सुनु रे मन बौरे,
बहुरि ऐसहीं जाई रे।
सतगुरु कै उपदेस जे सुनु रे मन बौरे,
दोजख दरद मिटाई रे।
मानुष देह दुरलभ अहै सुनु रे मन बौरे,
धरनी कह समुझाई रे॥

जीव की दया जेहि जीव व्यापै नहीं,
भूखे न अहार प्यासे न पानी।
साधु के संग नहिं सबद से रंग नाहिं,
बोलि जानै न मुख मधुर बानी॥
एक जगदीस को सीस अरपै नाहीं,
पांच पच्चीस बहु बात ठानी।
राम को नाम निज धाम बिस्राम नहीं,
धरनी कह धरनि सों बृग सो प्रानो॥

प्रभु जी अब जिनि मोहिं बिसारो।
असरन सरन अधम जन तारन, जुग जुग बिरद तिहारो॥
जहँ जहँ जनम करम बसि पायों, तहँ अरुझे रसखारो।
पाँचहुँ के परपंच भुलानो, धरेउ न ध्यान अधारो॥

अंध गर्भ दस मास निरंतर, निखसिख सुरति सँवारो।
मज्जा पुत्र अग्निमल क्रम जहँ, सहजै तहँ प्रतिहारो॥
दीजै दरस दयाल दया करि, गुन ऐगुन न बिचारो।
धरनी भजि आयो सरनागति, तजि लज्जा कुल गारो॥

तुहि अवलंब हमारे हो।
भावै पगु नाँगे करो, भावै तुरय सवारे हो॥
जनम अनेकन बादि गे, निजु नाम बिसारे हो।
अब सरनागत रावरी, जन करत पुकारे हो॥
भवसागर बेरा पारो, जल मांझ मंझारे हो।
संतत दीन दयाल ही, करि पार निकारे हो॥
धरनी मन बच कर्मना, तन मन धन वारे हो।
अपनो बिरद निबाहिये, नाहिं बनत बिचारे हो॥

मोसों प्रभु नाहिं दुखित, तुम सो सुखदाई॥टेक॥
दीन बंधु बान तेरो, आइ करु सहाई।
मोसों नहिं दीन और निरखो जगमाँई॥
पतित पावन निगम कहत, रहत हौ कित गोई।
मो सों नहिं पतित और, देखो जस टोई॥
अधम के उधारन तुम, चारो जुग ओई।
मो तें अब अधम आहि, कवन धौं बड़ोई॥
धरनी मन मनिया, इक ताग में पराई।
आपन करि जानि लेहु, कर्म फंद छोई॥

हरि जन हरि के हाथ विकाने ।
भावै कहो जग धृग जीवन है, भावै कहो बौराने ।।
जाति गुवाय अजाति कहाये, साधु सँगति ठहराने ।
मेटो दुख दारिद्र परानो, जूठन खाय अघाने ।।
पांच जने परबल परपंची, उलटि परे बदिखाने ।
छूटी मजूरी भये हजूरी, साहिब के मन माने ।।
निरममता निरबेरे सभन तें, निरसंका निरवाने ।
धरनी काम राम अपने तें, चरन कमल लपटाने ।।

पिया मोर बसैं गउरगढ़, मैं बसौं प्रयाग हो ।
सहजहिं ला सनेह, उपजु अनुराग हो ।।
असन बसन तन भूषन, भवन न भावै हो ।
पल पल समुझि सुरति मन गहबरि आवै हो ।
पथिक न मिलहि सजन जन, जिनहिं जनावों हो ।।
बिहवल बिकल बिलखि चित, चहुँ दिसि धावों हो ।।
होय अस मोहिं ले जाय कि ताहि ले आवै हो ।
तेकरि होइ बौं लौंड़िया, जे रहिया बतावै हो ।।
तबहिं त्रिया पत जाय, दोसर जब चाहै हो ।
एक पुरुष समरथ, धन न चाहै हो ।।

जहिया भइल गुरु उपदेस, अंग अंग के मिटल कलेस ।
सुनत सजग भयो जीव, जनु अगिनी परै घीव ।।
उर उपजल प्रभु प्रेम, छुटि के तब ब्रत नेम ।
जब घर भइल अजोर, तब मानल मन मोर ।।
देखे से कहल न जाय, कहले न जग पतियाय ।
धरनी धनि तिन पाग, नेहिं उपजल अनुराग ।।

जग में कायथ जाति हमारी ।
पायो है माला तिलक दुसाला, परमारथ ओहदा री।
कागद जहँलगि करम कमायो, कैंची ज्ञान रसा री ।।
गुरु के चरन अनंद जाप करि, अनुभव वरक उतारी ।
मन मसिहानी सांच की स्याही, सुरति सोफ भरि डारी ।।
भरम काटि करि कलम छुरी छबि, तकि तृस्ना खत भारी।
तवलक तत्त दया को दफदर, संत कचहरी भारी ।।
रैयत जगर सबद कैं कोंडी, दूजी मार न मारी ।
नाम रतन को भरो खजाना, धरो सो हृदय कोठारी ।।
है कोइ परखनहार बिबेकी, बारंबार पुकारी ।
धरनी साल बसाल अमाली, जमाखरच यहि पारी ।
प्रभु अपने कर कागज मेरो, लीजै समुझि सुधारी ।।

मन तुम यहि विधि करौ कैथाई ।
सुख संपति कबहूँ नहिं छीजै, दिन दिन बढ़त बड़ाई ।।
कसबा काया करु ओहदा री, चित चिट्ठा धरु साथी ।
मोहासिब करि अस्थिर मनुवां, मूल मंत्र अपराधी ।।
तत्त को तेरिज बेरिज बुधि की, ध्यान निरखि ठहराई ।
हृदय हिसाब समुझि कै कीजै, दहियक देहु लगाई ।।
राम को नाम रटी रोनामा, मुक्ति सों फरद बताई ।
अजपा जाप अवरिजा करि के, सर्व कर्म बिलगाई ।।
रैयत पांच पचीस बुझाए, हरि हाकिम रहे राजी ।
धरनी जमाखरच विधि मिलि है, को करि सकै गमाजी ।।

भाई रे जीभ कहल नहिं जाई ।
नाम रटन को करत निठुराई, कूदि चलै कुचराई ।।
चरन न चलै सुपंथ पै पग दुई, अपथ चलै अतुराई ।
देख बार कर दीन्ह दूबरो, लेत करै हथियाई ।।

नैना रूप सरूपा सनेही, नाद स्रवन लुबधाई।
नासा बहती बास बिषै की, इंद्री नारि पराई॥
संत चरन को सीस नवै नहिं, ऊपर अधिक तराई।
जो मन घेरि बेन्हिये बांधौ, भाजै छांद तुराई॥
का सो कहों कहै को मानै, अंग अंग अकुठाई।
धरनीदास आस नव पूजै, जो हरि होहिं सहाई॥

मन बसि लेहु अगम अटारी ॥टेक॥
नव नाग्नि को द्वारा निरखो, सहज सुखमना नारी।
अजब अवाज नगारा बाजत गगन गरजि धुनि भारी॥
तहं बरै बाती बिबस न राती, अलख पुरुष मठ धारी।
धरनी कै मन कहा न मानै, तबहिं हनो है कटारी॥

मन रे तू हरि भजु अवरि कुमति तजु।
है रहु बिमल बिरागी अनुरागी लो॥
देई देवा सो झूँठी, जैसे मरकट मूठी।
अंत बहुरि बिलगाने पछिताने लो॥
जठर अगिन जरै, भोजन भसम करै।
तहँ प्रभु पालल देंही नित तेही लो॥
सुत हितु बंधु नारी, इन संग दिना चारी।
जल संग परत पखाने, असमाने लो॥
परिजन हाथी घोरा, इहव कहत मोरा।
चित्र लिखल पट देखा, तस लेखा लो॥
धरनी बिच्छुक बानी हम्म प्रभु अजमानी।
मिलहु पट खोलौ अनमोली लो॥

मन तुम कस न करहु रजपूती ।
गगन नगारा बाजु गहागह, काहे रहो तुम सूती ।।
पाँच पचीस तीन दल ठाढ़े, इन संग सेन बहूती ।
अब तोहि घेरी मारन चाहत, जस पिंजरा नह तूती ।।
पइहौ राज समाज अमर पद, है रहु बिमल बिभूती ।
धरनीदास बिचार कहतु है, दूसर नाहिं सपूती ।।

कंत दरस बिनु बावरी ।
मो तन व्यापै पीर प्रीतम की, मूरुख जानै आवरी ।
पसरि गयो तरु प्रेम साखा सखि, बिसरि गयो चित चावरी ।
भोजन भवन सिंगार न भावै, कुल करतूति अभाव री ।।
खिन खिन उठि उठि पंथ निहारो, बार बार पछिताव री ।
नैनन अंजन नींद न लागै, लागै दिवस बिभावरी ।।
देह दसा कछु कहत न आवै जस जल ओछे नाव री ।
धरनी धनी अजहुं पिय पाओ, तौ सहजै अनंद बधाव री ।।

हरि जन हरि के हाथ बिकाने ।
भावै कहो जग धृग जीवन है भावै कहो बौराने ।।
जाति गंवाय अजाति कहाये, साधु संगति ठहराने ।
मेटो दुख दारिद्र परानो, जूठन खाय अघाने ।।
पांच जने परबल परपंची, उलटि परे बँदिखाने ।
छुटी मजूरी भये हजूरी, साहब के मन माने ।।
निरममता निरबैर समत तें, निरसंका निरबाने ।
धरनी काम राम अपने तें, चरन कमल लपटाने ।।

हरि जन वा मद के मतवारे।
जो मद विना काठि बिनु माठी, बिनु अग्निहिं उदगारे।
वास अकास धराधर भीतर, बुंद झरै झलका रे।
चमकत चंद अनंद बढ़ो जिव, शब्द सघन निरुवारे॥
विनु कर धरे विना मुख चाखे, विनहिं पियाले ढारे।
तारवन स्यार सिंह को पौरुख, जुत्थ गजंद बिड़ारे॥
कोटि उपाय करै जो कोई, अमल न होत-उतारे।
धरनी जो अलमस्त दिवाने, सोइ सिरताज हमारे॥

हित करि हरि नामहि लाग रे।
घरी घरी घरियाल पुकारै, का सोवै उठि जाग रे॥
चोआ चंदन चुपड़ तेलना, और अलबेली पाग रे।
सो तन जरे खड़े जग देखो, गूद निकारत काग रे॥
मात पिता परिवार सुता सुत, बंधु त्रिया रस त्याग रे।
साधु के संगति सुमिर सेचित होइ, जो सिर मोटे भाग रे॥
समवत जरै बरै नहिं जब लगि, तब लगि खेलहु फाग रे।
धरनीदास तासुस बलिहारी, जहँ उपजै अनुराग रे॥

ऐसे राम भजन करु बाव रे।
वेद साखि जन कहत पुकारे, जो तेरे चित चाव रे।
काया दुवार ह्वै निरखु निरंतर, तहाँ ध्यान ठहराव रे।
तिरवेनी एक संगहि संगम, सुन्न सिखर कहँ धाव रे॥
उदधि उलंघि अनाहद निरखौ, अरध उरध मधि ठांव रे।
राम नाम निसु दिन लव लागे, तबहिं परम पद पाव रे॥
तहँ है गगन गुफा गढ़ गाढ़ो, जहाँ न पवन पछाँव रे।
धरनीदास तासु पद बंदे, जो यह जुगति लखाव रे॥

मेरो राम भलो व्योपार हो ।
वा सों दूजा दृष्टि न आवे, जाहि करो रोजगार ।
जो खेमी तो उहै कियारी, बिनु बीज बैल हर फार हो।
रात दिवस उद्दम करै, गंग जमुन के पार हो ।।
बनिज करो तो उहै परोहन, भरो विविध परकार हो ।
लाभ अनेक मिले सतसंगति, सहजहिं भरत भडार हो ।।
जो जाचो तो वाहि को जाचो, फिरौं न दूजौ दुवार हो ।।
धरनी मन बच क्रम मानो, केवल अधर अधार हो ।।

जुगजुग संतन की बलिहारी ।
जो प्रभु अलख अमूरत अविगत, तासु भजन निरबारी ।
मन बच क्रम जगजीवन को व्रत, जीवन को उपकारी ।।
संतन सांच कहीं सबहिन तें, सुत पितु भूप भिखारी ।
ढोलिया ढोल नगर जो मारै, गृह गृह कहत पुकारी ।
गोधन जुत्थ पार करिबे को, पीटत पीठ पहारी ।।
एहि जग हरि भगता पतिबरता, अवर बसै बिभिचारी ।।
धरनी धृग जीवन है तिन्ह को, जिन्ह हरि नाम बिसारी ।।

जो जन भक्त बछल उपवासी ।
ता को भवर भयो उजियारी, प्रगटी जोति दिवासी ।।
लोक लाज कुल वानि बिसारी, सार सब्द को गासी ।
तिन्ह को सुजस दसो दिसि बाढ़ो बवन सके करि हांसी ।।
हरि व्रत सकल भक्त जन गहि गहि, जम तें रहे भवासो ।
देह धरी परमारथ कारन, अंत अभैपुर बासी ।।
काम क्रोध तृस्ना मद मिथ्या, सहज भये बनवासी ।
संतत दीन दयाल दयानिधि, धरनी जन सुखरासी ।।

मोहिं कछु नाहिं बिसाय, कोउ केसहु कहि जाव री ।।टेक।।
झांकि झरोखे रावला, मन मोहन रूप देखाज री ।
दृष्टि परै परवस पर्‌यो घर, घरहु न मोहिं सोहाय री ।।
जस जल चर जल में चरे, मख चारो सहज समाय री ।
निगलत तो वहि निर्भय, अव उगलत उगलि न जाय री ।।
जस पंछी बन बैठियो, अपनो तन मन ठहराय री ।
नर को भेद न भेदियो, पर अवचक लागे आय री ।।

जाहि परो दुख आपनो, जो जाने पर पीर ।
धरनी कहत सुन्यो नहिं, सांझ की छाती छीर ।।

एक अल्लाह के मैं कुरवानी । दिल ओझनल मेरा दिलजानी ।
तू मेरा साहब मैं तेरा बंदा । तू मेरि सभी हवस पहिचंदा ।।
बार बार तुम कहँ सिर नावों, जानि जरूर तुम्हें गोहरावों ।।
तुमहिं हमारे मक्का मदीना । तुमहिं रोजा रिजिक रोजीना ।।
तुमहिं कोरान खतम खतमाना । तुम तसबी अरु दीन हमाना ।।
मैं आसिक महबूब तू दरसा । वेगर तोहि जहान जहर सा ।।
देहु दिदार दिलासा येही । नातर जाम बिनसि बरु देही ।।
कादिर तुमहिं कदर को जाना । मैं हिन्दू किधों मूसलमाना ।।
धरनीदास खड़े दरवाजा । सबके तुमहिं गरीब निवाजा ।।

मैं निरगुनियाँ गुन नहिं जाना । एक धनी के हाथ बिकाना ।।
सोह प्रभु पक्का मैं अति कच्चा । मैं झूठा मेरा साहब सच्चा ।।
मैं ओछा मेरा साहब पूरा । मैं कायर मेरा साहब सूरा ।।
मैं मूरख मेरा प्रभु ज्ञाता । मैं किरपिन मेरा साहब दाता ।।
धरनी मन मानर इक ठाउँ । सो प्रभु जीवो मैं मरि जाउँ ।।

जब लग परम तनु नहिं जाने।
तब लग भरम भूत नहि भाजे, करम कींच लपटाने॥
सहस नाम कहि कहा भयो मन, कोटि कहत न अघाने।
भूले भरम भागवत पढ़ि के, पूजत फिरत पखाने॥
का गिरि कंदर मंदर माहें,-कंद मूरि खनि खाने।
कहा जो वरप हजार रह्यो तन, अंत बहुरि पछिताने।
दानि कबीसुर सरसुती, रंक होहु भा राने।
प्रेम प्रतीत अमिय परचे बिनु, मिले न पद निरबाने॥
मन बच करम सदा निसिबासर, दूजो ज्ञान न ध्याने।
धरनी जन सतगुरु सिर ऊपर, भक्त बछल भगवाने॥

एक धनी धन मोरा हो॥टेक॥
काहू के धन सोना रूपा, काहू के हाथी घोरा।
काहू के मनि मानिक मोती, एक धनी धन मोरा हो॥
राज न हरै जरै न अगिन तें, कैतहु पाय न चोरा हो।
खरचत खात सिरात कबहिं नहिं, भुइं घाट घाट नहिं छोरा हो॥
नहिं संदूक नहिं भइ खनि गाड़ी, नहिं पटि घालि मरोरा हो।
नैन के ओझल पलकन राखों, सांझ दिवसनिसि भोरा हो॥
जब धन लै मनि बेचन चाहे, तीनि हाट टकटोरा हो।
कोई वस्तु नांहि ओहि जोगे, जो मोलऊं सो थोरा हो॥
जा धन तें जन भये धनी बहु, हिंदू तुरुक करोरा हो।
सो धन धरनी सहजहिं पायो, केवल सतगुरु के निहोरा हो॥

जब मेरो यार मिले दिलजानी, होइ लवलीन करौं महेमानी।
हृदय कमल बिच आसन सारी, ले सरधा जल चरन खटारी॥
हित के चंदन चरचि चढ़ायो, प्रीति के पंखा पवन डोलायो।
भाव के भोजन परसि जेंवायो, जो उबरा सो जूठन पायो॥
धरनी इत उत फिरहिं न मोरे, सन्मुख रहहि दोऊ को जोरे॥

करता राम करै सोइ होय।
कल बल छल बुधि ज्ञान सयानप, कोटि करै जो कोय ।।
देई तदवा सेवा करिके, मरम भुकै नर लोय।
आवत जान मरत औ जनमत, करम कांट अरुभोय ।।
काहे भवन तजि भेष बनायो, ममता मैल न धोय।
मन मवास चपरि नहिं तोडेउ, आस फाँस नहिं छोय ।।
सतगुरु चरन सरन सब पायो, अपनी देंह बिलोय।
धरनी धरनि फिरत जेहि कारन, घरहिं मिले प्रभु सोय ।।

सुमिरौ हरि नामहिं बौरे ।।टेक।।
चक्रहु चाहि चित चंचल, मूल मता गहि निस्चल कोरे।।
पांचहु ते परिचै करु ज्ञानी, काहे के परत पचीस कै भौरे ।।
जौं लगि निरगुन पंथ न सूझै, काज कहा महि मंडल दौरे ।।
सब्द अनाहद लखि नहिं आवै, चारो पन चलि ऐसहिं गौरे ।
ज्यौं तेली को बैल बिचारा, घरहिं में कोस पचासक भौरे ।।
दया धरम नहिं साधु की सेवा, काहे से सो जनमें घर चौरे ।
धरनीदास तासु बलिहारी, जूभ तजौ जिन्ह सांचहि धौरे ।।

जाके गुरुचरनन चित लागा ।
ताके मन की भरम भुलानो, धंधा धोखा भागा ।।
सो जन सोवत अबचकही में, सिंह सरीखे जागा।
धनि सुत जन धन भवर न भातत, धावत बन बैरागा ।।
हरखित हंस दसा चलि आयो, दुरिगयो दुरमत कागा ।
पांचहुँ को परपंच न लागै, कोटि करै जौं दागा ।।
सांच अमल तहँ भूठ न भांके, दया दीनता पागा ।
सत्त सुकृत संतोष समानो, ज्यों सूइ मध धागा ।।
ले मन पवन उरध को धावै, उपचु सहज अनुरागा ।
धरनी प्रेम गगन जन कोई, सोइ जन सूर सुहागा ।।

अजहु न गुरुचरनन चित दैहौ ।।टेक।।
नाना जोनि भटकि भ्रम आये, अब कब प्रेम तीरथहिं न्हैहौ।
बड कुल विभव भरम जनि भूलों, प्रभु पैहौ जब दास कहैहौ।
एह संगति दिन दस की दसा है, कथि कथि पढ़ि पढ़ि पार न पैहौ ।।
करम भार सिर तें नहिं उतरै, खंड खंड महि मंडल धैहौ।
बिनु सतगुरु सतलोक न सूझै, जनमि जनमि मरि मरि पछितैहौ ।।
धरनी ह्वैहो तबही सांचे, सतगुरु नाम हृदय ठहरैहौ ।।

जग में सोई जीवन जीया।
जाके उर अनुराग ऊपजो, प्रेम पियाला पीया।
कमल उलटो भर्म छूटो, अजप जप जपिया।
जनु अंधारे भवन भीतर, बारि राखो दिया ।।
काम क्रोध समो दियो, जिन्ह घरहि में घो किया।
माया के परिपंच जेते, सकल जानो छिया ।।
वहुत दिन को वहुत अरझो, सहजहीं सुरझिया।
दास धरनी तासु वलि वलि, भूँजियो जिन्ह बिया ।।

प्रभु तो बिनु को रखवारा ॥टेक॥
हौं अति दीन अधीन अकर्मी, बाऊर बैल बिचारा।
तू दयाल चारो जुग निस्चल, कोटिन्ह अधम उधारा॥
अब के अजस अवर नहिं लागे, सरवस तोहिं बड़ाई।
कुल मरजाद लोक लज्जा तजि, गह्यो चरन सिर नाई॥
मैं तन मन धन तो परवारो, मूरख जानत ख्याला।
ब्याउर बेदन बांझ न बूझै, बिनु दागे नहिं छाला॥
तुलसी भूषन भेष बनायो स्रवन सुन्यो मरजादा।
धरनी चरन सरन सब पायो, छुटिहैं बाद बिबादा॥

प्रभु तू मेरो प्रानि पियारा ॥टेक॥
परिहरि तोहि अवर जा जाचै, तेहि मुख छीया छारा।
तो पर वारि सकल जग डारौं, जौ बसि होय हमारा॥
हिंदू के राम अल्लाह तुरुके, बहु बिधि करत बखाना।
दुहुँ को संगम एक जहां, तहवां मेरो मन माना॥
रहत निरंतर अंतरजामी, सब घट सहज समाया।
जोगी पंडित दानि दसो दिसि, खोजत अंत न पाया॥
भीतर भवन भयो उंजियारी, धरनो निरखि सोहाया।
जा निति देस देसांतर धावो, सो घटहि लखि पाया॥

पलटूदास

फूटि गया असमान सबद की धमक में।
लगी गगन में आग सुरति की चमक में।।
सेसनाग और कमठ लगे सब कांपने।
अरे हाँ पलटू सहज समाधि कि दसा खबर नहिं आपने।।

जो कोइ चाहै नाम तो अनाम है।
लिखन पढ़न में नहिं निअच्छर काम है।।
रूप कहौ अनरूप पवन अनरेख ते।
अरे हाँ पलटू गैब दृष्टि से संत नाम वह देखते।।

खेलु सिताबी फाग तू बीती जात बहार।
बीती जात बहार संबत लगने पर आया।।
लीजै डफ़् फ बजाय सुभग मानुष तन पाया।
खेलो घूँघट खोलि लाज फागुन में नाहीं।।
जे कोइ करिहै लाज काज का सुपनेहुँ माहीं।
प्रेम की माट भराय सुरति की करु पिचकारी।।
ज्ञान अबीर बनाय नाम की दीजै गारी।
पलटू रहना है नहीं सुपना यह संसार।।
खेलु सिताबी फाग तू बीती जात बहार।

कमठ दृष्टि जो लावई सो ध्यानी परमान ।
सो ध्यानी परमान सुरत से अंडा सेवैं ॥
आपु रहै जल माहिं सूखे में अंडा देवै ॥
जस पनिहारी कलस भरे मारग में आवै ।
कर छोड़े मुख बचन चित्त कलसा में लावै ॥
फनि मनि धरै उतरि आप चरने को जावै ॥
वह गाफिल ना पड़ै सुरत मनि माहिं रहावै ।
पलटू सब कारज करै सुरत रहै अलगान ॥
कमठ दृष्टि जो लावई सो ध्यानी परमान ॥

माया की चक्की चलै पीसि गया संसार ।
पीसि गया संसार बचै ना लाख बचावे ॥
दोऊ पट के बीच कोऊ ना साबित जावै ।
काम क्रोध मद लोभ चक्की के पीसनहारे ।
तिरगुन डारै झीक पकरि के सबै निकारे ॥
दुरमति बड़ी सयानि सानि कै रोटी पोबै ।
करम तवा में धारि सेंकि कै साबित होबै ॥
तृस्ना बड़ी छिनारि जाइ उन सब घर घाला ।
काल बड़ा बरियार किया उन एक निवाला ॥
पलटू हरि के भजन बिनु कोऊ न उतरै पार ।
माया की चक्की चलै पीसि गया संसार ॥

क्या सोवै तू बावरी चाला जात बसंत ।
चाला जात बसंत कंत ना घर में आए ॥
धृग जीवन है तोर कंत बिन दिवस गंवाये ।
गर्व गुमानी नारि फिरै जोवन की माती ॥

खसम रहा है रूठि नहीं तू पठवै पाती।
लगै न तेरो चित्त कंत को नाहिं मनावै ।।
का पर करै शिंगार फूल की सेज बिछावै ।।
पलटू ऋतु भरि खेलि ले फिर पछितैहै अंत।
क्या सोवैं तू बावरी चाला जात बसंत ।।

प्रेम बान जोगी मारल हो कसकै हिया मोर।
जोगिया कै लालि लालि अंखिया हो जस कंवल कै फूल ।।
हमरी सुरुख चुनरिया हो दूनों भये तूल।
जोगिया कै लेउ मिर्गछलवा हो आपन पट चीर ।।
दूनौं कै सियब गुदरिया हो होइ जावै फकीर।
गगना में सिंगिया बजाइन्हि हो ताकिन्हि मोरी ओर ।।
चितवन में मन हरि लियो है, जोगिया बड़ चोर।
गंग जमुन के बिचवां छे, वहै झिरहिर नीर।।
तेहिं ठैयां जोरल सनेहिया हो, हरि लै गयो पीर।
जोगिया अमर मरै नहिं हो पुजवल मोरी आस ।।
कर लिखा बर पावल हो, गावै पलटूदास ।।

साहिब के दास कहाय यारो,
जगत की आस न राखिये जो।
समरथ स्वामी को जब पाया,
जगत से दीन न भाखिये जी ।।
साहिब के घर में कौन कमी,
किस बात की अतै आखिये जी।
पलटू जो दुख सुख लाख परै,
वहि नाम सुधा रस चाखिये जी ।।

चिवनि चलनि मुसकानि नवनि,
नहिं राग द्वेष हार जीत है जी।
पलटू छिमा संतोष सरल,
तिनकौ गावै स्रुति नीति है जी॥

पूरब पुन्न भये प्रगट सतसंगति के बीच परी।
आनंद भये जब संत मिलै वही सुभ दिन वहि सुभ घरी॥
दरसन करत त्रय ताप मिटे बिन कौड़ी दाम मैं जाय तरी।
पलटू आवागमन छूटा, चरनन की रज सीस धरी॥

पिय को खोजन मैं चली आपुइ गई हिराय॥
आपुइ गई हिराय कवन अब कहै संदेसा।
जेकर पिय मैं ध्यान भई वह पिय के भेसा॥
आगि माहिं जो परै सोऊ अगनी ह्वै जावै।
भृंगी कीट को भेंटि आपु सम लेइ बनावै॥
सरिता बहि के गई सिंधु में रही समाई।
सिव सक्ती के मिले नहीं फिर सक्ती आई॥
पलटू दिवाल कहकहा मत कोउ झांकन जाय।
पिय को खोजन मैं चलो आपुइ गई हिराय॥

बिना सतसंग न कथा हरिनाम की,
बिना हरिनाम ना मोह भागै।
मोह भागे बिना मुक्ति ना मिलैगी,
मुक्ति बिनु नहिं अनुराग लागै॥
बिना अनुराग के भक्ति न होयगी,
भक्ति बिनु प्रेम उर नाहिं जागै।
प्रेम बिनु राम ना राम बिनु संत ना,
पलटू सतसंत बरदान माँगै॥

जिन दिन पाया वस्तु को तिन तिन चले छिपाय ।।
तिन तिन चले छिपाय प्रगट में होय हरक्कत ।
भीड़-भाड़ से डरै भीड़ में नहीं बरक्कत ।।
धनी भया जब आप मिली हीरा की खानी ।
ठग है सब संसार जुगत से चलै अपानी ।।
जो ह्वै रहते गुप्त सदा वह मुक्ति में रहते ।
उन पर आवै खेद प्रगट जो सब से कहते ।।
पलटू कहिये उसी से जो तन मन दै लै जाय ।
जिन जिन पाया वस्तु को तिन तिन चले छिपाय ।।

काम क्रोध बसि कीहा नींद औ भूख को ।
लोभ मोह बसि कीहा दुक्ख और सुक्ख को ।।
पल में कीस हजार जाय यह डोलता ।
अरे हाँ पलटू वह ना लागा हाथ जौन यह बोलता ।।

आठ पहर की मार बिना तरवार की ।
चूके सो नहिं ठांव लड़ाई धार की ।।
उस ही से यह बनै सिपाही लाग की ।
अरे हाँ पलटू पड़ै दाग पर दाग पंथ बैराग का ।।

काजर दिये से का भया ताकन को ढब नाहिं ।
ताकन को ढब नाहि ताकन की गति है न्यारी ।।
इकटक लेवै ताकि सोई है पिय की प्यारी ।
ताके नैन मिरोरि नहीं चित अंतै टारै ।।
बिन ताके केहि काम लाख कोउ नैन संवारै ।
ताके में है फेर फेर काजर में नाहीं ।।
भंगि मिली जो नाहिं नफा क्या जोग के माहीं ।
पलटू सनकारत रहा पिया को खिन खिन माहिं ।।
काजर दिये से का भया ताकन को ढब नाहिं ।

नाचना नाचु तो खोलि घूंघट कहै।
खोलि कै नाचु संसार देखै॥
ख़सत रिझाव तो ओट को छोड़ि दे।
भर्म संसार कौ दूरि फेंकै॥
लाज किसकी करै खसम से काम है।
नाचु भरि पेट फिर कौन छेंकै॥
दास पलटू कहै तुहीं सुहागिनी।
सोव सुख सेज तू खसम एकै।

सुंदरी पिया की पिया को खोजती।
भई बेहोस तू पिया के कै॥
बहुत सी पदमिनी खोजती मरि गईं।
रटत ही पिया पिया एक एकै॥
सती सब होत हैं जरत बिनु आगि से।
कठिन कठोर वह नाहिं झाँकैं॥
दास पलटू कहै सीस उतारि के।
सीस परनाचु जो पिया ताकै॥

केतिक जुग गये बीति माला के फेरते।
छाला परि गये जीभ राम के टेरते॥
माला दीजै डारि मनै को फेरना।
अरे हाँ पलटू मुँह के कहै न मिलै दिलै बिच हेरना॥

जीवन है दिन चारि भजन करि लीजिये।
तन मन धन सब वारि संत पर दीजिये॥
संतहि से सब होई जो चाहै सो करैं।
अरे हाँ पलटू संग लगे भगवान संत से वे डेरैं॥

दूसर पलटू इक रहा भक्ति दई तेहि जात।
भक्ति देई तेहि जान नाम पर पकर्‌यो मोकहँ॥
गिरा परा धन पाय छिपायौं मैं ले ओकहँ।
लिखा रहा कुछ आन कर्म से दीन्हा आनै॥
जानौं महीं अकेल कोऊ दूसर नहिं जानै।
पाछे भा फिर चेत देय पर नाहीं लीन्हा॥
आखिर बड़े की चूक जोई निकसा सोई कीन्हा।
पलटू मैं पापी बड़ा भूल गया भगवान॥
दूसर पलटू इक रहा भक्ति दई तेहि जान।

माता बालक कहैं राखती प्रान है।
फनि मनि धरै उतारि ओही पर ध्यान है॥
माली रच्छा करै सींचता पेड़ ज्यों।
अरे हाँ पलटू भक्त संग भगवान गऊ औ बच्छ त्यौं॥

धुबिया फिर मर जायगा चादर लीजै धोय।
चादर लीजै धोय मैल है बहुत समानी॥
चल सतगुरु के घाट भरा जहँ निर्मल पानी।
चादर भई पुरानि दिनों दिन बार न कीजै॥
सतसंगत में सौंद ज्ञान का साबुन दीजै।
छूटै कलमल दाग नाम का कलप लगावै॥
चलिये चादर ओढ़ि बहुर नहिं भव जल आवै।
पलटू ऐसा कीजिये मन नहिं मैला होय।
धुबिया फिर मर जायगा चादर लीजै आवै॥

मीठ बहुत सतनाम है पियत निकारै जान।
पियत निकारै जान मरै की करै तयारी॥
सो वह प्याला पियै सीस को धरै उतारी।
आँख मूँदि कै पियै जियन की आसा त्यागै॥

फिरि वह होवै अमर मुये पर उठि कै जागै ।
हरि से वे हैं बड़े पियो जनि हरि रस जाई ।।
ब्रह्मा बिस्नु महेस पियत कै रहे डेराई ।
पलटू मेरे वचन को ले जिज्ञासू मान ।।
मीट बहुत सतनाम है पियत निकारै जान ।
दीपक बारा नाम का महल भया उजियार ।।
महल भया उजियार नाम का तेज बिराजा ।
सब्द किया परकास मानसर ऊपर छाजा ।।
दसो दिसा भई सुद्ध बुद्ध भई निर्मल साची ।
छुटी कुमति की गाँठि सुमति परगट होय नाचै ।।
होत छतीसो राग दाग तिर्गुन का छूटा ।
पूरा प्रगटे भाग करम का कलसा फूटा ।।
पलटू अँधियारी मिटी बाती दीन्हीं टार ।
दीपक बारा नाम का महल भया उजियार ।।
हाथ जोरि आगे मिलै लै लै भेंट अमीर ।
लै लै भेंट अमीर नाम का तेज बिराजा ।।
सब कोऊ रगरै नाक आइ कै परजा राजा ।
सकलदार मैं नहीं नीच फिर जाति हमारी ।।
गोड़ धोय षट करम बरन पावै लै चारी ।
बिन लसकर बिन फौज मुलुक में फिरी दुहाई ।।
जन महिमा सतनाम आपु में सरस बड़ाई ।
सतनाम के लिहे से पलटू भया गँर ।।
हाथ जोरि आगे मिलै लै लै भेंट अमीर ।
सीतल चंदन चंद्रमा तैसे सीतल संत ।।
तैसे सीतल संत जगत की ताप बुझावें ।
जो कोई आवै जरत मधुर मुख वचन सुनावें ।।
धीरज सील सुभाव छिमा ना जात बखानी ।
कोमल अति मृदु बैन वज्र को करते पानी ।।

रहन चलन मुसकान ज्ञान को सुगँध लगावैं ।
तीन ताप मिट जाय संत के दरसन पावैं ।।
पलटू ज्वाला उदर की रहैं न मिटै तुरंत ।
सीतल चंदन चंद्रमा तैसे सीतल संत ।।

हरि अपनो अपमान सह जन की सही न जाय।
जन की सही न जाय दुर्बासा की क्या गत कीन्हा ।।
भुवन चतुर्दस फिरै सबै दुरियाय जो दीन्हा।
पाहि पाहि कर परै जबै हरि चरनन जाई ।।
तब हरि दीन्ह जवाब मोर बस नाहिं गुसाई।
मोर द्रोह करि बचै करों जन द्रोहक नासा।
माफ करै अँबरीक बचोगे तब दुर्बासा ।।
पलटू द्रोही संत कर इन्हें सुदर्सन खाय।
हरि अपनो अपमान सह जन की सही न जाय ।।

पिसना पीसै रांड री पिउ पिउ करै पुकार ।
पिउ पिउ करै पुकार जगत को प्रेम दिखावै ।।
कहवै कथा पुरान पिया को तनिक न भावै ।
खिन रोवै खिन हँसै ज्ञान की बात बतावै ।।
आप न रीझै भाँड़ और को बैठि रिझावै ।
सुनै न वा की बात तनिक जो अंतर ज्ञानी ।।
चाहै मेटा वीव चलै ना सुपथ रहानी ।
पलटू ऊपर से कहै भीतर भरा बिकार ।।
पिसना पीसै राँड री पिउ पिउ करै पुकार ।

पर दुख कारन दुख सहै सन असंत है एक ।
सन असंत है एक काट के जल में सारै ।
कूंचै खैंचै खाल उपर से मुंगरा मारै ।।
तेकर वटि के भाँज भाँजि कै वरता रसरा ।
नर की बाँधै मुसुक बाँधते थउ और बछरा ।।
अमरजाल फिर होय बझावै जलधर जाई ।
खग मृग जीवा जंतु तेही में बहुत बझाई ।
जिउ दै जिउ संतावते पलटू उनकी टेक ।।
पर दुख कारन दुख सहै सन असंत है एक ।
विसवा किये सिंगार है बैठी बीच बजार ।।
वैठी बीच बजार नजारा सब से मारै ।
बातें मीठी करै सबन की गाँठ निहारै ।।
चोवा चंदन लाइ पहिरि के मलमल खासा ।
पँचभतरी भई करै औरन की आसा ।।
लेइ खसम को नाँव खसम से परिचै नाहीं ।
केचि पडन को नाँव सभन को ठगि ठगि खाही ।।
पलटू तेकर बात है जेकरे एक भतार ।
विस्वा किये सिंगार है वैठी बीच वजार ।।

हवा हिरिस पलटू लगी नाहक भये फकीर ।
नाहक भये फकीर पीर की सेजा नहीं ।।
अपने मुंह से वड़े कहावें सब से जाहीं ।
धमधूसर होइ रहै बात में सब से लड़ते ।।
लाभ काफ वो कहै इमान को नाहीं डरते ।
हमहीं हैं दुरबेस और ना दूसर कोई ।।
सब को देहिं मुराद यकीन से ओकरे होई ।
मन मुरीद होवै नहीं आप कहावैं पीर ।।
हवा हिरिस पलटू लगी नाहक भये फकीर ।

जौं लगि फाटै फिकिर न गई फकीरी खोय।
गई फकीरी खोय लगी है मान बड़ाई॥
मोर तोर में परा नाहिं छूटी दुचिताई।
दुख सुख संपति बिपति सोच दोऊ की लागी॥
जीवन को है चाह मरन की डेर नहिं त्यागी।
कौड़ी जिव के संग रैन दिन करै अल्पना॥
दुष्ट कहै दुख देइ मित्र को जानै अपना।
पलटू चिंता लगी है जनम गँवाये रोय॥
जौं लगि फाटै फिकिर ना गई फकीरी खोय।

धूआँ का धौरेहरा ज्यों बालू की भीत॥
ज्यों बालू की भीत ताहि को कौन भरोसा॥
ज्यों पक्का फल डारि गिरत से लगै न दोसा।
कच्चे घले ज्यों नीर पानी के बीच बतासा॥
दारू भीतर अगिनि जिवन की ऐसी आसा॥
पलटू नर तन जात है घास के ऊपर सीत॥
धूआँ धौरेहरा ज्यों बालू की भीत।

यही दिदारी दार है सुनहु सुनहु मुसाफिर लोग॥
सुनहु मुसाफिर लोग भेंट फिर बहुरि न होना।
को तुम को हम आय मिले सपने में सोना॥
हिल मिल दिन दस रहे ताहि को सोच न कीजै।
कोऊ है थिर नाहिं दोस ना हमको दीजै॥
अहिर बाँधि के गाय एक लेहडे में आनी।
कूवाँ की पानिहारि गई ले घर घर पानी।
पलटू मछरी आम ज्यों नदी नाँव संजोग।
यही दिदारी दार है सुनहु मुसाफिर लोग॥

आग लगी लंका दहै उनचासौं बही बयार ।
उनचासौं बही बयार ताहि को कौन बचावै ।
घरे के प्रानी रहे सोऊ आगी गुहरावैं ॥
फूटी घर की नारि सगा भाई अलगाना ॥
बड़े मित्र जो रहे भये सब सत्रु समाना ।
कंचन को सब नगर रती को रावन तरसै ।
दिया सिंधु ने थाह ऊपर से परबत बरसै ।
लपटू जेहि ओर राम हैं तेहि ओर सब संसार ॥
आग लगी लंका दहै उनचासौं बही बयार ।

ज्यों ज्यों सूखे ताल हैं त्यों त्यों मीन मलीन ।
त्यों त्यों मीन मलीन जेठ में सूख्यो पानी ॥
तीनों पन गये बीति भजन का भरम न जानो ।
कँवल गये कुम्हिलाय हमने किया पयाना ॥
मीन लिया कोउ मारि ठांव ढेला चिटराना ।
ऐसी मानुप देह वृथा में जात अनारी ।
भूला कौल करार आप से काम बिगारी ॥
पलटू बरस औ मास दिन पहर घड़ी पल छीन ।
ज्यों ज्यों सूखै ताल है त्यों त्यों मीन मलीन ॥

की तौ इक डौरै रहै की दुइ में इक मर जाय ।
दुइ में इक मर जाय रहत है दुविधा लागी ॥
सुचित नहीं दिन रात उठत बिरहा की आगी ।
तुम जीवो भगवान मरन है मेरो नीका ॥
तुम बिन जीवन धिक्क लगै कारिख की टीका ।
की तुम आवो लेव इहाँ की प्रान अपना ॥
दोऊ को दुख होय हंस जोड़ी अलगाना ।
कह पलटू स्वामी सुनो चिन्ता सही न जाय ॥
कौ तौ इक ठौरु रहै की दुइ में इक मर जाय ।

आसिक का घर दूर है पहुँचे बिरला कोय।
पहुँचे बिरला कोय होय जो पूरा जोगी।।
बिंद करै जो छार नाद के घर में भोगी।
जीते जी मरि जाय मुए पर फिर उठि जागै।।
ऐसा जो कोइ होइ सोई इन बातन लागै।
पुरजे पुरजे उड़ै अन्न बिनु बस्तर पानी।।
ऐसे पर ठहराय सोई महबूब बखानी।
पलटू आप लुटावही काला मुंह जब होय।।
आसिक का घर दूर है बिरला पहुंचे कोय।

जहाँ तनिक जल बीछुड़ै छोड़ि देतु है प्रान।
छोड़ि देतु है प्रान जहाँ जल से बिलगावै।।
देइ दूध में डारि रहै ना प्रान गँवावै।
जा को वही अहार ताहि को का लै दीजै।।
रहै न कोटि उपाय और सुख नाना कीजै।
यह लीजै दृष्टांत सकै सो लेइ बिचारी।।
ऐसो करै सनेह ताहि को मैं बलिहारी।
पलटू ऐसी प्रीति करु जल और मीन समान।।
जहाँ तनिक जल बीछुड़ै छोड़ि देतु है प्रान।

जैसे कामिनि के विषय कामी लावै ध्यान।
कामी लावै ध्यान रैन दिन चित्त न टारै।
तन मन धन मर्जाद कामिनि के ऊपर वारै।।
लाख कोऊ जो कहै कहा ना तन्निक मानै।
बिन देखे ना रहै वाहि को सरबस जानै।।
लेय वाहि को नाम वाहि की करै बड़ाई।।
तनकि बिसारै नाहि कनक ज्यों किरपिन पाई।
ऐसी प्रीति अब दीजिए पलटू को भगवान।
जैसे कामिनि से बिषय कामी लावै ध्यान।।

साहिब साहिब क्या करै साहिब तेरे पास ।
साहिब तेरे पास याद करु होवै हाजिर ॥
अंदर धसि कै देखु मिलेगा साहिब नादिर ।
मान मनी हो धना नूर तब नजर में आवै ।
बुरका डारै टारि दुखा वाखुदा दिखरावै ॥
रूह करै मेराज कुफ़र का खोलि कराबा ।
तासौ रोज रहै अंदर में सात रिकावा ॥
लाभकान मैं खूब को पावै पलटूदास ।
साहिब साहिब क्या करै साहिब तेरे पास ॥
खोजत खोजत मरि गये घर ही लागा रंग ।
घरही लागा रंग कीन्ह जब संतन दाया ॥
मन में भा विस्वास छूटि गइ सहजै माया ॥
वस्तु जो रही हिरान ताहि का लगा ठिकाना ।
अब चित चलै न इन उत आपु में आपु समाना ॥
उठती लहर तरंग हृदय में सीतल लागे ।
मरम गई है सोय बैठि के चेतन जागे ॥
पलटू खातिर जमा भइ सतगुरु के परसंग ।
खोजत खोजत मरि गये घर ही लाला रंग ॥

संत चढ़े मैदान पर तरकस बाँधे ग्यान ॥
तरकस बाँधे मोह ज्ञान दल मारि हटाई !
मारि पाँच पच्चीस दिहा गढ़ आगि लगाई ॥
काम क्रोध को मारि कैद मैं मन को कीन्हा ।
नव दरवाजे छोड़ि सुरत दसएँ पर दीन्हा ॥
अनहद बाजै तूर अटल सिंहासन पाया ।
जीव भया संतोष आय गुरु नाम लखाया ॥
पलटू कष्फन बांधि कै खेंचो सुरति कमान ।
संत चढ़े मैदान पर तरकस बाँधे ग्यान ॥

लागी गांसी सबद की पलटू मुआ तुरंत ॥
पलटू मुआ तुरंत खेत के ऊपर जाई।
सिर पहिले उडि रुंड से करै लड़ाई ॥
तन में तिल तिल घाव परदा खुलि पटकत जाई।
हेफ खाइ सब लोग खड़े यह कठिन लड़ाई ॥
सतगुरु मारा तीर बीच छाती में मेरी।
तीर चला होइ पवन निकरि गा तारू फोरी ॥
कहने वाले बहुत हैं कथनी कथै बेअंत।
लागी गांसी सबद की पलटू मुआ तुरंत ॥

पतिरता को लच्छन सबसे रहे अधीन।
सब से रहे अधीन टहल वह सब की करती।
सास ससुर और भतुर ननद देवर से डरती ॥
सब का पोषन करै सभन की सेज बिछोवै।
सब को लेय सुताय पास तब पिय के जावै ॥
सूतै पिय के पास सभन को राखै राजी।
ऐसा भक्त जो होय ताहि की जीती बाजी ॥
पलटू बोलै मीठे बचन भजन में है लौलीन।
पतिबरता को लच्छन सब से रहै अधीन ॥

सोई सती सराहिये जरै पिया के साथ।
जरै पिया के साथ सोई है नारि सयानी ॥
रहै चरन चित लाय एक से और न जानी ॥
जगत करै उपहास पिया का संग न छोड़ै।
प्रेम की सेज बिछाय मेहर की चादर ओढ़ै ॥
ऐसी रहनी रहै तजै जो भोग बिलासा।
मारै भूख पियास आदि संग चलती स्वासा ॥

रैन दिवस वेहोस पिया के रंग में राती।
तन की सुधि है नहीं पिया संग बोलत जाती॥
पलटू गुरु परसाद से किया पिया को हाथ।
सोई सती सराहिये जरै पिया के साथ॥

जाकी जैसी भावना तासे मन व्यौहार।
तासे तस व्यौहार परसपर दूनौं तारी॥
जो जेहि लाइक होय सोई तस ज्ञान बिचारी।
जो कोइ डारै फूल ताहि को फूल तयारी॥
जो कोइ गारी देत ताहि को हाजिर गारी।
जो कोइ अस्तुति करै आपनी अस्तुति पावै॥
जो कोइ निंदा करै ताहिके आगे आवै॥
पलटू जस में पीव का वैसे पीव हमार॥
जाकी जैसी भावना तासे तस ब्योहार

तो कहं कोई कछु कहै कीजै अपनो काम।
कीजै अपनो काम जगत को भूकन दीजै॥
जाति बरन कुल खोय संतन को मारग लीजै।
लोक वेद के छोड़ि करै कोउ कितनौं हांसी॥
पाप पुन्न दोऊ तजौ यही दोउ गर की फांसी।
करम न करिहौ एक मरम कोउ लाख दिखावै॥
टरै न तेरी टेक कोटि ब्रह्मा समुझावै।
पलटू तनिक न छोंड़िहौ जिउ कै संगै नाम॥
तो कहँ कोऊ कछु कहै कीजै अपनो काम।

मन की मौज से मौज है और मौज किहि काम।
और मौज किहि काप मौज जौ ऐसी आवै॥
आठौ पहर अनन्द भजन में दिवस वितावै।
ज्ञान समुद्र के वीच उठत है लहर तरंगा॥

तिरबेनी के तीर सुरसती जमुना गंगा।
संत सभा के मध्य शब्द की फड़ जब लागै ।।
पुलकि पुलकि गलतान प्रेम में मन को पागै।
पलटू रहै बिबेक से छूटै नहिं सतनाम ।।
मन की मौज से मौज है और मौज किहि काम।

ज्यों ज्यों भीजै कामरी त्यों त्यों गरुई होय।
त्यों त्यों गरुई होय सुनै संतन की बानी ।।
ठोप ठोप अघाय ज्ञान के सागर पानी।
रस रस बाढ़े प्रीति दिनों दिन लागन लागो ।।
लगत लगत लगि जाय भरम आपुइ से भागी।
रस रस सो चलै जाय गिरौ जो आतुर धावै ।।
तिल तिल लागै रंग भंगि तब सहजै आवै।
भक्ति पीढ पलटू करै धीरज धरै जो कोय ।।
ज्यों ज्यों भीजै कामरी त्यों त्यों गरुई होय।

हस्ती बिनु मारै मरै करै सिंघ को संग।
करै सिंघ को संग सिंघ की रहनी रहना ।।
अपनो मारा खाय नहीं मुरदा को गहना ।।
नहिं भोजन नहिं आस नहीं इंद्री को तिष्टा।
आठ सिद्धि नौ निद्धि ताहि को देखत बिष्टा ।।
दुष्ट मित्र सब एक लगै ना गरमी पाला।
अस्तुति निंदा त्यागि चलत है अपना चाला ।।
पलटू भलूठा ना टिकै जब लगि लगै न रंग।
हस्ती बिनु मारै मरै करै सिंघ को संग ।।

पलटू सरबस दीजिये मित्र न कीजै कोय ।
मित्र न कीजै कोय चित्त दै बैर बिसाहै ।।
निस दिन होय बिनास और वह नाहिं निबाहै ।
चिंता बाढ़ै रोग लगा छिन छिन तन छीजै ।।
कम्भर गरुआ होय ज्यों ज्यों पानी से भीजै ।
जोग जुगत की हानि जहां चित अंतै जावै ।।
भक्ति आपनी जाय एक मन कहूँ लगावै ।
राम मिताई ना चलै और मित्र जो होय ।।
पलटू सरबस दीजिये मित्र न कीजै कोय ।

उलटा कूवा गगन में निस में जरै चिराग ।
तिस में जरै चिराग बिना रोगन बिन बाती ।।
छः रितु बारह मास रहत जरतै दिन राती ।
सतगुरु मिला जो होय ताहि की नज़र में आवै ।।
बिन सतगुरु कोउ होय नहीं वाको दरसावै ।
निकसै एक अवाज चिराग की जोतिहि माहीं ।।
ज्ञान समाधी सुनै और कोउ सुनता नाहीं ।
पलटू जो कोइ सुनै ताके पूरे भाग ।।
उलटा कूवा गगन में तिसमें जरै चिराग ।

वंसी वाजी गगन में मगन भया मन मोर ।।
मगन भया मन मोर महल अठवें पर बैठा ।।
जहं उठै सोहंगम शब्द शब्द के भीतर पैठा ।।
नाना उठैं तरंग रंग कुछ कहा न जाई ।
चाँद सुरज छिप गये सुषमना सेज बिछाई ।।
छूटि गया तन येह नेह उनहीं से लागी ।
दसवाँ द्वारा फोड़ि जोति बाहर हैं जागी ।।
पलटू धारा तेल की मेलत ह्वै गया भोर ।
वंसी वाजी गगन में मगन भया मन मोर ।।

चढ़े चौमहले महल पर कुंजी आवे हाथ।
कुंजी आवे हाथ शब्द का खोलै ताला।।
सात महल के बाद मिलै अठएं उजियाला।
बिनु कर बाजै तार नाद बिनु रसना गावे।।
महा दीप इक बरै दीप में जाय समावे।
दिन दिन लागै रंग सफाई दिल की अपने।।
रस रस मतलब करै सिताबी करै न सपने।
पलटू मालिक तुही है कोई न दूजा साथ।।
चढ़े चौमहले महल पर कुंजी आवे हाथ।

चांद सुरज पानी पवन नहीं दिवस नहिं रात।
नहीं दिवस नहिं रात नाहिं उतपति संसारा।।
ब्रह्मा बिस्नु महेस नाहिं तब किया पसारा।
आदि ज्योति बैकुंठ सुन्य नाहीं कैलासा।
सेस कमठ दिगपाल नाहिं धरती आकासा।।
लोक बेद पलटू नहीं कहौं मैं तबकी बात।।
चाँद सुरज पानी पवन नहीं दिवस नहिं रात।

झंडा गड़ा है जाय के हद बेहद के पार।
हद बेहद के पार तूर जहँ अनहद बाजैं।।
जगमग जोति जड़ाव सीस पर छत्र बिराजै।
मन बुधि चित रहे हार नहीं कोउ वह घर पावैं।।
सुरत शब्द रहै पार बीच से सब फिरि आवैं।
बेद पुरान की गम्म सबै ना उहवां जाई।।
तीन लोक के पार तहां रोसन रोसनाई।
पलटू ज्ञान के परे है तकिया तहाँ हमार।।
झंडा गड़ा है जाय के हद बेहद के पार।।

जागत में एक सूपना मोहिं पड़ा है देख।
मोहिं पड़ा है देखि नदी इक बड़ी है गहिरी॥
ता में धारा तीन बीच में सहर बिलौरी।
महल एक अंधियार बरै तहं गैब की बाती॥
पुरुप एक तहँ रहै देखि छवि वाकी माती।
पुरुप अलापै तान सुना मैं एक ठो जाई॥
वाहि तान के सुनत तान में गई समाई।
पलटू पुरुप परान वह रंग रूप नहिं रेख॥
जागत में एक सूपना मोहिं पड़ा है देख।

जल से उठत तरंग है जल ही माहिं समाय।
जल ही माहिं समाय सोई हरि सोइ माया॥
अरुझा वेद पुरान नहीं काहू सुरझाया।
फूल मंहै ज्यों बास काठ में आग छिपानी॥
दूध महैं घिउ रहै नीर घट माहिं लुकानी।
जो निर्गुन से सर्गुन और न दूजा कोई॥
दूजा जो कोइ कहै ताहि को पातक होई।
पलटू जीव और ब्रह्म से भेद नहीं अलगाया॥
जल से उठत तरंग है जल ही माहिं समाया।

गंगा पाछे को बही मछरी बही पहार।
मछरी बही पहार चूल्ह में फंदा लाया॥
पुखरा भीटै बाँधि नीर में आग छिपाया।
अहिरिनि फेकैं जाल कुहारिन भैंस चरावे।
तेली के मरिगा बैल बैठि के धुवइनि गावै॥

महुवा में लागा दाख भांग में भया लुबाना ।।
सांप के विल के बीच जाय के मूस लुकाना ।
पलटू संत बिबेकी बुझिहैं सब्द सम्हार ।।
गंगा पाछे को बही मछरी चढ़ी पहार ।

खसम मुवा तो भल भया सिर की गई बलाय ।
सिर की गई बलाय बहुत सुख हमने माना ।।
लागे मंगल होन जून लागे सदियाना ।
दीपक बरै अकास महल पर सेज बिछाया ।।
सूतौं महीं अकेल खबर जब मुए की पाया ।
सूतौं पांव पसारि भरम की डोरी टूटी ।।
मने कौन अब करै खसम बिनु दुबिधा छूटी ।
पलटू सोई सुहागिनी जियतै पिय को खाय ।
खसम मुवा तो भल भया सिर की गई बलाय ।।

नागिनि पैदा करत है आपुइ नागिनि खाय ।
आपुइ नागिनि खाय नागिन से कोऊ न बांचै ।।
नेजा धारी संभु नागिन के आगे नाचे ।
सिंगी ऋषि को जाय नागिनि ने बन में खाई ।।
नारद आगे पड़े लहर उनहूँ को आई ।
सुर नर मुनि गनदेव सभन की नागिन लीलै ।।
जोगी जती औ तपी नहीं काहू को ढीलै ।
संत बिबेकी गरुड़ हैं पलटू देखि डेराय ।।
नागिनि पैदा करत है आपुइ नागिनि खाय ।

कुसल कहां से पाइवे नागिनि के परसंग ।
नागिनि के परसंग जीव के भच्छक सोई ।।
पहरू की जै चोर कुसल कहवां से होई ।
रूई के घर बीच तहां पावक लै राखै ।।
वालक आगे जहर राखि करिके वा चाखै ।
कनक धार जो होय ताहि ना अंग लगावै ।।
खाया चाहै खीर गांव में सेर बसावै ।
पलटू माया से डरै करै भजन में भंग ।।
कुसल कहाँ से पाइये नागिनि के परसंग ।

घर में जिंदा छोड़ि के मुरदा पूजन जायँ।
मुरदा पूजन जायँ भीति को सिरदा नाव ।।
पान फूल औ खांड जाइ कै तुरत चढ़ावैं ।
ताल कि माटी आनि ऊँच के बाँधिनि चौरी ।।
लीपि पोति कै धरिनि पूरी और बरा कचौरी ।
पीयर लूगार पहिरि जाय के वैठिन वूढ़ा ।।
भरमि अभुवाई माँगत हैं खसी कै मूंड़ा ।
पलटू सब घर बांटि के लै लै वैठे खायँ ।।
घर में जिंदा छोड़ि के मुरदा पूजन जायँ ।

जगजीवन साहिब

कहाँ गयो मुरली को बजइया, कहाँ गयो रे ॥टेक॥
एक समय जब मुरली बजायो, जब सुनि मोहि रह्यो रे।
जिनके भाग्य भये पूर्वज के, ते वहि संग गह्यो रे॥
खबरि न कोई केहुँ की पाई, को धौं कहां गयो रे।
ऐसे करता हरता यहि जग, तेऊ थिर न रह्यो रे॥
रे नर बौरे तैं कितना है, केहिं गनती मां है रे।
जगजीवन दास गुमान करहु नहिं, सत्त नाम गहि रहु रे॥

मैं तैं जग त्यागि मन, चलिये सिर नाई।
नाम जानि दीन हीन, करिये दीनताई॥
अहंकार गर्व तें सब गये हैं बिलाई।
रावन के सीस काटि, राम की दुहाई॥
जिन जिन गुमान कीन्ह, मारि गर्द ही मिलाई।
साधि साधि बांधि प्रीति ताहि पर सहाई॥
परसहु गुरु सीस डारि, दुनिया बिसराई।
जगजीवन आस एक, टेक रहिये लगाई॥

अरे मन देहु तजि मतवारि।
जे जे आये जगत महँ इहि गये ते ते हारि॥
नहिं सुमिर्‍यौ नाम काँ, सब गयो काम बिगारि।
आपु काँ जिन बड़ा जान्यो, काल खायो मारि॥

जानि आपुहिं छोट जग, रहि रहौ डोरि सँभारि।
बैठि कैं चौगान निरखहु, रूप छबि अनुहारि।
रहौ थिर सतसंग बासी, देहु सकल बिसारि।
जगजीवन सतगुरु कृपा करि, लेहिं सबै सँवारि ।।

मन महँ नाहिं बूझत कोय।
नहीं बसि कछु अहै आवन, करै करता होय।
कहत मैं तैं सूझि नाहिं मर्म भूला सोय।
पड़े धारा मोह की बसि डारि सर्बस खोय ।।
करै निंदा साध की, परि पाप बूड़ैं सोय।
अंत फजोहत होहिंगे, पछिताय रहिहैं रोय ।।
कहौं समुझि बिचारि के, गहि नाम दृढ़ धरु टोय।
जगजीवन है रहहु निर्भय, चरन चित्त समोय ।।

कौन विधि खेलौं होरी, यहि बन माँ भुलानी।
जोगिन ह्वै अंग भसम चढ़ायो, तनहिँ खाक करि मानी।
ढूंढत ढुंढ़त मैं थकित भई हौं, पिया पीर नहिं जानी ।।
औगुन सब गुन एकौ नाहीं, माँगन ना मैं जानी ।।
जगजीवन सखि सुखित होहु तुम, चरनन में लपटानी।

उनहीं सो कहियो मोरी जाय।
ए सखि पैयां परि मैं बिनवौं, काहे हमैं डारिन बिसराय।
मैं का करौं मोर बस नाहीं, दीन्ह्यो अहै मोहिं भटकाय ।।
ए सखि साईं मोहिं मिलावहु, देखि दरस मोर नैन जुड़ाय।
जगजीवन मन मगन होउँ मैं, रहौं चरन कमल लपटाय ।।

सखि बांसुरी बजाय कहां गयो प्यारो।
घर की गैल बिसरि गइ मोहिं तें, अंग न बस्तु सँभारो।
चलत पाँव ठगमगत धरनि पर, जैसे चलत मतवारो॥
घर आँगन मोहिं नीक न लागै, सबद बान हिये मारो।
लागि लगन मैं मगन वही सों, लोक लाज कुल कानि बिसारो॥
सुरत दिखाय मोर मन लीन्ह्यो, मैं तो चहौं होय नहिं न्यारो।
जगजीवन छवि बिसरत नाहीं, तुमसे कहौं सो इहै पुकारो॥

अरी मोरे नैन भये बैरागी।
भसम चढ़ाय मैं भइउं जोगिनियां, सबै अभूषन त्यागी।
तलफि तलफि मैं तन मन जार्यो, उनहिं दरद नहिं लागी॥
निसु बासर मोहिं नींद हरी है, रहत एक टक लागी।
प्रीति सो नैनन नीर बहतु हैं, पी पी पी बिनु जागी॥
सेज आय समुझाय बुझावहु, लेंउ दरस छबि मांगी।
जगजीवन सखि तृप्त भये हैं, चरन कमल रस पागी॥

सखी री करौ मैं कौन उपाई।
मैं तो व्याकुल निसि दिन डोलौं उनहिं दरद नहिं आई।
काह जानि कै सुधि बिसराई कछु गति जानि न जाई॥
मैं तो दासी कलपौं पिय बिनु घर आँगन न सुहाई।
तलफि तलफि जल बिना मीन ज्यों अस दुख माहिं अधिकाई॥
निर्गुन नाह बांह गहि सेजिया सूतहि हियरा जुड़ाई।
बिन सँग सूते सुख नहिं कबहूँ जैसे फूल कुम्हलाई॥
ह्वै जोगिनि मैं भस्म लगायों रहिउँ नयन टक लाई।
पैयाँ, परौं मैं निरखि निरखि कैं महिं का देहु मिलाई॥
सुरति सुमति करि मिलहिं एक हैं गगन मँदिल चलि जाई।

रहि यहि महल टहल महँ लागी सत की सेज बिछाई ॥
हम तुम उनके सूति रहहिं संग मिटै सबैं दुचिताई।
जगजीवन सिव ब्रह्मा बिस्नू मन नहिं रहि ठहराई ॥
रवि ससि करि कुरबान ताहि छबि पीवो दरस अघाई ।

जोगिया भंगिया खबाइल, बौरानो फिरौं दिवानी ।
ऐसे जोगिया की बलि बलि जैहौं जिन्ह मोहिं दरस दिखाइल ।
नहिं करतें नहिं मुखहिं पियावै नैनन सुरति मिलाइल ॥
काह कहौं कहि आवत नाहीं जिन्ह के भाग तिन्ह पाइल ।
जगजीवन दास निरखि छबि देखै जोगिया मुरति मन भाइल ॥

साईं तुम सों लागो मन मोर ।
मैं तो भ्रमत फिरौं निसुबासर ॥
चितवौ तिनिक कृपा करि कोर ।
नहिं बिसरावहु नहिं तुम बिसरहु ॥
अब चित राखहु चरनन ठौर ।
गुन ऐगुन मन आनहु नाही ॥
मैं तो आदि अंत को तोर ।
जग जीवन बिनती कर माँगै ॥
देहु भक्ति वर जनि कै थोर ।
ऐसे साईं की मैं वलिहारियां री ॥

ऐ सखि सँग रँग मानिउं देखि रहिउ अनुहरियाँ री ।
गगन भवन मां मगन भइउं मैं बिनु दीपक उजियरियाँ री ॥
झलकि चमकि तहँ रूप बिराजै, मिटी सकल अँधियरियाँ री ।
काह कहौं कहिये को नाहीं लागि जाहि मन मँहियाँ री ॥
जगजीवन वह जोती निर्मल मोती हीरा वरियाँ री ।

गुरु बलिहारियां मैं जाउँ ।।टेक।।
डोरि लागी पोढ़ि अब मैं जपहुँ तुम्हरो नाउँ ।।
नाहि इत उत जात मनुवाँ, गगन बासा गाउँ ।।
महा निर्मल रूप छबि सत निरखि नैन अन्हाउँ ।
नाहि दुख सुख मर्म व्यापै, तप्त नीचै आउँ ।।
मारि आसन बैठि थिर है, काहु नाहिं डेराउँ ।
जगजीवन निरबान भे, सत सदा संगी आउँ ।।

अब की बार तारु मोरे प्यारे, बिनती करि कै कहौं पुकारे ।
नहिं बसि अहै के तौ कहि हारे, तुम्हरे अब सब बनहिं सवारे।।
तुम्हरे हाथ अहै अब सोई, और दूसरो नाहीं कोई ।
जो तुम चहत करत सो होई, जल थल महँ रहि जोति समोई ।।
काहुक देत हो मंत्र सिखाई, सो भजि अंतर भक्ति दृढ़ाई ।
कहौं तो कछू कहा नहिं जाई, तुम जानत तुम देत जनाई ।।
जगत भगत केते तुम तारा, मैं अजान के तान बिचारा ।
चरन सीस मैं नाहीं टारौं, निर्मल मुरति निबीन निहारौं ।।
जगजीवन का अब बिस्बास, राखहु सत गुरु अपने पास ।

अब मैं कवन गिनती आउँ ।
दियो जबहिं लखाई महिँ कह तबहिं सुमिरौं नाउँ ।।
समुझि ऐसे परत महिं कहँ, बसे सरबस ठाउँ ।
अहो न्यारे कहूँ नाहीं रूप की बलि जाउँ ।।
नाम का बल दियो जेहि कहँ राखि निर्भय गाउँ ।
काल को डर नाहिं उहवां भला पायो दाउँ ।।
चरन सीसहिं राखि निरखी, चाखि दरस उधाउँ ।
जगजीवन गुर करहु दाया, दास तुम्हरा आउँ ।।

प्रभु गति जानि नाहीं जाइ।
अहै केतिक बुद्धि केहिँ महँ कहै को गति गाइ।
सेस सम्भू थके ब्रह्मा बिस्नु तारी लाइ॥
है अपार अगाध गति प्रभु केहु नाहीं पाइ॥
भान गन ससि तीनि चौथी लियौ छिनहिं बनाइ।
जोति एकै कियौ बिस्तर, जहां तहां समाइ॥
सीस दैकै कहौं चरनन, कबहुँ नहिं बिसराइ।
जगजीवन के सत्य गुरु तुम, चरनन की सरनाइ॥

प्रभु जी का बस अहै हमारी।
जब चाहत तब भजन करावत, चाहत देत बिसारी॥
चाहत पल छिन छूटत नाहीं, बहुत होत हितकारी।
चाहत डारि सूखि पल डारत, डारि देत संहारी॥
कह लहि बिनय सुनावौं तुम तैं, मैं तौ अहौं अनारी।
जगजीवन दास पास रहै चरनन, कबहूँ करहु न न्यारी॥

साँई को केतानि गुन गावै।
सूझि बूझि तस आवै तेहि काँ, जेहि काँ जौन लखावै॥
आपुहि भजन है आपु भजावत, आपु अलेख लखावै।
जेहि कहँ अपनी सरनहिं राखै, सोई भगत कहावै॥
टारत नहीं चरन तें कबहूं, नहिं कबहूँ बिसरावै
सूरति खैंचि ऐंचि जब राखत, जोतिहि जोति मिलावै॥
सतगुर कियो गुरुमुखी तेहि, काँ दूसर नाहिं कहाव
जगजीवन ते भे सँग बासी, अंत न कोऊ पावै

बालक बुद्धि हीन मति मोरी, भरमत फिरौ नाहिं दृढ़ डोरी।
सूरति राखौ चरनन मोरी, लगि रहै कबहूँ नहिँ तोरी ।।
निरखत रहौं जाँउ बलिहारी, दास जाति कै नाहिं बिसारी।
तुमहिं सिखाय पढ़ायो ज्ञाना, तव मैं धर्यौं चरन कै ध्याना ।।
साईं समरथ तुम हौ मोरे, बिनती करौं ठाढ़ कर जोरे।
अब दयाल ह्वै दाया कीजै, अपनेजन कहँ दरसन दीजै ।।
नाम तुम्हार मोहिं है प्यारा, सोई भजे घट भा उजियारा।
जगजीवन चरनन दियो माथ, साहिब समरथ करहु सनाथ।।

तुम सों यह मन लागा मोरा।
करौ अरदास इतनी सुनि लीजै, तको तनक मोहिं कोरा ।।
कहँ लगि ऐगुन कहौं आपना, कामी कुटिल लोभी औ चोरा।
तब के अब के बहु गुनाह भे, नाहिं अंत कछु छोरा।
साईं अब गुनाह सब मेटुह, चितै आपनी ओरा।
जगजीवन कै इतनी बिनती टूटै प्रीति न डोरा ।।

साईं मोहिँ भरोस तुम्हारा।
मोरे बस नहिँ अहै एकौ, तुमहिँ करो निस्तारा ।।
मैं अज्ञान बुद्धि है नाहीं, का करि सकौं बिचारा ।।
जब तुम लेत पढ़ाय सिखावत, तब मैं प्रकट पुकारा ।।
बहुतन भवसागर महँ बूड़त, तेहिं उबारि कै तारा ।।
बहुतन काँ जब कष्ट भयो है, तिन कै कष्ट निबारा ।।
अब तौ चरन की सरनहिं आयों, गह्यो मैं पच्छ तुम्हारा ।।
जगजीवन के सांईं समरथ, मोहिं बल अहै तुम्हारा ।।

तेरा नाम सुमिर ना जाय ।
नहिं बस कछु मोर आहै, करहुँ कौन उपाय ।।
जबहिं चाहत हितू करि कै, लेत चरनन लाय ।।
बिसरि जब मन जात आहै, देत सब बिसराय ।।
गजब ख्याल अपार लीला, अंत काहु न पाय ।।
जीव जंत पतंग जग महँ, काहु ना बिलगाय ।।
करौं बिनती जोरि दोउ कर, कहत अहौं सुनाय ।।
जगजीवन गुरु चरन सरन, ह्वै तुम्हार कहाय ।।
चरनन तर दियो माथ, करिये अब मोहिं सनाथ ।

दास करि कै जानी ।।
बूड़ा सब जगतसार सूझै: नहिं वार पार ।
देखि नैनन बूझिय हिय आनी ।।
सुमति मोहिं देउ सिखाय आनि में न रहि लुभाय ।
बुद्धिहीन भजनहीन सुद्धि नाहिं आनी ।।
सहसफन तें सेस गावैं संकर तेहिं ध्यान लावै ।
ब्रह्मा वेद प्रगट कहै बानी ।।
कहौं का कहि जात नाहिं जोती वह सर्व माहिं ।
जगजीवन दरस चहै दीजै बरदानी ।।

साहिब अजब कुदरत तोर ।
देखि गति कहि जात नाहीं, केतिक मति है मोर ।।
नचत सब कोउ काछि कछनी, भ्रमत फिर बिन डोर ।
होत औगुन आप तें, सब देत साहिब खोर ।।
कौल करि जग पठै दीन्ह्यौ, तौन डार्यो तोर ।।
करत कपट संत तेतीं, कहैं मोरी भोर ।।
ऐसी जग की रीति आहै, कहा कहिये टेर ।।
जग जीवनदास चरन गुरु के, सुरत करिये पौढ़ ।।

केतिक बूझि का आरति करऊँ जैसे रखिहहिं तैसे रहऊँ ।।
नाहीं कछु बसि आहै मोरी, हाथ तुम्हारे आहै डोरी ।।
जस चाहौ तस नाच नचावहु, ज्ञान बास करि ध्यान लगावहु ।।
तुमहिं जपत तुमहीं बिसरावत, तुमहिं चिताई सरन लै आवत ।।
दूसर कवन एक हौ सोई, जेहिं का चाहै भक्त सो होई ।।
जगजीवन करि बिनय सुनावैं, साहिब समरथ नहिं बिसरावैं ।।

आरत अरज लेहु सुनि मोरी।
चरनन लागि रहै दृढ़ डोरी।
कबहुँ निकट तें टारहु नाहीं।
राखहु मोहिं चरन की छाहीं ।।
दीजै केतिक बास यह कीजै ।।
अघ कर्म मेटि सरन करि लीजै ।।
दासन दास ह्वै कहौं पुकारी।
गुन मोहिं नहिं तुम लेहु सँवारी ।।
जगजीवन का आस तुम्हारी।
तुम्हरी छबि मूरति परवारी ।।

यहि जग होरी, हरी मोहिं तें खेलि न जाई।
साईं मोहिं बिसराय दियो है, तब तें पर्यौं भुलाई ।।
सुख परि सुद्धि गईं हरि मोरी, चित्त चेत नहिं आई ।।
अनहित हित करि जानि बिषै महं रह्यो ताहि लपटाई ।।
यहि साँचे महँ पाँचौ नाचैं, अपनि अपनि प्रभुताई ।।
मैं का करैं मोर बस नाहीं राखत हैं अरुझाई ।।
गगन मँदिल चल थिर ह्वै रहिये ताकि छबि छकि निरथाई।
जगजीवन सखि साँईं समरथ, लेहैं सबै बनाई ।।

गउ निकसि वन जाहीं, बाछा उन घर ही माहीं ।।
तृन चरहि चिर सुत पासा, एहि युक्ति साध जग बासा ।।
साधु तें बड़ा न कोई, कहि राम सुनावत सोई ।।
राम वही हम साधा, रस एक मता औराधा ।।
हम साध साध हम माहीं कोउ दूसर जानै नाहीं ।।
जिन दूसर करि जाना, तेहि होइहि नरक निदाना ।।
जगजीवन चरन चित लावै, सो कहि के राम समुझावै ।।

जब मन मगन भा मस्ताना ।
भयो सीतल महा कोमल, नाहि भावै ग्रान ।।
डोरि लागी पोढ़ि गुरु तें, जगत तें विलगान ।।
ग्रहै मता ग्रगाध तिनका, करै को पहिचान ।।
ग्रहैं ऐसे जगत माँ कोइ, कहत ग्राहै ज्ञान ।।
ऐसे निर्मल ह्वै रहे हैं, जैसे निर्मल मान ।।
बड़ा बल है ताहि केरे, थमा है ग्रसमान ।।
जगजीवन गुरु चरन परि कै, निर्गुन धरि ध्यान ।।

गगरिया मोरी चित सो, उतरि न जाय ।।
इक कर करवा एक करि उबहनि, बतियाँ कहौं ग्ररथाय ।।
सास ननद पर दारुन ग्राहै, तासों जियरा डेराय ।।
जो चित छुटै गागर फूटै, घर मोरि सासु रिसाय ।।
जगजीवन ग्रस भक्ती मारग, कहत ग्रहौं गोहराय ।।

जाके लगी ग्रनहद तान हो, निरबान निरगुन नाम को ।।
जिकर करके सिखर हेरे, फिकर रारंकार की ।।
जाके लगी ग्रजपा गगन झलकै, जोति देख निसान की ।।
मद्ध मुरली मधुर बाजै, बाँए किंगरी सारँगी ।।
दहिने जे घंटा संख बाजै, गैब धुन झनकार की ।।
ग्रकह की यह कथा न्यारी, सीखा नाहीं ग्रान है ।।
जगजीवन प्रानहि सोधि के, मिलि रहे सतनाम है ।।

आनंद के सिंध में आन बसै,
तिन को न रह्यो तन को तपनो।
जब आपु में आपु समाय गये,
तब आपु में आपु लह्यो अपनो।
जब आपु में आपु लह्यो अपनो,
तब अपनो ही जाप रह्यो जपनो।
जब ज्ञान को भान प्रकास भयो,
जगजीवन होय रह्यो सपनो।

अरे मन चरन तें रहु लागि।
जोरि दुइ कर सीस दैके, भक्ति बर ले माँगि।
और आसा झूँठि आहै, गरम जैसे आगि॥
परहिँगे सो जरहिँगे पै, देहु सर्ब तियागि॥
समौ फिरि एहु पाइहै नहिँ, सोउ नहिँ गहि जागि॥
चेतु पाछिल सुद्धि करि कै, दरस रस रहु पागि॥
कठिन माया है अपरबल, संग सब के लागि॥
सूल तें कोइ बचे बिरले, गगन बैठे भागि॥

मन में जेहिँ लागो जस भाई।
सो जानै जैसे अपने मन, का सों कहै गोहराई।
साँची प्रीति की रीति है ऐसी, राखत गुप्त छिपाई॥
झूँठे कहुँ सिखि लेत अहहिँ पढ़ि, जहँ तहँ झगरा लाई॥
लागे रहत सदा रस पागे, तजे अहहिँ दुचिताई॥
ते मस्ताने तिनहीं जाने, तिनहिं को देइ जनाई॥
राखत सीस चरन तें लागा, देखत सीस उठाई॥
जगजीवन सतगुरु की मूरति, सूरति रहे मिलाई॥

सत्त नाम बिना कहौ, कैसे निस्तरि हौ ।।टेक।।
कठिन अहै मायाजार, जा को नहिँ वार पार,
कहौ काह करिहौ ।।
हो सचेत चौंकि जागु, ताहि त्यागि भजन लागु;
अंत भरम परि हौ ।।
डारहि जमदूत फांसि, आइहिँ नहिँ रोइ हाँसि,
कौन धीर धरिहौ ।।
लागहि नहिँ कोइ गोहारि लेइहि नहीं कोइ उबारि,
मनहिँ रोइ रहिहौ ।।
भगनी सुत नारि भाइ, मातु पितु सखा सहाइ,
तिनहिँ कहा कहिहौ ।।
काहुक नहिँ कोऊ जगत, मनहिँ अपने जानु गत,
जीवत मरि जाहु दीन अंतर मां रहि हौ ।।
सिद्ध साध जोगि जती, जाइहि मरि सब कोई,
रसना सतनाम गहि रहिहौ ।।
जगजीवदास रहै बैठे सतगुरु के पास,
चरन सीस धरि रहिहौ ।।

मन तन खाक करि कै जानु ।
नीच तें है नीच तेहि तें नीच आपुहि मानु ।
त्याग मैं तैं दीन ह्वै रहु, तजहु गर्व गुमान ।
देतु हौं उपदेस याहै, निरखु सो निर्वान ।
कर्म धागा लाय बाँधा, हिँदु मुसलमान ।
खैंचि लीन्ह्यो तोरि धागा, बिरल कोइ बिलगान ।
खाक है सब खाक होइहि, समुझि आपन ज्ञान ।
सबद सत कहि प्रगट भाखौं, रहहि नाम निदान ।
काल को डर नाहिँ तिन्ह काँ, चौथ रहि चौगान ।
जगजीवन दास सतगुरु के, चरन रहि लपटान ।

जोई कोई घरहि बैठा रहै ।
पाँच संगत करि पचीसौ, सबद अनहद लहै ।
दीन सीतल लीन मारग, सहज बाहनि बहै ॥
कुमति कर्म कठोर काठहिँ, नाम पावक दहै ॥
मारि मैं तैं लाइ डोरी, पवन थाम्हे रहै ॥
चित्त करतेंह सुमति साधू, सुरति माला गहै ॥
राति दिन छिन नाहि छूटै, भक्त सोई अहै ॥
जगजीवन कोइ संत बिरला, सबद की गति कहै ॥

महि ते करि न बंदगी जाइ ।
सुद्धि तुमहीं बुद्धि तुमहीं, तुमहिँ देत लखाइ ॥
केतनि हीं गनती में केती, कहि न सकौं बनाइ ।
चहे चरन लगाइ राखी, चाहिये बिसराइ ॥
देवता मुनि जती सुर सब, रहे तारी लाइ ।
पढ़ें चारिउ बेद ब्रह्मा, गाइ गाइ सुनाइ ।
भस्म अंग लगाइ संकर, रहे जोति मिलाइ ।
कौन जाने गति तुम्हारी, रहे जहँ जहँ छाइ ॥
जानिये जर आपना मोहि, कबहुँ ना बिसराइ ।
जगजीवन पर करहु दाया, तबहिँ भक्ति कहाइ ॥

अब मोहिँ जानु आपन दास ॥टेक॥
सीस चरन में रहे लागी, और करौ न आस ।
दियो मोहि उपदेस तुमहीं, आइ तुम्हरे पास ॥
लियो ढिग बैठाइ के जग, जानि सबै निरास ।
भला है अस्थान अम्मर, जोति है परगास ॥
करौं बिनती बहुत विधि ते, दीजिये विस्वास ।
गति तुम्हारी कौन जाने, जगजीवन है दास ॥

विनती लेहु इतनी मानि ।
कहों का कहि जात नाहीं, कवन कहौं केतानि ।।
कियो जबहीं दया तुमहीं, लियो संतन छानि ।
रूप नीक लखाय दीन्ह्यो, होत लाभ न हानि ।।
रहत लागे सदा आगे, सबद कहत बखानि ।
लागि गा सो पागि गा, पुनि गगन चढ़ि ठहरानि ।।
निरमलजोति निहारि निरखत, होत अनहद बानि ।
जगजीवन गुरु की भई दाया, लियो मन महं छानि ।।

अब मैं करौं कौन बयान ।
चहो पल में करहु सोई, होय सो परमान ।।
सहस जिभ्या सेस बरनत, कहत वेद पुरान ।
मोहि जैसी करहु दाया, करहु तेसि बखान ।।
संतन कांह सिखाइ लीन्ह्यो, कहत सोई ज्ञान ।
लागि पागि के रहै अंतर, मस्त रहत निरबान ।।
रहे मिल तुम्ह नहीं न्यारे, कबहुं नहि बिलगान ।
जगजीवन धरि सीस चरनन, नहीं भावै आन ।।

अब मैं कहौं का कछु ज्ञान ।
बुद्धि हीनं सिद्ध हीनं, हौं अजान हैवान ।।
ब्रह्म सेस महेस सुमिरत, गहै अंतर ध्यान ।
संत तंते रहत लागे, कहत ग्रंथ पुरान ।।
जोति एकै अहै निरमल, करै सबै बयान ।
जहाँ जैसे भाव आहै, भयो तस परमान ।।
करौ दया जान आपन, नहीं जानहुँ आन ।
जगजीवनदास सत्य समरथ, चरन रहु लिपटान ।।

अब सुन लीजै इतनी हारी।
लागी रहै प्रीति निसि बासर, दास को अपने नाहिं बिसारी॥
जो मैं चहौ कहि कहं लौं सुनावों, औगुन कर्म बहुत अधिकारी।
सरन चरन को राखि आपनी, यहु कछु मन में नाहिं बिचारी॥
काया यहि कर्महिं की आहै, आपु ते नाहीं जात सँवारी।
भवसागर हित जानि बूढ़ि जग, जेहिं जान्यो तेहिं लियो उबारी॥
लीजै राखि भाखि कहौं तुम ते, केतिक बात लियो अनगन तारी।
जगजीवन के साँईं समरथ, अपने निकट ते कबहुँ न टारी॥

तुम सों मन लागो है मोरा।
हम तुम बैठे रही अटरिया, भला बना है जोरा॥
सत की सेज बिछाय सूति रहि, सुख आनंद घनेरा।
करता हरता तुमहीं आहहु, करौं मैं कौन निहोरा॥
रह्यों अजान अब जानि पर्यो है, जब चितयो एक कोरा।
अब निर्वाह किये बनि आइहि, लाय प्रीति नहिं तोरिय डोरा॥
आवा गमन निवारहु साईं, आदि अंत का आहिउ चोरा।
जगजीवन बिनती करि माँगै, देखत दरस सदा रहौं तोरा॥

सांईं मोहिं ते सुमिर न जाई।
पांच अपरबल जोर अहैं एइ, इन ते कछु न बिसाई॥
निसि बासर कल देहि नहीं एइ, मोहिं औरे राह लगाई।
जो मैं चहौं गहौ तुव चरना, इन छिन छिन भरमाई॥
साथ सहेली लिये पचीसों, अपन अपन प्रभुताई॥
जो मन आवै सोई ठानै, हट हटकि देहिं भटकाई॥
महल मां टहल करै नहिं पावा, केहि बिधि आवहुं धाई।
ऊँचे चढ़त आनि के रोकै, मानहिं नहीं दुहाई॥
अब करु दाया जानि आपना, बिनय कै कहउं सुनाई।
जगजीवन कै इतनी बिनती, तुम सब लेहु बनाई॥

हम तें चूक परत बहुतेरी।
मैं तौ दास ग्रहौ चरनन का, हम हूं तन हरि हेरी।
बाल ज्ञान प्रभु ग्रहै हमारा, झूँठ साँच बहुतेरी।
सो ग्रौगुन गुन का कहौं तुम तें, भौसागर तें निबेरी॥
भव तें भागि ग्रायौ तुव सरने, कहत ग्रहौं ग्रस टेरी।
जगजीवन की बिनती सुनिये, राखौं पत जन केरी॥

बिनती सुनिये कृपा निधान।
जानत ग्रहौ जनावत तुमहीं, का करि सकौं बयान॥
खात पियत जो डोलत बोलत, ग्रौर न दूसर ग्रान।
व्यापि रह्यौ कहुं चेत मन्न करि, काहू भरम भुलान॥
माया प्रबल ग्रंत कछु नाहीं, सो मन समुझि डरान।
ग्रब तो सरन ग्रौर ना जानौं करिहौं सो परमान॥
सुद्धि बुद्धि कछु नाहीं मोरे, बालक जैसे ग्रजान।
मात सुनहि प्रतिपाल करत है, राखत हित करि प्रान॥
मैं केतानि कवन गिनती महँ, गावत वेद पुरान।
जगजीवन का ग्रापन जानहु, चरन रहे लिपटान॥

सांई मैं तुम्हरी बलिहारी।
कहौं काह कहि ग्रावत नाहीं, मन तन तुम पर वारी॥
देखत ग्रहौं खरो ताग्रोवर, झलकै जोति तुम्हारी।
केहु भरमाय देत माया महँ, केहु करत हितकारी॥
देखत ग्रहहूँ खेलत सब महँ को करि सकै बिचारी।
करता हरता तुमहीं ग्राहौं, ग्रजब बनी फुलवारी॥
दासन दास कै मोहिं जानिये, जानत ग्रहौ हमारी।
जगजीवन दियो सीस चरन तर, कबहूं नाहिं बिसारी॥

अब मैं कासों काहौं सुनाई ।
केहू घट की छापी नाहीं, जोति रही सब छाई ॥
तुम ही ब्रह्मा तुमही बिस्नू, सम्भू तुमही कहाई ।
सक्ती सेस गनेस तुमहीं हौ, दूजा नहिं कहि जाई ॥
बासा सब महं अहै तुम्हारो, नहीं कहूँ बहराई ।
जानि ऐसी परत मोहिं का, चरन सरन महँ आई ॥
दुक्ख दे फिर दुक्ख मेटत, सुक्ख देत अधिकाई ।
दास आपन जानौ जिनका, तिन के रहौ सहाई ॥
तुम ही करता तुम ही हरता, सृष्टी तुमहिं बनाई ।
जगजीवन कै सत्तगुरु तुम, कौन कहै गोहराई ॥

नैना चरनन राखहूँ लाय ।
केती रूप अनूपम आहै, देऊँ सब बिसराय ॥
राति दिना औ सोवत जागत, मोहीं इहै सोहाय ।
नहीं पल-पल तजौं कबहूँ, अनत नाहीं जाय ॥
मोरि बस कछु नाहिं है, जब देत तुमहिं बहाय ।
चहत खैंचि कै ऐंचि राखत, रहत हौं ठहराय ॥
दियो नाथ सनाथ करि अब, कहत अहौं सुनाय ।
जगजीवन के सतगुरू तुम, सदा रहहु सहाय ॥

अरे मन देहु तजि मतवारि ।
जे जे आये जगत महं एहि, गये ते ते हारि ॥
नहीं सुमिर्यौ नाम कां, सब गयो काम बिगारि ।
आपु कां जिन बड़ा जान्यो, काल खायो मारि ॥
जानि आपुहिं छोट जग, रहि रहौ ठोर सँभारि ।
बैठि कै चौगान निरखहु, रूप छबि अनुहारि ॥
रहौ थिर सतसंग बासी, देहु सकल बिसारि ।
जगजीवन सतगुरु कृपा करि कै, लेहैं सबै संवारि ॥

अरे मन समझु करु पहिचान ।
को तें अहसि कहाँ ते आयसि, काहे मर्म भुलान ॥
सुधि संभारि बिचार करिकै, बूझलु पाछिल ज्ञान ।
नाचु रहि दुइ चारि दिन का, अचल नाहिं स्थान ॥
लोक गड़ रहु कोट काया, कठिन माया बान ।
लाग सब कें बचे कोउ नाहिं, हर्‌यो सब का ध्यान ॥
खबरदार बेखबर हो नहिं, ओट नाम निर्वान ।
जगजीवन सतगुरु राखि लेहैं, चरन रहु लिपटान ॥

मन तैं काहे का करत गुमान ।
रहहु अधीन नाम वह सुमिरहु, तोहिं सिखावहुँ ज्ञान ॥
आये जे जे फूलि भूलि गे, फिर पाछे पछितान ।
फिरि तो कोई काम न आवा, ह्वै गा जवै चलान ॥
जो आवा सो खाकहिं मिलि गय, उड़ि उड़ि खेह उड़ान ।
वृथा गयो आय जग जनमें, जो पै नाहीं जान ॥
सुद्धि सँभारि सँवारि लेहु करि, अधरम बरहु अडान ।
जगजीवन गुरु चरन गहे रहु, निरगुन तकु निरवान ॥

अरे मन देहु सबै बिसराय ।
दीन ह्वै लवलीन करि कै नाम रहु ली लाय ॥
नाम अमृत जपहु रसना गुप्त अंतर पाय ।
मैल छूटि कै होय निरमल सुद्धि पाछिल आय ॥
निर्गुन निहारि निर्खहु अनत नाहीं जाय ।
सीस दुइ कर परहु चरनन छूटि नाहीं जाय ॥
सदा रहहु सचेत हेत लगाइ नहिं बिसराय ।
जगजीवन परकास मूरति सूरति सुरति मिलाय ॥

दुनिया जानि बूझिल बौरानी ।
झूठै कहै कपट चतुराई, मनहिं न आनहिं कानी ।।
नहिं डापत है सत्तनाम कहँ, उसे हहिं अभिमानी ।
है विवाद निंदा कहि भाषहिं, तेही पाप ते आगे हानी ।।
जानत हैं मन मानत नाहीं, बड़े कहावत ज्ञानी ।
नवहिँ नहिँ न साधु ते दीनता, बूड़ि मुए बिनु पानी ।
मैं तै त्यागि अंतर मा सुमिरै, परगट कहौं वखानी ।
जगजीवन साधन ते नय चलु इहै सुक्ख के खानी ।।

मन तैं नाहिं इत उत धाव ।
रटत रहु दुइ अच्छर अंतर, अपथ गैल न जाव ।।
उहाँ ते निर्बिंदु आयो, पिँड बासा गांव ।
चेति सुद्धि संभार ले तें, चूकु नाहीं दाव ।।
समुझि फिरि पछिताइ है, परि जोनि बहु डरुपाव ।
सत्त सरसों बांटि उबटन, अंग अपने लाव ।।
छूटि मैल होय निर्मल, नूर नीर अन्हाव ।
जगजीवन निर्बान होवै, मिटै सब दुखिताव ।

जग की कही जात नहिं भाई ।
नैनन देखि परखि करि लीन्ह्यो, तऊ न रह्यो चुपाई ।
आहै साँच झूँट कहि भाषहिं, झूठेह सांच गोहराई ।
ताहि पास संताप परेंगे, मर्म परे ते जाई ।।
निंदा करत है जान बूझिल के, जहाँ तहाँ कुटिलाई ।
जानत अहैं बनाउ ताहि का, देइहि ताहि सजाई ।।
मैं तौ सरन हौं ताहि चरन की, सूरत नहिं बिसराई ।।
जगजीवन है ताहि भरोसे, कहै सो तैसे जाई ।।

यहु मन गगन मंदिल राखु ।
सबद की चढ़ देखु सीढ़ो, प्रेम रस तहँ चाखु ।।
रहहु दृढ़ करि मारि आसन, मंत्र अजपा भाखु ।
मते गुरुमुख होहु तहवाँ, जगत आस न राखु ।।
पाँच बसि बसि वैठि रहि के, मानु कबहुँ न माखु ।
ईस अहहि पचीस इनके, सदा मन हित वाखु ।
देहु सब बिसराइ करि के, एहो धंधे लागु ।
जगजीवनदास निरखि करिके, नयन दर्शन मांगु ।।

चरनन में लागी रहिहौं री ।।टेक।।
और रूप सब तिरथ बतावैं, जल नहिं पैठ नहैहौं री ।
रहिहौं बैठि नयन तें निरखत, अनत न कतहूँ जैहौं री ।।
तुमहीं तें मन लाऊ रहिहौ, और नहीं मन अनिहौं री ।
जगजीवन के सतगुरु समरथ, निर्मल नाम गहि रहिहौं री ।।

चलु चढ़ी अटरिया धाई री ।
महल न टहल करै नहिं पाई, करिये कौन उपाई री ।।
यहँ तौ बैरी बहुत हमारे, तिन तें कछु न बिसाई री ।
पांच पचीसल निस दिन संतावहिं, राखा इन अरुझाई री ।।
सांईं तौ निकट बैठि सुख बिलसहि, जोतिहि जोति मिलाई री ।
जगजीवन दास अपनाय लेहिं वे, नाहीं जीव डेराई री ।।

मन महँ जाइ फकीरी करना ।
रहै एकंत तंत में लागा, राग नित्य नहिँ सुनना ।।
कथा चरचा पड़े सुने नहिँ, नाहिँ बहुत बक बोलना ।
ना थिर रहै जहां तहँ धावै, यह मन अहै हिँडोलना ।।
मैं तैं गर्व गुमान विवादहिँ, सबै दूर यह करना ।।
सीतल दीन रहै भरि अंतर, गहै नाम की सरना ।
जल पषान की करै आस नहिँ, आहै किल भरमना ।
जगजीवनदास निहारि निरखि के, गहि रहु गुरु की सरना ।।

इत उत आसा देहुत्यागि।
सत्त सुकृत तें रहहु लागि ॥
मन तुम नाम रटहु रट लाई।
रहु सचेत नहिं बिसरि जाई ॥
काया भीतर तीरथ कोटि।
जानि परत नहिं मन की खोटि ॥
ठाढ़े बैठे पग चलाइ।
तस पौढ़े चित अनत न जाइ ॥
रात दिवस धुनि छूटे नाहिँ।
ऐसे जपत रहहु मन माहिँ ॥
गगन पवन गहि करहु पयान।
तहवाँ बैठि रहहु निर्बान ॥
गुरु के चरन गहहु लिपटाइ।
निरखहु सूरति सीस उठाइ ॥
या है व्यापि रहै सब माहिँ।
देखत न्यारा कतहूँ नाहिँ ॥
जगजीवन कहि मथि पुरान।
यहि तें सनमत और न आन ॥

भीखा साहिब

मेरो हित सोइ जो गुरु ज्ञान सुनावै ।।
दूजी दृष्टि दुष्ट सम लागै, मन उनमेख वढ़ावै ।
आतम राम सूछम सरूप, केहि पटतर दै समझावै ।।
सबद प्रकास बिनहिँ जोग विधि, जगमग जोति जगावै ।
धन्य भाग ता चरन रेनु ले, सीस चढ़ावै ।।

धुनि बजत गगन महँ बीना, जँह आपु रास रस भीना ।
भेरी ढोल संख महनाई, ताल मृदंग नवीना ।।
सुर जहँ बहुतै मौज सहज उठि, परत है ताल प्रवीना ।
बाजत अनहद नाद गहागह, धुधुकि धुधुकि सुर झीना ।
अँगुरी फिरत तार मानहुँ पर, लय निकसत भिन भीना ।।
पाँच पचीस बजावत गावत, निर्त चारु-छबि दीन्हा ।
उघटत तननन थितां थिनां, कोउ ताथेइ थेइ तत कीन्हा ।।
बाजत ताल तरंग बहु, मानो जंत्री जंत्र कर लीन्हा ।
सुनत सुनत जिव थकित भयो, मानो ह्वै गयो सबद अधीना ।
गावत मधुर चढ़ाय उतारत, रुनझुन रुनझुन धूना ।।
कटि किंकिनि पगु नूपुर की छबि, सुरति निरति लौलीना ।
आदि सबद ओंकार उठतु है, अटुट रहत सब दीना ।।
लागी लगन निरंतर प्रभु सो, भीखा जल मन भीना ।

कहा कोउ प्रेम बिसाहन जाय ।
महँग बड़ा गथ काम न आवे, सिर के मोल बिकाय ।।
तन मन धन पहिले अरपन करि, जग के सुख न सुहाय ।
तजि आपा आपुहिँ ह्वै जीवै, निज अनन्य सुखदाय ।।

यह केवल साधन को मत है, ज्यों गूँगे गुड़ खाय।
जानहि भले कहै सो कासों, दिल की दिलहिँ रहाय ॥
विनु मग नाच नैंन बिनु देखै, बिन कर ताल बजाय।
बिन स्रवन धुनि सुनै बिबिध बिधि, बिन रसना गुन गाय ॥
निर्गुन में गुन क्यों कर कहियत, व्यापकता समुदाय।
जँह नाहीं तँह सब कुछ दिखियत, अँधरन की कठिनाय ॥
अजपा जाप अकथ की कथनी, अलख लखन किनपाय।
भीखा अविगत की गति न्यारी, मन बुधि चित न समाय ॥

प्रीति की यह रीति बखानैं।
कितनौ दुख सुख परै देह पर, चरन कमल कर ध्यानौ ॥
हो चेतन्य बिचारि तजो भ्रम, खाँड़ धूर जनि सानौ।
जैसे चात्रिक स्वाँत बुंद बिनु, प्रान समरपन ठानौ ॥
भीखा जेहि तन राम भजन नहिं, काल रूप तेहि जानौं।

अस करिये साहब दाया।
कृपा कटाच्छ होइ जेहितें प्रभु, छूटि जाय मन माया ॥
सोवत मोह निसानिस बासर, तुमहीं मोहिं जगाया।
जनमत मरत अनेक बार, तुम सतगुरु होय लखाया ॥
भीखा केवल एक रूप हरि, व्यापक त्रिभुवन राया।

मोहिँ राखो जी अपनी सरन।
अपरम्पार पार नहिं तेरो, काह कहौं का करन ॥
मन क्रम बचन आस इक तेरी, होउ जनम या मरन।
अबिरल भक्ति के कारन तुम पर, है बाम्हन देउँ धरन ॥
जन भीखा अभिलाख इही, नहिं चहौं मुक्ति गति तरन ॥

प्रभु जी करहु अपनो चेर ।
मैं तो सदा जनम की रिनिया, लेहु लिखि मोहिं केर ।
काम क्रोध मद लोभ मोह यह, करत सबहिन जेर ।
सुर नर मुनि सब पचि पचि हारे, परे करम के फेर ।।
सिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक, ऐसे ऐसे ढेर ।
खोजत सहज समाधि लगाये, प्रभु को नाम न नेर ।।
अपरंपार अपार है साहिब, ह्वै अधीन तन हेर ।
गुरु परताप साध की संगति, छूटे सो काल अहेर ।।
त्राहि त्राहि सरनागत आयो, प्रभु दरवो यह बेर ।
जन भीखा को उरिन कीजिये, अब कागद जिनि हेर ।।

भजन ते उत्तम नाम फकीर ।
छिमा सील संतोष सरल चित, दरदवंत पर पीर ।।
कोमल गदगद गिरा सुहावन, प्रेम सुधा रस छीर ।
अनहद नाद सदा फल पायो, भोग खाँड़ घृत खीर ।।
ब्रह्म प्रकास को भेष बनायो, नाम मेखला चीर ।
चमकत नूर जहूर जगामग, ढाँके सकल सरीर ।।
रहनि अचल इस्थिर कर आसन, ज्ञान बुद्धि मति धीर ।
देखत आतम राम उधारे, ज्यों दरपन मधि हीर ।।
मोह नदी भ्रम भँवर कठिन है, पाप पुन्य दोउ तीर ।
हरि जन सहजे उतरि गये ज्यों, सूखे ताल को भीर ।।
जग परपंच करम बहतो है, जैसे पवन रू नीर ।
गुरु गम सबद समुद्रहिं जावे, परत भयो जल थीर ।।
केलि करत जिय लहरि पिया संग, मति बड़ गहिर गँभीर ।
ताहि काहि पटतरो दीजिए, जिन तन मन दियो सीर ।।
मन मतंग मतवार बड़ो है, सब ऊपर बलबीर ।
भीखा हीन मलीन ताहि को, छीन भयो जस जीर ।।

करो बिचार निर्धार अवराधिये,
सहज समाधि मन लाव भाई।
जब जक्त कि आस तें होहु निरास,
तब मोच्छ दरबार की खबर पाई।।
न तो भर्म अरु कर्म बिच भोग भटकन लग्यो,
जरा अरु मरन तन वृथा जाई।।
भीखा मानै नहीं कोटि उपदेस सठ।
थक्यो बेदान्त जुग चारि गाई।।

मन तूँ राम से लौ लाव।
त्यागि के परपंच माया, सकल जगहिं नचाव।।
सांच की तू चाल गहि ले, झूठ कपट बहाव।
रहिन सों लौ लीन ह्वै, गुरु ग्यान ध्यान जगाव।।
जोग की यह सहज जुक्ति, बिचार कै ठहराव।
प्रेम प्रीति सों लागि के घट, सहज हीं सुख पाव।।
दृष्टि तें आदृष्टि देखो, सुरति निरति बसाव।
आतमा निर्धार निर्भौ, बानि अनुभव गाव।।
अचल इस्थिर ब्रह्म सेवा, भाव चित अरुझाव।
भीखा फिर नहिँ कबहुं पैहौ, बहुरि ऐसो दाव।

मन तुम राम नाम चित धारो।
जो निज कर अपनी भल चाहो, ममता मोह बिसारो।।
अंदर में परपंच बसायो, बाहर मेख सवारो।
बहु बिपरीति कपट चतुराई, बिन हरि भजन बिकारो।।
जप तप मख करि विधि विधान, जत तत उदबेग निवारो।
बिन गुरु लच्छ सुदृष्टि न आवै जन्म मरन दुख भारो।।
ग्यान ध्यान उर करहु धरहु दृढ़ि सब्द सरूप बिचारो।
कह भीखा लवलीन रहो उत, इत मति सुरति उतारो।।

जग के करम बहुत कठिनाई।
तातें भरमि भरमि जहंडाई ॥टेक॥
ज्ञानवंत अज्ञान होत है, बूढ़ करत लड़िकाई।
परमारथ तजि स्वारथ सेवहिँ यह धौं कौन बड़ाई ॥
बेद बेदान को अर्थ बिचारहिँ, वहु विधि रुचि उपजाई।
माया मोह ग्रसित निस बासर, कौन बड़ो सुखदाई ॥
लेहि बिसाहि काँच को सौदा, सोना नाम गँवाई।
अमृत तजि बिष अँचपन लागे, यह धौं कौन मिठाई ॥
गुरु परताप साध के संगति, करहु न काहे भाई।
अंत समय जब काल गरसिहै, कौन करो चतुराई ॥
मानुष जनम बहुरि नहिं पैहौ, बादि चला दिन जाई।
भीखा को मन कपट कुचाली, धरन धरै मुरखाई ॥

मन तुम लागहु सुद्ध सरूपे ॥टेक॥
तन मन धन न्यौछावरि वारो बेगि तजो भव कूपे ॥
सतगुरु कृपा तहाँ लावो, जहाँ छाँह नहिँ धूपे।
पइया करम ध्यान सों फटको जोग जुक्ति करि सूपे ॥
निर्मल भयो ज्ञान उजियारो गंग भयो लखि चूपे।
भीखा दिव्य दृष्टि सो देखत सोह बोलत मू पे ॥

समुझि गहो हरि नाम, मन ते समुझि गहो हरि नाम ॥टेक॥
दिन दस सुख यहि तन के कारन, लपट रहो धन धाम ॥
देखु बिचारि जिया अपने, जत गुनना बेकाम।
जोग जुक्ति अरु ज्ञान तें, निकट सुलभ नहिँ लाभ ॥
इत उत की अब आसा तजि के, मिलि रहु आतम राम।
भीखा दीन कहाँ लगि बरनै, धन्य घरी वहि जाम ॥

मनुवां नाम भजत सुख लीबा ।।टेक।।
जन्म जन्म के उरझनि पुरझनि समुझत करकत हीया ।
यह तो माया फाँस कठिन है धन का सुत बित तीया ।।
सत शब्द तन सागर माहीं रतन अमोलक पीया ।
आपा तजै धँसै सो पावै ले निकसै मर जीया ।।
सुरति निरति लौलीन भयो जब दृष्टि रूप मिलि थीया ।
ज्ञान उदित कल्पद्रुम को तरु जुक्ति जमावो बीया ।।
सतगुरु भये दयाल ततच्छिन करना था सो कीया ।
कहै भीखा परकासी कहिये पर अरु बाहर दीया ।।

कोउ लखि रूप सब्द सुनि आई ।।टेक।।
अविगत रूप अजायब बानी, ता छबि ता कहि जाई ।।
यह तौ सब्द गगन घहरानो, दामिनि चमक समाई ।
वह तौ नाद अनाहद निसदिन, परखत अलख सोहाई ।।
यह तौ बादर उठत चहुँ दिसि, दिवसहिँ सूर छिपाई ।
वह तौ सुन्न निरंतर बुधुकत, निज आतम दरसाई ।।
यह तौ झरतु है बूंद झराझर, गरजि गरजि झरलाई ।
वह तौ नूर जहूर बदन पर, हर दम तूर बजाई ।।
यह तौ चारि मास को पाहनु, कबहुँ नाहिं थिरताई ।
वह तौ अचल अमर की जै जै, अनंत लोग जस आई ।।
सत गुरु कृपा उभै बर पायो, सन्तन दृष्टि सुखदाई ।
भीखा सो है जन्म सँघाती, आवहि जाहि न भाई ।।

चैतत बसंत मन चित चैतन्य ।
जोग जुगति गुरु ज्ञान धन्य ।।
उरध पधार्यो पवन घोर ।
दृष्टि पलान्यो पुरुब ओर ।।

उलटि गयो थकि मिटलि दाह ।
पच्छिम दिसि कै खुललि राह ॥
सुन्न मंडल में बैठु जाय ।
उदित उजल छबि सहज पाय ॥

जोति जगामग झरत नूर ।
हाँ निसु दिन नौबति बजत तूर ॥
झलक झनक जिव एक होय ।
मत प्रान अपान को मिलन सोय ॥
रुह अलख नभ फूल्यो फूल ।
सोइ केवल आतम राम मूल ॥
देखत चकित अचरज आहि ।
जो वह सो यह कहौं काहि ॥
भीखा निज पहिचान लीन्ह ।
वह साबिक ब्रह्म सरूप चीन्ह ॥

मन में आनँद फाग उठो री ॥टेक॥
इंगला पिंगला तारा देवे, सुखमन गावत होरी ।
बाजत अनहद डंक तहाँ धुनि, गगन में ताल परो री ॥
सतसंगति चोवा अबीर करि, दृष्टि रूप लै घोरी ।
गुरु गुलाल जीरंग चढ़ायो, भीखा नूर भरो री ॥

आनँद उठत झकोरी फगुवा, आनँद उठत झकोरी ॥टेक॥
अनहद ताल पखावज बाजै, मनमत राग मरोरी ।
काया नगर में होरी खेल्यो, उलटि गयो तेहिँ खोरी ॥
नैनन नूर रंग उमग्यो, चुवत रहत निज ओरी ।
गुरु गुलाल जी दाया कीन्हों, भीखा चरन लगो री ॥

निरमल हरि का नाम सजीवना,
धन सो जन जिनके उर करेऊ।
जस निरधन धन पाइ संचतु है,
करि निग्रह किरपिनि मति घरेउ ।।
जल बिनु मीन फनी मनि निर्खत,
एकौ घरी पलक नहिं टरेऊ ।।
भीखा गूँग औ गुड को लेखा,
पर कछु कहें बने ना परेऊ ।।

गये चारि सनकादि पिता लोक आदि धाम,
किये परनाम भाव भगति दृढ़ायऊ।
पूँछियो हँस प्रीति भाव माया ब्रह्म बिलगाव,
बिधि जग व्यौहारी प्रीति उत्तर न आयऊ।
कियो बहुत समास भयो अरथ न भास,
हरि हरि सुमिरन ध्यान आरत सुनायऊ।
प्रभु हँस तन लियो द्विज दरसन दियो,
भीखा अज सनकादि कर जोरि माथ नायऊ ।।

पाप औ पुन्न को झुलत हींडोलना,
ऊँच अरु नीच सब देह धारी।
पाँच अरु तीनि पच्चीस के बस परो,
राम को नाम सहजै बिसारी ।।
महा कवलेस दुख वार अरु पार नहिं,
महा मारि जमदूत दें त्रास भारी।
मन तोहिँ धिरकार धिरकार है तोहिँ
धृग बिना हरि भजन जीवित भिखारी।

भयो अचेत नर चित्त चिन्ता लग्यो।
काम अरु क्रोध मद लोभ राते॥
सकल परपंच में खूब फाजिल हुआ।
माया मद चाखि मन मगन माते॥
बढ्यो दीमाग मगरूर हय गज चढ़ा।
कह्यो नहिं फौज भूरि जाते।
भीखा यह ख्वाब की लहरि जग जानिये,
जागि कर देखु सब झूँठ नाते॥
दूजे वह अमल दस्तूर दिन दिन बढ्यो,
घटा अँधियार उँजियार धाया।
अर्ध से उर्ध भरि जाय अजपा जप्यो,
चाँद अरु सूर मिलि त्रिकुटि आया।
झरत जहं नूर जहूर असमान लौं,
रूह अफताब गुरु कीन्ह दाया।
भीखा यह सत्त सो ध्यान परवान है,
सुन्न धुनि जोति परकास छाया॥

सकल बेकार की खानि यह देंहि है,
मल दुर्गंध तेहि भरी माही।
मन अरु पवन यह जोर दोनों बड़े,
इन को जीत के पार जाहीं।
जाहि गुरु ज्ञान अनुमान अनुभव करे,
भयो आपु आप मिलि नाम पाहीं।
भीखा आधार अपार अद्वैत है,
समुंद अरु बुंद कोइ और नाहीं।

जहाँ तक समुंद दरियाव जल कूप है,
लहरि अरु बुंद को एक पानी।
एक सूवर्न को भयो गहना बहुत,
देखु विचार हेम खानी।
पिरथवी आदि घट रच्यो रचना बहुत,
मिर्तिका एक खुद भूमि जानी।
भीखा इत आतमा रूप बहुतै भयो,
बोलता ब्रह्म चीन्हें सों ज्ञानी।

सो हरि जन जो हरि गुन गैनी।
मन क्रम बचन तहाँ लै लावे, गुरु गोबिन्द को पैनी॥
ता वर होहिं दयाल महाप्रभु, जुक्ति बतावैं सैनी।
बूझि बिचारि समझि ठहरावत, तुरत भयो चित चैनी॥
काम क्रोध मद लोभ पखेरू, टूटि जात तब डैनी।
आतम राम अभ्यास लखन करि, जब लेवे निज ऐनी॥
ब्रह्म सरूप अनूप की सोभा, नहिँ कहि आवत बैनी।
भीखा गुरु गुलाल सिर ऊपर, खुंदत है बिनु नैनी॥

देखो प्रभु मन कर अजगूता ॥टेक॥
राम को नाम सुधा सम छोड़त बिषया रस ले सूता।
जैसे प्रीति किसान खेत सों दारा धन औ पूता॥
ऐसी गति जो प्रभु पद लावै सोई परम अवधूता।
सोई जोग जोगेसुर कहिये जा हिय हरि हरि हूता॥
भीखा नीच ऊँच पद चाहत मिलै कवन करतूता।

मन मोर बड़ अवरेविया ।
हरि भजि सुख नहिं लेत, मन मोर बड़ अवरेविया ॥टेक॥
द्रव्य दृष्टि नहिँ रूप निरेखत, नूर देत बहु जेविया ।
सतगुरु खेत जोनि लै बोवल, भीखा जम लियो हिसाविया ॥

मन अनुरागल हो सिखया ॥टेक॥
नाहीं संगत और सौ ठकठक, अलख कौन बिधि लखिया ।
जन्म मरन अति कष्ट करम कहँ, बहुत कहाँ लगि झलखिया ।
बिनु हरि भजन को भेष लियो, कहा दिये तिलक सिर तखिया ॥
आतम राम सरुप जाने बिन, होहु दूध के मखिया ।
सतगुरु सब्दहिँ साँचि गहो, तजि झूँठ कपट मुख भखिया ॥
बिन मिलले सुनले देखले बिन, हिया करत सुर्ति अँखिया ।
कृपा कटाच्छ करो जेहिं छिन, भरि कोर तनिक इक अँखिया ॥
धन धन सो दिन पहर घरी पल, जब नाम सुधा रस चखिया ।
काल कराल जंजाल डरहिँग, अविनासी की धकिया ॥
जन भीखा पिया आपु भइल, उडि गैलि भरम की रखिया ॥

राम नाम भजि ले मन भाई ।
काहि के रोस करहु घर ही में, एकै तुम हमरे पितु भाई ॥
देखहु सुमति संग के भायप, छिमा सील संतोष समाई ।
एकै रहनि गहनि एकै मति, ज्ञान विवेक विचार सदाई ॥
होहु परम पद के अधिकारी, संत सभा महँ बहुत बड़ाई ।
कुमति प्रपंच कुचाल सकल यह, तुम्हरी देखि बहुत मुसकाई ॥
अब तुम भजहु सहाय समेतो, पाँच पचीस तीन समुदाई ।
तुम अनादि सुन बड़े प्रतापी, छोटे कर्म करि होहि हँसाई ॥
तुम मोंहि कीन्ह हाल की गोदी, इत उत यह भरमाई ।
तेहिँ दुख सुख को अंत कहे को, तन धरि धरि मोंहि बहुत निचाई ॥
अब अपनी उनमेख तजन को, सपथ करों दृढ़ मोंहिँ सोहाई ।
जन भीखा कै कहा मानु अब, मन तोहिँ राम के लाख दोहाई ॥

जान दे कर मनुहरिया हो ॥टेक॥
अनेक जतन करके समझाओ।
मानत नाहिँ गँवरिया हो॥
करत करेरी नैन बैन संग।
कैसे के उतरब दरिया हौ॥
या मन तें सुर नर मुनि थाके।
नर बपुरा कित घरिया हो॥
पार भइलौं पिव पीव पुकारत।
कहत गुलाल भिखरिया हो॥

हमरो मनुवाँ बड़ो अनारी।
साहब निकट न करत चिन्हारी॥
प्रानायाम न जुक्ति बिचारी।
अजपा जाप न लावै तारी॥
खोलै भ्रम तें बज्र किवारी।
निज सरूप नहिँ देखि मुरारी॥
प्रान अपान मिलन न सँवारी।
गगन गवन नहिँ सब्द उचारी॥
सुन्न समाधि न चेत बिसारी।
यह लालसा उर बड़ी हमारी॥
सर्ब दान गुरु दाता भारी।
जाचक सिष्य सो लेत भिखारी॥

सब भूला किधौं हमहिँ भुलाने।
सो न भुला जाके आतम ध्याने॥
सब घट ब्रह्म बोलता आही।
दुनिया नाम कहौं मैं काही॥

दुनिया लोक बेद मति धाये।
हमरे गुरु गम अजपा जापे॥
हरिजन जे हरि रूप समावे।
घमासान भये सूर कहावे॥
कहे भीखा क्यों नाहीं नाहीं।
जब लगि साँच झूठ तन माहीं॥

रे मन ह्वै है कवन गति मेरी।
मेरी समझ बूझ होत देरी॥
यह संसार आये गति माया लागी धाये।
राम नाम नहिँ जान्यो मति गति न निबेरी॥
भजन करारे आये कबहीं न साँचि गाये।
करम कुटिल करे मति गइ तेरी॥
भीखा चरनों में लीजै मन माया दूरि कीजै।
बार बार माँगै इहै प्रीत लागे तेरी॥

अधम मन राम नाम पद गहो।
ताते यह तन धरि निरबहो॥टेक॥
अलख न लखि जाय अजपा न जपि जाय।
अनहद के हद नाहीं हो॥
कथनी अकथ कवनि विधि होवे।
जहँ नाहीं तहँ ताहीं हो।
बिन मूल पेड़ फल रूप सोई।
निज दृष्टि बिन देखी कहीं॥
बिन अकार को रूह नूरे हैं।

अगिनि बिन भ्रम में दहो।
बोलत है आप माहीं आत्मा है हम नाहीं।
अविगति की गति महो॥
पूरन ब्रह्म सकल घट व्यापक।
आदि अंत भरि पूर रहो॥
सतगुरु सत दियो सुरति निरति लियो।
जीव मिलि पिय पहुँच हो॥
जब भीखा अब कारन ड़ो।
तंत्त पदारथ हाथ लहो॥

उठ्यो दिल अनुमान हरि ध्यान ॥टेक॥
भर्म करि भूल्यो आपु अपान।
अब चीन्हो निज पति भगवान॥
मन वच क्रम दृढ़ मत परवान।
वारो प्रभु पर तन मन प्रान॥
सब्द प्रकास दियौ गुरु दान।
देखत सुनत नैन बिनु कान॥
जा को सुख सोई जानत जान।
हरि रस मधुर कियो जिन पान॥
निर्गुन ब्रह्म रूप निर्बान।
भीखा खलओला लग तान।

मन चाहत दृष्टि निहारी।
सुरति निरति अंतर लै जावो निज सरूप अनुहारी।
जोग जुक्ति मिलि परखन लागी पूरन ब्रह्म बिचारी।
पुलकि पुलकि आपा महँ चीन्हत देखत छवि उँजियारी॥
सुखमन के घर आसन माँडी इँगल पिंगलहिँ सुढारी।
सुन्न निरंतर साहब आये सब घट सब तें न्यारी॥
प्रेम प्रीति तन मन धन अरपो प्रभु जी को बलिहारी।
गुरु गुलाल के चरन कमल रज लावत मात भिखारी॥

चरनदास

जब से अनहद घोर सुनी ॥
इँद्री थकित गलित मन हूवा, आसा सकल भुनी ।
घूमत नैन सिथिल भइ काया, अमल जु सुरत सनी ॥
रोम रोम आनंद उपज करि, आलस सहज भनी ।
मतवारे ज्यों सबद समाये, अंतर भींज कनी ॥
करम भरम के बँधन छूटे, दुविधा विपति हनी ।
आपा बिसरि जक्त कू बिसरो, कित रहिं पाँच जनी ॥
लोक भोग सुधि रही न कोई, भूले ज्ञान गुनी ।
हो तहँ लीन चरनही दासा, कहै सुकदेव मुनी ॥
ऐसा ध्यान भाग सूँ पैये, चढ़ि रहै सिखर अनी ।

कछु मन तुम सुधि राखो वा दिन की ॥
जा दिन तेरी देह छुटैगी, ठौर बसैगि बन की ।
जिनके संग बहुत सुख कीन्हें, मुख ढकि ह्वै हैं न्यारे ।
जम का त्रास होय बहु भांती, कौन छुटावन हारे ।
देहरी लौं तेरी नारि चलैगी, बड़ी पौरि लौं माई ।
मरघट लौ सब बीर भतीजे, हंस अकेलो जाई ।
द्रव्य गड़े अरु महल खड़े ही, पूत रहैं घर माहीं ।
जिनके काज पचे दिन राती, सो सँग चालत नाहीं ॥
देव पितर तेरे काम न आवैं, जिनकी सेवा लावै ।
चरनदास सुकदेव कहत है, हरि बिन मुक्ति न पावै ॥

अरे नर हरि का हेत न जाना ।।
उपजाया सुमिरन के काजे, तैं कछु और ठाना ।
गर्भ माहिं जिन रच्छा कीन्हीं, ह्वाँ खाने कूँ दीन्हा ।।
जठर अगिन सों राखि लियो है, अँग संपूरन कीन्हा ।
बाहर आय बहुत सुधि लीन्हीं, दसन बिना पय प्यायो ।।
दाँत भये भोजन बहु भाँती, हित सों तोहिँ खिलायो ।
और दिये सुख नाना बिधि के, समुझि देखु मन माहीं ।।
भूलो फिरत महा गर्वायो, तू कछु जानत नाहीं ।
तुव कारन सब कुछ प्रभु कीन्हो, तू कीन्हा निज काजा ।
जग व्यौहार पगो ही बोलै, तोहि न आवै लाजा ।।
अजहूँ चेत उलट हरि सौंही, जन्म सुफल करु भाई ।
चरनदास सुकदेव कहैं यों, सुमिरन है सुखदाई ।

अपना हरि बिन और न कोई ।।
मातु पिता सुत बंधु कुटुंब सब, स्वारथ ही के होई ।
या काया कूँ भोग बहुत दै, मरदन करि करि धोई ।।
सो भी छूटत नेक तनिक सी, संग न चाली वोई ।
घर की नारि बहुत ही प्यारी, तिनमें नाहीं दोई ।।
जीवत कहती साथ चलूँगी, डरपन लागी सोई ।
जो कहिये यह द्रव्य आपनी, जिन उज्जल मति खोई ।।
आवत कष्ट रखत रखवारी, चलत प्रान लै जोई ।
या जग में कोई हितू न दीखै, मैं समझाऊँ तोई ।।
चरनदास सुकदेव कहैं यों सुनि लीजै नर लोई ।

हमारो नैना दरस पियासा हो ।।
तन गयो सूखि हाय हिये बाढ़ी, जीवत हुँ वोहि आसा हो ।
बिछुरन थारो मरन हमारो, मुख में चलै न प्यासा हो ।।
नीद न आवै रैनि बिहावै, तारे गिनत आकासा हो ।

भये कठोर दरस नहिं जाने, तुम कूँ नेक न साँसा हो ॥
हमरी गति दिन दिन औरे ही, बिरह बियोग उदासा हो ।
सुकदेव प्यारे रहु मत न्यारे, आनि करो उर बासा हो ॥
रन जीता अपनो करि जानी, निज करि चरनन दासा हो ।

गुरु हमरे हेम पियायो हो ॥
ता दिन तें पलटो भयो, कुल गोत निसायो हो ।
अमल चढ़ो गगनैं लगो, अनहद मन छायो हो ॥
तेज पूँज की सेज पै, प्रीतम गल लायो हो ।
गये दिवाने देसड़े, आनँद दरसायो हो ॥
सब किरिया सहजै छूटी, तप नेम भुलायो हो ।
त्रैगुन तें ऊपर रहूँ, सकुदेव बसायो हो ॥
चरनदास दिन रैन नहिं, तुरिया पद पायो हो ।

पतित उधारन बिरन तुम्हारो ।
जो यह बात साँच है हरि जू, तौ तुम हम कूँ पार उतारो ॥
बालपने औ तरुन अवस्था, और बुढ़ापे माहीं ।
हम से भई सभी तुम जानौ, तुमसे नेक छिपानी नाहीं ॥
अनगिन पाप भये मनमाने, नखसिख औगुन धारी ।
हिरि फिरि कै तुम सरनै आयौ, अब तुम को है लाज हमारी ॥
सुभ करमन को मारग छूटो, आलस निद्रा घेरो ।
एकहिं बात भली बनि आई, जग में कहायो तेरो चेरो ॥
दीन दयाल कृपाल बिसंभर, स्त्री सुकदेव गुसाईं ।
जैसे और पतित घन तारे, चरनदास की गहियो बाहीं ॥

राखो जी लाज गरीब निवाज ।।
तुम बिन हमरे कौन सँवारे, सबही बिगरे काज ।
भक्त बछल हरि नाम कहावा, पतित उधारन हार ।।
करो मनोरथ पूरन जन की, सीतल दृष्टि निहार ।
तुम जहाज मैं काग तिहारो, तुम तज अंत न जाऊँ ।।
जो तुम हरिजू मारि निकासो, और ठौर नहिँ पाऊँ ।
चरनदास प्रभु सरन तिहारी, जानत सब संसार ।।
मेरी हँसी सो हँसी तुम्हारी, तुमहूँ देखु विचार ।

करौ नर हरि भक्तन को संग ।।
दुख बिसरे सुख होय घनेरी तन मन फाटे अँग ।
है निःकाम मिलो संतनसूँ नाम पदारथ मंग ।।
जेहि पाये सब पातक नासैं उपजे ज्ञान तरंग ।
जो वे दया करैं तेरे पर प्रेम पिलावैं भंग ।।
जाके अमल दरस हो हरि को नैनन आवै रंग ।
उनके चरन सरन ही लागों सेवा करो उमंग ।।
चरनदास तिनके पग परसन आस करत हैं गंग ।।

सुद्धि बुद्धि सब गई खोय री मैं इस्क दिवानी ।
तलफत हूँ दिन रैन ज्यों मछली बिन पानी ।।
बिन देखे मोहिं कल न परत है देखत आँख सिरानी ।
सुधि आये हिय में दव लागै नैनन बरखत पानी ।
जैसे चकोर रटत चंदा को जैसे पपिहा स्वाती ।।
ऐसे हम तलफत पिय दरसन बिरह बिथा यहि भाँती ।
जब ते मीत बिछोहा हूवा तब ते कछु न सुहानी ।।
अंग अंग अकुलात सखी री रोम रोम मुरझानी ।
बिन मनमोहन भवन अँधेरी भरि भरि आवै छाती ।।
चरनदास सुकदेव मिलावो नैन भये मोहिँ घाती ।

हमरा नैना दरस पियासा हो ।
तन गयो सूखि हाय हिये बाढ़ी जीवत हूँ वहि आसा हो ॥
बिछुरन थारो मरन हमारो मुख में चलै न ग्रासा हो ।
नींद न आवै रैनि बिहावै तारे गिनत अकासा हो ॥
भये कठोर दरस नहिं जाने तुम कूँ नेक न माँसा हो ।
हमरी गति दिन दिन औरै ही विरह वियोग उदासा हो ॥
सुकदेव पियारे मत रहु न्यारे आनि करो उर बासा हो ।
रनजीता अपनी करि जानी निज करि चरनन दासा हो ॥

अँखिया गुरु दरसन की प्यासी ।
इक टक लागी पंथ निहारूँ तन सूँ भई उदासी ॥
रैन दिना मोहि चैन नहीं है चिंता अधिक सतावै ।
तलफत रहूँ कल्पना भारी निःचल बुधि नहिं आवै ॥
तन गयो सूख हूक अति लागै हिरदै पावक बाढ़ी ।
खिन में लेटी खिन में बैठी घर अँगना खिन ठाढ़ी ॥
भीतर बाहर संग सहेली बातन ही समझावैं ।
चरनदास सुकदेव पियारे नैनन ना दरसावैं ।

अरे नर परनारी मत तक रे ।
जिन जिन ओर तकी डायन की, बहुतन कूँ गइ भखरे ॥
दूध आक को पात कठैया, झाल अगिन की जान ।
सिंह मुछारे विष कारे को, वैसे ताहि पिछानी ॥
खानि नरक की अति दुखदाई, चौरासी भरमावै ।
जनम जनम कूँ दाग लगावै, हरि गुरु तुरत छुटावै ॥
जग में फिरि फिरि महिमा खोवै, राखै तन मन मैला ।
चरनदास सुकदेव चितावैं. सुमिरौं राम सुहेला ॥

सतगुरु निज पुर धाम बसाये ।
जित के गये अमर ह्वै बैठे भव जल बहुरि न आये ।।
जोगी जोग जुक्ति करि हारे ध्यानी ध्यान लगावै ।
हरि जन गुरु की दया बिना यों दृष्टि नहीं दरसावै ।।
पंडित मुंडित चुंडित ढूंढ़ै, पढ़ि सुनि बेद पुरानै ।
जासूँ वै सब पायो चाहैं सो तौ नेति बखानै ।।
जंगम जती तपी संन्यासी सब हीं वा दिसि धावैं ।
सुरति निरति की गम जहँ नाहीं वै कहि कैसे पावैं ।।
देस अटपटा बेगम नगरी निगुरे राह न पाया ।
चरनदास सुकदेव गुरु ने किरपा करि पहुँचाया ।।

सो नैना मोरे तुरिया तत पद अटके ।
सुरति निरति की गम नहिं सजनी जहाँ मिलन को लटके ।।
भूलो जगत वकत कछु औरै बेद सुरानन ठठके ।
प्रीति रीति की सार न जानै डोलत भटके भटके ।।
किरिया कर्म मर्म उरझे रे ये माया के झटके ।
ज्ञान ध्यान दोउ पहुँचत नाहीं राम रहीमा फटके ।।
जग कुल रीति लोक मर्यादा मानत नाहीं हटके ।
चरनदास सुकदेव दया सूँ त्रैगुन तजि के सटके ।।

सतगुरु भौसागर डर भारी ।
काम क्रोध मद लोभ भंवर जित लरजत नाव हमारी ।।
तिस्ना लहर उठत दिन राती लागत अति झकझोरी ।
ममता पवन अधिक डरपावैं कांपत है मन मोरा ।।
और महा डर नाना बिधि के छिन छिन में दुख पाऊँ ।
अंतरजामी बिनती सुनिये यह मैं अरज सुनाऊँ ।।
गुरु सुकदेव सहाय करो अब धीरज रहा न कोई ।
चरनदास को पार उतारो सरन तुम्हारी सोई ।।

अब की तारि देव बलबीर।
चूक मो सूँ परी भारी कुबुधि के सँग सीर।
भौ सागर को धार तीच्छन महा गँधीलो नीर।
काम क्रोध मद लोभ भँवर में चित न धरत अब धीर॥
मच्छ जहँ बलवंत पाँचौ थाह गहिर गँभीर।
मोह पवन झकोर दारुन दूर पैलव तीर॥
नाव तौ मँझधार भरमी हिये बाढ़ा पीर।
चरनदास कोउ नाहिँ संगी तुम बिना हरि हीर॥

प्रभु जू सरन तिहारी आयो।
जो कोइ सरन तिहारी नाहीं भरम भरम दुख पायो॥
औरन के मन देबी देवा मेरे मन तुहि भायो।
जब मों सुरति सम्हारी जग में और न सीस नवायो॥
नरपति सुरपति आस तुम्हारी यह मुनि के मैं धायो।
तीरथ बरत सकल फल त्याग्यौ चरन कमल चित लायो॥
नारद मुनि अरु सिव ब्रह्मादिक तेरो ध्यान लगायो।
आदि अनादि जुगादि तेरो जस बेद पुरानन गायो॥
अब क्यों न बाँह गहो हरि मेरी तुम काहे बिसरायो।
चरनदास कहैं करता तूही गुरु सुकदेव बतायो॥

तुव गुन करूँ बखान यह मोरि बुद्धि कहाँ है॥टेक।
चतुर मुखी ब्रह्मा गुन गावैं तिनहुँ न पायौं जान।
गुन गावत संकर जब हारे करने लागे ध्यान॥
गुन अपार कछु पार न पायो सनकादिक कथि ज्ञान।
गुन गावत नारद मुनि थाके सहस मुखन सूँ सेस॥
लीला को कछु वार ना पायो ना परिमान न भेष।

सक्ति धनी अनगिनित तुम्हारी बहुत रूप बहु नावँ ।।
जअहिं बिचारूँ हिये में हारूँ अचरज हेरि हिरावँ ।
अति अथाह कछु थान पाऊँ सोच अचक रहिजावँ ।।
गुरु सुकदेव थके रनजीता मैं कहु कौन कहाव ।

अरे नर क्यन भूतन की सेवा ।।टेक।।
दृष्टि न आवै मुख नहिँ बौलै, ना लेवा ना देवा ।।
जेहिं कारन घी जोति जलावै, बहु पकवान बनावै ।
सो खर्चे तू अधिक चाव सूं, वह सुपने नहिँ खावै ।
राति जगावैं भोपा गावैं, झूटै मूँड हिलावैं ।
कुटुंब सहित तोहिं पैर पड़ावैं, मिथ्या बचन सुनावैं ।।
ताहि भरोसे जन्म गँवावै, जीवत मरत न साथा ।
बड़ भागन नर देही पाई, खोवै अपने हाथा ।।
चारि बरन में बुधि का, ऊँच नीच किन होई ।
जो कोइ झूठी आसा राखै, जगत जायगा सोई ।।
ताते सत बिस्वास टेक गहि, भक्ति करो हरि केरी ।
चरनदास सुकदेव कहत हैं, होय मुत्तिल गति तेरी ।।

साधो भरमा यह संसारा ।।टेक।।
गति मति लोक बड़ाई, उरझे कैसे हो छटकारा ।
भर्म पड़े नाना विधि सेती, तीरथु बर्त अचारा ।।
देह कर्म अभिमानी भूले, छूँछ पकरि तत डारा ।
जोगी जोग जुक्ति करि हारे, पंडित बेद पुराना ।।
षट दरसन पग आप पुजावैं, पहिरि पहिरि रंग बाना ।
जानत नाहिँ आप हमको हैं, को है वह भगवाना ।।
को यह जगत कौन गति लागै, सँभलैं ना अज्ञाना ।
जा कारन तुम इत उत डोलो, ताको पावत नाहीं ।।
चरनदास सुकदेव बतायो, हरि हैं अंतर माहीं ।।

सुनु राम भक्ति गति न्यारी है।
जोग जग्य संजम अरु पूजा।
प्रेम सबन पर भारी है ॥टेक॥
जाति बरन पर जो हरि जाते।
तौ गनिका क्यों तारा है।
सेवरी सन्स करी सुर मुनि ते।
हीन कुचील जो नारी है॥
दुस्सासन पत खोवन लागेव।
सब हीं ओर निहारी है॥
होय निरास कृस्न कहँ टेरी।
बाढ़ो चीर अपारी है॥
टेढ़ी लौंडी कंस राजा का।
दीन्हीं रूप कनारी है॥
एक सों एक अधिक ब्रजनारी।
कुबिजा कीन्ही प्यारी है॥
पांचों पँडवन जाय सजो है।
सगरी सजी सँवारी है॥
बाल्मीक विनकाज न हो तो।
बाजो संख मुरारी हो॥
साधौं की सेवा में राचौ।
भूप सुरति बिसारी है॥
सेना भक्त के कारन हरि जू।
वाकी सूरत धारी है॥
दास कबीरा जाति जुलाहा।
भए संत उपकारी हो॥
साखि सुनो रैदास चमारा।
सो बाग में उजियारी है॥

कनक जनेऊ काढ़ि देखायो।
विप्र गये सब हारी है।।
अजामील सदना तिरलोचन।
नामा नाम अधारी है।।
धना जाट कालू अरु कूबा।
बहुत किये भा पारी है।।
प्रीत बराबर और न देखै।
बेद पुरान बिचारी है।।
चरनदास सुकदेव कहत हैं।
ता बस आप मुरारी हैं।।

चारि बरन सूँ हरि जन ऊँचे।
भये पवित्तर हरि के सुमिरे तन के उज्जल मन के सूचे।
जो न पतीजै साखि बताऊँ सबरी के जूठे फल खाये।
बहुत ऋषीसर ह्वाँई रहते तिन के घर रघुपति नहिँ आए।।
भिल्लनि पाँव दियो सरिता में सुद्ध भयो जल सब कोइ जानै।
मंद हुतो सो निरमल ह्वो अभिमानी नर भयो खिसाने।।
बम्हन छत्री भूप हुते बहु बाजो संख सुपच जब आयो।
बाल्मीक जब पूरन कीन्हो जै जै कार भयो जस गायो।।
जाति बरन कुल सोई नीको जाके होय भक्ति परकास।
गुरै सुकदेव कहत हैं तो को हरि जन सेव चरन हीं दास।।

साधु पैज गहै सौइ सूरा।
काके मुख पर नूर है जब बाजै मारू तूरा।।
कलँगी अरु जग गाह बनावै इनका परन दुहेला।
सांवत मेख बनाय चलत हैं यह नहिँ सहज सुहेला।।
या बाने को नैम यही है पग धरि फिरि न उठावै।

जो कुछ होय सो आगेहिं आगे आगे हीं को धावैं ।।
रन में पैठि झड़ाझड़ि खेलै सन्मुख सस्तर खावै ।
खेत न छौड़ै ह्वाई जूझै तबहीं सोभा पावै ।।
चरनदास बाना संतन का तौले सीस चढ़ावै ।

साधौ टेक हमारी ऐसी ।
कोटि जतन करि छूटै नाहीं कोऊ करौ अब कैसी ।।
यह पग धरो सँभाल अचल होइ बोल चुके सोइ बोलै ।
गुरु मारग में लेन न देनो अब इत उत नहिं डोलै ।।
जैसे सूर सती अरु दाता पकरी टेक न टारैं ।
तन करि धन करि मुख नहिं मोड़ैं धर्म न अपनो हारैं ।।
पावक जारों जल में बोरो टूक टूक करि डारो ।
साध सँगति हरि भक्ति न छोड़ूँ जीवन प्रान हमारो ।।
पैज न हारूँ दाग न लागे नेक न उतरे लाजा ।
चरनदास सुकदेव दया से सब विधि सुधरैं काजा ।।

जो नर इक छत भूप कहावै ।
सत्त सिँहासन ऊपर बैठे जात ही चँवर दुरावै ।।
दया धर्म दोउ फौज महा लै भक्ति निसान चलावै ।
पुन्न नगारा नौबत बाजै दुरजन सकल हलावै ।।
पाप जलाय करै चौगाना हिंसा कुबुधि नसावै ।
मोह मुकद्दम काढ़ि मलुक सूं ला बैराग बसावै ।।
साधन नायब जित तित भेजे दै दै संजम साथा ।
राम दोहाई सिगरे फेरै कोइ न उठावै माथा ।।
निरभय राज करै निस्चल है गुरु सुकदेव सुनावै ।
चरनदास निस्चै करि जानौ बिरला जन कोई पावै ।।

चहुँ दिस झिलमिल झलक निहारी ।
आगे पीछे दहिने बायें तल ऊपर उँजियारी ।।
दृष्टि पलक त्रिकुटी है देखै आसन पद्म लगावै ।
संजम साधै दृढ़ आराधै जब ऐसी सिधि पावै ।।
बिन दामिनि चमकार बहुत हीं सीप बिना लर मोती ।
दीप मालिका बहुत दरसावें जगमग जगमग जोती ।।
ध्यान फलै तब नभ के माहीं पूरन हो गति सारी ।
चाँद घने सूरज अनकी ज्यों सूभर भरिया भारी ।।
यह तौ ध्यान प्रतच्छ बतायौ सरधा होय तो कीजै ।
कहि सुकदेव चरन ही दासा सो हमसूँ सुनि लीजै ।।

अवधू ऐसी मदिरा पीजै ।
बैठि गुफा में यह जग बिसरै चंद सूर सम कीजै ।।
जहाँ कुलाल चढ़ाई भाठी ब्रह्म ज्वाल पर जारी ।
भरि भरि प्याला देत कुलाली बाहै भक्ति खुमारी ।।
माता ह्वै करि ज्ञान खडग लै काम क्रोध कूँ मारै ।
घूमत रहै गहै मन चंचल दुबिधा सकल बिडारै ।।
जो चाखै यह प्रेम सुधा रस निज पुर पहुँचै सोई ।
अमर होय अमरा पद पावै आव गवन न होई ।।
गुरु सुकदेव किया मतवारा तीन लोक तृन बूझा ।
चरनदास रनजीत भये जब आनँद आनँद सूझा ।।

साधो निंदक मित्र हमारा ।
निंदक कूँ निकटे ही राखों होन न देउँ नियारा ।
पाछे निंदा करि अघ धोवै सुनि मन मिटै बिकारा ।।
जैसे सोना तापि अगिन में निरमल करै सोनारा ।।
धन अहरन कसि हीरा निबटै कीमत लच्छ हजारा ।

ऐसे जाँचत दुष्ट संत कूं करन जगत उँजियारा ॥
जोग जज्ञ जप पाप कटन हित करै सकल संसारा ।
बिन करनी मम कर्म कठिन सब मैटै निंदक प्यारा ॥
सुखी रहो निंदक जग माहीं रोगी नहीं तन सारा ।
हमरी निंदा करने वाला उतरै भव निधि पारा ॥
निंदक के चरनों की अस्तुति भाखौं वारम्वारा ।
चरनदास कहैं सुनियो साधो निंदक साधक भारा ॥

साधो होनहार की बात ।
होत सोई जो होनहार है का पै मेटा जात ॥
कोटि सयानप वहु विधि कीन्हें बहुत तकै कुसिलात ।
होनहार ने उलटी कीन्हीं जल में आग लगात ॥
जो कुछ होय होत बता मोंडी जैसी उपजै बुद्धि ।
होनहार हिरदै मुख बोलै बिसरि जाय सब सुद्धि ॥
गुरु सुखदेव दया सूँ होनी धारि लई मन माहिँ ।
चरनदास सोचै दुख उपजै समझै सूँ दुख जाहिँ ॥

जिन्हें हरि भक्ति पियारी हो ।
मात पिता सहजैं छुटैं छुटैं सुत अरु नारी हो ॥
लोक भोग फीके लगैं सम अस्तुति गारी हो ।
हानि लाभ नहिं चाहिए सब आसा हारी हो ॥
जग सूं मुख मोरै रहैं करै ध्यान मुरारी हो ।
जित मनुवा लागा रहै भई घट उजियारी हो ॥
गुरु सुखदेव बताइया प्रेमी गति भारी हो ।
चरनदास चारो वेद सूँ और कछू न्यारी हो ॥

गुरु हमरे प्रम पियायो हो।
ता दिन तें पलटो भयो कुल गोत नसायो हो॥
अमल चढ़ो गगने लगो अनहद मन छायो हो।
तेज पुंज की सेज पै प्रीतम गल लायो हो॥
गये दिवाने देसड़े आनद दरसायो हो।
सब किरिया सहजै छटी तप नेम भुलायो हो॥
त्रेगुन तें ऊपर रहूँ सुखदेव बसायो हो।
चरनदास दिन रैन नहिँ तुरिया पद पायो हो॥

भाई रे समझ जग व्यवहार।
जब ताईं तेरे धन पराक्रम करैं सब हीं प्यार।
अपने सुख कूँ सबहि चाहैं मित्र सुत अरु नारि।
इनहीं तो अप बस कियो है मोह बेड़े डारि॥
सबन तो कूँ भय दिखायो लाज लकुटी मार।
बाजीगर के बांदरा ज्यों फिरत घर घर दुवार॥
जबै तो को विपत्ति आवै जरा कोर बिकार।
तबै ते सूँ लाज मानैं करैं ना तेरि सार॥
इनकी संगति सदा दुख है समझ मूंड गंवार।
हरि प्रीतम कूँ सुमिरि ले कहैं चरनदास पुकार॥

ये सब निज स्वारथ के गरजी।
जग में हेत न कर काहू सूँ अपने मन को बरजी॥
रोपैं फंद घात बहु डारैं इन ते रहु डरता जी।
हिरदे कपट बाहर मिठ बोलैं यह छल हैगी कहा जी।
दुख सुख दर्द दया नहिँ बूझै इनसे छुटावो हरि जी।
सौगँद खाय झूँठ बहु बोलैं भवसागर कस तर जी॥

बैरी मित्र सबै चुनि देखे दिल के मरहम कहूँ जी ।
इनको दोष कहा कहा दीजै यह कलजुग की भर जी ।।
दुनिया झगरू कुटिल बहु खोटी देखि छाती मेरी लरजी ।
चरनदास इनकूं तजि दीजै चल बस अपने घर जी ।।

साधो राम भजै ते सुखिया ।
राजा परजा नेमी दाता सबहीं देखे दुखिया ।।
जो कोई धनवत जगत में राखत लाख हजारा ।
उनकूँ तौ संसय है निसि दिन घटत बढ़त व्यौहारा ।।
जिनके बहु सुत नाती कहिये और कुटुंब परिवारा ।
वे तो जीवन मरन के काजै भरत रहैं दुख भारा ।।
नेमी नेम करत दुख पावैं कर स्नान सबेरा ।
दाता कूँ देवे का दुख है जब मंगतौं ने घेरा ।।
चारि बरन में कोउ न देखो जाको चिंता नाहीं ।
हरि की भक्ति बिना सब दुख है समझ देख मन माहीं ।।
सत संगति अरु हरि सुमिरन भरि सुकदेवा गुरु कहिये ।
चरनदास विपदा सब तजि के आनंद में नित रहिये ।।

अब घर पाया हो मोहन प्यारा ।।टेक।।
लखो अचानक अज अविनासी उघरि गये दृग तारा ।
भूमि रह्यो मेरे आँगन में टरत नहीं कहुँ टारा ।
रोम रोम हिय माहीं देखो होत नहीं छिन न्यारा ।
भयो अचरज चरनदासन पै ये खोज कियो बहुवारा ।।

हे मन आतम पूजा कीजै ।
जितनी पूजा जग के माहीं सब हुत को फल लीजै ।
जो जो देहीं ठाकुर द्वारे तिन में आप विराजै ।
देवल में देवत है परगट आछी बिधि सू राजै ।।

त्रगुन भवन सँभारि पूजिये ग्रनरस होन न पावै ।
जैसे कूं तैसा ही परसै प्रेम ग्रधिक उपजावै ।
देवता दृष्टि न ग्रावै धोखे कूँ सिर नावै ।
ग्रादि सनातन रूप सदा हों–मूरख ताहि न ध्यावै ।।
घट घट सूझै कोइ इक बूझै गुरु सुकदेव बतावैं ।
चरनदास यह सेवन्ह कीन्हें जीवन मुक्ति फल पावैं ।।

जब सू पन चंचल घर ग्राया ।
निर्मल भया मैल गये सगरे तीरथ ध्यान जो न्हाया ।।
निर्बासा ह्वै ग्रानंद पाये या जग सूँ मुख मोड़ा ।
पांचौ भई सहज बस मेरे जब इनका रस छोड़ा ।।
भय सब छूटै ग्रब को लूटै दूजी ग्रास न कोई ।
सिमिटि सिमिटि रहा ग्रपने माहिं सकल विकल नहिं होई ।
निज मन हुग्रा मिटि गम दूग्रा को वैरी को मीता ।
बंधु मुक्ति का संसय नाहीं जन्म मरन की चीता ।।
युगरू सुकदेव मेव मोहि दोनों जब सूँ यह गति साधी ।
चरनदास सूं ठाकुर हुए बुटि गये बाद बिबादी ।।

हम तो ग्रातम पूजा धारी ।
समझि समझ कर निस्चय कीन्ही, ग्रौर सबन पर भारी ।।
ग्रौर देवल जहँ धुँधली पूजा, देवल दृष्टि न ग्रावै ।
हमरा देवत परगट दीखै बोलै चालै खावै ।
जित देखौं तित ठाकुर द्वारे करों जहाँ नित सेवा ।।
पूजा की विधि नीके जानों, जासूँ परसन देवा ।
करि सन्मान ग्रस्नान कराऊँ, चन्दन नेह लखाऊँ ।।
मीठे बचन पुष्प सोइ जानो ह्वै करि दीन चढ़ाऊँ ।
परसन करि करि दरसन पाऊँ बार बार बलि जाऊँ ।।
चरनदास सुखदेव बतावैं, ग्राठ पहर सुख पाऊँ ।।

आदिहुँ आनंद, अंतहु आनंद,
मध्यहुँ आनंद, ऐसे हि जानी।
बंधहुँ आनंद, मुक्तिहुँ आनंद,
आनंद ज्ञान, अज्ञान पिछानी।
लेटेहुँ आनंद, बैठेहुँ आनंद,
डोलत आनंद, आनंद आनी।
चरनदास बिचारि, सबै कुछ आनंद,
आनंद छांड़ि के, दुक्ख न ठानी।

मंदिर क्यों तिआगे अरु भारै क्यों गिरिवर कूं,
हरि जी कूँ दूर जानि कल्पै क्यों बावरे।
सब साधन बतायो बतायो अरु चारि बेद गायो,
आपन कूँ आप देखि अंतर लव लाव रे।
ब्रह्म ज्ञान हिये धरौ बोलते की खोज करौ,
माया अज्ञान हरौ आपा बिसराव रे।
जैहै जब आप धाप कहा पुन्न कहा पाप,
कहैं चरनदासजू निस्चल घर आव रे॥

रैदास जी

आज दिवस लेउँ बलिहारा ।
मेरे गृह आया राम का प्यारा ।।टेक।।
आँगना बँगला भवन भयौ पावन ।
हरिजन बैठे हरिजस गावन ।।
करूँ डंडवत चरन पखारूँ ।
तन मन धन उन ऊपरि वारूँ ।
कथा कहैं अरु अर्थ बिचारैं ।।
आप तरैं औरन को तारैं ।
कह रैदास मिलैं निज दास ।
जनम जनम कै काटैं पास ।।

कहु मन राम नाम सँभारि ।
माया के भ्रम कहाँ भूल्यो, जाहुगे कर झारि ।।टेक।।
देखि धौं इहाँ कौन तेरो, सगा सूत नहिं नारि ।
तौर उतँग सब दूरि करिहैं, देहिंगे तन जारि ।।
प्रान गये कहो कौन तेरा, देखि सोच बिचारि ।
बहुरि येहि कलि काल नाहीं, जीति भावै हारि ।
यहु माया सब थोथरी रे, भगति दिस प्रतिहारि ।
कहै रैदास सत बचन गुरु के, सो जिवतें न बिसारि ।।

साँची प्रीति हम तुम सँग जोड़ी, तुम सँग जोड़ि अवर सँग तोड़ी ।
जो तुम बादर तो हम मोरा, जो तुम चंद हम भये चकोरा ।।
जो तुम दीवा तो हम बाती, जो तुम तीरथ तो हम जात्री ।
जहाँ जाउँ तहँ तुम्हरी सेवा, तुमसा ठाकुर और न देवा ।।
तुम्हरे भजन कटे भय फाँसा, भक्ति हेतु गावैं रैदासा ।

देहु कलाली एक पियाला, ऐसा अवधू है मतवाला ॥टेक॥
हे रे कलली तैं क्या कीया, सिर का सातैं प्याला दिया ॥
कहै कलाली प्याला देऊं, पीवन हारे का सिर लेऊँ ॥
चंद सूर दोउ सनमुख होई, पीवै प्याला मरै न कोई ॥
सहज सुन्न में भाटी सरवै, पीवैं रैदास गुरुमुख दरवै ॥

अब कैसे छुटै नाम रट लागी ॥टेक॥
प्रभु जी तुम चंदन हम पानी ।
जाकी अंग अंग बास समानी ॥
प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा ।
जैसे चितवत चंद चकोरा ॥
प्रभु जी तुम दीप हम बाती ॥
जाकी जोति बरै दिन राती ॥
प्रभु जी तुम मोती हम धागा ।
जैसे सोनहिं मिलत सुहागा ॥
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा ।
ऐसी भक्ति करै रैदासा ॥

जो तुम तोरौ राम मैं नहिं तोरूँ ।
तुम सों तोरि कवन सो जोरूँ ॥टेक॥
तीरथ बरत न करूँ अँदेसा ।
तुम्हरे चरन कमल का भरोसा ॥
जहँ जहँ जाऊँ तुम्हरी पूजा ।
तुम सा देव और नहिं दूजा ॥
मैं अपनो मन हरि सों जोर्यों ।
हरि सों जोरि सबन से तोर्यों ॥
सब ही पहर तुम्हारी आसा ।
मन क्रम बचन कहै रैदासा ॥

नर हरि चंचल है मति मेरी, कैसे भगति करूँ मैं तेरी ॥टेक॥
तूँ होहिं देखै हौं तोहि देखूँ, प्रीति परस्पर होई ॥
तूँ मोहिं देखै तोहि न देखूँ, यह मति सब बुधि खोई ॥
सब घट अंतर रमसि निरंतर, मैं देखन नहिं जाना ॥
गुन सब तोर मोर सब अवगुन, कृत उपकार न माना ॥
मैं तैं तोरि मोरि असमझि सों, कैसे करि निस्तारा ॥
कह रैदास कृष्ण करुनामय, जै जै जगत अधारा ॥

रामा हो जगजीवन मोरा ।
तूँ न बिसारी मैं जन तोरा ॥टेक॥
संकट सोच पोच दिन राती ।
करम कठिन मोरि जाति कुजाती ॥
हरहु बिपति भावै करहु सो भाव ।
चरन न छाँड़ौ जाव सो जाव ॥
कह रैदास कछु देहु अलंबन ।
बेगि मिलौ जनि करौ विलंवन ॥

परिचै राम रमै जो कोई, या रस पर से दुबिधि न होई ॥टेक॥
जे दीसे ते सकल बिनास, अनदीठे नाहीं बिसवास ।
बरन कहँत कहैं जे राम, सो भगता केवल निःकाम ॥
फल कारन फूलै बनराई, उपजै फल तब पुहुप बिलाई।
ज्ञानहिं कारन करम कराई, उपजै ज्ञान तो करम नसाई॥
बट न बीच जैसा आकार, पसर्यो तीन लोक पासार ।
जहाँ न उपना तहाँ विलाइ, सहज सुन्नि में रह्यो लुकाइ ॥
जे मन बिदै सोई बिंद, अमा समय ज्यों दीसै चंद ।
जल में जैसे तूंबा तिरै, परिचै पिंड जीव नहिं मरै ॥
सो मन कौन जो मन को खाइ, बिन छोर तिरलोक समाइ ।
मन की महिमा सब कोइ कहै, पंडित सो जो अनतै रहै ॥
कह रैदास यह परम बैराग, राम नाम किन जपहु सभाग ।
घृत कारन दधि मथैं सयान, जीवन मुक्ति सदा निरबान ॥

मलूकदास

तेरा मैं दीदार दिवाना।
घड़ी घड़ी तुझे देखा चाहूँ, सुन साहिब रहिमाना।।
हुवा अलमस्त खबर नहिं तन की, पीया प्रेम पियाला।
ठाढ़ होउँ तो गिरि गिरि परता, तेरे रँग मतवाला।।
खड़ा रहूँ दरबार तुम्हारे, ज्यों घर का बंदाजादा।
नेकी की कुलाह सिर दीये, गले पैरहन साजा।।
तौजी और निमाज न जानूँ, ना जानूँ धरि रोजा।
बाँग जिकिर तबही से बिसरी, जब से यह दिल खोजा।।
कहैं मलूक अब कजा न करिहौं, दिलही सों दिल लाया।
मक्का हज्ज हिये में देखा, पूरा मुरसिद पाया।।

दरद दिवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।
एक अकीदा लै रहे, ऐसे मन धीरा।।
प्रेम पियाला पीवते, बिसरे सब साथी।
आठ पहर यों झूमते, ज्यों माता हाथी।।
उनकी नजर न आवते, कोइ राजा रंक।
बंधन तोड़े मोह के, फिरते हैं निहसंक।।
साहिब मिल साहिब भये, कछु रही न तमाई।
कहैं मलूक तिस घर गये, जहँ पवन न जाई।।

अब तेरी सरन आयो राम।
जबै सुनिया साध के मुख, पतित पावन नाम।
यही जान पुकार कीन्ही, अति सतायो काम।
विषय सेती भयो आजिज, कह मलूक गुलाम॥

दीन दयाल सुने जब तें तब तें, मन में कछु ऐसी बसी है।
तेरो कहाय के जाऊँ कहाँ, तुम्हारे हित की पट खैंचि कसी है।
तेरो ही आसरो एक मलूक, नहीं प्रभु सों कोऊ दूजो जसी है।
ए हो मुरार पुकार कहौं अब, मेरी हँसी नहिं तेरी हँसी है॥

दीन बंधु दीनानाथ, मेरी तन हरिये॥टेक॥
भाई नाहिँ बंधु नाहिँ, कुटुम परिवार नाहिं।
ऐसा कोई मित्र नाहिँ, जाके ढिग जाइये॥
सोने की सलैया नाहिँ, रूपे का रूपैया नाहिँ।
कौड़ी पैसा गाँठि नाहिँ, जासे कछु लीजिये॥
खेती नाहिँ बारी नाहिँ, वनिज व्यौपार नाहिँ।
ऐसा कोई साहु नाहिँ, जा सों कछु माँगिये॥
कहत मलूक दास, छोड़ दे पराई आस।
राम धनी पाइके, अब का की सरन जाइये॥

ना वह रीझै जप तप कीन्हे, ना आतम को जारे।
ना वह रीझै धोती नेती, ना काया के पखारे॥
दाया करै धरम मन राखै, घर में रहै उदासी।
अपना सा दुख सबका जानै, ताहि मिलै अविनासी॥
सहै कुसबद बाद हू त्यागै, छाड़ै गर्व गुमाना।
यही रीझ मेरे निरंकार की कहत मलूक दिवाना॥

हमसे जनि लागै तू माया।
थोरे से फिर बहुत होयगी, सुनि पैहैं रघुराया॥
अपने में है साहिब हमारा, अजहूँ चेतु दिवानी।
काहू जन के बस परि जैहो, भरत मरहुगी पानी॥
तर ह्वै चितै लाज करु जन की, डारु हाँथ की फाँसी।
जन तें तेरो जोर न लहि है, रच्छपाल अविनासी॥
कहै मलूका चुप करु ठगनी, औगुन राखु दुराई।
जो मन उबरै राम नाम कहि, तातें कछु न बसाई॥

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका यों कहै, सबके दाता राम॥
जहाँ जहाँ दुख पाइया, गुरु को थापा सोय।
जबहीं सिर टक्कर लगै, तब हरि सुमिरन होय॥
आदर मन महत्त्व सत, बालापन को नेह।
ये चारों तब ही गये, जबहिं कहा कुछ देह॥
प्रभुता ही को सब मरै, प्रभु को मरै न कोय।
जो कोई प्रभु को मरै, तो प्रभुता दासी होय॥
मानप बैठे चुप करे, कदर न जानै कोय।
जबहीं मुख खोलै कली, प्रगट बास तब होय॥
सब कलियन में बास है, बिना बास नहिं कोय।
अति सुचित में पाइये, जो कोई फूली होय॥

पीर सभन की एक सी, मूरख जानत नाहिं।
काँटा चूभे पीर ह्वै, गला काट कोउ खाय॥
कुंजर चींटी पसू नर, सब में साहिब एक।
काटै गला खुदाय का, करै सूरमा लेख।
सब कोउ साहिब बंदते, हिन्दू मुसलमान।
साहिब तिनको बंदता, जिसका ठौर इमान॥

आतम राम न चीन्ह ही, पूजत फिरै पषान ।
कैसेहु मुक्ति न होइगी, कोटिक सुनो पुरान ।।
किरतिम देवन पूजिए, ठेस लगे फुटि जाय ।
कहै मलूक सुभ आतमा, चारो जुग ठहराय ।।
देवल पूजै कि देवता, की पूजै पाहाड़ ।
पूजन को जाँता भला, जो पीस खाय संसार ।।
हम जानत तीरथ बड़े, तीरथ हरि की आस ।
जिनके हिरदे हरि बसै, कोटि तिरथ तिन पास ।।
संध्या तर्पन सब तजा, तीरथ कबहुँ न नाउँ ।
हरि हीरा हिरदे बसै, ताही भीतर न्हाउँ ।।
मक्का मदीना द्वारिका, बद्री और केदार ।
बिना दया सब झूठ है, कहै मलूक बिचार ।।
राम राय घट में बसै, ढूँढ़त फिरैं उजाड़ ।
कोइ कासी कोई प्राग में बहुत फिरैं झख मार ।।

कोई जीति सकै नहीं, यह मन जैसे देव ।
याके जीते जीत है, अब मैं पायो भेव ।।
तैं मत जानै मन मुवा, तन करि डारा खेह ।
ता का क्या इतबार है, जिन मारे सकल बिदेह ।।

जीती बाजी गुर प्रताप तें, माया मोह निवार ।
कह मलूक गुरु कृपा तें, उतरा भवजल पार ।।
सुखद पंथ गुरुदेव यह, दीन्हो मोहिं बताय ।
ऐसो ऊपट पाय अब, जग मग चलै बलाय ।।
भ्रम भागा गुरु बचन सुनि, मोह रहा नहिं लेस ।
तब माया छल हित किया, महा मोहनी भेस ।।
ताको आवत देखि कै, कही बात समुझाय ।
अब मैं आया गुरु सरन, तेरी कछु न बसाय ।।

मलुका सोई पीर है, जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानही, सो काफिर बे पीर ।।
वहुतक पीर कहावते, वहुत करत हैं भेस।
यह मन कहर खुदाय का, मारै सो दुरबेस ।।
जीवहुँ ते प्यारे अधिक, लागौं मोहीं राम।
विन हरि नाम नहीं मुझे, और किसी से काम ।।
कह मलूक हम जबहिं तें, लीन्हीं हरि की ओट।
सोवत हैं सुख नींद भरि डारि भरम की पोट ।।
राम नाथ एकै रती, पाप के कोटि पहाड़।
ऐसी महिमा नाम की, जारि करै सब छार ।।
धर्महि का सौदा भला, दाया जग ब्योहार।
राम नाम की हाट ले, बैठा खोल किवार।
साहिब मेरा सिर खड़ा, पलक पलक सुधि लेइ।
जबहीं गुरु किरपा करी, तबहिं राम कछु देइ।
मोदी सब संसार है, साहिब राजा राम।
जापर चिठ्ठी ऊतरै, सोई खरचै दाम ।।

प्रेम नेम जिन ना कियो, जग नाहीं मैन।
अलख पुरुष जिन ना लख्यो, छार परो तेहि नैन ।।
कठिन पियाला प्रेम का, पियै जो हरि के हाथ।
चारो जुग माता रहै, उतरै जिय के साथ ।।
विना अमल माता रहै, विन लस्कर बलवंत।
विना विलायत साहिवी, अंत माँहि बेअंत ।।
रात न आवै नींदड़ी, थरथर काँपे जीव ।।
ना जानूँ क्या करैगा, जालिम मेरा पीव ।।
मलूक सु माता सुंदरी, जहाँ भक्त औतार।
और सकल बाँझै भई, जन भे खर कतवार ।।

सोई पूत सपूत है, (जो) भक्ति करै चित लाय।
जरा मरन तें छूटि परै, अजर अमर ह्वै जाय।।
सब बाजे हिरदे बजैं, प्रेम पखावज तार।
मंदिर ढूँढ़त को फिरै, मित्या बजावनहार।।
करै पखावज प्रेम का, हृदे वजावै तार।
मनै नचावै मगन ह्वै, तिस का मता अपार।।
जो तेरे घट प्रेम है, तो कहि न सुनाव।
अंतरजामी जानि है, अंतर गत का भाव।।

दुखिया जनि कोई दूखवै, दुखए अति दुख होय।
दुखिया रोई पुकारि है, सब गुड़ माटी होय।।
हरी डारि ना तोड़िये, लागै छूरा बान।
दास मलूका यों कहै, अपना सा जिव जान।।
जे दुखिया संसार में, खोवो तिन का दुक्ख।
दलिद्दर सोंप मलूका को, लोगन दीजै सुक्ख।।
दया धर्म हिरदै बसै, बोलै अमृत बैन।
तेई ऊँचे जानिये, जिनके नीचे नैन।।
सब पानी की चूपरी, एक दया जग सार।
जिन पर आतम चीन्हिया, तेही उतरे पार।।

जहाँ जहाँ बच्छा फिरै, तहाँ तहाँ फिरै गाय।
कहै मलूक जँह संत जन, तहाँ रमैया जाय।।
भेष फकीरी जे करै, मन नहिँ आवै हाथ।
दिल फकीर जे हो रहै, साहिब तिनके साथ।।

गर्ब भुलाने देंह के, रचि रचि बाँधे पाग।
सो देही नित देखि के, चोंच सँवारे काग।।
उतरो आइ सराय में, जाना है बड़ कोह।
अटका आकिल काम बस, लो भठियारी मोह।।

जेते सुख संसार के, इकठे किये बटोरि।
कन थोरे काँकर घने, देखा फटक पछोरि॥
इस जीने का गर्व क्याँ, कहाँ देह की प्रीति।
बात कहत ढह जात है, बारू की सी भीत॥
मलूक कोटा भाँझरा, भीत परी भहराय।
ऐसा कोई ना मिला, (जो) फेर उठावैं आय॥
देही होय न आपनी, समुझि परी है मोहिं।
अबहीं ते तजि राख लूँ, आखिर तजि है तोहिँ॥

नमो निरंजन निरंकार, अविगत पुरुष अलेख।
जिन संतन के हित धर्‌यो, जुग जुग नाना भेष॥
हरि भक्तन के काज हित, जुग-जुग करी सहाय।
सो सिव सेस न कहि सकै, कहा कहौं मैं गाय॥
राम राय असरन सरन, मोहिं आपन करि लेहु।
संतन संग सेवा करौं, भक्ति मजूरी देहु॥
भक्ति मजूरी दीजिये, कीजै भवजल पार।
बोरत है माया मुझे, गहे बाँह बरियार॥

सुमिरन ऐसा कीजिये, दूजा लखै न कोय।
ओंठ न फरकत देखिये, प्रेम राखिये गोय।
माला जपों न कर जपों, जिभ्या कहों न राम।
सुमिरन मेरा हरि करै, मैं पाया बिसराम॥

दयाबाई

गुरु बिन ज्ञान ध्यान नहीं होवै ।।
गुरु बिन चौरासी मग जोवै ।।
गुरु बिन राम भक्ति नहीं जोगै ।
गुरु बिन असुभ कर्म नहिं त्यागै ।।
गुरु ही दीन दयाल गुसाईं ।
गुरु सरनै जो कोई जाई ।।
पलटैं करैं काग सूँ हंसा ।
मन की मेटत है सब संसा ।।
गुरु है सब देवन को देवा ।
गुरु की कोउ न जानस भेवा ।।
करुना सागर कृपा निधाना ।
गुरु हैं ब्रह्म रूप भगवाना ।।
दै उपदेस करैं भ्रम नासा ।
दया देत सुख सागर बासा ।।
गुरु की आहि निसि ध्यान जो करिये ।
विधिवत सेवा में अनुसरिये ।।
तन मन सुँ आज्ञा में रहिये ।
गुरु आज्ञा बिन कछू न करिये ।।

गुरु आज्ञा मेटीजै नाही।
भावै पान देह ह्वै जाही॥
होय गुरमुखी जग में रहै।
सिर पर सीत ऊस्न सब सहै।

जो पग धरत सो दृढ़ धरत, पग पाछे नहिं देत।
अंहकार कूं मार करि, राम रूप जस लेत॥१॥

बौरी ह्वै चितवत फिरूँ, हरि आवें केहि ओर।
छिन उट्ठूं छिन गिरि परूँ, राम दुखी मन मोर॥२॥

प्रेम पुंज प्रकटै जहाँ, तहाँ प्रकट हरि होय।
दया दया करि देत है, श्री हरि दर्शन सोय॥३॥

दया कुँ करि या जगत में, नहीं रह्यो थिर कोय।
जैसो बास सराय को, तैसो यह जग होय॥४॥

तात मात तुम्हरे गए, तुम भी भए तयार।
आज काल में तुम चलौ, दया होहु हुसकार॥५॥

बड़ो पेट है काल को, नेक न कहूँ अघाय।
राजा राना छत्रपति, सबकुँ लीले जाय॥६॥

दुख तजि सुख की चाह नहिं, नहिं बैकुंठ बेवान।
चरन कमल चित चहत हौं, मोहि तुम्हारी आन॥७॥

साधु संग में सुख बड़ो, जो करि जाने कोय।
आधो छिन सतसंग को, कलमख डारे खोय॥८॥

आज्ञाकारी गुरमुखी जो ऐसा सिप होय।
तिनके पुन्न प्रताप ते आनन्द रूपी होय॥९॥

सहजोबाई

हमारे गुरु पूरन दातार।
अभयदान दीनन को दीन्हे, किये भवजल पार॥
जन्म जन्म के बंधन काटे, जन्म को बंध निवार॥
रंक हुते सो राजा कीन्हे, हरि धन दियौ अपार॥
देवैं ज्ञान भक्ति पुनि देवैं, जोग बतावन हार॥
तन मन वचन सकल सुखदाई, हिरदे बुधि उजियार॥
सब दुख गंजन पातक भंजन, रंजत ध्यान बिचार॥
साजन दुर्जन जो चलि आवै, एकहि दृष्टि निहार॥
आनंद रूप सरूप भई है, लिपत नहीं संसार॥
चरनदास गुरु सहजो केरे, नमो नमो बारंबार॥

राम तजूँ पै गुरु न बिसारूँ, गुरु के सम हरि कूँ न निहारूँ॥
हरि ने जन्म दियो जग माहीं, गुरु ने आवागमन छुटाहीं।
हरि ने पाँच चोर दिये साथा, गुरु ने लई छुटाय अनाथा॥
हरि ने कुटंब जाल में गेरी, गुरु ने काटी ममता बेरी॥
हरि ने रोग भोग उरझायो, गुरु जोगी करि सबै छुटायौ॥
हरि ने कर्म भर्म भरमायौ, गुरु ने आतम रूप लखायो॥
हरि ने मोसूं आप छिपायौ, गुरु दीपक दै ताहि दिखायौ॥
फिर हरि बंध मुक्ति गति लाये, गुरु ने सब ही मर्म मिटाये॥
चरनदास पर तन मन वारूँ, गुरु को न तजूँ हरि कूँ तजि डारूँ।

पानी का सा बुलबुला, यह तन ऐसा होय ।।
पीव मिलन की ठानिये, रहिये ना पड़ि सोय ।।
रहिये ना पड़ि सोइ, बहुरि नहिँ मनुखा देही ।।
आपन ही कूँ खोजु, मिलै तब राम सनेही ।।
हरि कूँ भूले जो फिरैं, सहजो जीवन छार ।।
सुखिया जब ही होयगो, सुमिरैगो करतार ।।

चौरासी भुगती घना, बहुत सही जममार ।।
भरमि फिरे तिहुँ लोक में, तहू न मानी हार ।।
तहू न मानी हार, मुक्ति की चाह न कीन्ही ।।
हीरा देही पाइ मोल माटी के दीन्हीं ।।
मूरख नर समझै नहीं, समुझाया बहु बार ।।
चरनदास कहैं सहजिया सुमिरै ना करतार ।।

मुकट लटक अटकी मन माहीं ।
निरतत नटवर मदन मनोहर, कुंडल झलक पलक बिथुराई ।।
नाक बुलाक हलत मुक्ताहल, होठ मटक गति भौंह चलाई ।।
ठुमक ठुमक पग धरत धरनि पर, बाँह उठाय करत चतुराई ।।
झुनक झुनक नूपुर झनकारत, ततायेई थेई रीझ रिझाई ।।
चरनदास सहजो हिये अंतर, भवन करौ जित रहौ सदाई ।

हम बालक तुम माय हमारी, पल-पल मोहि करो रखवारी ।।
निस दिन गोदी ही में राखो, इत वित बचन चितावन भाखो ।।
विषै ओर जाने नहिँ देवो, ढुरि ढुरि जाउँ तो गहि गहि लेवो ।।
मैं अनजान कछू नहिँ जानूँ, बुरी भली को नहिँ पहिचानूँ ।।
जैसी तैसी तुमहीं चिन्हेव, गुरु है ध्यान खिलोना दीन्हेव ।।

तुम्हरी रच्छा ही से जीऊँ, नाम तुम्हारी अमृत पीऊँ ।।
दृष्टि तिहारी ऊपर मेरे, सदा रहूँ मैं सरनै तेरे ।।
मारौ झिड़कौ तौ नहिँ जाऊँ, सरकि सरकि तुमहीं पै आऊँ ।।
चरनदास है सहजो दासी, हो रच्छक पूरन अबिनासी ।।

अब तुम अपनो ओर निहारो ।
हमरे औगुन पै नहिँ जावो, तुमहीं अपनी बिरद सम्हारो ।।
जुग जुग साख तुम्हारी ऐसी, वेद पुरानन गाई ।।
पतित उधारन नाम तिहारो, यह सुन के मन दृढ़ता आई ।।
मैं अजान तुम सब कछु जानो, घट घट अंतर जामी ।।
मैं तो चरन तुम्हारे लागी, हौ किरपाल दयालहि स्वामी ।
हाथ जोरि के अरज करत हौं, अपनाओ गहि बाँहीं ।।
द्वार तिहारे आय परी हौं, पौरुष गुन मो में कछु नाहीं ।।
चरनदास सहजिया तेरी, दरसन की निधि पाऊँ ।।
लगन लगी और प्रान अड़े हैं, तुमको छोड़ि कहो कित जाऊँ ।।

सो बसंत नहिँ बार-बार, तै पाई मानुष देह सार ।।
यह औसर बिरथान खोव, भक्ति बीज हिये धरती बोव ।।
सत संगत की सींच नीर, सतगुरु जी सों करौ सीर ।।
नीकी बार विचार देव, परन राखि या कूं जु सेब ।।
रखवारी करु हेत देत, जब तेरी होवै जैत जैत ।।
खोट कपट पंछी उड़ाव, मोह प्यास सबही जलाव ।।
संभलै बाडी नऊ अंग, प्रेम फूल फूलै रंग रंग ।।
पुहुप गूँध माला बनाव, आदि पुरुष कूँ जा चढ़ाव ।।
तौ सहजो बाई चरनदास, तेरे मन की पुर व सकल आस ।।

दरिया साहिब (बिहार वाले)

मैं जानहुँ तुम दीन दयाल।
तुम सुमिरे नहिं तपत काल।।
ज्यों जननी प्रतिपाले सूत।
गर्भ बास जिन दियो अकूत।।
जठर अगिनि तें लियो है काढ़ि।
ऐसी वाकी ठवरि गाढ़ि।।
गाढ़े जो जन सुमिरन कीन्ह।
परघट जग में तेहि गति दीन्ह।।
गरबी मारेउ गैव बान।
संत को राखेउ जीव जान।।
जलमें कुमुदिन इन्दु अकास।
प्रेम सदा गुरु चरन पास।।
जैसे पपिहा जल से नेह।।
बुन्द एक बिस्वास तेह।।
स्वर्ग पताल मृत मंडल तीनि।
तुम ऐसो साहिब मैं अधीन।
जानि आयो तुम चरन पास।
निज मुख बोलेउ कहेउ उदास।
सत पुरुष बचन नहिँ होहिँ आन।
बलु पूरब से पच्छिम उगहि भान।।
कह दरिया तुम हमहिँ एक।
ज्यों हारिल की लकड़ी टेक।।

अब की वार बकस मोरे साहिव।
तुम लायक सब जोग हे॥
गुनह बकसि हौ सब भ्रम नसि हौ।
राखि हौ आपन पास हे॥
अछै बिरछि तरि लै बैठे हो।
तहवाँ धूप न छाँह हे॥
चाँद न सुरज दिवस नहिं तहवाँ।
नहिँ निसु होत बिहान हे।
अमृत फल मुख चाखन दैहौ।
सेज सुगंधि सुहाय हे॥
जुग जुग अचल अमर पद दैहै।
इतनी अरज हमार हे॥
भौ सागर दुख दारुन मिटि है।
छुटि जैहै कुल परिवार हे॥
कह दरिया यह मंगल मूला।
अनूप फुलै जहँ फूल हे॥

अमर पति प्रीतम काहे न आवो।
तुम सतबर्ग हौ सदा सुहावन, किमि नहिं उर गहि लावों॥
वरषा बिबिध प्रकार पवन अति, गरजि घुमरि घहरावो।
बुन्द अखंडित मंडित महि पर, छटा चमकि चहुँ जावो॥
झींगुर झनकि झनकि झनकारहि, बान विरह उर लावो।
दादुर मोर सोर सघन बन, पिय बिनु कछु न सुहावो॥
सरिता उमड़ि घुमड़ि जल छावो, लघु दिर्घ सब बढ़ियावो।
थाके पंथ पथिक नहिं आवत, नैनन में झरि लावो॥

केहि पूछौं पछितावत दिल में, जो पर होइ उड़ि धावों।
जो पिय मिलैं तो मिलौ प्रेम भरि, अमि भाजन भरि लावों ॥
है विस्वास आस दिल मेरे, फिरि दृग दर्सन पावों।
कह दरिया धन भाग सुहागिनि, चरन कँवल लपटावो ॥

होरी सद संत समाज संतन गाइया।
बाजा उमंग झाल झनकारा, अनहद धुन घबराइया ॥
झरि झरि परत सुरंग रंग तहँ, कौतुक नभ में छाइया।
राग रुबाव अघोर तान तहँ, झिन झिन जंतर लाइया।
छवो राग छत्तीस रागिनी, गंधर्व सुर सव गाइया ॥
पाँच पचीस भवन में नाचहि, भर्म अवीर उड़ाइया।
कह दरिया चित चंदन चर्चित, सुंदर सुभग सुहाइया ॥

तुम मेरो साईं मैं तेरो दास, चरन कँवल चित मेरो बास।
पल पल सुमिरौं नाम सुबास, जीवन जग में देखो दास ॥
जल में कुमुदिन चंद अकास, छाइ रहा छवि पुहुप बिलास।
उन मुनि गगन भया परगास, कह दरिया मेटा जम त्रास ॥

मानु सबद जो कर विवेक।
अगम पुरष जहँ रूप न रेख ॥
अठदल कँवल सुरति लौ।
अजपा जापि के मन समुझाय ॥
भँवर गुफा में उलटि जाय।
जगमग जोति रहे छवि छाय ॥
अंक नाल गहि खैंच सूत।
चमके बिजली मोती बहुत ॥

सेत घटा चहुँ ओर घनघोर।
अजरा जहवाँ होय अँजोर ॥
अमिय कँवल निज करो बिचार।
चुवत बुंद जहँ अमृत धार ॥
छव चक्रखोजि करो बिवास।
मूल चक जहँ जिव को बास ॥
काया खोजि जोगी भुलान।
काया वाहर पद निरबान ॥
सतगुरु सबद जो करै खोज।
कहैं दरिया तब पूरन जोग ॥

भीतरि मैलि चहल कै लागी, ऊपर तन का धोवै है ॥
अवगति मुरति महल के भीतर, वा का पंथ न जोवै है ॥
जुगुति बिना कोई भेद न पावैं, साधु संगति का गोवै है ॥
कह दरिया कुटने बे गीदी, सीस पटकि का रौवै है ॥

पेड़ को पकरु तब डारि पालौ मिलै।
डारि गहि पकर नहिँ पेड़ यारा ॥
देंस दिब दृष्टि असमान में चंद्र है।
चंद्र की जोति अनगिनित तारा।
आदि और अंत सब मध्य है मूल में।
मूल में फूल धौं केति डारा ॥
नाम निर्गुन निर्लेप निर्मन बरै।
एक से अनंत सब जगत सारा ॥
पढ़ि बेद कितेब बिस्तार बक्ता कथै।
हारि बेचून वह नूर न्यारा ॥
निर्पेच निर्बान निःकर्म निःमर्म वह।
एक सर्बज्ञ सत नाम प्यारा ॥

तजु मान मनी करु काम के काबु यह।
खोजु सतगुरु भरपूर सूरा ।।
असमान कै बुंद गरकाय हुआ।
दरियाव की लहरि कहि बुहुरि मूरा ।।

सत सुकृत दूनों खंभा हो, सुखमनि लागलि डोरि।
उरध उरध दूनों मचवा हो, इंगला पिंगला झकझोरि ।।
कौन सखी सुख बिलसै हो, कौन सखी दुख साथ।
कौन सखिया सुहागिनि हो, कौन कमल गहि हाथ ।।
सत सनेह सुख बिलसै हो, कपट करम दुख साथ।
पिया मुख सखिया सुहागिनि हो, राधा कमल गहि हाथ ।।
कौन झुलावै कौन झूलहिँ हो, कौन बैठलि खाट।
सत्त पुरुष नहिँ झूलहिँ हो, कुमति रोके बाट ।।
सुर नर मुनि सब झूलहि हो, झूलहिँ तीनि देव।
गनपति फनपति झूलहिँ हो, जोगि जती सुकदेव ।।
जीव संतु सब झूलहिँ हो, कोइ कहै न संदेस ।।
सत्त सब्द जिन पावल हो, भयो निर्मल दास।
कहै दरिया दर देखिय हो, देखिय जाय पुरूप के पास ।।

गुलाल साहिब

नाम रस अमरा है भाई, कोउ साध संगति तें पाई ।।
बिन घोटे बिन छाने पीवै, कौड़ी दाम न लाई ।।
रंग रँगीले चढ़त रसीले, कबहीं उतरि न जाई ।।
छके छाकये पगे पगाये, झूमि झूमि रस लाई ।।
बिमल बिमल बानी गुन बोलौ, अनुभव अमल चलाई ।।
जहँ जहँ जावै थिर नहिँ आवै, खोल अमल लै धाई ।।
जल पत्थल पूजन करि मानत, फोकट गाढ़ बनाई ।।
गुरू परताप कृपा तें पावै, घट भरि प्याल फिराई ।।
कहै गुलाल मगन है बैठे, भगि है हमरि बलाई ।।

रे मन नामहिं सुमिरन करै ।
अजपा जाप हृदय लै लावो, पाँच पचीसो तीन मरै ।।
अष्ट कमल में जीव बसतु है, द्वादस में गुरु दरस करै ।।
सोरह ऊपर बानि उठतु है, दुइ दल अमी झरै ।।
गंगा जमुना मिली सरसुती, पदमु झलक तहँ करै ।।
पछिम दिसा है गगन मंडल में, काल बली सो लरै ।।
जम जीतो परम पद पायो, जोति जग मग बरै ।।
कह गुलाल सोइ पूरन साहिब, हर दम मुक्ति करै ।।

जो पै कोई प्रेम को गाहक होई ।
त्याग करै जो मन की कामना, सीस दान दै सोई ।।
और अमल की दर जो जोड़ै, आपु अपन गति जोई ।
हर दम हाजिर प्रेम पियाला, पुलकि पुलकि रस लेई ।।

जीव पीव महँ पीव जीव महँ, बानी बोलत सोई ।।
सोई सभन महँ हम सबहन महँ बूझत बिरला कोई ।।
वा की गती कहा कोई जानै, जो जिय साचा होई ।।
कह गुलाल वे नाम समाने, मल भूले नर लोई ।।

अबिगत जागल हो सजनी ।
खोजत खोजत सतगुरु पावल ।।
ताहि चरनवां चितवा लागल हो सजनी ।।
साँझि समय उठि दीपक बारल ।
कटल करमवा मनुवाँ पागल हो सजनी ।।
चलति उबटि बाट छुटलि सकल घाट ।
गरज गगनवा अनहद बाजल हो सजनी ।।
गइली अनँदपुर भइली अगम सूर ।
जितली मैदनवाँ नेजवा गाड़ल हो सजली ।।
कहै गुलाल हम प्रभुजी पावल,
फरल लिलरवा पपवा भागल हो सजनी ।।

आनंद बरखत बुंद सुहावन ।
उमँगि उमँगि सतगुरु वर राजित, समय सुहावन भावन ।
चहूँ ओर घनघोर घटा आई, सुन्न भवन मन भावन ।
तिलक तत्त बेंदी पर झलकत, जगमग जोति जगावन ।।
गुरु के चरन मन मगन भयो जब, बिमल बिमल गुन गावन ।
कहै गुलाल प्रभु कृपा जाहि पर, हर दम भादों सावन ।।

प्रभु जी बरषा प्रेम निहारो ।
उठत बैठत छिन नहिं बीतत, याही रीति तुम्हारो ।।
समय होय असमय होवै, भरत न लागत बोरो ।
जैसे प्रीति किसान खेत सों, तैसो है जन प्यारो ।।

भक्त वच्छल है बान तिहारो, गुन औगुन न बिचारो।
जहँ जहँ जावँ नाम गुन गावत, जम को सोच निवारो॥
सोवत जागत सरन धरम यह, पुलकित मनहिं बिचारो।
कह गुलाल तुम ऐसो साहिब, देखत न्यारी न्यारो॥

मन मधुकर खेलत बसंत।
बाजत अनहद गति अनंत॥
बिगसत कमल भयो गुँजार।
जोति जगामग करि पसार॥
निरखि निरखि जिय भयो अनंद।
बाझल मन तब परल कंद॥
लहरि लहरि बहै जोति धार।
चरन कमल लन मिलो हमार॥
आवै न जाइ मरै नहिं जीव।
पुलकि पुलकि रस अमिय पीव॥
अगम अगोचर अलख नाथ।
देखत नैनन भयो सनाथ॥
कह गुलाल मोरी पुजलि आस।
जम जीत्यो भयो जोति बास॥

उलटि देखो, घट में जोति पसार।
बिनु बाजे तहँ धुनि सब होवै, बिगसि कमल कचनार॥
पैठि पताल सूर ससि बौधौ, साधौ त्रिकुटी द्वार।
गंग जमुन के वार पार विच, मरतु है अमिय करार॥
इंगला पिंगला सुखमन सोधो, बहत सिखर मुख धार।
सुरति निरति ले बैठु गगन पर, सहज उठै झनकार॥
सोहं डोरी मूल गहि बाँधो, मानिक बरत लिलार।
कह गुलाल सतगुरु वर पायो, भरो है मुक्ति भँडार॥

अवधू निर्मल ज्ञान बिचारो।
ब्रह्म सरूप अखंडित पूरन, चौथे पद सों न्यारो।
ना वह उपजै ना वह बिनसै, ना भरमै चौरासी॥
है सतगुरु सतपुरुष अकेला, अजर अमर अबिनासी।
ना बाके बाप नहीं बाके माता, बाके मोह न माया॥
ना बाके जोग भोग वाके नाहीं, ना कहु जाय न आया।
अद्भुत रूप अपार बिराजै, सदा रहै भरपूरा॥
कहै गुलाल सोई जन जानै, जाहि मिलै गुरु सूरा॥

हरि नाम न लेह लेहु गँवारा हो।
काम क्रोध में रटत फिरत हौ, कबहूँ न आप सँभारा हो॥
आपु अपन कै सुधि नहिँ जानहुँ, बहुत करत बिस्तारा हो॥
नेम धरम व्रत तिरथ करतु हौ, चौरासी बहु धारा हो॥
तसकर चोर बसहिं घट भीतर, मूसहिं सहन भंडारा हो॥
सन्यासी बैरागी तपसी, मनुवां देत पछारा हो॥
धंधा धोख रहत लपटाने, मोह रतो संसारा हो॥
कहै गुलाल सतगुरु बलिहारी, जग तें भयो नियारा हो॥

मन तूँ हरि गुन काहे न गावै।
तातें कोटिन जनम गँवाबै॥
घर में अमृत छोड़ि कै, फिरि फिरि मदिरा पावै।
छोड़हु कुमति मूढ़ अब मानहु, बहुरि न ऐसो दावै॥
पाँच पचीस नगर के बासी, तिनहिं लिये सँग धावै।
बिन पर उड़त रहै निसि बासर, ठौर टिकान न आवै॥
जोगी जती तपी निर्बानी, कपि ज्यों बांधि नचावै
सन्यासी बैरागी मौनी, धै धै नरक मिलावै॥
अबकी वार दाव है मेरो, छोड़ों न राम दुहाई।
जन गुलाल अवधूत फकीरा, राखो जंजीर भराई॥

संतो कठिन अपरबल नीरा ।
सब ही बरलहि भोग कियो है, अजहूँ कन्या क्वारी ।।
जननी है के सब जग पाला, बहु विधि दूध पियाई ।।
सुंदर रूप सरूप सलोना, जोय होइ जग खाई ।।
मोह जाल सों सबहि बझायो, जहँ तक है तन धारी ।।
कल सरूप प्रगट है नारी, इन कहँ चलहु सँभारी ।।
आन ज्ञान सब ही हरि लीन्हो, काहु न आप सँभारी ।।
कहै गुलाल कोऊ कोउ उबरे, सतगुरु की बलिहारी ।।

सत्तहिं डोलवा सतगुरु नावल तहवाँ मनुवाँ भुलत हमार ।।
बिनु डोरी बिनु खम्भे फौढल, आठ पहर झनकार ।
गावहु सखियाँ हिँडोलवा हो, प्रेम पदारथ भइल निनार ।।
छुटत जगत कर झुलना हो, दास गुलाल मिलो है यार ।।

बुल्लेशाह

माटी खुदी करेंदी यार।
माटी जोड़ा माटी घोड़ा, माटी दा असवार।
माटी मटी माटी नूँ मारन लागी, माटी दे हथियार।।
जिस माटी पर बहुती माटी, तिस माटी हंकार।।
माटी बाग बगीचा माटी, माटी दी गुलजार।।
माटी माटी नूँ देखन आई, माटी दी बाहार।।
हँस खेल फिर माटी होई, पौंदी पाँव पसार।।
बुल्ले शाह बुझारत बूझी, लाह सिरों मों मार।।

अब तो जाग मुसाफिर प्यारे, रैन घटी लटके सब तारे।।
आवागौन सराईं डेरे, साथ तयार मुसाफर तेरे।।
अजे न सुन दा कूच नगारे।।
करलै आज करन दी बेला, बहुरि न होसी आवत तेरा।।
साथ तेरा चल चल्ल पुकारे।
आपो अपने लाहे दौड़ी, क्या सरधन क्या निर्धन बौरी।।
लाहा नाम तू लेहु सँभारे।।
बुल्ले सहु दी पैरी परिये, गफलत छोड़ हीला कुछ करिये।।
मिरग जतन बिन खेत उजारे।

कद मिलसी मैं बिरहों सताई नूँ।।
आप न आवै नाँ लिख भेजे, भट्ठि अजे ही लाई नूँ।।
तैं जेहा कोइ होर नाँ जाणा, मैं तनि सूल सवाई नूँ।।
रात दिनें आराम न मैं नूँ, खावे बिरह कसाई नूँ।।
बुल्ले साह धृग जीवन मेरा, जौं लग दरस दिखाई नूँ।।

टुक बूझ कवन छप आया है ।।
इन नुकते में जो फेर पड़ा, तब ऐन गैन का नाम धरा ।।
जब मुरसद नुकता दूर किया, तब ऐनों ऐन कहाया है ।।
तुसीं इलम किताबां पढ़ दे हो, के हे उलटे माने कर दे हो ।।
बेमूजब ऐवें लड़दे हो केहा, उलटा वेद पढ़ाया है ।।
दुई दूर करो कोई सोर नहीं, हिंदु तुरक कोई होर नहीं ।।
सब साधु लखो कोई चोर नहीं, घट घट में आप समाया है ।
ना मैं मुल्ला ना मैं काजी, ना मैं सुन्नी ना है हाजी ।।
बुल्ले साह नाल लाई बाजी, अनहद सबद बजाया है ।।

यारी साहब

गुरु के चरन की रज लै कै, दोउ नैन के बिच अंजन दिया।
तिमिर मेटि उँजियार हुआ, निरंकार पिया को देख लिया ॥
कोटि सुरज तहँ छिपे घने, तीनि लोक धनी धन पाइ पिया।
सतगुरु ने जो करी किरपा, मरि के यारी जुग जुग जिया ॥

सुन्न के मुकाम में बेचून की निसानी है।
जिकिर रूह सोई अनहद बानी है ॥
अगम के गम्म नाहीं झलक पिसानी है।
कहै यारी आपा चीन्हे सोई ब्रह्मज्ञानी है ॥

झिलमिल झिलमिल बरखै नूरा।
नूर जहूर सदा भरपूरा ॥
रुनझुन रुनझुन अनहद बाजै।
भँवर गुँजार गगन चढ़ि गाजै ॥
रिमझिम रिमझिम बरखै मोती।
भयो प्रकास निरंतर जोती ॥
निरमल निरमल निरमल नामा।
कह यारी तहँ लियो बिश्रामा ॥

हौं तो खेलौं पिया संग होरी।
दरस परस पतिबरता पिय की, छवि निरखत भइ बौरी ॥
सोरह कला संपूरन देखौं, रबि ससि भे इक ठौरी ॥
जब तें दृष्टि परो अबिनासी, लागो रूप ठगौरी ॥
रसना रटत रहत निस बासर, नैन लगो यहि ठौरी ॥
कह यारी भक्ति करु हरि की, कोई कहै सो कहौ री ॥

बिरहिनी मंदिर दियना बार।।
बिन बाती बिन तेल जुगति सों, बिन दीपक उँजियार।।
प्रान पिया मेरे गृह आयो, रचि पचि सेज सँवार।।
सुखमन सेज परम लत रहिया, पिय निर्गुन निरकार।।
गावहु री मिलि आनँद मंगल, यारी मिलि के यार।।

दोउ मूंदि के नैन अंदर देखा, नहिँ चांद सूरज दिन राति है रे।
रोसन समा बिनु तेल बाती, उस जोति सों सबै सिफाति है रे।।
गोत मारि देखो आदम, कोउ अवर नाहिं संग साथि है रे।
यारी कहै तहकीक कीया, तू मलकुल मौत की जाति है रे।।

जमीं बरखै असमान भीजै, बिन बातिहिं तेल जलाइये जी।।
जहाँ नूर तजल्ली बीच है रे, बेरंगी रंग दिखाइये जी।।
फूल बिना जदि फल होवै, तदि हीरा की लज्जत पाइये जी।।
यारी कहै यहि कौन बूझै, यह का सों बात जानिये जी।।

बिन बंदगी इस आलम में, खाना तुझे हराम है रे।।
बंदा करै सोइ बंदगी, खिदमत में आठो जाम है रे।।
यारी मौला बिसारि कें, तू क्या लागा बे काम है रे।।
कुछ जीते बंदगी करले, आखिर को गोर मुकाम है रे।।

गहने के गढ़े तें कहीं सोनो भी जातु है।
सोनो बीच गहनो और गहनो बीच सोन है।।
भीतर भी सोनो और बाहर भी सोन दीसै।
सोनो तो अचल अंत गहनो को मीच है।।
सोन को तो जानि लीजै गहनो बरबाद कीजै।
यारी एक सोनो ता में ऊँच कवन नीच है।।

आँधरे को हाथी हरि हाथ जाको जैसो आयो।
बूझो जिन जैसो तिन तैसोई बतायो है॥
टकाटोरी दिन रैन हिये हू के फूटे नैन।
आँधरे को आरसी में कहा दरसायो है॥
मूल की खबरि नाहिं जा सों यह भयो मुलुक।
वा को बिसारि भोंदू डारै अरुझायो है॥
आपनो सरूप रूप, आपु माहिं देखै नाहिं।
कहै यारी आँधरे ने हाथी कैसो पायो है॥

दूलनदास

देख आयों मैं दो साईं की सेजरिया ।
साईं की सेजरिया सतगुरु की डगरिया ।।
सबदहि ताला सबदहि कूँजी, सबद की लगी है जँजिरिया ।
सबद ओढ़ना सबद बिछौना, सबद की चटक चुनरिया ।।
सबद सरूपी स्वामी आप बिराजैं, सीस चरन में धरिया ।
दूलनदास भजु साईं जग जीवन, अगिन से अहँग उजरिया ।।

साईं तेरो गुप्त मर्म हम जानी ।
कस करि कहौं बखानी ।।
सतगुरु संत भेद मोहिं दीन्हा, जग से राखा छानी ।
निज घर का कोउ खोज न कीन्हा करम भरम अटकानी ।।
निज घर है वह अगम अपारा, जहाँ बिराजै स्वामी ।
ताके पैर अलोक अनामी, जा का रूप न नामी ।।
ब्रह्म रूप धरि सृष्टि उपाई, आप रहा अलगानी ।
बेद कितेब की रचन रचाई, दस औतार धरानी ।।
निज माता सोता सोइ राधा, जिनपितु राम सुवामी ।
दोउ मिलिजीवन बुंद छुड़ाया, निज पद में दिया ठामी ।।
दूलनदास के साईं जग जीवन, निज सुत जक्त पठानी
मुक्ति द्वार की कूँची दीन्हीं, तातें कुलुफ खुलानी ।।

दूलन यह मत गुप्त है, प्रगट न करौ बखान ।
ऐसे राखु छिपाय मन, जस बिधवा औधान ।।

जब गज अरध नाम गुहरायो।
जब लगि आवै दुसरा अच्छर, तब लगि आपुहि धायो ॥
पाँय पियादे भे करुनामय, गरुड़ासन बिसरायो ॥
धाय गजंद गोद प्रभु लीन्हो, आपनि भक्ति दिढ़ायो ॥
मीरा को विष अमृत कीन्हो, बिमल सुजस जग छायो ॥
नामदेव हित कारन प्रभु तुम, मितेक गाय जियायो ॥
भक्त हेत तुम जुग जुग जनमेउ, तुमहिँ सदा यह भायो ॥
बलि बलि दूलनदास नाम की, नामहिँ तें चित लायो ॥

बाजत नाम नौबति आज ॥
ह्वै सावधान सुचित्त सीतल, सुनहु गैब अवाज ॥
सुखकंद अनहद नाद सुनि, दुख दुरित क्रम भ्रम भाज ॥
सतलोक बरसो पानि, धुनि निर्बान यहि मन बाज ॥
तोइ चेत, चित दै प्रेम मगन, अनंद आरति साज ॥
घर राम आये जानि, भइनि सनाथ वहुरा राज ॥
जग जीवन सतगुरु कृपा पूरन, सुफल में जन काज ॥
धनि भाग दूलनदास तेरे, भक्ति तिलक विराज ॥

कोइ बिरला यहि बिधि नाम कहै ॥
मंत्र अमोल नाम दुइ अच्छर, बिनु रसना रट लागि रहै ॥
होठ न डोलै जीभ न बोलै, सुरति धरनि दिढाइ गहै ॥
दिन औ राति रहै सुधि लागी, यहि माला यहि सुमिरन है ॥
जन दूलन सतगुरन बतायो, ताकी नाव पर निव है ॥

मन वहि नाम को धुनि लाउ।
रटु निरंतर नाम केवल, अवर सब बिसराउ ॥
साधि सूरति आपनो, करि सुवा सिखर चढ़ाउ ॥
पोखि प्रेम प्रतीत तें, कहि राम नाम पढ़ाउ ॥

नाम ही अनुराग निसु दिन, नाम के गुन गाउ ॥
वनी तौ का अबहिँ आगे और बनी बनाउ ॥
जगजीवन सतगुरु बचन साचे, साच मन माँ लाउ ॥
करु वारन दूलनदास सत मां, फिरि न यहि जग आउ ॥

बोल मनुआँ राम राम ॥
सत्त जपना औरु सपना, जिकर लावो अष्ट जाम ॥
समुझि बूझि बिचारि देखो, पिंड पिंजरा धूमधाम ॥
बालमीकि हवाल पूछो, जपत उलटा सिद्ध काम ॥
दास दूलन आस प्रभु की, मुक्ति करता सत्तनाम ॥

प्रानी जपि ले तू सत्तनाम ।
मात पिता सुत कुटुम्ब कबीला, यह नहिँ आवै काम ॥
सब अपने स्वारथ के संगी, संग न चलै छदाम ॥
देना लेना जो कुछ होवै, करि ले अपना काम ॥
आगे हाट बजार न पावै, कोइ नहिँ पावै ग्राम ॥
काम क्रोध मद लोभ मोह ने, आन बिछाया दाम ॥
क्यों मतवारा भया बावरे, भजन करो निःकाम ॥
यह नर देही काम न आवै, चल तू अपने धाम ॥
अब की चूक माफ नहिँ होगी, दूलन अचल मुकाम ॥

चलो चढ़ो मन यार महल अपने ॥
चौक चांदनी तारे झलकैं, बरनत बनत न जात गने ॥
हीरा रतन जड़ाव जड़े जहँ, मोतिन कोटि कितान बने ॥
सुखमन पलँगा सहज बिछौना, सुख सोवो, को मेरे मने ॥
दूलनदास के साईं जगजीवन, को आवै जग जग सुपने ॥

जोगी चेत नगर में रहो रे ।
प्रेम रंग रस ओढ़ चदरिया, मन तसबीह गहो रे ॥
अंतर लाओ नामहिँ की धुनि, करम भरम सब धोरे ॥
सूरत साधि गहो सत मारग, भेद न प्रगट कहो रे ॥
दूलनदास के साईं जगजीवन, भवजल पार करो रे ॥

साईं तेरे कारन नैना भये वैरागी ।
तेरा सत दरसन चहौं, कछु और न माँगी ॥
निसु बासर तेरे नाम की, अंतर धुनि जागी ॥
फेरत हौं माला मनौं, अंसुवन झरि लागी ॥
पल की तजी इत उक्ति तें, मन माया त्यागी ॥
दृष्टि सदा सत सनमुखी, दरसन अनुरागी ॥
मदमाते राते मनौं, दाधे बिरह आगी ॥
मिलि प्रभु दूलनदास के, करु परम सुभागी ॥

साईं हो गरीब निवाज ।
देखि तुम्हें घिन लागत नाहीं, अपने सेवक क साज ॥
मोहिँ अस निलज न यहि जग कोऊ, तुम ऐसे प्रभु लाज ॥
और कछू हम चाहत नाहीं, तुम्हरे नाम चरन तें काज ॥
दूलनदास गरीब निवाजहु, साईं जगजीवन महाराज ॥

सुनहु दयाल मोहिं अपनावहु ॥
जन मन लगन सुधारन साईं मोरि बनै जो तुमहिं बनावहु ॥
इत उत चित्त न जाइ हमारा, सूरत चरन कमल लपटावहु ॥
तब हूँ अब मैं दास तुम्हारा, अब जिनि बिसरौ जिनि विसरावहु ॥
दूलनदास के साईं ज़गजीवन, हमहूँ काँ भक्तन माँ लावहु ॥

साईं भजन ना करि जाइ ।
पाँच तसकर संग लागे, मोहिँ हरकत धाई ।।
चहत मन सतसंग करनो, अधर बैठि न पाई ।।
चढ़त उतरत रहत छिन छिन, नाहिं तहँ ठहराइ ।।
कठिन फाँसी अहै जग की, लियो सबहिं बझाइ ।
पास मन मनि नैन निकटहिं, सत्य गयो भुलाइ ।।
जगजीवन सतगुरु करहु दाया, चरन मत लपटाइ ।।
दास दूलन बास सत माँ, सुरत नहिं अलगाइ ।।

साईं सुनहु बिनती मोरि ।
बुधि बल सकल उपाय हीन में, पाँयन परौं दोऊ कर जोरि ।।
इत उत कतहूँ जाइ न मनुवाँ, लागि रहै चरनन माँ डोरि ।।
राखहु दासहिं पास आपने, कस को सकिहैं तोरि ।।
आपन जानि के मेटहु मेरे, औगुन सबक्रम भ्रम खोरि ।।
केवल एक हितू तुम मेरे, दुनियाँ भरी लाख करोरि ।।
दुलन दास के साईं जगजीवन, माँगौं सत दरस निहोरि ।।

प्रभु तुम किहेउ कृपा बरियाईं ।
तुम कृपाल मैं कृपा अलायक, समुझि निवजतेहु साईं ।।
कूकुर धोये होइ न बाछा, तजै न नीच निचाई ।
बगुल होइ न मानस बासी, बसहिं जे बिषै तलाई ।।
प्रभु सुभाउ अनुहार चाहिए, पाय चरन सेवकाई ।
गिरगिट पौरुष करै कहा लगि दौरि कंडौरे जाई ।।
अब नहिँ बनत बनाये मेरे, कहत अहौं गोहराई ।
दूलनदास के साईं जगजीवन, समरथ लेहु बनाई ।।

धनि मोरि आज सुहागिनि घड़िया ।
आज मोरे अँगना संत चलि आए, कौन करो मिहन्निया ।
निहुरि निहुरि मैं अँगना बुहारौं, मातौ मैं प्रेम लहरिया ॥
भाव कै भात प्रेम कै फुलका, ज्ञान की दाल उतरिया ॥
दूलनदास के साईं जगजीवन, गुरु के चरन वलहरिया ॥

अब तो अफसोस मिटा दिल का, दिलदार दीद में आया है ।
संतों की सुहबत में रहकर, हक हादी को सिर नाया है ॥
उपदेस उग्र गहि सत्त नाम, सोइ अष्ट जाम धुनि लाया है ।
मुरशिद की मेहर हुई योकर, मज़बूत जोश उपजाया है ॥
हर वक्त तसौवर में सूरत, मूरत अंदर झलकाया है ।
बू अली कलंदर औ फ़रीद, अबरेज वही मत गाया है ॥
कर सिदक सबूरी लामकान, अल्लाह अलख दरसाया है ।
लखि जन दूलन जगजीवन पूर, महबूब मेरे मन भाया है ॥
ख़ाविन्द ख़ास ग़ैबी हज़ूर, वह दिल अंदर में लाया है ।

हुआ है मस्त मंसूरा चढ़ा सूली न छोड़ा हक़ ।
पुकारा इश्कबाजों को अहै मरना यही बरहक़ ॥
जो बोले आशिकाँ याराँ, हमारे दिल मैं है जी शक ॥
अहै यह काम सूरों का, लगाये पीर से अब तक ॥
शम्सतबरेज़ की सीफ़त, जहाँ में जाहिरा अब तक ॥
निज़ामुद्दीन सुल्ताना, सभी मेटे दुनी के धक ॥
निरख रहे नूर अल्लाह का रहें जीते रहे जब तक ॥
हुआ हाफिज़ दिवाना भी भये ऐसे नहीं हर यक ॥
सुना है इश्क मजनूँ का, लगी लैला की रहती ज़क ॥
जलाकर खाक तन कीन्हा, हुए वह भी उसी माफिक ॥
दुलनजन को दिया मुरशिद पियाला नाम का थकथक ॥
वही है शाह जगजीवन, चमकता देखिये लक़लक़ ॥

हमरे तो केवल नाम अधार ।
पूरन नाम काम दुइ अच्छर, अंतर लागि रहै खटकार ।।
दासन पास बसै निसु बासर, सोवत जागत कबहुँ न न्यार ।।
अरध नाम टेरत प्रभु धाये, आय तुरत गज गाढ़ निवार ।।
जन मन रंजन सब दुख भंजन, सदा सहाय परम हित प्यार ।।
नाम पुकारत चीर बढ़ायो, द्रुपदी लज्जा के रखवार ।।
गौरि गनेस और सेष रटत जेहिँ, नारद सुक सनकादि पुकार ।।
चारहु मुख जेहिँ रटत बिधाता, मंत्र राज सिव मनसिंगार ।।

भक्तन रामचरन धुनि लाई ।।
चारिहु जुग गोहारि प्रभु लागे, जब दासन गोहराई ।।
हिरनाकुस रावन अभिमानी, छिन मां खाक मिलाई ।।
अविचल भक्ति नाम की महिमा, कोऊ न सकत मिटाई ।।
कोऊ उसवास न एकौ मानहु, दिन दिन की दिनताई ।।
दूलनदास के साईं जगजीवन, है सतनाम दुहाई ।।

गरीबदास

सुनिये संत सुजान, गरब नहिँ करना रे ॥
चार दिनों की चिहर बनी है, आखिर तो कूँ मरना रे ॥
तू जीने मेरि ऐसी निभेगी, हरदम लेखा भरना रे ॥
खायले पीले बिलसले हंसा, जोरि जोरि नहिँ धरना रे ॥
दास गरीब सकल में साहिब, नहीं किसी सूँ अड़ना रे ॥

मन मगन भया जब क्या गावै ॥
ये गुन इंद्री दमन करेगा, वस्तु अमोली सो पाव ॥
तिरलोगी की इच्छा छाड़ै, जग में बिचरै निर्दावै ॥
उलटी सुलटी निरति निरंतर, बाहर से भीतर लावै ॥
अधर सिंघासन अविचल आसन, जहँवाँ सूरति ठहरावै ॥
त्रिकुटी महल में सेज बिछी है, द्वादस अंतर छिप जावै ॥
अजर अमर निज मूरत सूरत, ओअं सोहं दम ध्यावै ॥
सकल मनोरथ पूरन साहिब, बोहुरि नहीं भौजल आवै ॥
गरीबदास सतपुरुष बिदेही, साँचा सतगुरु दरसावै ॥

मग पूछत हैं परतीत नहीं, नादी बादी झगड़ा ठानै ।
मुगता जगता नहिँ राह लहैं, नहिँ साध असाध कूँ जानती हैं ॥
देवल जाहीं मसजिद माहिँ, साहिब का सिरजा भानत हैं ।
पंडित काजी डोबी बाजी, नहिँ नीर खीर कूँ छानत हैं ॥
चेतन का गल काटत हैं, घर पत्थर पाहन मानत है
कहै दास गरीब निरास चले, धिरकार जनक नर लानत है ॥

राम सुमिर राम सुमिर, राम सुमिर लै रे।
जम और जहान जीत, तीन लोक जै रे॥
इन्द्री अदालत चोर, पकड़ो मत अहिरे।
अनहद टंकोर घोर, सुनै क्यूं न बहिरे॥
सूरत निरतनाद बिंद, मन पवना गहि रे।
उनमुनी अलेल रूप, निराकार लहि रे॥
धनुब ध्यान मार बान, दुरजन से फहिरे।
देखत के सीत कोट, भरम बुर्ज ढहि रे॥
सोच ये प्रीत कीन, झूठा मन महि रे।
कहत है गरीबदास, कुटिल बचन सहि रे।

जाति पाँति भेद खंडन॥
कैसे हिन्दू तुरक कहाया, सबही एकै द्वारे आया॥
कैसे बाम्हन कैसे सूद्रं, एकै हाड़ चाम तन गूदं॥
एकै बिंद एक भग द्वारा, एकै सब घट बोलनहारा॥
कौम छतीस एकही जाती, ब्रह्म बीज सब उतपाती॥
एकै कुल एकै परिवारा, ब्रह्म बीज का सकल पसारा॥
ऊँच नीच इस बिधि है लोई, कर्म कुकर्म कहावै दोई॥
गरीबदास जिन नाम पिछाना, ऊँच नीच पद ये परमाना॥

पारस हमरा नाम है लोहा हमरी जात।
जड़ सेती जड़ पलटिया तुम कूं केतिक बात॥
बिना भगति क्या होत है ध्रू ध्रूँ पूछे जाहि।
सवा सेर अन्न पावते अटल राज दिया ताहि॥
बिना भगति क्या होत है कासी करवत लेह।
मिटै नहीं मन बासना बहु विधि भरम सँदेह॥

भगति बिना क्या होत है भरम रहा संसार।
रत्ती कंचन पाय नहिं रावन चलती वार।।
संग सुदामा संत थे दारिद का दरियाव।
कंचन महल बकस दिये तंदुल भेंट चढ़ाव।।

साहब मेरी वीनती सुनरे गरीब निवाज।
जल की बूँद महल रचा भला बनाया साज।।
साहब मोरी वीनती सुनिये अरस अवाज।।
मादर पिदर करीम तू पुत्र पिता को लाज।
साहब मेरी बीनती कर जोरैं करतार।।
तन मन धन कुरबान है दीजै मोहिं दीदार।
पांच तत्त के महल में नौ तत का इक और।
नौ तत से इक अगम है पारब्रह्म की पौर।।
सुरत निरत मन पवन कूँ करो एकत्तर यार।
द्वादस उलट समोय ले दिल अंदर दीदार।।

चार पदारथ महल में सुरन निरत मन पौन।
सिव द्वारा खुलि है जबै दरसै चौदह भौन।।
सील संतोष बिवेक बुध दया धर्म इक तार।
अकल यकीन इमान रख गही वस्तु निज सार।।
साहब तेरी साहबी कैसे जानी जाय।
त्रिसरेनू से झीन है नैनों रहा समाय।।

लै लागी जब जानिये जग सूँ रहै उदास।
नाम रटै निर्भय कला हर दर हीरा स्वांस।।
लै लागी तब जानिये जग सूँ रहै उदास।
नाम रटै निरदुंद होय अनहद पुर में वास।।
लै लागी तब जानिए हरदम नाम उचार।
साईं के दरबार एकै मन एके दिसा—
लै लागी तब जानिये हरदम नाम उचार।
धीरे धीरे होयगा वह अल्लह दीदार।।

अजब महरम मिला ज्ञान अग है खुला ।
परख परतीत मुँ दुंद भागा ।।
सबद की संघ में फंद मनुवा गया ।।
विरह घनघोर में हंस जागा ।।
अष्टदल कमल मध जाप जपा चलै ।।
मूल कूँ वँध बैराट छाया ।।
रिकुटी तीर वहु नीर नदियाँ बहैं ।
सिंध सरवर भरे हंस न्हाया ।।
खेचरी भूचरी चाचरी उनमुनी ।।
अकल अगोचरी नाद हेरा ।।
सुन्न सतलोक कूँ गमन संसा किया ।।
अगम पुर धाम कछू महबूब मेरा ।।
अच्छर की डोर घनघोर में मिल गई ।।
भेद भेदा में करतार महली ।।
दास गरीब यह विषम बैराग है ।।
समझ देखी नहीं बात सहली ।।

बिरह की पीर जस गात गदा नहीं ।
बोझ पिंजर गया, अस्थि सूखा ।।
जनभुनी रेख धुन ध्यान निःचल भया ।
पांच जहूद तन ठीक फूँका ।।
लगेगी दाह जब धाहै देता फिरै ।
बिरह के अंग में रावता है ।।
पलक आंझू झरै ध्यान बिरहन धरै ।
प्रेम रस रीत तन धोवता है ।।
हाड तन चाम गूदा असत गलत है ।
उगौ गात तन रुई रंगा ।।

पिंड तन पीन उदीत वैराग है।
देत है मद्ध जूँ कूक बंगा ॥
हंस परमहंस से जा मिला।
बिरह बियोग यह जोग जोगी ॥
दास गरीब जहँ पास प्यासे फिरैं।
पीवते सही रस भोग भोगी ॥

बंदे जान साहब सरवे।
पिदर मादर आप कादर नहीं वुल परिवार वे ॥
जल बूँद से जिन साज साजा लहम दरिया नूर वे ॥
है सकल सरबंग साहब देख निकट न दूर वे ॥
जिन्द अजूनी बेन मूनो जागता गुरु पीर है ॥
उलट पटन मेरु चढ़ना लहम दरिया तीर वे ॥
अजब साहब है सुभान खोज दम का कीन वे ॥
तिर्कुटी के घाट चढ़कर ध्यान धर दुरबीन वे ॥
अजब दरिया है हिरंबर परमहंस पिछान वे ॥
आब खाक न बाद आतिस ना जमीं असमान वे ॥

अलख आप सलाह साहब कुर्स कुंज जहूर वे ॥
अर्स ऊपर महल मालिक दर झिलमिला दूर वे ॥
मौला करीम अदाय खूबी धुन सोहं सी जाप वे ॥
बांग रोउ निमाउ कलमा है सबद गरगाप वे ॥
निर्भय निहँगम नाद बाजै निरख करटुक देख वे ॥
अरसी अजूनी जिंद जोगी अलख आदि अलेख वे ॥
मढ़ी महल न तासु ये आसन अभी ऐन वे ॥
पाजी गुलाम गरीब तेरा देखता सुख चैन वे ॥

बंदे देख ले निज मूल वे ।
कला कोटि असंख धारा अधर निर्गुन फूल वे ।
है अबंध असंग अवगत अधर आदि अनाद वे ॥
कमल मोती जगमगै जहं सुरत निरत समाध वे ॥
भवन भारी वन सोभा भजो राम रहीम वे ॥
साहब धनीं कूं याद कर जप अलह अलख करीम वे ॥
मादर पिदर है संग तेरे बिछुरता नहिं पलक वे ॥
कायम कला कुरबान जां खालिक बसे है खलक वे ॥
खालिक धनी है खलक मैं तूँ झलक पलक समीप वे ॥
अरस आसन है बिहंगम अधर चसमें जोय वे ॥
बैराग में इक घाट है उस घाट में इक द्वार है ॥
उस द्वार में इक देहरा जहँ खूब है इक यार वे ॥
सुभ है दिलदार साहब देखना नहिं भूल वे ॥
गरीब दास निवास नग पर भई सेजां सूल वे ॥

बंदे अधर बेड़ा चलत वे ।
सांच मान सुगंध साहब नहीं करिया लगत वे ॥
अधर पुहमी अधर छि: गिरवर अधर सरवर ताल वे ।
अधर नदियां बहत वे जहँ अधर हीरे लाल वे ॥

अधर नौका अधर खेवट अधर पानी पवन वे।
अधर चंदा अधर सूरज अधर चौदह भुवन वे ॥
अधर बाग अधर बेलें अधर कूप तलाव वे।
अधर माली कुहकता है अधर फूल खिलाव वे ॥
अधर बंगला अधर डेवढ़ी अधर साहब आप वे।
अधर पुर गढ़ हूंट नगरी नाभि नासा माथ वे ॥
हूँठ हाथ हजूर हासिल अधर पर इक अधर वे।
गरीबदास अधर ध्यानी ओढ़ि एके चहर वे ॥

कबहुँ न होवै मैला नाम धन कबहुँ न होवै मैला ॥
चेतन होकर जड़ कूँ पूजै मूरख मूढर बैला।
जिस दगड़े पंडित उठ चालै पीछे पड़ गया गैला ॥
औघट घाटी पंथ बिकट है जहाँ हमारी सैला ॥
बिनय बंदगी महेसा कीजै बोक बनैं के खैला ॥
कूकर सूकर खर कोजैगा छांड़ सकल वद फैला।
घरही कोस पचास परत हैं ज्यूं तेली के बैला ॥
पीसत भांग तमाँखू पीवै मूरख सुख सूँ मैला।
सहस इकी सौ छः से दम है निस बासर तूँ लैला ॥
गरीबदास सुन पार उतर गये अनहद नाद धुरैला।

घट ही में चंद चकोरा साधो घट ही चंद चकोरा ॥
दामिनि दमकै घनहर गरजै बोलै दादुर मोरा।
सतगुरु गस्ती गस्त फिराबै फिरता ज्ञान ढिंढोरा ॥
अदली राज अदल बदसाही पाँच पचीसो चोरा।
चीन्हो सबद सिंह घर कीजै होना गारत गोरा ॥
त्रिकुटी महल में आसन मारो जहँ न चलै जम जोरा।
दास गरीब भक्त को कीजै हुआ जात है मोरा ॥

नाम निरंजन नीका साधो नाम निरंजन नीका।
तीरथ बरत थोथर लागें जप तप संजय फीका ॥

भजन बंदगी पार उतारै समरथ जीवन जीका।
करमकांड व्योहार करत है नाम अभय पद टीका ।।
कहा भयौ छत्र की छांह चलैया राजपाट दिहली का।
नाम सहित वे बतन भक्ता है दर दर मांगै भीखा ।।
आदि अनादि भक्ति है नौधा सुनो हमारी सीखा ।।
गरीबदास सतगुरु की सरनै गगन मंडल में दीखा ।।

लेखा देना रे धनी का लेखा देना रे ।।टेक।।
रागी राग उचारहीं गावत मुख बैना रे।
हस्ती घोड़े पालकी छांड़ी सब सैना रे।।
रोकड़ ढकी धरी रही सब जेवर गहना रे।
फूंक दिया मैदान में कुछ लेन न देना रे।।
मुगदर मारै सीस में जम किंकर दहना रे।
उतर चला तागीर हो ज्यूं मरदक सहना रे।।
फूला सो कुम्हलात है चुनिया सो ठहना रे।।
चित्रगुप्त लेखा लिया जब कागद पहना रे।।
चलिये अब दीवान में सतगुरु से कहना रे।
मुसकिल से आसान हो ज्यूं बहुर मरै ना रे।।
बोया अपना सब लुनै पकरैं हम अहना रे।
चरन कमल से ध्यान से छूटै सब फैना रे।।
परानन्दना संग है जाके कमधैना रे।
गरीबदास फिर आवही जो अजर जरै ना रे।।

भजन कर राम दुहाई रे ।।टेक।।
जनम अमोला तुझ दिया नर देही पाई रे।
देही कूं या ललचहीं सुर नर मुनि भाई रे।।
सनकादिक नारद रटैं चहूँ बेदा गाई रे।
भक्ति करै भवजल तरै सतगुरु सिरनाई रे।।

मिरगा कठिन कठोर है कहो कहाँ ठहकाई रे।
कस्तूरी है नाभ में बाहर भरमाई रे॥
राजा बूड़े मान में पंडित चतुराई में।
ज्ञान गली में बंक है तन धूर मिलाई रे॥
उस साहब कूं याद कर जिन सौंज बनाई रे।
देखत ही हो जाता है परबत से राई रे॥
कंचन काया छार होय तन ठरंक जराई रे।
मूरख भोदूं बाबरे क्या मुकत कराई रे।
चमरा जुरहा तर गये और छीपा नाई रे।
गनिका चढ़ी बिमान में सुर्गापुर जाई रे॥
स्योरी मिलना तर गई और सदन कसाई रे।
नीच तरे जो सूँ कहूँ नर मूढ़ अन्याई रे॥
सबद हमारा सांच है और ऊंट की बाई रे।
धुएँ कैसे धौंलहार तिहुँ लोक चलाई रे॥
कलबिष कसमल सब कटैं तन कंचन काई रे।
गरीबदास निज नाम है नित परबी न्हाई रे॥

बंगला खूब बना है जोर जामें सूरजचंद कडोर ॥टेक॥
या बंगला के द्वादस दर है मध्य पवन परवाना।
नाम भजे तो जुग जुग तेरा नातर होत बिराना॥
पाँच तत्त और तीन गुनन का बंगला अधिक बनाया।
या बंगले में साहब बैठा सतगुरु भेद लखाया॥
रोम-रोम तरागन दमकै कली कली दर चंदा।
सूरज मुखी सबत्तर साजै बांदा परमानंदा॥
बंगले में बैकुंठ बनाया सप्त पुरी सैलाना।
भुवन चतुरदस लोक बिराजैं कारीगर कुरवाना॥
या बंगले में जाप होत है र र कार धुन सेसा।
सुर नर सुनि जन माला फेरैं ब्रह्मा बिस्नु महेसा॥

गन गंधर्व गलतान ध्यान में तैतिस कोट बिराजैं।
सुर निरन्ती बीना सुनिये अनहद नाहु बाजैं॥
इला पिंगला पेंग परी है सुखमन झूल झुलंती।
सुरत सनेही सबद सुनत है राग होत सनरतंती॥
पांच पचीसो मगन भये हैं देखो परमानंदा॥
मन चंचल निहचल भया हंसा मिलै परम सुख सिंधा॥
नभ की डोर गगन सूं बांधै तो इहाँ रहने पावै।
दसो दिसा सूं पवन झकोरै काहे दोस लगावै॥
आठो बदत अलहैया बाजै होता सबद टंकोरा।
गरीबदास यूं ध्यान लगावै जैसे चंद चकोरा॥

मन तू चल उे सुख के सागर।
जहाँ सब्द सिंध रतनागर ॥टेक॥
कोट जनम जुग भरमत हो गये।
कछू न हाथ लगा रे॥
कूकर सूकर खर भया बौरे।
कौवा हंस बिगारै॥
कोट जनम जुग राजा कीन्हा।
मिटी न मन की आसा।
भिक्षुक होकर दर दर हांडा॥
मिला न निरगुन आसा॥
इंद्र कुबेर ईस की पदवी।
ब्रह्मा बरनु धर्मराया॥
विश्वनाथ के पुर कूँ पहुँचा।
बहुर अपूठा आया॥
संह जनम जुग मरते हो गये।
जीवत कू न मरै रे॥

द्वादस मद्ध महल मठ बौरे।
बहुर न देह धरै रे॥
दोजख भिस्त सवै तें देखै।
राज पाठ के रसिया॥
तिरलोकी के तिरपत नाहीं।
यह मन भोगी खसिया॥
सतगुरु मिलै तो इच्छा मेटै।
पद मिल पदहिं समाना॥
चल हंसा उस देश पठाऊँ।
जहँ आद अमर स्थाना॥
चारि मुक्ति जहँ चंपी करिहैं।
माया हो रहि दासी॥
दास गरीब अभय पद परसे।
मिले राम अबिनासी॥

संतो मन की माला फेरो, यह मन काहर जात हेरो ॥टेक॥
तीन लोक औ गुवन चतुरदस एक पलक फिर आवै॥
बिनहीं पनखों उड़ै पखेरू याका खोज न पावै॥
तत की तसबी सुरत सुमिरनी दृढ़ के धागे पोई।
हर दम नाम निरंजन साहब यह सुमिरन कर लोई॥
किलयं ओअं हिरियं सिरियं सोह सुरत लगावै।
पंच नाम गायत्री गैबी आतम तत बगावै॥
ररकार उच्चार अनाहद रोम रोम रस ताल।
कर की माला कौन काम जब आतम राम अबदाल॥
सुरग पताल सृष्टि से डोलै सबै लोक सैलानी।
यह मन भैरो भूत बिताल यह मन अलख बिनानी॥
यह मन ब्रह्मा बिस्नु महेस इंदर बरुन कुबेर।
मन ही धर्मराय है भाई सकल दूत जम जेर॥

अवधू तेल न मन का लाहा चीन्हो ज्ञान अगाहा ।।टेक।।
कासी गहन बहन भये प्रानी प्रान नहात है माहा।
विना राम जोनी नहिं छूटै भरमै भूल भुलाना ।।
सहस मुखी गंगा नहिं न्हाते खोदें ऊजड़ बाहा।
नारद बयास पूछ सुकदे कूं चारों बेद उगाहा ।।
पंथ पुरातम खोज लिया है चाले अवगत राहा।
सुकदे ज्ञान सुना कर संकर का मिटी न मन की दाहा ।।
दो तपिया गुन तप कू लागै बंदे हू हू हा हा।
लगा सराप परे भौसागर कीन्हे गज अरु गाहा ।।
सिव संकर के तिलक किया है नारद सीधा साहा।
ब्रह्मादिक ने चोरी रचिया किया गौर का व्याहा ।।
इक सौ आठ गये तन परलै बहुर किया निरबाहा।
सिव के संग गौरजा उधरी मिट गया काल उसाहा ।।
ज्यूं सरपा की पूंट पकर करि अंदर उलटा जाहा।
नीर कबीर सिंध सुखसागर पद मिल गया जुलाहा ।।
हमरा ज्ञान ध्यान नहिँ बूझा समझ न परो अगाहा।
दास गरीब पार कस उतरैं मैंटा नही मलाहा ।।

रब राजिक तू महरमी करतार बिनानी।
अवगत अलख अलाह तू कादिर परवानी ।।
खालिक मालिक मेहरवां सरबंगी स्वामी।
निःचल अचल अगाध तू कुखरत से न्यारा ।।
गंध पुहु ज्यूं रम रहा फूला गुलजारा।
राम रहीम करीम तू कुदरत से न्यारा ।।
पूरन ब्रह्म परम गुरु अकाल अबिनासी।
सब्द अतीत बिहंगमा किस काल उदासी ।।

अनुरागी निहटंत कूँ तन मन सब अरपूं।
सीस करूँ तिस धारने चित चंदन चरचूं॥
उस साहब महबूब कूं कर हर दम मुजरा।
चित से नेक न बीसरूँ दिल अंदरहुजरा॥

मतवालों के महल की सूफी क्या पावै।
अरस खुरदनी खीर है सतगुरु बतलावै॥
सुन्न दरीबेक हाट है जहं अमृता चुवता।
ज्ञानी घाट न पावहीं खाली सब कविता॥
टां बिकै नहिं मोल कूं जो तुलै न तौला।
कूंची सब्द लगाय कर सतगुर ने पट खोला॥
फूल झरै भाठी सरै जहं फिरैं पियाले।
नूर महल बेगमपुरा घूंमे मतवाले।,
त्रिकुटी सिंध पिछान ले तिरबेनी धारा।
बेड़े बाट बिहंगमी उतरै भौपारा॥
अठसठ तीरथ ताल हैं उस तरवर माहीं।
अमर कंद फल नूर के कोइ साधू खाहीं॥

चिंता मन कूँ चेत रे मुत्ताहल पाया।
सतगुर मिलिया जौहरी जिन्ह भेद बताया॥टेक॥
हीरामनि पारस परस लख लाल नरेसा।
मोती जवहार जोगिया वह दुर्लभ देसा॥
काम भे कल बनुच्छ हैं दरबार हमारे।
अठ सिधि नौ निधि अगने नित कारज सारे॥
राग छतीसौ कधि सबै जहँ रास रछीती।
ताल तंबूरे तूर हैं अवगत निरबानी॥

सुन में बाजै डुगडुगी बरवें पद गावैं।
चल हंसा उस देस कूँ जो बहुर न आवै ॥
नूरमहल गुलजार है दिज सब्द समाये।
हंसा बहुरि न आवहीं सत लोक सिधाये ॥

•

मैं अवली निज नाम का मद खूब चुवाया।
पिया पियाला प्रेम का सिर सांटे पाया ॥टेक॥
मन गंधर्व जोधा वड़े कैसे गहरोया।
सील खेत जन रंग में सतपुर सर लाया ॥
पांच सखी नित संग हैं कैसे हैं त्यागी।
अमर लोक अनहद नुरते सोई अरागी ॥
परपंची पाकर लिया बिरहे का कंपा।
जहँ संख पद्म उजियार है झलकत है चंपा ॥
कुंभ कलाली भर दिया महंगा मद नीका।
और अमल नापाक है सब लागत फीका ॥
एक रत्ती पावे नहीं बिन सीस चढ़ाये।
वह साहब राजी नहीं नर मुंड मुड़ाये ॥
सजन सुराही हाथ है अमृत का प्याला।
हम बिरहिनी बिरहैं रंगी कोई पूछै हाला ॥
चोखा फूल चुवाइयो बिरहिन के ताईं।
मतवाला महबूब है मेरा अलख गुसाईं ॥
प्रेम पियाला पीय कर मैं भई दिवानी।
कहा कहूँ उस देस की कुछ अकथ कहानी ॥
बरबे राग सुनाय कर गल डारी फांसी।
गांठ घुली खुलै नहीं साजन अबिनासी ॥
गुरु की बात किस कूँ कहूँ कोई महरम जानै।
अगली पिछली मत गुई बेधी इक तानै ॥

सुन्न सरोवर हंस मन मोती चुग आया।
अगर दीप सतलोक में ले अनर भराया ।।टेक।।
हंस हिरबर हेत है हैरान निसानी।
सुख सागर मुक्ता भये मिल बारह बानी ।।
पिंड अंड ब्रह्मंड से वह न्यारा नादू।
सुन्न समझिया बेग रे गये बाद बिवादू ।।
सतगुर सार जु गाइया घर कूंची ताला।
रंग महल में रोसनी घट भया उजाला ।।
दीपक जोड़ा नूर का ले अस्थिर बाती।
बहुर सौ भोजल आवहीं निरगुन के नाती ।।

ज्ञान तुरंगम पाड़िया ताजी दरियाई।
पासर घाली प्रेमी की चित चाबुक लाई ।।टेक।।
प्रेम धाम से ऊतरे हुक्मी सैलानी।
सबद सिंध मेला करैं हंसों के दानी ।।
असंख जुग परलै गये जब के गुन गाऊँ।
ज्ञान गुरज है दस्त में ले हंस चिताऊँ ।।
सील हमारा सेल है औ छिमा कटारी।
तत्त तीर तक मार हूँ कहँ जात अनारी ।।
बुधि हमारी बंदूक है दिन अंदर दारू।
प्रेम सपयाला सारका चित चमकत झारू ।।

दरदमंद दरवेस है बेदरद कसाई।
सत समागम कीजिये तज लोक बड़ाई ।।टेक।।
डिंभी डिंभ न छोड़हीं मरघट के पूता।
घर घर द्वारे फिरत हैं कलजुग के कूता ।।

डिंभ करैं डुंगर चढ़े तप होम अँगीठी।
पँच अगिन पाखंड है यह मुक्ति बसीठी।।
पाती तोरे क्या हुआ बहु पान झरोरे।
तुलसी बकरा खा गया ठाकुर क्या बौरे।।
पीतल ही का थाल है पीतल का लोटा।
जड़ मूरत कूँ पूजते आवैगा टोटा।।

नजर निहाल दयाल हैं मेरे अंतरजामी।
सोलह कला सपूरना लख बारह बानी।।
उलट मेरुडंड चढ़ गये देखो सो देखा।
संख कोटि रबि झिलमिलें गिनती नहिँ लेखा।।
बरन बरन के तेज हैं पंचरंग परेवा।।
मूरत कोट असंख है जा मध इक देवा।।
जाके ब्रह्मा झाड़ू देत हैं संकर करैं पंखा।
सेस तरन चंपी लगैं अगमी गढ़ बंका।।
धरत ऐनक दुरबीन कूं धुन ध्यान लगावै।
उलट कमल अरसा चढ़ै तब नजरों आवै।।

सत्त कहन कूँ राम हैं दूजा नहिँ देवा।
ब्रह्मा बिस्न महेस से जा की करते सेवा।।
जप तप तीरथ थोथरे जा की क्या आसा।
कोट जग्ग पन दान से जम कटै फांसा।।
इहाँ देन उहाँ लेन हैं यह मिटै न झगरा।
बिना पंथ की बाट है पावै को दगरा।
बिन ही इच्छा देन है सो दान कहावै।
फल वंछै नहिँ तासु का अमरोपुर जावै।।
सकल दीप नौ खंड के छत्री जिन जीते।
सो तो पद में ना मिले विद्या गुन चीते।।

राम कहे मेरे साध कूँ दुख मत दीजो कोय।
साध दुखावै मैं दुखी मेरा आपा भी दुख होय ॥टेक॥
हिरनाकुस उदर बिदारिया मैं ही मारा कंस।
जो मेरे साध कूँ आय दुखावै जाका खोऊँ बंस ॥
पहुँचूँगा छिन एक में जन अपने के हेत।
तैंतीस कोट की बन्य छुटाई रावन मारा खेत ॥
बला बधाऊँ संत की परगट करिहै मोय।
गरीबदास जुलहा कहै मेरा साध न दहियो कोय ॥

करो निवेरा रे नरो। जम मांगे बाकी।
कर जोड़े घर राय खड़े सतगुरु है साखी ॥टेक॥
माटी का कलबूत है सतगुरु का साजा।
उस नगरी डेरा करौ जहँ सबद अवाजा ॥
नूर मिलैगा नूर में माटी में माटी।
कौइक साधू चढ़ गये यस औघट घाटी ॥
रोम रोम में राम है अजपा जप लीजै।
सुरत सुहंगम डोर गहि प्याला मधु पीजै ॥
जम की फरदी ना चढ़ै सोई जन सूरा।
परसा दास गरीब है जोगेसर पूरा ॥

मन मगन भया जब क्या गावै ॥टेक॥
ये गुन इंद्री दमन करैगा वस्तु अमोली सो पावै ॥
तिरलोकी की इच्छा छांडे जग में बिचरै निरदावै ॥
उलटी सुलटी निरति निरंतर बाहर से भीतर लावै।
अधर सिंहासन अविचल आसन जहँ उहाँ रुसती ठहरावै ॥
त्रिकुटी महल में सेज बिछी है द्वादस अंदर छिप जावै।
अमर अजर निज मूरत सूरत ओअं सोहं दम ध्यावै ॥
समल मनोहर पूरन साहिब बहुर नहीं भौजल आवै।
गरीबदास सतपुरुष विदेही सांचा सतगुरु दरसावै ॥

तारैंगे तहकीक सतगुरु तारेंगे ।।टेक।।
घट ही में गंगा घट ही में जमुना ।
घट ही में जगदीस ।।
तुम्हरे ग्याना तुम्हरे ध्याना ।
तुम्हरे तारन की परतीत ।।
मन कर धीरा बांध ले बौरे ।
छांड़ खेय पिछलों की रीति ।।
दास गरीब सतगुरु का चेलच ।
टारैं जम की रसीत ।।
जल थल साथी एक है रे ।
डंगर ठहर दयाल ।।
दसों दिसा के दरसन ।
ना काहें जोरा काल ।।

काष्ठ जिह्वास्वामी

बसो यह सिय रघुबर को ध्यान।
स्यामल गौर किसोर बयस दोउ, जे जानहुँ की जान ।।
लटकत लट लहरत स्रुति कुंडल गहनन की झमकान।
आपुस में हंसि हंसि कै दौऊ, खात खियावत पान ।।
जहँ बसंत नित मह मह महकत, लहरत लता बितान।
बिहरत दोउ तेहि सुमन बाग में, अलि कोकिल कर गान ।।
ओहि रहस्य सुख रस को कैसे, जानि सकै अज्ञान।
देवहु की जहँ मति पहुँचत नहिं, थकि गये वेद पुरान ।।

मैं तो मन ही मन पछिताय रह्यो।।
साज समाज सरस पायहु के, कर से रतन गंवाय रह्यौ।
यह नर तन यह काया उत्तम, बिन सतरंग नसाय रह्यौ।
पढ़्यौ गुन्यौ सिखयौ औरन को, आप विषय लपटाय रह्यौ ।।
चित्र विचित्र करम को धागा, जनम जनम अरूझाय रह्यौ ।।
काहे को कबहूँ यह सुरझहि दिन दिन अधिक फंसाय रह्यौ ।।
सदा मुक्ति को ज्ञान अगम लखि, गले हार पहिराय रह्यौ ।।
जिव को सूत सिवहिं से अरूझ, विनती देव सुनाय रह्यौ ।।

समुझ बूझ जिय में बंदे, क्या करना है क्या करता है।
गुन का मालिक आपै बनता, अरू दोष राम पर धरता है ।।
अपना धरम छोड़ि औरों के, ओछे धरम पकरता है।
अजब नसे की गफलत आई, साहिब को नहिं डरता है ।।

जिनके खातिर जान माल से, बहि बहि के तू मरता है।
वे क्या तेरे काम पड़ेंगे, उनका लहना भरता है॥
देव धरम चाहे सो करि ले, आवागमन न टरता है।
प्यारे केवल राम नाम से, तेरा मतलब सरता है॥

कोई सफा न देखा दिल का, साँचा बना झिलमिल का।
कोइ विल्ली कोइ बगुला देखा, पहिरे फकीरी खिलका।
बाहर सुख से ज्ञान छांटते, भीतर कोरा छिलका॥
भजन करन में गजब आलसी, जैसे थका मंजिल का।
औरन के पीसन में सुरमा, जैसे बट्टा सिल का॥
पढ़े लिखे कुछ ऐसेहि वैसे, बड़ा घमंड अकिल का।
जहरी बचन यों मुख से निकलें, सांप निकलता बिल का॥
भजन बिना सब जप तप झूठा, झूठा तवक्का फजल का।
क्या कहिये गुरु देव न पाया, महरम आँख के तिल का॥

चीखि चीखि चसकन से राम सुधा पीजिये।
रामचरित सागर मैं रोम रोम भींजिये।
राग द्वेस जग बढ़ाइ काहे को छीजिये।
परदुक्खन देखत हों आप सों पसोजिये॥
तोरि तोरि खैंचि खाँचि स्तुति को नहिँ गींजिये।
जा में रस बनो रहै वही अर्थ कीजिये॥
बहुत काल संतन के दोऊ चरन भींजिये॥
देव दृष्टि पाइ विमल जुग जुग लौं लीजिये॥

तत्त गहन को नाम है, भजि लीजै सोई।
लीलसिंध अगाध है, गति लखै न कोई॥
कंचन मेरू सुमेरू, हय गज दीजै दाना।
कोटि गऊ जो दान दे, नहिँ नाम समाना॥
जोग जग्य तें कहा सरै, तीरथ ब्रत दाना।
औसै प्यास न भागि है, भजिये भगवाना॥
पूजा करि साधू जानहिँ, हरि को प्रन धारी।
उततें गोबिंद पाइये, वे पर उपकारी॥
एकै मन एकै दासा, एकै ब्रत धरिये।
नामदेव नाम जहाज है, भव सागर तरिये॥

संत शिवनारायण

अंजन आँजिए निज सोइ ॥टेक॥
जेहि अंजन से तिमिर नासे, दृष्टि निरमल होइ ।
बैद सोइ जो पीर मिटावे, बहुरि पीर न होइ ॥१॥
धेनु सोइ जो आपु स्रवै, दूहिए बिनु नोइ ।
अंबु सोइ जो प्यास मेटे, बहुरि प्यास न होइ ॥२॥
सरस साबुन सुरति धोबिन, मैलि डारे धोइ ।
गुरू सोइ जो भ्रम टारै, द्वैत डारै धोइ ॥३॥
आवागमन के सोच मेटै, सब्द सरूपी होइ ।
शिवनारायण एक दरसे, एकतार जो होइ ॥४॥

तनि एक मनुआँ धरा तूं धीर ॥टेक॥
पाँच सखी आइल मेरो अँगना, पाँचों का हथवा में पाँच-पाँच तीर ॥
खइँचब गुन तब छाड़ब तीर, मुदाये मरन कर करो तदबीर ॥
शीव नरायन चीन्हल वीर, जनम जनम कर मेटल पीर ॥१॥

सिपाही मन दूर खेलन मत जैये ॥टेक॥
घट ही में गंगा घट ही में जमुना, तेहि विच पैठि नहैये ।
अछेहो विरिछ की शीतल जुड़ छहिया, तेहि तरे बैठि नहैये ॥
मात-पिता तेरे घटहो में, निति उठि दरसन पैये ।
शिव नारायण कहि समुझावे, गुरु के सबद हिये कैये ॥१॥

गुनवा एको नहीं, कैसे मनबो सैयां ॥टेक॥
गहरी नदिया नाव पुरानी, भइ गइले साँझ समइया ॥१॥
संग की सखी सब पार उतरि गईं, मैं बपुरिन एहि ठइया ॥२॥
शिव नारायन बिनती करत है, पार लगा दो मेरी नइया ॥३॥

प्रेम मंगल आलि सब मिलि गाई ॥टेक।
घर घर कोहवर रुचिर बनाई, जहाँ बैठे दुलहिनि दुलहा सोहाई ॥
सब सखिया मिलि मन मत लाई, दुलहा के रूप देखि कछु न सोहाई ॥
दुख हरन गुरु सब सुधि पाई, देस चंद्रवार में सुरति लगाई ॥१॥

वृन्दावन कान्हा मुरली वजाई ॥धूहा॥
जो जैसहि तैसहि उठि धाई, कुल की लाज गंवाई ॥१॥
जो न गई सोतो भई है बावरी, समुझि समुझि पछिताई ॥२॥
गौवन के मुख त्रेन बसत है, बछवा पियत न गाई ॥३॥
शीव नरायन श्रवन सबद सुनि, पवन रहत अलसाई ॥४॥

गगन तार गनत गइ रतिआ ॥टेक॥
गगन गहागह अनहद बाजत, बरसत अमृत धार।
जो जन पीवै सोइ जन पीवै, मान गुमान हकार किरतिआ ॥१॥
गगन बीच भरि मकर तार धरि, चढ़ि गए चतुर सुजान।
अजपा जाप जाहिर भयो जबते, बिसरि गये दारा सुत नतिआ ॥२॥
करनी काम किये जग जबते, करना तीनि सुभाव।
इंगला पिंगला सुपसना सुरते, कटि गए काल कराल कुमतिआ ॥३॥
पिय परदेस उदेस न पावों, पिय बेलसे केहि भाव।
का करों लोभी पिया जैसो रहि गयो, राखि पराई थतिआ ॥४॥
जो पिव पावों अंक भरि लावों, निज परतीत बढ़ाय।
तबहीं सुहागिनि प्रान पुरुष की, चढ़ि मैदान लड़ी सुर छतिआ ॥५॥
जो आया सो जात न देखा, कहाँ बार कहाँ पार।
जनमत मरत हाट एक देखा, वकता साँच झूठ दुइ बनिआ ॥६॥
बेद पुरान बरन बहु बरनत, भिन भिन करि भाग।
सो सुनि भूले मुरुख गंवारा, भटकत फिरहिँ जगत भलिभंतिआ ॥७॥

केहु नाहिँ हीत बंधु एहि जग में, सभै विराना लोग।
जात न वनै अकेला जाना, खोजत मिलै न केहु संगतिआ ॥८॥
शीव नरायन सुरति निरंतर, निरखि आपनो लीन्ह।
बैठे तखत अमल करि अपना, कहि दिन चलहु मुक्ति की गतिआ ॥९॥
गगन तार गनत गइ रतिया ॥

विषय वासना छूटत न मन से, नाहक नर बैराग करो।
जैसे मीन बाझु वंसी मँह, जिभ्या कारन प्रान हरो।
सो रसना बस कियो न जोगी, नाहक इंद्री साधि मरो ॥१॥
जैसे मृगा चरत जंगल में, ना काहू सों वैर करो।
बंसी के तान लगी श्रवननि में, व्याधा बान सों प्रान हरो ॥२॥
जैसे फतिंगा परै दीप में, नैना कारन प्रान हरो।
नासा कारन भंवर नास भयो, पाँचो रसबस पाँच मरो ॥३॥
तीरथ जाके पाहन पूजे, मौनी ह्वै के ध्यान धरो।
शीव नरायन ई सभ झूठा, जब लग मन नहिँ हाथ करो ॥४॥

सुनु सुनु रे मन कहल मोर, चेत करहु घर जहाँ तोर ॥टेक॥
मोह मया भ्रम जल गंभीर, बहै भयावन रहै न थीर ॥
लहरि झकोरै लै दूसरि आस, काल करम कर निकट बास ॥१॥
आपु देखि पंथ धरु सबेर, का भुलि भुलि जग करु अबेर ॥
साँझ समै जब घेरु अंधार, तब कैसे जइब उतरि पार ॥२॥
फिर पछतइव समै जात, चलहु आपन घर मानहु बात ॥
देश आपना आपन जोग, जहाँ बसहिँ सब संत लोग ॥३॥
अपन अपन घर करत बास, केहु न काहुक करत आस ॥
सीव नरायन सब्द बिचारी, अनंत सखिन संग रचु धमारी ॥४॥

संत मंत सबतें परे, जोग भोग सब जीति ॥
अदग अनंद अभै अधर, पुरन पदारथ प्रीति ॥१॥
चालिस भरि करि चालि धरि, तत्तु तौलु करु सेर ।
ह्वै रहु पूरन एक मन, छाड़ु करम सब फेर ॥२॥
एक-एक देख्यो सकल घट, जैसे चंद की छाँह ॥
वैसे जानो काल जग, एक एक सब माँह ॥३॥
जहँ लगि आये जगत महँ, नाम चीन्ह नहिँ कोय ॥
नाम चिन्हे तौ पार ह्वै, संत कहावत सोय ॥४॥
दुनिया को मद कर्म है, संतन को मद प्रेम ॥
प्रेम पाय तौ पार है, छुटैं कर्म अरु नेम ॥५॥
जब मन बहकै उड़ि चलै, तब आनै ब्रह्म ग्यान ॥
ग्यान खडग के देखते, डरपै मन के प्रान ॥६॥
निराधार आधार नहिँ, बिन अधार की राह ॥
शिव नारायन देश कहँ, आपुहिँ आपु निवाह ॥७॥

चलु वही देश, देखन चलिये, जहाँ नित होरी हो रही हो ॥धुहा॥
सननन सननन शब्द उड़त है, तननन तननन तान सही हो ॥१॥
शशि नही सुरज दिवस नही रजनी, आपुहि आपु सही हो ॥२॥
सबके ऊपर होई सन्त निहारत, अनन्त सखी सब नाच रही हो ॥३॥
गुरु दुःख हरण के पायन पड़ि पड़ि, शिवनारायन सन्त सही हो ॥४॥

हरि नाम सजीवन खानि खोजो मन गहि के ॥धूहा॥
मूल अमूल मूल सब हरता,
संशय सकल नशानी, जागे जेहिके ॥१॥
सत गुरू करि उतरो भवसागर,
आगर हो तुम प्रानी, तन मन महिके ॥२॥

सतगुरू चरण रेणु सिर लावो,
प्रेम प्रीति रस सानी, लाग्रो घसि के ॥३॥
सूरत में मूरत साहब की,
बोलत अजपा वानी, सोहँग कहिके ॥४॥
शिवनारायन हैं गुरू पूरा,
राखि लियो गहि बानी, जातेऊँ बहिके ॥५॥

वरणों संत समाज, जिनकी ज्ञान कचहरी ॥धुहा॥
सन्तोष तखत पर मन है राजा, विवेक भये दरवानी।
जगमग ज्योति छत्र सिर ऊपर, मुक्ती भरे जहाँ पानी ॥१॥
काम क्रोध को मारि निकालो, माया के मूड़ मुड़ावो।
आशा तृष्णा की गरदन मारो, जिन ऐसो ज्ञान चलाई ॥२॥
काया गढ़ भीतर भक्ती जगी है, श्वेत ध्वजा फहराई।
क्षमा गरीबी संत सिपाही, नाम खजाना भारी ॥३॥
काया के दफ्तर मन कर शीतल, ज्ञान के तखत बिछाई।
शिवनारायन आये जगत में, सबसे कहा समुझाई ॥४॥

खेती करो हरी नाम की ॥धूहा॥
यही पार गंगा वहि पार जमुना, बिचवे मड़रिया हरी नाम की ॥१॥
पाँच पच्चीस तीनों बैलवा, अदगी लगी गुरु ज्ञान की ॥२॥
शिवनारायन कही समुझावें, कौड़ी लगी न छेदाम की ॥३॥

राम नाम निर्बोधी बोलो, राधाकृष्ण बोली लो ॥धूहा॥
चहूँ दिसि कर्म पत्र के देना, मध्य दिया वारी लो ॥१॥
सालर बाबा भाई मारा, जन्म वृथा गई लो ॥२॥
भाई रे बोलो बन्धू रे बोलो, कर कोरे नाही लो ॥३॥
मुग्रले पोरे किसु नर कोथा, काहिना कारि लो ॥४॥
मुग्रले संगी वन्धू रे नाही, बारम्बार से गाही लो ॥५॥
मानुप देह दुर्लभ ग्रति, जन्म मिथ्या भाई लो ॥६॥
शिवनारायन गुरू ग्रा से, बिनती कोरि काहि लो ॥७॥

कहो कौन के कौन भरोसा, कौन उतर गये पारा ॥धूहा॥१॥
योग जाप तप सब केहू जाने, जानत विधि व्यवहारा ॥
सत गुरू रूप भूप सब जानत, जहाँ लगि सकल पसारा ॥२॥
केहू पूजा दूजा मन लावत, केहू धर्म उपकारा ॥
केहू ब्रह्मा विष्णु महेश्वर, केहू कर्त्ता करतारा ॥३॥
शिवनारायन पलक पलक लिए, हिया मँह करत विचारा ॥
ग्रापन पार ग्राप ही पावे, का करे नाथ बिचारा ॥४॥

दोऊ मूंद के नैना ग्रलख देखा नहीं, चाँद सूरज सूरज दिन रात है रे ॥
रोशन शमा विन तेल बाती, इस जरत को सफात है रे ॥१॥
गोता मार देखा ग्रादित्य मणि, कोई ग्रौर नहीं संग साथ हैरे ॥२॥
"शिवनारायन" बूझ देखा सब, मतलब मोती का जात है रे ॥३॥

धरम दास

गुरू मिले अगम के बासी ।।टेक।।
उनके चरन कमल चित दीजे, सतगुरु मिले अबिनासी ।
उनकी सीत प्रसादी लीजै, छूटि जाय चौरासी ।।
अमंत बुंद झरै घट भीतर, साध संत जन लासी ।
धरमदास बिनवै कर जोरी, सार सब्द मन बासी ।।

गुरू मोंहि खूब निहाल कियो ।।टेक।।
बूड़त बात रहे भव सागर, पकरि के बांह लियो ।
चौदह लोक बसें जम चौदइ, उनहुँ से छोरि लियो ।।
तिनुका तोरि दियो परवाना, माथे हाथ दियो ।
नाम सुना दियो कंठी माला, माथे तिलक दियो ।।
धरमदास बिनवै कर जोरी पूरा लोक दियो ।।

नैन दरस बिन मरत पियासा ।।टेक।।
तुमहीं छाँड़ि भजूँ नहिँ औरे, नाहिँ दूसरी आसा ।।
आठो पहर रहूँ कर जोरी, करि लेहु आपन दासा ।।
निसु बासर रहूँ लव लीना, बिन देखे नहिँ बिस्वासा ।।
धरमदास बिनवै कर जोरी, देहु निज लोक निवासा ।।

साहेब चितवो हमरी ओर ।।टेक।।
हम चितवैं तुम चितवो नाहीं, तुम्हरो हृदय कठोर ।।
औरन को तो और भरोसा, हमें भरोसो तोर ।।
सुखमनि सेज बिछाओं गगन में, नित उठि केरौं निहोर ।।
धरमदास बिनवै कर जोरी, साहेब कबीर बंदी छोर ।।

मैं हेरि रहूँ नैना सो नेह लगाई ॥टेक॥
राह चलत मोहिं मिलि गये सतगुरु, सो सुख वरनि न जाई ॥
देइ के दरस मोहिँ बौराये, लै गये चित्त चुराई ॥
छबि सत दरस कहाँ लगि बरनी, चाँद सुरज छिपि तब जाई ॥
धरमदास बिनवै कर जोरी, पुनि पुनि दरस दिखाई ॥

मोरा पिया वसै कौन देस हो ॥टेक॥
अपने पिया को ढूँढ़न हम निकसीं, कोइ न कहत सनेस हो ॥
पिया कारन हम भई हैं बावरी, धरो जोगिनिया के भेस हो ॥
ब्रह्मा विस्नु महेस न जानै, का जानै सारद सेस हो ॥
धनि जो अगम अगोचर पइलन, हम सब सहत कलेस हो ॥
उहाँ के हाल कबीर गुरु जानें, आवत जात हमेस हो ॥

सजन से प्रीति मोहिँ लागी, दरस को भयो अनुरागी ॥
नहीं बैराग मोहिँ आवै, साहेब के गुन नितै गावै ॥
अभरन भूपन तनै साजूँ, पिया को देखि हँस हुलसूँ ॥
भया है गैब का डंका, चलो जहँ देस है बंका ॥
बिना ऋतु फूल एक फूला, भँवर रँग देखि के भूला ॥
तकत छबि टरै ना टारी, होय तिस बरन बलिहारी ॥
कहै धरमदास कर जोरी। साहेब से अरज है मोरी ॥

पिया बिन मोहिँ नींद न आवे ॥टेक॥
खन गरजै खन बिजुली चमकै, ऊपर से मोहिँ झाँकि दिखावै ॥
सासु ननद घर दारुनि आहैं, नित मोहिँ बिरह सतावै ॥
जोगि ह्वै कै मैं बन-बन ढूँढूँ, कोऊ न सुधि बतलावै ॥
धरमदास बिनवै कर जोरी, कोइ नेरे कोइ दूर बतावै ॥

पिया बिन मोहि नीक न लागै गाँव ।।टेक।।
चलत चलत मोरे चरन दुखित भे । आँखिन परिगै धूर ।।
आगे चलूँ पंथ नहिँ सूझै । पाछे परै न पाँव ।
सासुरे जाउँ पिया नहिँ चीन्हें । नैहर जात लजाउँ ।।
इहाँ मोर गाँव उहाँ मोर पाही । बीचे अमरपुर धाम ।
धरमदास बिनवै कर जोरी । तहाँ गाँव न ठाँव ।।

साहेब दीनबंधु हितकारी ।।टेक।।
कोटिन ऐगुन बालक करई । मात-पिता चित एक न धारी ।।
तुम गुरु मात-पिता जीवन कै । मैं अति दीन दुखारी ।
प्रनतपाल करुना निधान प्रभु । हमरी ओर निहारी ।।
जुगन-जुगन से तुम चलि आये । जीवन के हितकारी ।
सदा भरोसे रहूँ तुम्हारे । तुम प्रतिपाल हमारी ।।
मोरे तुमहीं सत सुकृति ही । अंतर और न धारो ।
जानत ही जन के तन मन की । अब कस मोहिं बिसारी ।।
को कहि सकै तुम्हारी महिमा । केहि न दिह्यो पद भारी ।
धरमदास पर दाया कीन्ही । सेवक अहौं तुम्हारी ।।

साहब मेटो चूक हमारी ।।टेक।।
बार-बार मोहिँ डंड भयो है, चूक भई अति भारी ।।
अब हम आये निकट तुम्हारे, अब मो तनहिँ निहारो ।
करुनामय तुम नाम धराये, तुम समरथ अब मेरो ।।
ऐसी बिपति भई मोहिँ ऊपर, कोइ न हीत हमारो ।
तरसत जीव रहै निस बासर, जानि जनहिँ तुम दौरौ ।।
अब की चूक छिमा कर साहेब, अब सनमुख ह्वै हेरो ।
तुम सतगुरु सकल सुख दाता, सब्द पान तै तारौ ।।
धरमदास बिनवै कर जोरी, करौं बंदगी तेरो ।

साहेब बूड़त नाव अब मोरी ।।टेक।।
काम क्रोध की लहर उठतु है, मोह पवन झकझोरी ।।
लोभ मोरे हिरदे घुमरतु है, सागर वार न पारी ।
कपट की भंवर परतु है बहुतै, वा में बेडा अटको ।।
काल फाँस लियो है दुवारे, आया सरन तुम्हारो ।
धरमदास पर दाया कीन्हीं, काटि फंद जिव तारी ।
कहै कबीर सुनो हो धर्मन, सतगुरु सरवन उबारी ।।

साहेब मोरी ओर निहारो ।।टेक।।
परजा पुत्र अहौं मैं साहेब, बहुत बात मैं टारी ।।
हौं मैं कोटि जनम को पापी, मन बच करम असारो ।
एकौ कर्म छुटे ना कबहूँ, बहु विधि बात बिगारो ।।
हौं अपराधी बहुत जुगन को, नइया मोर उबारो ।
बदी छोर सकल सुखदाता, करुनामय करत पुकारो ।।
सीस चढ़ाइ पाप की मोटरी, आयो तुम्हारे दुवारो ।
को अस हमरे भार उतारे, तुमहीं हेतु हमारो ।।
धरमदास यह बिनती बिनवै, सतगुरु मोको तारो ।
साहेब कबीर हंस के राजा, अमर लोक पहुँचावो ।।

साहेब कौन कमी घर तेरा ।।टेक।।
भूखे अन्न पियासे पानी, कपडा से तन घेरो ।
जो कुछ न्यामत सबै महल में, लरच खजाना ढेरो ।
खाक से पाक कियो पल माहीं, है समरथ तेरो ।।
भव से काढ़ि कियो तरनी पर, खेइ लगावो सवेरो ।
रहै न घाम छाँह दुनिया में, रहे न जम की चेरो ।।
राव रंक रंक से राजा, छिन में बाजत तूरो ।
मानो सत्त झूठ जनि जानो, सत्त बचन है पूरो ।
धरमदास चरनन पर बिनवै, तुम गति सब भरे पूरो ।।

अब मोहिँ दरसन देहु कबीर ।।टेक।।
तुम्हरे दरस से पाप कटत हैं, निरमल होत सरीर।
अमृत भोजन हंसा पावै, सबद धुनन की खीर ।।
जहँ देखी जहँ पाट पटंबर, ओढ़न अंबर चीर।
धरमदास की अरज गोसांई, हंस लगावो तीर ।।

साहेव कौन देस मोंहि डारा ।।टेक।।
वह तो देस अमर हंसन को, येहि जग काल पसारा।
देवहु सब्द अजर हंसन को, बहुरि न ह्वै है अवतारा।।
निरगुन सरगुन दुंद पसारा, परि गये काल की धारा।
जहाँ देस है सत्त पुरूष का, अजर अमी का अहारा ।।
धरमदास बिनवै को जोरी, अबकी अरज हमारा।

साहेब लेइ चलो देस अपाना ।।टेक।।
जम की त्रास सही ना जाई, केहि बिधि धरो मैं ध्याना।
माया मोह भरम की मोटरी, यह अब काल कलपाना ।।
माया मोह भरम सब काटी, दीजै पद निरबाना।
अमर लोक वर देस सुहैला, हंसा कीन्ह पयाना ।।
धरमदास बिनवै को जोरी, आवागवन नसाना।

तुम सतगुरु हम सेवक तुम्हरे ।।टेक।।
कोई मारै औ गरियावै, दाद फिरियाद करब तुमहीं से।
सोवत जागत के रछपाला, तुमहीं छांडि भजों नहिँ औरे ।।
तुम धरनीधर सब्द अनाहद, अमृत भाव करौं प्रभु सगरे।
तुम्हरी बिनय कहाँ लगि बरनों, धरमदास पद गहे हैं तुम्हरे।।

चढ़ि नौरँगिया की डार, कोइ लिया बोलै हो।
अगम महल चढ़ि चलो, जहाँ पिय से मिलो ।।
मिलि चलो आपन देस, जहाँ छबि छाजई तन।
सेत सब्द जहँ खिले, हंस होंइ आवही ।।

अग्र वस्तु मिलि जाय, सब्द टकसार हो।
यहुँ दिसि लागों झलरिया, तो लोक असंख हो ॥
अंबु दीप एक देस, पुरुष जहँ रहहि हो।
कहै कबीर धर्मदास, बिछुरन नहिँ होइ हो ॥

धनुष बान लिये डाढ़, जोगिनि एक माया हो।
छिहिँ में करत विगार, तनिक नहिँ दाया हो ॥
झिर झिर वहै बयार, प्रेम रस डोलै हो।
चढ़ि नौरँगिया की डार, कोइलिया बोलै हो ॥
पिया पिया करत पुकार, पिया नहिँ आया हो।
पिया विनु सून मँदिलवा, बोलन लागे कागा हो ॥
कागा हो तुम कारे, कियो बटवारा हो।
पिया मिलने की आस, बहुरि ना छूटहि हो ॥
कहैं कबीर धर्मदास, गुरू सँग चेला हो।
हिल मिलि करो सतसंग, उतरि चलो पारा हो ॥

चलो सखि देखन चलिये, दुलह कबीर हैं।
उन सों जुरल सनेह, जठर सों राखि हैं ॥
पांच तत्त को आसा, त्यागो बेगि कै।
छांडो झिलि मिलि तेह, पुरुष गम राखि कै ॥
लाँघो औघट घाट, पंथ निजि ताकि कै।
गहो सुकृति जिन डोर, अगम गम राखि के ॥
चार कोस आकास, तहाँ चढ़ि देखिये।
आगे मारग झीनि, तो सूरत विबेकिये ॥
मुकुट एक अनूप, छत्र सिर साजि है।
ढुरत अग्र को चौर, सब्द धुनि गाजि है ॥

सेत धुजा फहराय, भँवर तहँ गुंजहीं।
नितहिँ उठै झनकार, गगन घनघोरहीं॥
कहैं कबीर धर्मदास सों, मूल उचारिये।
आगम गम्म बताइ कै, हंस उबारिये॥

बधावा संत खजाऊ हो।
जा बिधि सतगुरु मेहर करैं, सोई विधि बतलाऊँ हो।
रतन पटोरा डारि पाँवड़े, सन्मुख जाऊँ हो॥
सब सखियाँ मिलि बाँटत बधाई, मंगल गाऊँ हो।
घसि घसि चंदन अंगना लिपाऊँ, चौक पुराऊँ हो॥
मेवा नरियर पान मिठाई, संजम सबै मंगाऊँ हो।
खीर आम घृत अमृत भोजन, संत जिमाउल हो॥
चरन धोइ चरनामृत लेऊँ, सीस नवाऊँ हो।
जब मोरे साहेब तखत बिराजैं, आरत लाऊँ हो।
पान पर्वान दया से पाऊँ, सब मिलि गाऊँ हो॥
जब मोरे सतगुरु पलंग पधारें, चरन दबाऊँ हो।
धरमदास याही विधि करि, सतलोक सिधाऊँ हो॥

साहेब सतगुरु घर आया हो।
अँगना मोर जगमग भया, सुख संपति लाया हो॥
आधि गई मेरी हे सखी, आज सज्जन पाया हो॥
धन विधाता लेख लिखा, निज भाग जगाया हो॥
कोमल बचन अंग दया घनेरी, कल्प वृच्छ की छाया हो॥
धन जननी अस संत जिन जाया, अनंद बधाया हो॥
जप तप नेम धर्म बहु कीन्हा, रसना नामहिँ गाया हो॥
धरमदास सतगुर सतसँग से, छिन में पर यह पाया हो॥

हमारी उमरिया होली खेलन की।
पिय मोसों मिल के बिछुर गया हो।।
पिय हमरे हम पिय की पयारी।
पिय बिच अंतर परि गयो हो।।
पिया मिलैं तब जियों मोरी सजनी।
पिया बिना जियरा निकल गयो हो।।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी।
बीच सगर पिय मिलि गयो हो।।
धरमदास बिरहिनि पिय पावै।
चरन कंवल चित गहि रहो हो।।

जग ये दोऊ खेलत होरी।
माया ब्रह्मबिलास करत हैं, एक से एक बरजोरी।।
सचिदानन्द सरूप अखंडित, व्यापक है बस ठौरी।।
हिये नैन से परख परो जेहि, जोति समाय रहो री।।
जोबन जोर नैन सर मारते, ठहर सकै को कोरी।।
मदत प्रचंड उठै चमकारी, कामा करी चित चोरी।।
निरगुन रूप अमान अखंडित, जा में गुन बिसरो री।।
माया मुक्त अनंद कियो है, सबहि में अमर भरोरी।।
कारन सूछम स्थूल देह धरि, भक्ति हेत तृन तोरी।।
धर्मनि बिना दरस गुरु मूरत, कस भव पार भयो री।।

गुरु बिन कौन हरै मोरी पीरा ।।टेक।।
रहत अली मलीन जुग, राई बिनत पाए एक हीरा।
पाये हीरा रहे नहिँ धीरा, लैइ के चले वोहि पारख तीरा।।
सो हीरा साधू सब परखे, तब से भयो मन धीरा।
धरमदास बिनवै कर जोरी, अजर अमर गुरु पाये कबीरा।।

आये दीन दयाल दया कीन्हा ।।टेक।।
दीन जानि गुरू समरथ आये, बिमल रूप दरसन दीन्हा ।
चरन धोइ चरनामृत लीन्हा, सिंहासन बैठक दीन्हा ।।
करउँ आरता प्रेम निछावर, तन मन धन अरपन कीन्हा ।
धरमदास पर दाया कीन्हा, सार सब्द सुमिरन दीन्हा ।।

बरनौं मैं साहेब तुम्हरे चरना ।।टेक।।
संतन सुख लायक दायक, प्रभु दुख हरना ।
सतजुग नाम अचिंत कहाये, खोडस हंस को दई सरना ।।
त्रेता नाम मुनिंद कहाये, मधुकर बिनि को दई सरना ।
द्वापर करुनामय कहलाये, इंद्र मती के दुख हरना ।।
कलजुग नाम कबीर कहाये, धर्मदास अस्तुति बरना ।।

सत नामै जपु जग लड़ने दे ।।टेक।।
यह संसार कांटे की बारी, अरुझि सरुझि के मरने दे ।
हाथी चाल चलै मोर साहेब, कुतिया भुके तो भुँकने दे ।।
यह संसार भादों की नदिया, डूबि मरै तेहि मरने दे ।
धरमदास के साहेब कबीरा, पत्थर पूजै तो पुजने दै ।।

नैनन आगे ख्याल घनेरा ।।टेक।।
जैहि कारन जग डोलत भरमे ।
सो साहेब घट लीन्ह बसेरा ।।
का संझा का प्रात सबेरा ।
जहँ देखू जहँ साहेब मेरा ।।
अर्ध उर्ध विच लगन लगो है ।
साहेब घट में कीन्हा डेरा ।
साहेब कबीर एक माला दीन्हा ।
धरमदास घट ही बिच फेरा ।।

सतगुरु कहत नाम गुन न्यारा ॥टेक॥
कोई निर्गुन कोई सर्गुन गावै, कोइ किरतिम कोइ करता।
लख चौरासी जीव जंतु में, सब घट एकै रमिता॥
सुनो साधु निरगुन की महिमा, बूझै बिरला कोई।
सरगुन फंदै सबै चलत है, सुर नर मुनि सब कोई॥
निर्गुन नाम निअच्छर कहिये, रहे सबन से न्यारा।
निर्गुन सर्गुन जम कै फंदा, वोहि के सकल पसारा॥
साहब कबीर के चरन मनावो, साधुन के सिर ताजा।
धरमदास पर दाया कीन्हा, बांह गहे की लाजा॥

मेरे मन बसि गये साहेब कबीर ॥टेक॥
हिँदू के तुम गुरु कहावो, मुसलमान के पीर॥
दोऊ दीन ने झगड़ा माडेव, पायो नहीं सरीर॥
सील संतोष दया के सागर, प्रेम प्रतीत मनि धीर॥
बेद कितेब मते के आगर, दोउ दीनन के पीर।
बड़े-बड़े संतन हितकारी, अजरा अमर सरीर॥
धरमदास की बिनय गुसांई, नाव लगावो तीर।

सदना जी

नृप कन्या के कारने, एक भयो भेष भारी।
कामारथी सुवारथी, वा की पैज संवारी।।
तव गुन कहा जगत-गुरा, जो कर्म न नासै।
सिंह सरन कत जाइये, जो जंबुक ग्रासै।।
एक बूंद जल कारने, चातक दुख पावै।
प्रान गये सागर मिलै, पुनि काम न आवै।।
प्रान जो थके थिर नहीं, कैसे बिरमावो।
बूड़ि मुए नौका मिलै, कहु काहि चढ़ावो।।
मैं नाहीं कछु हौं नहीं, कछु आहि न मोरा।
औसर लज्जा राख लेहु, सदना जन तोरा।।

दामोदर पंडित

नवनाथ कहे सो नाथपंथी जुगुत कहे सो जोगी।
विश्व बूझे सो कहि वैरागी, ग्यान बूझे सो योगी ।।ध्रु।।
सुन हो तुम्ह सिद्धांत गरुवा सारा ग्यान पंथु हमारा।
शुन्य निरसुन्य काहांके कहिजे ब्रह्मादिक नेनेनि पाना ।।
ये शिव शकती समा जुगनी, कवन युक्ति तुम पाया।
ब्रह्मा विष्णु महेश चन्द रवि भ्रमण करत समाया ।।
पुछु तोहिकें श्रोता पंडित इन्द्र केतिवार आया।
वत्तिस मुख का ब्रह्मा प्रत्यक्ष कवण जुग तुम पाया ।।
पंच क्रिष्ण खेल खाव हो ज्याकी, क्रिष्ण(ण) कन्हें न जणाया।
कवण ते युग कवन तें थान, निज रूप काहां समाया ।।
सारमसार बुझति है विरला, तत्व ग्यान जीन्हें पाया।
कलयुग माहे वदंति ग्यानी सब लोकु धंदे लगाया ।।
अलेख कहिजे अपरांपरु, जीव कहिजे अविनाश।
उत्पत्ति प्रलय नागदेव कहे श्री राऊल के दास ।।

एकु जागा एकु सुत्ता भया रे, खबना भगि चढ़िवो।
भंवरि देत सुता खान खाइ एर निहुल वास पाहिवो ।।ध्रु।।
कट भूलिवो रे कट भूलिवो रे कापट मूट बुझाइ।
तत्व वीचार न जाणति जोइ, तो विथ्या पंडित म्हनाई ।।

आगे नागा पाछे कंथा पहिरे, लोक लाज न धरे।
अष्ट भोग भोगि मंगल गाई, तो न्हान याँ कलसीं न्हाये रे।।
सप्त दीपू अरु सप्त पताले, व-हाड़ भला मिलिबो।
काल रात्रि मधि मारि वालिवो, तो कोण जाग सूत धरिबो।।
आदि पति माया निचिया लोइ, वखाण के पढ़ियासो।
नागदेव म्हणे चक्र सामि बिन, तीहा जगु भइ भजे सो।।

एक अंधा एकु पंगा भाई, एकणे एक लिया खांदी।
दोई पुरुप मिलिकर एकचि हुवा, तो दृष्टि पक्षि वेवादी रे।
शुन्य बुझे शुन्य परहि बुझो, शुन्य निरशुन्य भागे।
नागदेव शुख कथन किया हो तो जीव शिव सम जोगे रे।
आया हु भाइ ब्रह्माण्ड पिंडा, सब ही का दलवाडा।
दो पख जाले एव पख बोले तो बुझलों तथा अगड़ा।
लवणाधुनि तेंचि नागवण कंचना न दिसे कहीं।
तुटले साँदी असा कैचा (कैसा) चातुर सिंधु उतरिजे बाहि।
सुख दुख किया हमेचि पाया कोई नहीं भेदा।
नागदेव कहै श्री मुख बचनी बुझ्या न कल वेदा।

नामदेव

एक अनेक बिआपक पूरक जत देखउ तत सोई ॥
माइआ चित्र बचित्र बिमोहित बिरला बूझै कोई ॥
सभु गोबिन्दु है, सभु गोविंदु है, गोविंदु बिनु नहीं कोई ॥
सूतु एकु मणि सतसहस जैसे उतिपोति प्रभु सोई ॥
जलतरंग अरु फेन बुदबुदा, जलते भिन न कोई ॥
इहु परपंचु पारब्रह्म की लीला बिचरत आन न होई ॥
मिथिआ भरमु अरु सुपनु मनोरथ सति पदारथु जानिआ ॥
सुक्रित मनसा गुरु उपदेसी, जागत ही मनु मानिया ॥
कहत नामदेऊ हरि की रचना देखहु रिदै बीचारी ॥
घटघट अंतरि सरब निरंतरि केवल एक मुरारी ॥

जौ राजु देहि त कवन बडाई ॥
जौ भीख मंगावहि त किआ घटि जाई ।
तूं हरि भजु मन मेरे पदु निरबानु ।
बहुरि न होई तेरा आवनजानु ॥
सभ तै उपाई भरम भुलाई ।
जिस तूं देवहि तिसहि बुझाई ॥
सतिगुरु मिलै त सहसा जाई ।
किस हऊ पूजऊ दूजा नदरि न आई ॥
एकै पाथर कीजै भाऊ ।
दूजै पाथर धरिए पाऊ ॥
जे उहु देऊ त उहु भी देवा ।
कहि नामदेऊ हम हरि की सेवा ॥

जब देखा तब गावा, तउ जन धीरुज पावा ॥
नादि समाइलो रे सतिगुर भेटिले देवा ॥
जह झिलिमिल कारु दिसंता ॥
तह अनहद सबद बजंता ॥
जोति जोति समानी, मैं गुर परसादी जानी ॥
रतन कमल कोठरी, चमकार बीजुल तही ॥
नेरे नाही दूरि, निज आतमै रहिआ भरपूरि ॥
जह अनहत सूर ऊजयारा, तह दीपक जलै छोया ॥
गुर परसादी जानिआ, जनु नामा सहज समानिआ ॥

गहरी करिके नीब खुदाई ऊपरि मंडप छाए ॥
मर्कंड ते को अधिकाई जिनि त्रिण धरि मूंड बलाए ॥
हमरो करता रामु सनेही ॥
काहे रे नर गरबु करतहहु बिनसि जाई झूठी देही ॥
मेरी मेरी कैरउ करते दरजोधन से भाई ॥
बारह जाजन छत्र चलै था देही गिरधन खाई ॥
सरब सोइन की लंका होती रावन से अधिकाई ॥
कहा भइउ दरि बाँधे हाथी खिनमहि भई पराई ॥
दुरवासा सिऊ करत ठगऊरी जादव ए फल पाए ॥
क्रिपा करी जन अपने ऊपर नामदेऊ हरिगुन गाए ॥

दस बैरागनि मोहि बसि कीनी पंचहु का मठनावऊ ॥
सतरि दोइ भरे अमृतसरी विखुकउ मारि कढ़ावऊ ॥
पाछे बहुरि न आवनु पावऊ ॥
अंम्रित बाणी घट से उचरऊ आतम कऊ समझावऊ ॥

बजर कुठारु मोहि है छीना करि मिनंति लगि पावऊ ॥
संतन के हम उलटे सेवक भगतन से डरपावऊ ॥
ईह संसार ते तबही छूटऊ जऊ माइग्रा नह लपटावऊ ॥
भाइग्रा नामु गरभ जोनि का तिह तजि दरसन पावऊ ॥
इतुकरि भगति करहि जो जन तिन भउ सगल चुकाइए।
कहत नामदेऊ बाहरि किग्रा भरमहु इह संजम हरि पाइए

पतितपावन माधऊ बिरदु तेरा ॥
धनि ते वै मुनिजन जिन धिग्राइउ हरि प्रभु मेरा ॥
मेरे माथै लागीलै धूरि गोविंद चरणन की ॥
सुर नर मुनि जन तिनहु ते दूरि ॥
दीन का दइग्रालु माधौ गरब परिहारी ॥
चरण सरन नामा बलि तिहारी ॥

तीनि छँदे खेलु ग्राछै, तीनि छंदे खेलु ग्राछै।
कुँभार के घर हाँडी ग्राछै राजा के घर साँडी गो ॥
बामन के घर राँडी ग्राछै राँडी साँडी हाँडी गो ॥
बाणी के घर हींगु ग्राछै भैसर माथै सींगु गो ॥
देमलमधे लीगु ग्राछै लीगु सीगु हीगु गो ॥
तेली घर तेलु ग्राछै जंगलमधे बेल गो ॥
माली के घर केल ग्राछै, केल बेल तेल गो ॥
संतामंधे गोविंदु ग्राछै गोकलमधे सिग्राम गो ॥
नामेमधे रामु ग्राछै राम सिग्राम गोविंदु गो ॥

नाद भ्रमे जैसे मिरगाए ॥
प्रान तजे वाको धिम्रानु न जाए।
ऐसे रामा ऐसे हेरऊ ॥
राम छोड़ि चितु अनत न फेरऊ ॥
जिऊ मीना हेरै पसुआरा ॥
सोना गडते हिरै सुनारा ॥
जिऊ बिखई हेरै पर नारी ॥
कउड़ा डाड़त हिरै जुआरी ॥
जह जह देखऊ तह तह रामा ॥
हरिके चरन नित धिआवै नामा ॥

हरि हरि करत मिटे सभि भरमा ॥
हरि को नामु लेऊ तम धरमा ॥
हरि हरि करत जाति कुल हरी ॥
सो हरि अंधुले की लाकरी ॥
हरए नमस्ते हरए नमह ॥
हरि हरि करत नहीं दुख जमह ॥
हरि हरनाखस हरे परान ॥
अजैमल कीऊ बैकुँठहि थान ॥
सूआ पडावत गनिका तरी ॥
सो हरि नैनहु की पूतरी ॥
हरि हरि करत पूतना तरी ॥
बाप घातनी कपटहि भरी ॥
सिमरत द्रौपत सुता ऊधरी ॥
गऊतम सती सिला निसतरी ॥
केसी कंस मथनु जिनि कीआ ॥
जीअ दानु काली कऊ दीआ ॥

प्रणवै नामा ऐसो हरी ॥
जासु जपत भै अपदा टरी ।

भैरऊ भूत सीतला धावै ॥
खर वाहन ऊहु, छार उड़ावै ॥
हऊ तऊ एक रमईआ लेहऊ ॥
आनदेय वदलावनि देहऊ ॥
सिव सिव करते जो नरु धिआवै ॥
बरद चढ़े डमरू डमकावे ॥
महामाई की पूजा करै ॥
नर सै नारि होइ उतरै ॥
तू कहिअत आदि भवानी ॥
मुकति की बरीआ कहा छपानी ॥
गुरमति राम नाम गहु मीता ॥
प्रणवै नामा इऊ कहै गीता ॥

माइ न होती बापु न होता करमु न होती काइआ ॥
हम नहीं होते तुम नहीं होते कवनु कहांते आइआ ॥
राम कोई न किसही केरा ॥
जैसे तरुवर पंखि बसेरा ॥
चंदु न होता सूरु न होता पानी पवनु मिलाइया ॥
न होता बेदु न होता करमु कहाँ ते आइया ॥
खेचर भूचर तुलसीमाला गुर परसादी पाइआ ॥
नामा प्रणवै परम ततु है सतिगुर होइ लखाइआ ॥

धनि धंनिउ राम बेनु बाजै, मधुर-मधुर धुनि अनहत गाजै ।
धनि धनि मेघा रोमावली, धनि धनि क्रिसन ऊढे कांबली ॥
धनि धनि तू माता देवकी, जिह ग्रिह रमईआ कवलापती ॥

धनि धनि वनखंड बिंद्राबना, जह खेले स्री नाराइना ॥
वेनु वजावै गोधनु चरै, नामे का सुआमी आनंदु करै ॥

मैं बऊरी मेरा रामु भतारु ॥
रचि रचि ताकऊ करऊ सिगारू ॥
भले निंदऊ भले निंदऊ भले निंदऊ लोगु, तनु मनु राम मिआरे जोगु ॥
बादु-बिबादु काहू सिऊ न कीजै, रसना रामु रसाइनु पीजै ॥
अब जीअ जानि ऐसी बनि आई, मिलऊ गुपाल नीसानु बजाई ॥
उसतुति निंदा करै नरु कोई, नामे स्रीरंगु भेटल सोई ॥

हसत खेलत तेरे देहुरे आइआ ॥
भगति करत नामा पकरि ऊठाइआ ॥
हीनडी जात मेरी जादयराइआ ॥
छीपेके जनमि काहे कऊ आइआ ॥
लै कमली चलिऊ पलटाइ ॥
देहुरै पाछै बैठा जाई ॥
जिऊ जिऊ नामा हरि गुण ऊचरै ॥
भगतजना कऊ देहुरा फिरै ॥

जैसी भूखी प्रीति अनाज, त्रिखावंत जल सेती काज ॥
जैसी मूढ़ कुटंब पराइण, ऐसी नामे प्रीति नाराइण ॥
तामें प्रीति नाराइण लागी, सहज सुभाइ भइउ बैरागी ॥
जैसी पर पुरखा रत नारी, लोभी नर धन का हितकारी ॥
कामी पुरख कामनी पिआरी, ऐसी नामें प्रीति मुरारी ॥
साई प्रीति जि आपे लाए, गुरपरसादी दुविधा जाए ॥
कबहू न तूटसि रहिअ समाइ, नामे चितु लाइअ सुचिनाइ ॥
जैसी प्रीति बारिक अरु माता, ऐसा हरि सेती मनु राता ॥
प्रणवै नामदेऊ लागी प्रीति, गोबिंदु बसै हमारै चीति ॥

काएं रे मन बिखिया बन जाई ॥
भूलौ रे ठगमूरी खाई ॥
जैसे मीनु पानी महि रहै ॥
काल जाल की सुधि नहीं लहै ॥
जिहवा सुआदी लीलित लोह ॥
ऐसे कनिक कामनी बाधिउ मोह ॥
जिउ मधुमाखी संचै अपार ॥
मधु लीनौ मुखि दीनी छारु ॥
गउ बाछ कऊ संचै खीरु ॥
गला बांधि दुहि लेइ अहीरु ॥
माइआ कारन स्रमु अति करै ॥
सो माइआ लै गाडै धरै ॥
अति संचै समझै नहीं मूड ॥
धनु धरती तनु होइ गइउ धूडि ॥
काम क्रोध त्रिसना अति जरै ॥
साध संगति कबहु नहि करै ॥
कहत नामदेउ ताचा आनि ॥
निरभै होइ भजीऐ भगवान ॥

मन की बिरथा मनु ही जानै कै बूझल आगै कहीए ॥
अंतरजामी रामु रवांई मै उरु कैसे चहीए ॥
बोधिअले गोपाल गुसाई मेरा प्रभु रहिआ सरबे ठायी ॥
माने हाटु माने पाटु मानै है पासारी ॥
मानै बासै नाना भेदी भरमतु है संसारी ॥

गुरूकै सबदि एहु मनुराता दुविधा सहजि समाणी ॥
सभी हुकमु हुकमु है आपै निरमऊ समतु बिचारी ॥
जो जन जानि भजहि पुरखोतमु ताची अबिगतु बाणी ॥
नामा कहै जगजीवनु पाइआ हिरदै अलख बिडाणी ॥

आदि जुगादि जुगादि जुगो जुगु ताका अंत न जानिआ ॥
सरब निरंतरि रामु रहिआ रवि ऐसा रूपु बखानिआ ॥
गोविंदु गाजै सबदु वाजै, आनदरूपो मेरो रामइआ ॥
बावन बीखू बाने बीखे बासु ते सुख लागिला ॥
सरबे आदि परमलादि कासट चंदनु भैइला ॥
तुमचे पारसु हमचे लोहा संगे कंचनु भैइला ॥
तू दइआलु रतनु लालु नामा साचि समाइला ॥

दुध पीवोरे मेरे गोविंदराय ॥धृ०॥
काला बछेरा कपीला गाय, दुध दुहावन नामा जाय ॥१॥
सुन्ने काटुरा दुधने भरीया, पिवौ नारायण आगे धरीया ॥१॥
पखान की मुरत दुध नहीं पीवत, शीर पछार पछार नामा रोवत ॥३॥
ऐसा भक्त मैं कबहु न पाया, नामदेव न देव हुसाया ॥४॥

नामा तै भुटारे रे, तेरा पंथ भुटारे रे।
अल्ला है आलम का साइ, सोही गुप्त चेहेरा रे ॥१॥
मुसलमान साहेब जाने, नही राम सु तोली।
पाँच बखत निजाम गुजरी, मजहब नही कै बोली ॥२॥
पादशहा नहीं दीवाना रे, तेरा तुही दीवाना रे ॥धृ०॥
गाइत्री सो हम वि जानी, खेतनी राना खांती।
एक पाव तो छीन लीया मैं, तीन पाव पर जाती ॥३॥
नामा तुही भुटारे।

बकरी काटी मुरगी काटी, हलाल कहता है।
मुरगी में से अंडा निकला, हलाल कै नहीं होता है ।।४।।
पादशहा तुही दिवाने ।
बाबा आदम हम वी जाने, हललानंदी आवे ।
सीराल सेट का बेटा मारा, हराम खाना खावे ।।५।।
नामा तुही झुटारे ।
उननें मारा उननें तारा, उनने किया उधारा ।
मुवा पोंगडा आप जीवावे, ऐसा राम मेरा ।।६।।
पादशहा तुही दीवाने ।
दशरथ के दोनों बेटे, राम लछमण भाई ।
घर छोडके जंगल बसाया, जोरू आप गमायी ।।७।।
नाम तुही झुटारे ।
जल ऊपर पाषाण तारे, चरन से शिला उधारी ।
रावण मारकर विभीषण थापा, लंका वकसी सारी ।।८।।
पादशहा तुही दीवाने ।
गाऊँ बछवा दोनो काटे, नामा आगे डोर ।
नामदेव ने हात लगाया, बछीया पीवन लागे ।।९।।
अवतों भली वनी है जी, सबका एक धनी है जी ।।१०।।
नामा अकबर सहजी मीले, साचा झगड़ा उनका ।।
उचो नीचो करकर देखे, सोही उचा नीचा ।।११।।

मनु पंछीया मत्त पड पिंजरे,
संसार माया जालुरे ।।१।।
धन जोबन रूप कारण,
न कर गर्व गव्हार रे ।।२।।
एक दिन मो तिन बिरिया,
सदा झमकत काल रे ।।३।।

कुंभ काच्या निर रभरिया,
बीनसत नहि बाररे ॥४॥
कहत नामदेव सुन भई साधु,
साधु संगत धरनारे ॥५॥

नर रामभजन बिन गत न तरन की
कोटि उपाव कर रे ॥ध्रुवपद॥
होम नेम व्रत तीरथ साधो
क्या हुआ बन खंड वासा रे
चरन कमल उर मा उपजे नहिँ
तो लग झूठी आसा रे ॥
नर.................कर रे ॥
नर तनु पायो राम नहिँ गायो
भूल्यो पशू गव्हारा रे
सिर पर काल खड़ा शर साधे
नामदेव कहे पुकारा रे ।

गोंदा महाराज

गजानन गौर सूत, लाल अंग पर बभूत।
तेरु मुख बचनामृत, उसे ज्यमदूत भागत है ।।१।।

विद्याभरी दंदुल पेट, उस पर साप की लपेट।
विघन करत है चपेट, पकड फेट कालकी ।।२।।

नामा दर्जी जालम, विठू राजा का गुलाम।
हुआ दुनिया में बदलाम, उने नाम डुबाया ।।३।

नामा प्यारा है भगत, उसे जानत है जगत।
बम्मन आया धुँडंत धुँडंत, लगत लगत गांव मो ।।४।।

बम्मन कहे नामदेव, मुजे पूजना भूदेव।
इति बात मुजे देव, वहा देव गंगामो ।।५।।

मानो विनंती महाराज, चलो पतीतन के काज।
नामा कहे बम्मनराज, न बाजे इत बातन सो ।।६।।

नामा नहीं माने बात, बम्मन बैठा दिन रात।
हुकुम दिया दिनानाथ, तब संग चल दिया ।।७।।

चले मजल दर मजल, आया बेदर के मिसल।
व्हां हुई सो नक्कल, वो सकल तुम सुनो ।।८।।

कोस आदे कोस पर, नामदेव का लस्कर।
बादशहा बैठा निकलकर, नजर कर देखते ।।९।।

कहे कासी पंडत, लाल झंडे बहूत।
पायदल जावे तहत, क्या सरयत खबर लाव ।।१०।।

करी कुरान सो सलाम, भेजो फौज वो तमाम।
कौन क्या करेगा काम, तुम बेकाम मत रहो ॥११॥
ग्रायी फौज किया कोट, जैसा खेत का सगोट।
कहे कहाँ के तुम भट, थाट वाध जाहो ॥१२॥
नाना कहे सुनो भाई, ये तो बम्मन गदाई।
नामदेव कौन है, बेदरशाही जानते ॥१३॥
उसे कहे नामदेव, राहा छोड़ो जाने देव।
कहे हुकुम ग्राने देव, फेर देव जाने कू ॥१४॥
ग्रर्जी लीखी फौजदार, ले पोंचे जिलिबदार।
जाके देव दरवार, चोपदार के कहिने ॥१५॥
कासों पंडत के पास, ग्रान पोहोंची इतलास।
नजर गुजराई ख्यास, करे ख्यास पूछके ॥१६॥
पंडत करे जिकीर, सुनो हिन्दू फकीर।
हम लोकन के पीर, पंढरपुर में रहते हैं ॥१७॥
बादशहा करे गलज, होते पीर ग्राजमत।
बुला लाव इस बख्त, करामत देखरगें ॥१८॥
पंडत करे तसलीमात, हजरत भली नहीं बात।
नामदेव कहे मात, किसन नाथ कन्हैया ॥१९॥
उसका नाम मत लेव, उसकी रहा मत् जाव्।
मेरा कहना खातर लाव, नहीं तो नाव डूबेगी ॥२०॥
उसे करोदे बदफैल, बुरी होयेगी नक्कल।
ग्रब जावेगी ग्रक्कल, सकल राज डूबेगा ॥२१॥
हत्ती घोड़े दौलत, दक्खन मुलख वाछायत।
बेद सरीखा तख्त, इस वक्त जायेगा ॥२२॥
बादशहा करे गल्लत, सरक चल मादर वख्त।
पंडत कहे ग्रायी मोल, गईकुवत ग्रक्कल की ॥२३॥

कुटल सामने सेटल, जा दूर हो निकल।
भेजो दस वीस मोंगल, बम्मन सकल पकड लाव ॥२४॥
नामा लाया दरबार, सात बम्मन दोसो चार।
सारे दरबार मों पुकार, मारामार बम्मन कू ॥२५॥
अर्जी पोंचावे हुजूर, नावदेव लाया नजर।
इसके बाबे क्या मजकूर, करी अर्जी अर्जवेगें ॥२६॥
बादशहा कहै जलदी जाव, गाई कसाई कू बुलाव।
नानदेव कुँ बिठलाव, नियत पोंचावे गाँव कू ॥२७॥
उसके आगे काटी गाय, बम्मन करे हाय हाय।
नामा कहे प्रभुराय, ? बलाय तुम सुनो ॥२८॥
बादशहा कहे लाव जान, नहीं तो करूँ मुसलमान।
झुटा करता है तुफान, फिर फिकर कहलावते ॥२९॥
किदर रह्या पंढरपुर, मेरा वसीला है दूर।
कौन कहेगा जूर, ये जरूर हकीकत ॥३०॥
ये तो पापी चंडाल, इन्नें बुरा किया हाल।
मेरे अबू का काल, तुम गोपाल लाल, जलदी आव ॥३१॥
नामा रोवे झुरझूर, बहे अश्रून का पूर।
बिठू पसिने में चूर, पंढरपुर में डूबे हैं ॥३२॥
रुकिमण चुरती पद्मपाव, घबर गये बिठूराव।
रुकिमण कहे प्रभुराव, क्या बलाय मुजे कहो ॥३३॥
देवकरे आटो प्रांत, करे घबरे घबरे बात।
नामदेव की कहत, हकीकत बुरी है ॥३४॥
रुकिमणी कहे जलदी जाव, नामदेव को मनाव।
उस पापी को जलाव, जाव जाव सिताबी ॥३५॥
नामा लड़का अजान, बहुत हुआ हयरान।
अभी छोड़ेगा जान, मुसलमान बेकदर ॥३६॥

अकस्मात् हुई बात, उठकर बैठे दिनानाथ।
चल दीया उसी वख्त, मैं दिनानाथ आया हूँ ।।३७।।
बिठ्ठ कहे नामदेव, उस गाय को हाथ लगाव।
जान उसकी खुलाव, जलदी जाव गाय उठेगी ।।३८।।
उठकर खड़ी रहे गाय, हरहर बोले बम्मनराय।
नामदेव को लगाय, बिठ्ठराय गले से ।।३९।।
नामा रोवे आलफ, उसे समझावे मा बाप।
उसके हवेली में साप। हाका हाक पड़ी है ।।४०।।
हत्ती घोडे कू काट, लिया आदमो की पीठ।
जिधर उधर न हाटा नाट, खर उपर खटारे ।।४१।।
वेदरशहा हुवा दंग। कासी पंडत करे जंग।
अब कैसा हुवा रंग, बुरे ढंग क्या हुवे ।।४२।।
बादशहा कहे जलदी जाव, काशी पंडत कू बुलाव।
मेरे जान कू बचाव, सच्चादेव उनोका ।।४३।।
कासी पंडत प्यारे लाल, मेदे जानकू संबाल।
पीर फकीर हक्लाल, बालोबाल गुन्हेगार ।।४४।।
कासी पंडत धरो पाव, बहोत तर्हे से मनाव।
नामदेव भगतराव, ये बला दूर करो ।।४५।।
पंडत तुम बडा सुजान, तुम जानो उसका ग्यान।
हमने किया है तुफान, अब जान बचाव ।।४६।।
काशी पंडत बहु भला, कदम-कदम जा मिला।
नामदेव आन मिला, लगाया गला गलो सो ।।४७।।
बादशहा के आडे, जिधर उधर खडे।
उने हात पांव जोडे, पकडे पांव तुमारे ।।४७।।
मानो बिनंती महाराज, चलो पतीतन के काज।
नामा कहे पंडतराज, मत् बाजो इस बात सो ।।४९।।
नामदेव बड़े दयाल, हासे किया जवाब सवाल।
पंडत जा रहो खुशाल, फिर वहाँ से चल दिया ।।५०।।

मेहरबान नामदेव, बिट्ठराय जानदेव।
उसका राज्य उसकू देव, बुलालेव सापकू ।।५१।।
इतनी बात बोलकर, चला उनका लस्कर।
पंडत आये फिर कर, साप नजर न आवे ।।५२।।
उसकू कर कर सनाथ, नामदेव दीनानाथ।
ओ गाई लियी साथ, उस वक्त चल दिये ।।५३।।
बादशहा करे जीकीर, सच्चा हिन्दु फकीर।
ब्रह्म ज्ञानो में तीर, रणधीर आये है ।।५४।।
गोंदा लड़का अजान, करे रात दिन ध्यान।
सरज होय मेहेरबान, दिया ग्यान बालक कू ।।५५।।

एकनाथ महाराज

भूली भटकी आई कान्हा तोर गाँव छे।
मारो नंद नंदन चित्त जड़ो तोरे पावछे ॥१॥
चली आई परपंच हाट से।
तूँ केंव धरीयो वाट छेत्र ॥२॥
आव तूँ नंद नँदन लाल छे।
मैं गारी देऊँ तुज से ॥३॥
एका जनार्दन नाम तोरे गाँव छे।
पीरीत बसे तारे चरन छे ॥४॥

हो भलो तुम नंद नंदन लाल छे।
मुजे गाँवडी बताव छे ॥१॥
आगल पीछल ध्यान मे आवछे।
मंगल नाम तोरा मैं गाव छे ॥२॥
तारो सुंदर रूप मोरे मन छे,
प्रीत लगी कान्हा हम छे ॥३॥
एका जनार्दन तोरे नाम छे।
गामत ध्यावत हृदय में छे ॥४॥

यहाँ की वात नहीं मेरी आवछे।
तोरे चरण कमल मैं ध्याव छे ॥१॥
सुंदर तु नंद नंदन लाल छे।
गलां शोभे वैजयंती मालछे ॥२॥

पीत पीतांबर घोंगरी याछे।
गोपाल नाचती तोरे सात छे ।।३।।
एका जनाईनीं रखत गावडी छे।
चित्त जडे मोरे बावड़ी छे ।।४।।

देखे देखे गे जशोदा माय छे
तोरे छोरीयानें मुजे गारी देव छे ।।१।।
जमुना के पनीया में ज्यावछे
वीच मील के घागरीया फोड़ छे ।।२।।
मैंने ज्याके हात पकर छे
देखे आपही रोव छे ।।३।।
एका जनार्दन गुन गाव छे
फेर जनम नहीं आवछे ।।४।।

देवरे देवरे मोरी घागरीया लाल छे
मैं बोलुंगी जेसोदा माय छे ।।१।।
मत रहो नंद के गाम छे
तारो भीड़ नहीं मारो काम छे ।।२।।
आकर पकरीया मोरे आँग छे
मैं लाजे न आइगे मा आब छे ।।३।।
एका जनार्दन नी तोरे पुत्र ने हमछे
फजीती ने मानली आइछे ।।४।।

मैं ज्यावगी छोरकर तोरे गांव छे
तूँ खोरी मतकर मोरे लाल छे ।।१।।
मोरे घर तू आकर लाल छे
माखन चुरावत अपने हात छे ।।२।।

मैं कहुँगी तोरे मात छे
किसन ने चोरी करी मोरी घरछे ।।३।।
कहे एका जनार्दन लाल छे
चरन पकरू मी तुमछे ।।४।।

माई मोरे घर आयो शाम छे
गावढ़ी छोडी मोरे मन छे ।।१।।
दधि दुध माखन चुरावे हम छे
छोकरीया खिलावन देव छे ।।२।।
मारी सुसोवन लागी छे
बालन उनके पकड़ लीन छे ।।३।।
एका जनार्दन थारो छोरे छे
बेड़ लगाये माई हम छे ।।४।।

हमें आपले सोवते घर छ
रात आयो धागे शाम छे ।।१।।
मारी वेनी पकड़ करी हात छे
दाड़ी बाँधी गाठ छे ।।२।।
मोरी घागरीया फोर छे
भागन गयो आप घर छे ।।३।।
एका जनार्दनी तोरे शाम छे
मोरो संसार को नाश छे ।।४।।

अव्वल याद करो वस्ताद की,
गुरु पीर पैगम्बर की, और याद करो करतार की
जिन्ने मंडान पैदा किया है, अव्वल देखो ये कथा, उसे नाम न था
नाम दरम्याने पैदा हुआ, चल चल चल, .
एक सो दोन, दो सो तीन, तीन सो चार, चार सो पांच,
पांच सो पचीस, पचीस सो छतीस बनाया है
छतीस का भी एक हया है, सो गुरु गारूड़ी की याद है ।
और देखो कैसा खेल बनाया है ।
चल चल चल क्रोध का विच्चु बाहेर काढ़ा
उसका बीख शिरकु चाढ़ा, जपी तपी संन्यासी को खोड़ तोड़
समज के देखो रे विच्चु ने नांगी मारा रे
छनन न न कहने लगा, चल चल चल ये देखो बाहेर निकला
काम विषय का साप, तमाशा देखो मेरे बाप
बिनंदा तोसै काटे आपे आपे, अरे रे रे रे, काटा रे, काटा
नजर ध्यान करो रे नजर ध्यान करो
सो साप दूर करे, चल चल चल, ये देखो ममता नागन आयी रे भाईभाई
तिने लो डंख मारा रे मारा, ठ न न न न
भागो रे भाई भागो, दवड़ो रे, दवड़ो रे गुरू के चरण पर दवड़ो
तो ऐसा करूँ की गुरू के पाँव कबी न छोड़ो
व्हां कोई का न चले, ममता नागन का जरूर बुरा है
वो कैसी चलती है सो बड़े-से-बड़े लड़ते हैं।
वो न लढ़े ऐसी हिकमत बताऊं तुमकू सुनो रे भाई सुनो
गुरू पीर के हात का मोहरा, तुम्हारे हाथ चढ़ दुने दारा
तो नागन का तुटे धारा, सो कबी आवने नहीं पावे
मना मनशा साप करो, शांती पेटारे मे वुसुकु डारे रे भाई डारो
बाहेरे तो विवेक शिक्का मारो,
ईस दोनो भु बेकु, ऐसा करो के गुरु के चरन पर,
रात और दिन खेलो, जनार्दन गुरु गारुड़ी के पास

व्हाँ तुम करो खेल, खेलते-खेलते हो जायेगा अलक्ष आछेल
एका हाँडी बाग कुं दिया खेला, सो हो गया अलस खेल

आदि पुरुप निराधार की याद कर
मेरे गुरु परवरदिगार की याद कर, जिन्ने अजब बनायी
उस वस्ताद की याद कर, गैबी खजीना हामना दिया,
उस साहेब की याद कर, संत महंत की याद कर
गुणी गुणवंत की याद कर, जोग, जुगत का बाँधा तोड़ा
शम दम का सीर पर जमला छोड़ा, समता जोही सुहावे तुरा
गुरु गारुड़ी वीर पुरा ।।
नैन चीर के पैन्ही मुद्रा, कान फाड़के खाये निद्रा,
अनुहात ध्वनी धुनक बाजे, नाग सुर धुनक गर्जे
चल चल चल, निरंजन जंगल के जिवड़े,
खेलना हो तो उलट दृष्टि से खेल ।।
आबी करूँगा तेरा तमाशा, पैल तेरी भुंढी काटूंगा
साप सब भुले बिचु किड़े प्रपंच के कोठरी में आके पड़े,
बडे-बड़े ज़ानवर पाले, हारे लाल सफेत
उजले काले, पिले भले बे भला, हाँडी बाग
अभिमान जिवड़े, झुट मुट चिपीच लढ़े,
नहिँ कहूँ तो ब्रह्माँड काटने दोरे, देखो मिया हाय, हाय, हाय, डंखमारा
बे डंखमारा, सो बड़ बड़े कु नहीं उतारा
देखो मिया बाजेगिरी का खेल, हॉडी बाग बड़ा आलबेला
हात हलावे पाँव हालावे भाले भोले लोक भुलावे
आबे हाँडी बाग बाप बड़ा क्या बेय बड़ा
बेटे आगे बाप खड़ा, गुरु बड़ा क्या चेला बड़ा
चेले आगे गुरु खड़ा, चेला तो प्रेम महल पर चढ़ा
धनि बड़ा क्या चाकर बड़ा, चाकर आगे धनी खड़ा

सास बड़ी क्या बहु बड़ी, बहु आगे सास खड़ी
बिवी बड़ी क्या बाँदी बड़ी, बाँदी आगे बिवी खड़ी ।
निराधार की लेकर छड़ी, बिबी खसम की छाती पर चढ़ी
तैं बड़ा क्या मैं बड़ा मेरे आगे तैं खड़ा
तैं नहीं मैं नहीं आलम छाया मेरे गुरु
ग्यानी कुं ग्यान लगाऊँ लोभे अंधे को उड़ावु
फुंक मारु तो जा जा जा, बोध के पहाड़ पर जा
बच्या जाहाँ आता नहीं ताहाँ ज्या
मेरे सदगुरु दाता—कु शरन ज्या
मेरे सदगुरु दाता की इतनी सि लकरी
मूम अंतर हात मो पकरी
जीदर दौरा ऊदर दौरी, फेर देखे तो मेरी मेरे साट
देख अबी करुँगा खबूतर का तमाशा
बिन पर से उड़ता है कैसा
खेल खेलते अविद्ये के खलिते में घुसा
बाहेर कैसे आवेगा
आब बे आव बाहेरे आव
जिसे नहीं हात नहीं पाव
जिसे नहीं गाँव न ठाँव
जिसे नहीं रूप रेखा गाँव
भावना अभाव कछु नहीं
घिरे-घिरे तेरा बी मंतर बोलूं
लिंग देव की गाँव खोलूँ
एक बार ऐसा खेल खेलूँ कि मेरे बड़े बड़े खेले थे
हा तो एक दो के तीन, तीन के चार, चार के पाँच
पाँच के पचीस, पचीस के छत्तीस
छत्तीस का एक
एक बी नहीं तो एका जनार्दन देख ।।१।।

चल चल चल, निरजन जंगल का आया खिलारी
लिया हात में खेल पेटारी, काली कल वाहा भी डारी
सबक मुसा साब घुसारी, हा हा हा हा हा चुप बैठ
चुप बैठ नहीं हूँ नहीं, कछु नाद बिंदु कला जोती
आदी मदी अंती कछु नहीं, चुप बैठ, चुप बैठ
आपने जागा चुप बैठ, कहना तो कहना मन
ही बैठे आराम, आलख मो लख-लख मो आलख
तो होना एक लख-लख, ए हुन्नर मेरे गुरु पखें बताया
आहाँ ब्रह्म मैदान छोटे में बड़ा भारी और बाजेगर खड़ा
ठो ठो ठो ठो सोहो सोहो, ढोल पीटते हैं
नाथ गारुड़ी बीरपुरा है ! ओ खेल का वो खेल करत है
और प्रेम पोगड़ा हाँडी बाग बड़ा हार्द है।
अबे हाँडी बाग तू क्या-क्या बता शीको है
बाबा मैंने तो खेल का खेल गट करा है।
और हाँडौ बाग तो आया जी, तूँ क्या-क्या खेल सोको (शीको) है
और कुछ खेल खेलेगा, तो आहा जी
गुरु पीर पैगम्बर की याद कर
तो आहा जी, नजर कर, नजर कर नजर कर
ज्याके व्हाँ सबके आखेर होत है।
उसमें सबकी पैदास है।
चल चल चल ये देख राधा
मावशी तेरे से नचत है, क्या क्या खेल तेरे से करत है।
ले इसे बे डारूँ, और ऐसा खेल खेलूँ के
हमारे बड़े बड़े खेलते है।
ये देखो हीरे की खानि निकलत है।
अवल्ल फतरा, फेर हिरा, फेर देखो कतरा का कतरा
तीन लोक कुँ बुजे नहीं, समज पड़ के गत्या होत नहीं
सौंसार के बाजार में बड़े-बड़े डूबते हैं।

ये देखो रुपया बनते हैं
आघल एक, एक के दोन, दोन के तीन, तीन के चार
चार के पाँच, पाँच के पचीस बनाया, पाँच पाँच मिल गये

आकेल का अकेला रह्या, चल चल चल
निरंजन से बड़ा आया, ब्रह्म मवजी बड़ा निखारत है।
फड़ाके मजथम से घुस घुस फुस फुस करत है
ले इसे बे डारू और ऐसा खेल खेलू
ओ खेल को बड़े बड़े दाता देखते हैं
चल चल चल चौपड़ी के पोगड़े
बड़्या बड़्या बात्याँ करता है, बड़े बड़े तो आ गये
तेरा ही ब्रीद छीन लेऊंगा
तेरे भूपर मारूँगा, तेरी म्हातारी रोवेगी
ये तु भेदर तो देख भला, आ ल ल ल ल
सब जगों में उज्याला, मैं आप अपने से भुला
ए कछू नहीं देख, ये हुन्नेर, ये हुन्नेर तो सबसे अच्चा है।
चल चल चल, अव्वल एक, एक के दो
दो के तीन, तीने के चार, चार के पाँच
पाँच के पचीस, पचीस के छत्तीस
छत्तीस के चालीस, चालीस के ऐशी
ए कछू नहीं देख
एका जनार्दन के पाँव पकड़ कर बैठा है।
सदो दित नाम गावत है।

भला संतन का संग
खावे बोधन की भंग
सदा अनंद मौ दंग, ऐसा मलंग फकीर ।।
ग्यान के मैदान खड़े
सम दम में आन लड़े
बहोतां के तखत चड़े ऐसा मलंग फकीर ।।
किया संतन का दुमाल मेरा तुटा जंजाल
ऐसा एक नाथ कंगाल, ऐसा मलंग फकीर ।।

देखो रे सांई, देखो रे सांई
विट पर खड़ा रहिया भाई ।।
फकीर मौला सब दुनिया का नाम विट्ठल साचा
बड़े बड़े भगत आवे, बोल बाला बाच्या
सिद्धन साधन कोई नहीं जाणो, जाणो विट्ठ साँई
एका जनार्दन होरी पुकारे, थांके पायी ।।

दिल मो याद करो रे
जनम को सारथक करोरे ।।
सारे दीन करत पेट खातर धंदा
विट्ठल नाम लेवत नहीं केंवरे तू गधा ।।
जम का सोटा बाजे पीठ पर,
कोई नहीं आवे सात
एका जनार्दन नाम पुकारे
करो हरी नाम बात ।।

हजरत मौला मौला,
सब दुनिया पालन वाला ॥
सब घटमो सांई विराजे,
करत हय बोल वाला ॥
गरीब नवाजे मैं गरीब तोरा
तेरे चरन कु रतवाला ॥
अपना साती समज के लेना
सलील वोही अल्ला ॥
जीन रूप से है जगत पसारा
वोही सल्लाल अल्ला ॥
एका जनार्दनी निजबद अल्ला
आसल वोही चिर पर अल्ला ॥

पंच तत्व का शोध करीयो
मूल बंध अंकुश खोजीओ
पाँच पाँच के पचीस पचीयो
ग्यान ध्यान सो धीर मच्याई ॥
फकीर हय भाई ॥ध्रुव॥
गले मैं सेली हात मे झोली
अनहत लंगर नाम के पोली
गुरु ग्यान मन से झोली
आशा छोड़ धीर न छांड़ीयो ॥

दील को हमने पछाना बे,
कायकु सोंग बताना बे ॥
जीदर उदर देखो भरीयो सब घटा,
अल्ला अल्ला करकर खावन मागे मीठा ॥
एका जनार्दन पग धरत है
कहौ कहौ बीठल अल्ला ॥

सफेद कलंदर फकीर
बाबा सफेद कलंदर फकीर
काम क्रोध मद मत्सर काटो
उन्मनी ज्या घर बैठो
मारो आसन बैठो
त्रिकुट पर करतार की जिकीर ।।
अंदर भगवा कियो री बाबा
जोग जुगतु भरपाई
अल्ला के नाम पर लगन लगाई
चुकी कलम पर लिखीर ।।
ऐशी फकीर की छोरी
बाबा जात कूल सब तारी
जनार्दन का एका कहत हैं साधो
सीता राम गुरु पीर ।।

हुषियार बंदे हुषियार, तेरा तन खबरदार
तुझे खिलावत एक नार, बतादेव, सतरावी, धरपाई है ।।
बड़े बड़े साधू संत, उनसे करले एकांत
बतादेव सिद्धांत आदि अंत उनो का ।।
बड़ी तो सबसे बड़ी, जाड़ी तो धरती से जाड़ी
एकवीस खन्न की माड़ी, गगन बीच में खड़ी है ।।
दसवे हार झरोखा, देखले दिदार उनोका
नैन दीन लगावै ।।

ब्रह्मा विष्णु बड़े देव, अजब गुरु ग्यानी महादेव
पाहिये उनो की ठेव, बैठ के जग झुलाई है ।।
अलख पुरुष की धुनी, तूर्या चेत रही उन्मनी
नहीं आदि अंत पुरानी, पन्नी महाकरण रूप है ।।

अहं नाद निःशब्दों यों, सोस लगाई ये चष्म यों
चुनक है मसूर यों, झक झक झकाकात हे ।।
लख लखाट हिरे की खान, चकचकाट को भान
निशि दिन करत न ध्यान, ग्यान बहोत आयेगे ।।
दिल रिझे तो करले धंदा
एका जनार्दन का बंदा, चुप सोने सो बताई है ।।

गुरु का मुंडा, बड़ा गुंडा चीप की कहे बात
सुननवाले बहेरे बाबा, दिन की करे रात ।।
सोही एक मुन्डा जेवें आव रूप धुंडा,
और क्या कहूँ जादा करो बेद लुंडा ।।
आपनी आपनी राहा चले दिलकु करे पाख
तनक मनन सटोना, मु मे पड़ेगी खाक ।।
खलक म्याने मरिये खुदा नई जुदा कोय
एका जनार्दन का बंदा जनन मरन खोय ।।

दिल की गांठ खोलो, यारो नाम बोलो ।।
कुइ नहीं आव सात, मुंडे कायकु करे बात ।।
जोरु लरके मा बाप, सब पसारे हात ।।
हत्ति घोड़े पालख मेना, नहि आवे सात ।।
दो दीन का बाजार यारो, कायकु करता बात ।।
झुटी काया, झुटी माया, झुटा सब दीन रात ।।
एक जानर्दन बोले भाई, कोई नहीं आवे सात ।।

पल खम्यानें चार जुग ज्यावे
तन की नहीं भाई बात
देख मुंडे देख, आपना नफा मुँडे देख ।।ध्रु०।।
कृत नेत द्वापार का कलयुग का मोठा
चार जुग मुफ्त गमावे आया, मुदल सो तोटा ।।

कलयुग में राम बीना तरला कोई देख
आलख आलख सब पुकारे
आलख नहीं कुई देखो ॥
जपी तपी संन्यासी पेट खातर फिरते
आसन छांड़ आलख पुकारे, पेट से सब मरते ॥
फकीर मौला ब्रह्मन गुंसाई
सबही आलख पुकारे
आलख में लख नहीं केंव आलख पुकारे ॥
एका जनार्दन साचा कहे, आलख बिठल सार
देख मुंढ़े अपना नफा करो नाम उच्चार ॥

लखो बुलबुल है, दावोजी मुबारखो ॥ध्रु०॥
झुटा तेरा जप, भात रोटी गप
सद गुरु में छप
तुझे काल करेगा गप ॥
लगो मुख लिया नाम, आदंर भरा है काम
ऐसा केव हुआ बेकाम, तुझ काहां मिलेगा राम
मोकूं आगकूं लगाया राख, दिल मो नापाक
ऐसा देखे लख, एका जनार्दनीं देखा ॥३॥

हम तो जोगी रे बाबा संजोगी ॥ध्रु०॥
बहुत दीन के पुराने
बिरला बूझे कोई लाखों में, गुरु साहेब जाने ॥
जपका जोगी, तप का जोगीना, जोगी जुग जुग जीवे
हात मो प्याला लिया प्रेम का भर भर पीवे ॥
जोगी कु धुंडत जोगया कीरो लखे नहीं पाया
एका जनार्दन कृपा सो जोगी, पकर ही लाया ॥

अलख निरंजन नानक आया
नेकी करणा आछा है ॥
फेक पैसा फेक यारो, फेक के पेसा फेक ॥ ध्रु० ॥
माया झोली निरगुण सैली नाम माला जपता है ॥
समकी टोपी, दमकी कफनी ।
त्रिगुन बभूत चढ़ाई है ॥
जीव शीव दोनो कुंडल पेन्हे
अन्हत टिपरी बजावत है ॥
काम क्रोध की गर्दन मारी
बोध खंडा झलकत है ॥
प्रेम कटारी लियो हात में
लवंडी माया डरती है ॥
वैराग्य माला पड़े उजाला
संसार मो तो फत्तर है ॥
तो भवन मो सौदा बेंचे
आशा मनशा धरता है ॥
फेर चौया-यांशी आयी यारो
भू पर जूता खाता है ॥
चारो बरन मो ब्रम्हन बड़ा
घर घर कथा करता है ॥
नाम बेच कर दाम लेवे
उसकी करनी हराम है ॥

फकीर होकर फिकीर करता
उसका मूं काला है ॥
नाथ पँथ की मुद्रा डाली
जग में सिंगी बजावत है ॥
सिंगी नाद कुं औरत भूला
बोबी लवंडा झूठा है ॥

सन्यास लिया आशा बढ़ाया
मीठा खाना मंगता है ।।
भुल गया अल्ला का नाम यारो
ज्यंम का सोटा बजता है ।।
शेटेसावकार माल खजीना
उनमें मगन रेहेता है ।।
जोरु लड़के कोई नहीं साती
आखेर भूमे मट्टी है ।।
मान भाव बने वो काला पैने
छान कर पानी पीता है ।।
आत्मज्ञान कूं चोर लुटत हैं
वो बी सच्चा गद्धा है ।।
शंख बजावत जंगम आया
घर घर लेकर फिरता है ।।
पेट खातर शिव कू बेचे
वोबी लवंडा कुत्ता है ।।
गोसावी बड़ा भगवा आवे
जटा बढ़ा कर रहेता है ।।
साहा चोर कु जागा देकर
उसके फंद में फिरता है ।।
साहा फेंके सो साहु बनेगा
नहीं तो सारो गव्हार है ।।
फेक आशा फेक मनशा
निंदा फेंके सो जोगी है ।।

परधन फेंक दुजी औरत फेंक
न फेंके सो चांडाल है ।।
दंभमान फेंक मोपन फेंक
न फेंके सो नकटा आंधा है ।।

साही शास्त्र अठरा पुराण
चारों बेद पढ़ता है ॥
मां बाप तो कासी तीरथ
उसकूँ गाली देता है ॥
साधु संत घर कु आए
उसकूं तेड़ा बोलता है ॥
दीवाना उनका बाप यारो
हाथ जोड़ कर रहेता है ॥
नाम अल्ला कथा सुन्ने की
वा मुरगी का सोता है ॥
काम का कुत्ता कसबीन धरम
सारा रात दीन जगता है ॥
इस दुनिया में आया बंदे
अल्ला नाम का सौदा है ॥
एक दिन आना एक दिन जाना
दो दिन का सब बाजार है ॥
इस नगरी में सेटे सावकार
बड़े मतलबी रहते हैं ॥
नाम की जोड़ी करले यारो
चोयान्यांशी बेड़ी तुटती है ॥
तेरे नगरी में नानक आया
पैसा टक्का कूच मंगता नहीं है ॥
भक्ती रोटी भाव का सालन
देना मेरे कू सच्चा है ॥
एक जनार्दनी शाही हमारा
नानक उनका बन्दा है ॥
मौत निशानी लिया हात मो
बैकुण्ठ धाम पढ़ता है ॥

सिर में टोपी, गले में सैली, कफनी डाला देख ।।
फेक दाम फेक, मुजे फेक दाम फेक ।।धृ०।।
निराकार नाम एक, हमने लिया भेक ।।
सोहं की वो नौबत बाजे, बिरला ज्याने एक ।।
शम दम के तौ सोटे बाजे, कुफर भागा देख ।।
वड़ानुग्रह देतां नहीं, नसकु फत्तर देख ।।
बड़ा सूम बोले नहीं, जुता खड़ा देख ।।
घुस आया कपड़ा जलाया, आग लगी देख ।।
ग्यानोबा ग्यानो का घर, गले मो सैली सिंगी देख ।।
पैठण में तो मुजे बेद, रेड़ा बुलावे देख ।।
पैठण होकर घर कूं चले, पशु कु समाद दीया देख ।।
ग्यानोबा विष्णु का अवतार, दरवाजे सुन्न का दिंदल देख ।।

निवृति अवतार बाबा आदम का,
पहाड़ मौ समाद लिया देख ।।
सोपान देव ब्रह्मा भया,
भागीर्थी लाया देख ।।
चांगदेव तो मिलने आया,
दिवाल चलाया देख ।।
और नानक नामा दरजी,
देव भुलाया देख ।।
और नानक कबीर हुआ,
दूजा कमाल देख ।।
बड़े नानक सांवता माली,
पेट चिरा देख ।।
और न नानक सज्जन कसाई,
भजने कू साल-ग्राम देख ।।
गोरोबा कुंभार नानक हुवा,
हात तोड़े देख ।।

नानका घर, दादू पिंजारी,
नाम जपता एक ॥
एक नानक प्रल्हाद हुवा,
बाप कु मरवाया देख ॥
नानक का घर विभीषण हुवा,
कुल डुबाया देख ॥
और नानक विसोवा खेचर,
तन के शाम देख॥
बड़े शहाणे नरहरी सोनार,
सोर पर लिंग देख ॥
रोहिदास चंभार सब कुछ जाने,
कठोर गंगा देख॥
सेना नानक पूजा करिता,
देवने धोकटी लिया देख ॥
चोखोबा ने देव बटलाया
शिवाल पकड़ी देख ॥
ऐसे नानक बहुत हुवे,
अंत न लागे देख ॥
ऐसे नानक नाम जपके,
बैकुण्ठ जावे देख ॥
कासी, गया, प्रयाग गया
कर्वत लिया देख ॥
मथुरा गया, द्वारका गया,
छापा लिया देख ॥
उसका नाम लेवे नहीं तो,
दोश लागे देख ॥
उसके नाम चढ़के बैकुण्ठ चढ़े देख,
एकनाथ तो एकहि जाने,
एका जनार्दनी देख ॥

अल्ला रखेगा वैसा भी रहना,
मौला रखेगा, वैसा भी रहना ।।ध्रु०।।
कोई दिन सिर पर छतर उड़ावै,
कोई दिन सर पर घड़ा चढ़ावै ।।
कोई दिन तुरंग ऊपर चढ़ावे,
कोई दिन पाव से खासा चलावे ।।अल्ला।।
कोई दिन शक्कर दूध मलीदा
कोई दिन अल्ला भारत गदा
कोई दिन सेवक हात जोड़ खड़े ।
कोई दिन नजीक न आवे धेड़े ।।अल्ला।।
कोई दिन राजा बड़ा अधिकारी
एक दिन होये कंगाल भिकारी
एका जनार्दन कहत करतारी
गाफल केंव करता मगरूरी ।।

माया भांडि सुनो जी, आछा भांड बनोजी ।।ध्रु०।।
ब्रह्मदेव ने वेद पढ़ाया,
माया मीठी लागी
सरस्वती के गले पड़ा
उसकी कीरत भागी ।।
विष्णु के पीछे लगा है माया का धंदा
खेल करते फिसल पड़ी, मीठी लागी वृंदा ।।
महादेव बड़ा देव, सब देवन का बाबा,
भिल्लनी के पोछे लगा करता तोबा, तोबा ।।
सीता की चोरी करी,
रावन कूं धक्का
हनूमान ने नंगी करके,
जला दी लंका ।।

विश्वामित्र तप करे भये अनुरागी,
मेनका से वश भये हुवी धूलधानी ।।
सोला सहस्र नारी कान्हा गोकुल में खेले,
राधिका कूं छोड़के रीसनी कूं भूले ।।
जनार्दन साँई मेरा सब खेल खेला,
एक नाथ भाँड होके उनका चरण मिला ।।

हुआ भांड माया छांड,
एक संग पकड़ा ।
जोरु लड़के मा बाप, सबकू बस करा ।।
सबसे हुवा न्यारा
मुजे हुवा प्यारा ।।ध्रुव।।
खावे चिद बुंद की भंग,
मैं तो मगन हुवा दंग ।
छटक फटक टाली बाजे,
मूमे बाजे चंग ।
उपर तले अंदर भीतर,
सज्जन भरा पुरा ।।
चौक म्यानें आन खड़े देखत है रहा,
बड़े-बड़े वे फाम धरोधर यारा ।।
बेद नीती सब कोई जाने जाने किताब पुरा,
मां बेटी की सुद नहीं एक सीर मारा ।।
'हाम जपी, हाम जपी' चारो देश फिरा,
जमुना में लटा परी व्यास नाम धरा ।।

विसरा राम, भरा काम,
मागन लगा औरत
दौड़ों यार, किया जोर
लरकी नरकी घेरा ॥
बड़े हट्टी अंग पर छाटी,
एक पग खड़ा
देख माया खुसा खुसी,
डालन लगा घेरा ॥
आप चले मकान कु बिसारत करे कु
भरी मजलस हासा हासी
उतार दिया कुरा ॥
आप करते तप करते,
वोबो भुल पड़ा
इतर जनकी क्या विसात
छे जन कु मारा ॥
आगे आगे देख करनी
संग हुवा एका,
जनार्दन की मेहर हुवी
माधो कर धरा ॥

देख माया जद लगी
बावा आदम के पीछे,
कैलास छांड कर
स्मशान मो बैठे ॥
हम तो भांड भई
माया छांड दई ॥ध्रु.॥
विष्णु के पिछे मायन का धंदा
ब्रंदावन मो घुसा घुसो

मिठी लागी वृंदा ॥
ब्रह्मा बड़ा ब्रह्म खड़ा
चारो वेद पड़ा
अधर्म से रत हुवा एक सीर तोड़ा ॥
जपी तपी जंगल में बैठे
उनसे डाले घेरा
कुत्ताकुत्ती होके सब मुलुख फिरा ॥
बड़े हारी अंग पर छाटी
एक पाव खड़ा
जद माया पिछे लागी
किया तड़ा तोड़ा ॥
होकर भांड माया छांड
जनार्दन पाव मिला
एक जनार्दन का स्वामी सब खेल खेला ॥

अनन्त महाराज

प्रीत न तन की भावत मन मो,
नीत हरी की परगट जग मो।
भव मर माको कारज हरपे,
अकाम कामीं बानी तलपे।
हयरानी नहि, हय लय लागी,
दुबिधा सकल हि ममता भागी।
अनंत अनन्य भाव भगति को,
माधो अजात मन की भूको।

धुनक परत अब मुरलि की कानी,
फनकत मन मो रित निरबानी।
माधो महिमा लगाध साजे
निरजर मोही नाद समाजे।
पार न जिनको लागत वेदा,
जागत सोही छेदन भेदा।
निज जन माही अनंत राजी,
गात बिलासक भाव सदाजी।

कुंजबिहारी मो मन माही,
निज सुखदायी मंगल गायी।
कुंज बिहारी मो मन माही,
निसिदिन राही त्यज के धायी।

नित समुझायी दुविधा जायी,
निज सुख दायी मंगल गायी।
अलख कमायी विनय जगायी,
साजन सायी नहि बिसरायी।
अनंत पाया भाव सरीखो,
हरि-रस प्याला पीवत नीको।

संसरा को सुख भावत फीको,
गम हरि को नय लागत नीको।
जिनको सज्जन गावत निशिदिन,
तिन माही मो मोहन तन मन
अजरपनो को ठौर बतावे,
अधोगति दीन्ही मोर सुभावै।
अनंत जावत आवत नाहीं,
सोवत जागत गावत सांयी।

सुन सुन सुन सखि समता वारो,
मंगल गावत गीत सांवरो।
मुरली माही नाद जगावै,
अनुरागों की गम समजावै।
निज बोधाबिन परखनहारो,
नहि नहि जगमों नेह सांवरो।
होत बावरी जीय सुधारो,
अनंत प्यारो सब से न्यारो।

भयि मैं जोगनि पिय अनुरागी,
लगन लागी तबसे मति जागी।
अब भरमो को त्यजके धायी,
निज सुखदायी निशिदिन गायी।
मन समजायी मन के न्यायी,
कुंवर कन्हायी की गत पायो।
आदि अंत भव खंति निवारे,
सोही ताकु पंथ सुधारे।
अनंत आपत काल सुभावै,
गावत मंगल गीत प्रभावै।

पिय के खातर मति अनुरागी,
सुख सुहागनि चैतन जागी।
निज लय लागी भव गति भागी,
दुबिधा जग की सब ही त्यागी।
तन की सुद नहि इह संसारी,
सब से न्यारी हरि की प्यारी।
अनंत बिघरी सोहि सुधारी,
हरि नामो की महिमा भारी।

नहि हूँ भोगी नहि हूँ त्यागी,
सोवत नहि हूँ नहि हूँ जागी।
नहि भव रोगी विरह वियोगी,
निजलय लागी पियसे जोगी।
गति सम जायी अजरपनो की,
पर हूँ मैं अब इह परलोकी।
अनंत गावत अपनो माही,
दुबिधा त्यज के सबको सांही।

काय कू मोहन प्रीत लगायी,
सकल बिधारी जगत कमायी।
तुम बिन अबि मैं बिरह वियोगी,
गावत निसिदिन नय संजोगी।
भावत नाही जग माही दूजा,
तुम बिन कौनहि सकल समूजा।
अनंत पीया होइ न न्यारो,
नेह हमारो तूँ हि समारो।

जागत सोवत सो मैं जानत,
सपन सुहावत सोही मानत।
तीनों पनसो है मैं न्यारो,
आप आपनो माही प्यारो।
ग्यान ध्यान की मो नहि आसा,
मो मै है सब जग परकासा।
अजरामर की मो नहि जानत,
अनंत मंगल अच्युत गावत।
लाग्यो मीठो नेय पिया को,
फीको भावत भाव जिया को। (क)
दियो सुबोध सतगुरु सोही,
करत जगत सो गति निरमोही। (ख)
निज हितकारी जाकी बानी,
सुन के आसा है त्यजि जानी।
अनंत वारी जाउ पग पर,
संत सुभाव महा है सब पर।

नहि जन मन मो मन मोहन मो,
काम न मोहन है जिह तनमो ।
त्यजि मैं आसा मोपन की सब,
किसन की छबि देख परी तब ।
अब नहि न्यारी होत पिया से,
अनन्य दरस सुभाव दियासे ।
पिय की मैं हूँ पीया प्यारी,
अनंत भक्ती भाव अधारी । (क)

नहि दुबिधा की भक्ती तन मो,
मो मन मो समतागम उगमो ।
कीन्हो माधो सँगती को जब,
होत फीको भव निज वैभव अब ।
प्रापत भयउ गति अविनासी,
प्राणपिया की प्रीत बिलासी ।
अनंत घटमो परघट सांथी,
सब घट न्यारो निज सुखदायो ।।

सुद्ध नयि पिय की बुध माही मो,
भव मो नहि रुचि प्रीत साही मो ।
ग्यान ध्यान नहि है मो माही,
बिरह विरागिन भाव सदाही ।
अबिनासी के प्रेम बिलासी,
हूँ अभिलासी निशिदिन दासी ।
होत न बासी प्रीत मनासी,
अनंत प्रापति अनुतावासी ।

सुन सुन संत बन तुमारा।
धन जग मो मन होत हमारा।
बोध तुमारो अजरामर को,
भागत मोको सुखकर नीको।
भगती गावत प्रेम जगावत,
मन समझावत आवत जावत।

नहिं देने को नहिं लेने कू,
सौदो मन को अनन्य वन को।
जग जीवन को नेह अजर को,
कोई बिरला जानत परखो। (क)
जिनको तिनकू अनंत जगमो,
परखन हारो चेतन तनमो।

जिय नहि पिय नहि शिव नहि सगती,
इह नहि तिह नहि इह गति जगती।
जगती गति इह शीव कि सगती,
पिय ताही जिय ताही तगती।
भाव भगति को परभाव भयो,
सुभाव संतन को प्रेम दयो।
अविनाशी को नाम पसारो,
अनंत गावत सारासारो।

गावत कान्हा कानन मो है,
मो मन मोहै जन सब सोवै।
नाद मचावत तीन लोक मो,
अवलोकन को आवत भव मो।

संतन मो सुद है निशिदिन मो,
आदि अंत नहि जिनके दिल मो।
जनम सुधार्यो मानवपन को,
अनंत सांवरो अजपापन को।

जनम मरन डर कुछ नहि मन मो,
नेह न मोरो इह जग मो।
लागो प्यारो सबको न्यारो,
अजित सांवरो भाव सुधारो।
अलख निरंजन दिन जनरंजन,
भव दुख भंजन बिचार मंजन।
अपने मन मो मो मिलवाया,
अनंत माया निशि बिलवाया।

जान पर्यो मनमाहीं ग्यान को,
निगम सांवरो नहि अग्यान को।
आस लगी है अतीत करारी,
पीय मिलन की आजे तयारी।
न्यारि न होके न्यारी मैं हूँ,
न्यारी न्यारी भव न्यारि हूँ।
प्यारी दिलीकी इह परलोकी,
नयन बिलोकी नाहिं भु लोको।
भोली ·मैं हूँ अनंत भोली,
अनन्य भगति मन मो डोली।

निशि दिन माही नेह लगाव,
मंगल मंगल भाव जगावै।
पतित सुधारे अपनी माही,
सब मो माधो अलख गुंसाही।
घट घट सोही परघट होयी,
देख देख जन लाज गमायी।
अनंत गायी गीत प्रीत सो,
विपरित मन के भाव न्याव सो।

अकथ कहानी साजन गावै,
जग विपरित मन पेम लगावै।
अंदर बाहिर पीतम प्यारा।
जागत सोवत होन न न्यारा।
अनंत लागी लय निज नैनी,
नैन को नैन सुहावत बैनी।

काहे कु थोरो गावत अपनो,
माधो नहि तुम जग को सपनो।
कौन न पूछे तुज कू जगमो,
सब जगमो तुम परि नहिँ उगमो।
सज्जन जानत बिचार तेरो,
सोही जगमो जगसो न्यारो।
अनंत गावत अभंग बानी,
अजर अमर गति लय निरबानी।

सुद बुद सबही हरि हरि हरि मोरी,
तन धन जन की प्रीती तोरी।
व्यापक सांयीं सब मो सोही,
सो मनमोहन मो मन मोही।
मोहन, मोहन को, संसारी,
सो हन नय सो लय कंसारीं।
हंसि हंसि बाता रोवत आवत,
ऐसो गावत धूंद मचावत।
अनंत पावत भावत तैसी,
नाहीं तफावत जैसी तैसी।

जाको नाहीं ठौर ठिकाना,
तांको नय लय संत मकाना।
नाम रूप नहिँ रंगत बांको,
खोज सुहावत संत सदा को।
ऐसो बांको भाव बिलासी,
जग सो न्यारो जग अभिलासी।
अनंत प्यारो बिचार लागै,
जनम मरन को डर सब भागै।

मो, मन, धोई, भाई, हराई,
सांयी खातर तनकि भराई।
नहिँ हयरानी भव दिलमानी,
मानत घट घट आत्म समानी।
रानि न राजा न सेट न रंका,
सत गुरु बचनें मिटउँ संका।

स्वातम भाती नीज प्रभातीं,
गून त्रैन की निकसी राती।
अनंत साखी बेद पुरानी,
जग बाहत है मोह पुरानी।

चरणों की आस रही बिसारत नहीं सही।
गुन गावै हरि हरि जग भावै हरि बिन कौन नहीं।
मति हरि आली आधि निगम हरी भास दिखाव मही।
अनंत परमारथ अरथ बिना भेट भई सुजन नहीं।

तुम बिन दिनानाथ मति अनाथ, जग विन मोहीं, माधव जी !
नर तनु पाई सार कमाई किन्ह चतुराई आतम जी।
सगुन समाजीं सहज बिराजी राजी सब मो राम सजी।
चीन्ह तिन्हीं सब घट की माया भेद गती कौ काम त्यजी।
अनेक पेकीं मिलाफ करके अनुभव बानी लाग सजी।
बाजी हारी काल कमाई गायी गिन अनुमोदन जी।
सो धनभागी अनंत उधार्यौ ये आत्म प्रेम, पा कर जी।

भजइउं मना कंसांतकबीर, मन समनारथ धीर।
नर नतु पाके सार्थक करले छोडो भव कि फिकीर।
हरिनाम गायौ सो नर दुर्लभ, भाव भगति अब नीर।
समता पावै भ्रम हरवावै, अनंत भाग समीर।

सातीं संतन अंत हटो, माया पंथ कटो।
सगुन समाजीं भयउं न राजी रागीं रंग लुटो।
सत सुमरन से काल गमावौ बाता भंग रटौ।
आतम सिद्धी अनंत बुद्धी समता कार पटौ।

पावन भगती के परकास शाम रमै अविनास।
करम प्रभावौ अवगम त्यजियो आगम भाव बिलास।
जा भव माहीं, जाग्रत मति नहिँ बिखय रहा अविनास।
अनंत साधन कछु नहिं जानत निज पग मों लगि आस।

समजावौ, दिल दिलमो, दिल सो।
भरमावौ मन मत या भवसों।
जो, घट माहीं, व्यापक, सोही, घट घटमों अगसो।
दूजा नहि कोइ समजे भाई, नाम जपो हरदम सो।
ताप मिटावौ जाग्रत भव को, अनंत गीत नीज वखो।

सोहे शाम किशोर भोरा, निज अंगन मो नाच नचावें,
रहा बतलावै अघोर।
मंजुल गावै, तान सुनावै, नीगम की कीन्हीं भोर।
अनंत अनुभव स्वानंद प्रेमा, आतम गति निजठोर।

मोहन माधवजी मनका सनकादिक न नेमित मनका।
बालमिक नारद आदर भावै लेत अनूभव जीवन का।
जाकी कीरत बेद बखानी, नाम सनातन आलमका।
अनंत चरनी नीज सुभागी, निशिदिन जागत नीका।

सतगुरु घर का भयउ गुलाम, तबसे नेह सलाम।
येलम अलम का कलमकर डार्‍यो, बलभद सगुन हराम।
जागत जंगम जागरती त्यज, पाय मनोथ अकाम।
अनंत अधिपत असूर अलखित अगम अनूभव अराम।

संतो, संतोष संग अमंग, कर लो अंत असंग।
अमूरत आतम अनुभव आगम रम्यो अरंग तरंग।
मांगत मति को मान समारथ दूर पाखंड मलंग।
अनंत कलिंदन लीन दलीन मलि, भास, करहुँ, भंग।

जाने हैं, बहुदूर मारग मिलै न सत संगति बिन, लगी मतिमो हुर हूर।
बिकट, निपटकी, कठिन कमाई, जाको लच्छ चतूर।
अनंत, पराक्रम, हरउँ, सकलही, भाव गती भरपूर।

करुणा के सागर कौ मन तुम, भज-भज मंगल गित गावौ।
छोड़ो अभिमान बिनती सुन मोरी जोरित पानी समजावौ।
मान तनोका मनसे जीतो भवगति सबही हरवावौ।
धीरज राखौ निढल पनोसे घट घट येकी जगवावौ।
रज करदम से पार परोरे निजसुख अपना मिलवावौ।
फैर न ऐसो डाव बनेगी मानव तनुको परभावौ।
अनंत शांति संत संग धत्ती बनि बनवाई समजावौ।

मोहे प्यारे, नंदजि लाल, गुपाल संतन पाल।
शाम सुंदरा मान हंसी पतितन के किरपाल।
अभेद भगती शांती सोहे गर नो है वनमाल।
अनंत अनुभव निजकौ प्रेमा छूटो भव विकराल।

दिल की दिलमो रहि गयी बात, अबि है बनि परभात।
ग्यान रैन की रहा छुपाई, साजन की मिलकात।
काम क्रोध मद दंभ लोभ मद निसिचर सब छुप जात।
अनंत आतम अनुभव नीती नीगम भाव अज्ञात।

सोहो ब्रह्म सनाथ जगाय, सब घट माहीं समाय।
समभावन की बडि चतुराई जनम जनम की कमाय।
आतम जोती तुर्या भाती, गून निसी हरवाय।
अनंत संतन सतभावों से निज गति प्रेम नवाय।

जागो रे जोगियो जगमाहीं, मनको मनसे समझाई।
मत भुल जड़सो बढ़त भरम मति मोह लोग मदधायी।
कटन परायी निहावन भाई अंत कु दु:ख मिलाई।
अंत आदि बिन आतम घट घट नाम रूप बिन सांही।
अनंत सिंधु अनुभव लहरी सहजपनें झुलवाई।

भेक अनेकनमों हरि एक, नेह बनों निज लेख।
कोहि नहिँ दूजो अंतर खोजो आगम रूप अलेख।
निरगुन नहिँ है सगुन नहीं है येक अनेक।
सहजपनो का खेल अनंती आतम भाव समेक।

गनपत के मनमों निजध्यान सबके आगे मान।
बिघन विनासक बुद्धि प्रकासक गति जाकी निरवान।
सुख सागर को बनी है निरमल भाव सुजान।
अनंत आत्मा अगुना सगुना कृति मो हरि अभिमान।

सत संगत से पार परो भवमद सबहि झरो।
जगजीवन मो उगमो निगमो अभेद भाव भरो।
निरमल गावौ मुख से नामा अभिमति भान हरो।
सहज पनो मो समतानंतीं सदचिद प्रेम झरो।

जगमो काल अकाल भयो जिसमन भावै समता उदयो ।
जगसो न्यारो निजनिरधारो भ्रम को नास कियो ।
आस नहीं है मनमों तनकी बिधि को भाव गयो ।
अतीकाल गति निजपगमाहीं अजरामृत प्रेम पियो ।

हरि हरि भज मन त्यज कुमत को सूमत यो है निजनिरवानी ।
दो दिन खातर भवके पासी जग भ्रमनामो है हयरानी ।
मानव मानी समतावानी सो नर दुर्लभ जिस बिध पानी ।
साधन धरमा त्यज सब करमा चरमा मोहे स्वातम हानी ।

प्रीत बनी मति माहीं पीतम,
नीत नयी अब निर्गुन नीगम ।
स्वातम तुर्या भाती उन्मन,
मोहे मोही जाग्रत ऊगम ।

सम तनमो मन अब करवाव निरमल हरिहर गाव ।
भाव निरामय राज निजासय अभाव सब हरवाव ।
आगम नीगम माहीं देखो आपहि आत्म स्वभाव।
अनंत घट घट खटपट त्यज के वीरगति परिहार ।

माधव गुन मों सगुनी रमजिय अनुभव स्वातय निजहित मो ।
सब घट अंतर वास विलासी मन मोहन हरि आगम मो।
स्वानंद भयऊं कारण अंतीं कारज करमीं गम निगमो ।
सतसंगत मो रम रहियोजी मौजी आपहि आपनमो ।
निंदा स्तुति जग छांडचलो तुम सहज पनों में मारग मो ।
समता बाणै तव वरि जानै जाग्रत जाग्रत काल नमो ।
सदगुरु भाखौ अनंत नामीं अनामधामीं बिसरामो ।

स्वातम भावो अर्थ जमावो अनर्थभव सब गमवावौ।
भोग त्यागमो घोर अंत को ठौर न पावै समझावौ।
ज्ञानाज्ञानी बहु हयरानी सहजपनो से हरि गावौ।
कारज करमीं बहुविध धर्मी त्रिपुटी साखी मलवावौ।
सबमे मिलके सबसे न्यारो हो जा अनूभव नव लावौं।
हम एक ज्ञानी हम येक ध्यानी हमपन मतको जिरववौ।
त्रिभुवन प्रति प्रभु अनंत माहीं भीक्षा काय कु मंगवावौ।

समज मनीमे करिजो अपना, ज्या भव माहीं नहीं भरोसों, काल गति सपना।
घडियाल जावै फिर नहिँ आवै निसिदिन मो हरि जपना।
भेदभाव में संकल्पगति देह भरोसे तपना।
सुंदर देही अजप पनों की मानवि चतुरपना।
अंति न आवै कछुही संगति दुरभदमों खपना।
स्वातम प्राप्ती साथसंगाती भरपाई बगना।
अनंत भवती माहिँ बिराजै लौकिक सो लपना।

साध कि संगत मिलवाई, नरतन माहीं किन्हि भरपाई।
रामधुनी लगि गून अगूनी, भवभरमो सब जायी।
जाको भावै सबघट समता दुरममता हरवाई।
ताप मिटा जो हाट हटाओ अनंत भाव कमाई।

पतितोद्धारक नरहरि नाम हारक भवगति काम।
दिन जग करुनाकर सगुना अगुनकला निजधाम।
अभेद भक्ती निज सुखदायी जा देहीं बिसराम।
अनंत स्वातम सागर लहरी नित्य नयी मतिचाम।

परम भई मति निरगुन पुरुखौं सगुनु कलावति अभेद भगती नित्य नयी तरकी।
स्थावर जंगम संगम माहीं कोहि नहीं परकी,
एक अनेकीं आतम पूरन है अजरामर की।
भेदभाव सों भ्रम भव आंखन काल गति चटकी,
मानव जनमीं जानै कोई जामति नहिँ नरकी।
सहज सुभावो अनंत गावै नितरत नागरकी,
संत संगती निरमल पानी लाग रही झटकी।

परम पुरुख निरबान हरी उदित भयउं समरी।
सदचित माहीं अनुभव सहजीं भाव भरी।
सब घट माही काक गती मो सोही काल हरी।
अकाल भजनी भुकाल दिनही अनंत बोध परी।

मो घर मो मोहन पावना, आया भाव संभावना।
अब मैं हरि बिन नाही न्यारी, हूँ नहि दुबिधा तावना।
निज गित गाबत, नीत पठावत, जन ना मरण हरावना।
अनंत माहीं सांगी निरंजन, तन मन रंजन भावना।

आगम पोडश पूरन निसिकर द्वादश नीगम मोर।
जाकी लीला वेद बखानी सो, ब्रजमो, शिरजोर।
अनंत गावै आतम भावै मोवक संसृति घोर।

निरगुन कौन भयो भय मो हरि, सुमरन बिन।
जोग जुगत सो नाहक हंस गयो।
मत अभिमानी भेद विवादी स्थुल मति भाव जियो।
अनंत जानौ सबमो राजी सो गुरु साच कियो।

भजन भरोसो येक जदुनाथ कोई नहीं आवत साथ।
मा बाप और कुटुंब मिलापी जब लग पैसा हाथ।
मोह, लोभ, मद, मोहिनी धारो, भव भरमो जियघात।
अनंत भावै, सो परमारथ, करले संतन सात।
अनंत भगती सहज अनादी स्वातम गति अबिचार।

जग सो जगमौजी जगचार अनेक गति अबिचार।
गून रैनमो जाग्रत सपनो निजको नहि हुं बिचार।
ग्यान ध्यान सब अभिमान बनो है, बिषय बिलास क जार।
जनन मरनमो तलफत प्रानी अनंत घनो घरचार।

मनवा कपट की लकटी लपेट भइ मति तापरमेट।
गुन रैन मो सम पस शाती कवि हौ, नहि भइ, मेट।
कूद परो रे निरमल डोही जामो अनुभव रेट।
अनंत संती गहिरी जमुना जसुमति बालक भेट।

हरि बिन भव कौन हरी, भ्रम माया करले सार्थक गुनिराया।
निसिदिनि गावौ मन समजावौ हरवावौ, मत, काया।
मोह लोभ में काल न, धोका नहिँ व्हाँ में सुख छाया।
अनंत जगावै निर्बानीसो, भगतो भाव सुपाया।

भावै ऐसी संगत भाई, मिलना प्यारे मन, पथ लाई।
नित्य नयो नय आतम अनपम निज सुख को बतलाई।
गूनातित गति भगती प्रेमा स्वानंद हाक भलाई।
बिन्मय करमीं धरम, समत, है संतन अदलाई।
तिरनापहको, ठौर हरायो बिचार कैसित तलाई।
सोही सतगुरु सोही चेला, सोही, तोहत लाई।
अनंत साथी अनंत माहीं अनंत संत मिलाई।

बाबा साहेब कैसी राम कीसन देखो राम।
देखो राम देखो शामा देखो भेखो राम।
घट घट के बिच चेतन सगती सोहै देखो राम।
अनंत रंगे संतन संगे भैंग भयो भव काम।

तीरत तुर्या को असनान करि, जो, सो, मसतान।
भव जंजाल भयो परिहारो कबहुँ नहीं हयरान।
गुनातित है गुन को साखी, भाकी बेद पुरान।
सत गुरु स्वामी अंतर जामीं अनंत भाव समान।

दिन निसि के बित हरि गुन गाते बार-बार मन समझाते।
सब घट वासी अनाम अनश्रुत स्वानुभवौ निजरस पाते ?
जनम मरन को धोका मीट्यो आतम अनुभव मिलवाते।
अनंत सागर निरमल जलसो सोहत अपार परमाते।

मेरा मन तुम बिन सूख नही भावै, पूरन काम परम धाम।
आतम सब माहि सम जगत अमित एक नाम नीसिदीन गावै।
भवति भास सबि हरास भेद मती भयउं नास निरंजनी नित्य बास।
नास भास जावै धन्य भाग अनूराग जासो नहि बेद माग।
सो अनंत सहज राग नीज लाग लगावै।

भाव गवालन गात हरी गवालन गात हरी।
मति जमुना के तिर सति जाके चाखे प्रेम जरी।
जग सब बासी भइउं उदासी प्यासी राग भरी।
अनंत शाती अभंग भाती राती काम हरी।

अघोर निजमो सोह रही मोह, बिसारी, आगम चारी।
काम कु भाव नही निज गति आतम नाथ जनार्दन एकाएक सही।
अनंत बानी निरमल पानी शांती ठोर यही।

काया मानव की धन भागी, निज खोज घनो गुन रागी।
गूना तितमो, लय लागी, समता भावै मन अनुरागी।
अनुभव प्रेमा आतम अंगी, आप आपिके सोहत संगी।
लख लखाट जोत बिरागी शांत दया भयऊँ अजि तांगी उदय प्रबोधी मती।
मती सत भागी अनंत हरदम भाव परागी।

गिरजानाथ सत धामा भव मोचनधन बिसरामा।
काम दहन गंगाधर शिवहर नित्य जगावै नामा।
सुरनर फनिपुर माही सतगुरु अगम अगोचर रामा।
अनंत सदया करऊं अभया निज आतम रामा।

साहेब के घर कौ सरदार स्वसुख रहा परदार।
अगम, अगोचर, गून लोक, पर भाव बन्यो निरधार।
ग्यान, अभव है, बिबेक संगा स्वातम, मोसुलदार।
अनंत स्थिरचर माही मानव काया मसुकदार।

खोज किन्हो आगमार्थ सोहि साच पारमार्थ।
गून भाव भगति आर्त जगहितार्थ बानी।
संत, दयावंत, धनी बोध नीज दानी।
स्वकिय धरम धारनार्थ उदित भयउं मति समार्थ।
निगम प्रभाव तारनार्थ, सार्थ देह मानी।
क्रम, अनंत, नित्य नयो भ्रम महंत भास जियो।
सबहि न्यास छोड दियो भयो भयदानी।

आली रिजे नहि सांवरो, जिय मेरो आजि भयो बावरो।
भयि मति वयरागी अनुतापें सदाचारी भेद तुरयो सेदकारी।
भव भोंवरो अभीमान धनी त्यजी भाव प्रेम संग कीजो।
लोक लाज आज तुट्यो नेह नावरो।
अनंत मती नित्य मान एका जनार्दनी ज्यान।
स्वातम सुखालय मान गुरु पियारो।

काल बितो तधि कोन जियो।
अभिमति रावन दशानन हार्यो।
निसिचर कोन जियो।
लिंग, त्रिकूटाचलपुर, लंका बिबिखन ठौर जियो।
जीय जियो नहिँ शीय जियो नहि स्वातम मोनजियो।
देव जियो नहि आवत जात नहिँ ऐसो, बोध जियो।
हूँ, न जियो तुम न, जियो, जिय जग द्योत जियो।
ऐसो स्वामी अनंत गोचर निज वर कंस जियो।

कोई बिरला जानै जोगिया, जोगि जागै जुगति सो जिया।
धन धन भाग जाके, तन मन माहीं राखे, खोज धनो नीज चाखे परम भोगिया।
अभिमान त्यज दिन्ही आप लागि चिन्ही
संत शांत संग किन्हों, नर तो जिया।
अनंत भाव येकायेकीं जनार्दन अलखाकी
आत्मान्भय नहि चाखी आंकी आखिया।

परमपदीं जीय रमे सम, कामजि उनकी राम रटे।
अंदर रामा बाहेर रामा रामहि रामा भाव नटे।
भ्रांति मुरे मन शांत भये जिय, आत्म प्रतीती हौर घटे।
भगती भुगती बात नहिँ मानै भगती प्यारो नाम झटे।
निसिदिनि गावै नेह लगावै स्वारथ पाव अंत मिटे।

राम कथा गावत है कोय, जिनकी समता होय।
जिनकु माया विखय बिखारी, ताप बनै सै सोय।
न मन को मनमो अनुभव उपजे स्वातम कारें तोय।

मोह लोभ मद मत्सर हरद्गद, तनको कसमल धोय।
सो येक सूजन सुमत आतम निजमो निजकौ खोय।
दुरलभ ग्यानी हन अभिमानी, पर नहिँ भावै लोय।
अनंत सिंधू अनुभव पूरन, कालातित भयि सोय।

सो येक ग्यानी चतुर सुजानी टार्यो है अभिमान।
मानत भवमो, आतम सुगमो, उगमो नीज निधान।
घट घट माहीं अलख गुसांयीं कबहुँ नहीं हयरान।
मान गुमानी नहिँ मनमानी मानी गुनगति रान।
सहज मुद्रा जोग समुद्रा, कटिका ब्रह्म समान।
भेद भावना जिनकू सपना, माहीं नहिँ तिल जान।
अनंत बंदी उनके फंदीं बलिहारी अवसान।

बनि किरपा जिनपर तोरी, सोही सोहत मान अघोरी।
पतित उधारा अमित उदारा, सूद रहो मति मोरी।
भव उर हारी अभिमतिकारी, मोह बुखारी थोरी।
अनंत आगम बसंत संगम, जंगम बुद्धि चकोरी।

कौन हरी हरिबिन भव बाधा, बिजय करी मति निज परकासा।
अबिनासा भ्रम तुम पुरुषोत्तम मांगत निज पग बासा।
आस पुरन कर दास करन भर, अजर सुभाव तमासा।
निरमल नित्यानंत समीत्या करि जी पूरन आसा।

सुख बरन न जाय कमाय सम, गमाय आगम धाय।
नाम परताप काम हर माप आप आपमों धाय।
सो अनुभव प्रेमारथ हरि भवभाव सुबोध उपाय।
जनम जनम के सुगम उगमके नीगम भाव कमाव।
जागत जोगी निजसुख भोगी, त्रिविध ताप बिसराय।
जमकी बाजी जीत जियो जी जीय जगावत न्याय।
अनंत आतम अलख विरामा भगती बोध कमाय।

सुखदायक प्रभु के गुन गाय, रैन दान कर धाय।
जा भव माहीं आन उपायी सबहि अखारथ जाय।
काम खलादिक काल हयरानी जानी नाहक जाय।
अनंत संगम मानव गेहीं साधन भाव उपाय।

गोकुल की सब कीसन लोभी, गोप लुगाई मोहभरी।
छोरी छोरी मिलके गोरी जोरित जोरी प्रेमजरी।
बिनघोरी मति दीन रैन सति गावत लाला स्थीर चरी।
तदरूप मानस मानत बस रस लै लाभत लाभकरी।
गुजरी जमुना के तट कान्हा, उजरी उजरी बात बरी।
अनंत संती शांती कांती प्रांती स्वातम खोज परी।
परिहार हरी संसृति माहीं गायी सदचिद गीतचरी।

समज भना मतलब अपना।
राम भजन कर सार मिलावौ नाहक जग सपना।
काल गति को गम नहि यारो छोरो छोरपना।
मोह लोभ मद अभिमान मति अबिचार तपना।
कौन न तोरी तुम, नहि, कित को सब घट येकपना।
ब्रह्मा पिपलि स्थावर जंगम मांहि हरी जपना।
मानव काया, आतम छाया, पाया भाग घना।
अनंत शांती अनुभव प्रेमा कारन मन अपना।

देख नजर से निज निरबान त्यज रे मन हयरान।
सब है माया बादल छाया शास्तर बेद पुरान।
संतन संपत, तन, जिनगानी गून मता अवसान।
काम बुरवारी, सब परिहारी, गावौ, श्री भगवान।
अनंत शांती परम प्रभाती संत सुबोधित मान।

परम पदी मति मान मनो का भरम नहि गति भाव जगो का।
सब ही देखे राग सुहावे, नीगम पनि नित तँहा नहि धोका।
घट घट माही सदचिद सोही करम जो भी क्रम भोग गुनोका।
अनंत संती बसंत पंगती अमर कला घर आतम लोका।

कोई बिरला बिर बलधारी समर जगावैं गिरवानी।
लाखमो बाबा कोटी मो भाव जिनोका सब मानी।
आदी व्याधी ताप अबादी अनुभव साछप कर जानी।
शांती सुशीला परा अवनी अमलान न की मृदुबानी।
राजी सबसे सगुन समाजी साजी कारज कर मानी।
ना जित हारी भगत मुरारी हारि तमा कृति अभिमानी।
पडरी गुजरी जठरी पगरी बिघरी आशा भवमानी।
अनंत बिश्रम सतगुरुभजनी बिजनी हरिजे हयरानी।

नहि बैसो देह बनेगो नेह धरो हरि को रे।
काम कु त्यज दै आतम चीन्हो समजावौ मन मन को रे।
मोह जाल मो नजर न आवै जगजीवन जिय को रे।
अनंत माने संत समागम पूरन सिंधू सम को रे।

एक दंत गूनवंत संत जाको,
सदयमती उदितकाल, भयउँ भोर, अजित काल।
ठौर हन्यों, मोह जाल, नय रसाल वांको।
जनन सुफल काज किन्हो, अमर भाव छोड़ दिन्हो।
जीव, शीव खोज लिन्हो, लाभ घनो ताको।
अंत रंग ढंग बीन, संग भयउ भंग हीन।
अनंत क्रम सहज लीन, लिखत गून लाखो।

गन राजा हे गूननाथा, निज सुख परमारथ वेदांता।
बिचन विमोचक बुद्धि प्रबोधित, निजभावे गुन गाता।
निरगुन, सगुनन, सन प्रशांता, आतमनय एकांता।
अनंत, भगती, सहजपनो की, जगबावौ सिद्धाता।

कीजो किरपा दिन के प्रतिपाल जय जय देव गुपाल।
अखंड़ हिरदे में मोरे जी बैठ रहौ किरपाल।
जन के मारे मन नहि व्यापो व्यापो आतम भूपाल।
अनंत सहजो की है भावै, कुमत त्यजि जौ पाल।

तिरबेनी को असमान करो, भव तनमल सबही निकरो।
सतगुरु किरपा निजभोगावति स्वातमपद बोध झर्‌यो।
शांति जमुना निरमल गहिरी, जामो हरि कूद पर्‌यो।
प्रणव प्रभाती आतम तुर्या सरसति संग लह्यो।
अनंत माहीं संगम अवनी सतचित भाव भर्‌यो।

मैं हूँ दासी अबिनासी सदपमांही निजपग बासी।
अर्थ अनर्था जानत नाहीं अब मति महिँ तन फांसी।
झूठ खटो जगमान अमानीं भावै भव ऊदासी।
शत्रु मित्र नहिँ पात्र प्रियार्थी अति प्रभु विलासी।

तन सुद सबही बुध गम हरि है साजन भावो निर्मल सूगम।
रैन दीन मो एक अनेकी अनंत शाँती मौचक विभ्रम।

करिजो अपनो सुफल बिचार त्यज भव रजत बिकार।
घट घट सांहीं अलख गुसाँई भाखौ निज हित सार।
सहज प्रभावै समता भावै छांड चलो अविचार।
ज्ञानाज्ञान कि गठरो बांधो व्हांमो नहिँ निरधार।
संगत सज्जन कर हरि गावौ उतरो रे भवपार।
अनंत शयनी स्वात्म निधी जा पग मिलसी अविकार।

जगमो मौजी रंग रँगेला, खेलत माधव आपि अकेला।
समता शांती गरब न माला, स्वातम चंदन चर्चित भाला।
सुगंध सुमनें तुलसिकु माला, सब सितलाई बनिहुं गुपाला।
गोकुल माहीं अनंत बाबा, मति जमुना के तिर प्रतिपाला।

भवती मो नहिँ कछु सार समज मन।
जंजार भयो निज कारन पावत दुर्गम अपनो पार।
कोहि जोग में कोहि भोग में गुनरजनी अंधियार।
जा जुग माहीं नाम पवाहीं, लाभै निज सुख सार।
अभिमति जिनकी दुबिधा मन की तेथ नहीं निरधार।
सदचित सुखधन बरसत बानी सज्जन भाव विचार।
अनंत सहजीं सत संगतमों रमरहियो अविकार।

दरिया साहब मारवाड़ वाले

जो धुनियां तौ भी मैं राम तुम्हारा ।
अधम कमीन जाति मतिहीना,
तुम तो हौ सिरताज समारा ।।टेक।।

सब जग सोता सुध नहिं पावै, बोलै सो सोता बरड़ाव ।।टेक।।
संसय मोह भरम की रैन, अंध धुंध होय सोते अैन ।
जप तप संजम और आचार, यह सब सुपने के व्यौहार ।
तीर्थ दान जग प्रतिमा सेवा, यह सब सुपना लेवा देवा ।
कहना सुनना हार औ जीत, पछा पछी सुपनो बिपरीत ।
चार बरन और आस्रम चार, सुपना अंतर सब व्यौहार ।
खट दरसन आदि भेद भाव, सुपना अंतर सब दरसाव ।
राजा राना तप बलवंता, सुपना माहीं सब बरतंता ।
पीर औलिया सबै सयाना, ख्वाब माहिँ बरतै बिध नाना ।
काज़ी सैयद औ सुलताना, ख्वाब माहिँ सब करत पयाना ।
साँख जो और नौधा भक्ती, सुपना में इनकी इक बिरती ।
काया कसनी दया औ धर्म, सुपने सुर्ग औ बंधन कर्म ।
काम क्रोध हत्या पर नास, सुपना माहीं नर्क निवास ।
आदि भवानी संकर देवा, यह सब सुपना लेवा देवा ।
ब्रह्मा विस्नू दास औतार, सुपना अंतर सब व्यौहार ।
उद्भिज सेतज जेरज अंडा, सुपन रूप बरतै ब्रह्मंडा ।
उपजै बरतै अरु बिनसावै, सुपनै अंतर सब दरसावै ।
त्याग ग्रहन सुपना व्यौहारा, जो जागा सो सब से न्यारा ।
जो कोई साध जागिया चावै, सो सतगुर के सरनै आवै ।
कृत कृत बिरला जोग सभागी, गुरुमुख चेत सब्द मुख जागी ।
संसद मोह भरम निस नास, आतम राम सहज परकास ।
राम सँभाल सहज धर ध्यान, पाछे सहज प्रकासै ज्ञान ।
जन दरियाव सोई बड़ भागी, जाको सुरत ब्रह्म सँग जागी ।

आदि अनादी मेरा साइँ।
दृष्ट न मुष्ट है अगम अगोचर यह सब माया उनहीं माइँ।
जो बन माली सींचे मूल, सहजै पिबै डाल फल फूल।
जो नरपति को गिरह बुलावै, सेना सकल महज ही आवै।
जो कोई कर भान प्रकासै, तो निस तारा सहजहि नासै।
गरुड़ पंख जो घर में लावै, सर्प जाति रहने नहिँ पावै।
दरिया सुमिरै एकहि राम, एक राम सारै सब काम।

जो सुमिरूँ तो पूरन राम।
अगम अपार दार नहिँ जाको, है सब संतन का बिसराम।
कोट बिस्नु जाके अगवानी, संख चक्र सत सारँग पानी।
कोट कारकुन बिध कर्मधार, परजापति मुनिहु बिस्तार।
कोट काल संकर कौतवाल, भैरव दुर्गा धरम विचार।
अनंत संत ठाढ़े दरबार, आठ सिधि नौ निधि द्वारपाल।
कोट वेद जाको जस गावै, बिद्या कोट जाको पार न पावै।
कोट अकास जाके भवन दुवारे, पवन कोट जाके चँवर ढुरावै।
कोट तेज जाके तपै रसोय, बरुन कोट जाके नीर समोय।
पृथी कोट फुलवारी गंध, सुरत कोट जाके लाया बंध।
चंद सूर जाके कोट चिराग, लछमी कोट जाके राँधै पाग।
अनंत संत और खिलवत खाना, लख चौरासी पलै दिवाना।
कोट पाप काँपें बल छीना, कोट धरम आगे आधीना।
सागर कोट जाके कलसधार, छपन कोट जाके पनिहार।

कोट सँतोष जाके भरा भंडार, कोट कुबेर जाके मायाधार।
कोट स्वर्ग जाके सुख रूप, कोट नर्क जाके अंध कूप।
कोट करम जाके उत्पतकार, किला कोट बरतावनहार।
आदि अंत मद्ध नहिँ जाको, कोई पार न पावै ताको।
जन दरिया के साहब सोई, ता पर और न दूजा कोई।

जाके उर उपजी नहिँ भाई, सो क्या जाने पीर पराई ।।टेक।।
ब्यावर जानै पीर की सार, बाँझ नार क्या लखै बिकार ।
पतिब्रता पति को ब्रत जानै, बिभचारिन मिल कहा बखानै ।
हीरा पारख जौकरी पावै, मूरख निरख के कहा बतावै ।
लागा घाव कराहै सोई, कोगतहार के दर्द न कोई ।
राम नाम मेरा प्रान-अधार, सोई राम रस पीवनहार ।
जन दरिया जानैगा सोई, (जाके) प्रेम की भाल कलेजे पोई ।

आदि अन्त मेरा है राम, उन बिन और सकल बेकाम ।
कहा करूँ तेरा बेद पुराना, जिन है सकल जगत भरमाना ।
कहा करूँ तेरी अनुभै बानी, जिनतें मेरी सुद्धि भुलानी ।
कहा करूँ ये मान बड़ाई, राम बिना सबही दुखदाई ।
कहा करूँ तेरा सांख और जोग, राम बिना सब बंधन रोग ।
कहा करूँ इन्द्रिन का सुक्ख, राम बिना देवा सब दुक्ख ।
दरिया कहै राम गुरमुखिया, हरि बिन दुखी राम संग सुखिया ।

पतिब्रता पति मिली है लाग,
जहँ गगन मँडलें में परम भाग ।।टेक।।
जहं जल बिन कंवला बहु अनंत ।
जहं बपु बिन भौंरा गोह करंत ।।
अनहद बानी अगम खेल ।
जहँ दीपक जरै बिन बाती तेल ।।

जहँ अनहद सब्द है करत घोर।
बिन मुख बोलै चात्रिक मोर॥
बिन रसना गुन उदत नार।
पाँव बिन पातर निरतकार।
जहँ जल बिन सरवर भरा पूर॥
जहँ अनंत जोत बिन चन्द सूर।
बारह मास जहँ ऋतु बसंत।
ध्यान धरैं जहँ अनन्त संत॥
त्रिकुटी सुखमन चुवत छीर।
बिन बादल बरखै मुक्ति नीर॥
अमृत धारा चलै सीर।
कोइ पीवै बिरला संत धीर॥
ररंकार धुन अरूप एक।
सुरत गही उनही की टेक॥
जन दरिया बैराट चूर।
जहँ बिरला पहुँचे संत सूर॥

चल सूवा तेरे आद राज।
पिंजरा में बैठा कौन काज॥टेक॥
बिल्ली का दुख दहै जोर, मारे पिंजरा तोर तोर।
मरने पहले मरो धीर, जो पाछे मुक्ता सहज छीर।
सतगुर सब्द हृदे में धार, सहजाँ सहजाँ करो उचार।
प्रेम प्रवाह धसै जब आभ, नाद प्रकासै परम लाभ।
फिर गिरह बसावो गगन जाय, जहँ बिल्ली मृत्यु न पहुँचै आय।
आम फलै जहँ रस अनंत, जहँ सुख में पावौ परम तंत।
झिरमिर झिरमिर बरसै नूर, बिन कर बाजै ताल तूर।
जन दरिया आनंद पूर, जहँ बिरला पहुँचै भाग भूर।

नाम बिन भाव करम नहिँ छूटै ॥टेक॥
साध संग और राम भजन बिन, काल निरंतर लूटै ।
मल सेती जो मल को धोवै, सो मल कैसे छूटै ।
प्रेम का साबुन नाम का पानी, दोय मिल ताँता टूटै ।
भेद अभेद भरम का भाँडा, चौड़े पड़ पड़ फूटै ।
गुरमुख सब्द गहै उर अंतर, सकल भरम से छूटै ।
राम का ध्यान तू धर रे प्रानी, अमृत का मेंह बूटै ।
जन दरियाव अरप दे आपा, जरा मरन तब टूटै ।

दुनियाँ भरम भूल बौराई ॥टेक॥
आतम राम सकल घट भीतर, जाकी सुद्ध न पाई ।
मथुरा कासी जाय द्वारिका, अरसठ तीरथ न्हावै ।
सतगुर बिन सोधा नहिँ कोई, फिर फिर गोता खावै ।
चेतन मूरत जड़ को सेवै, बड़ा थूक मत गैला ॥
देह अचार किया कहा होई, भीतर है मन मैला ।
जप तप संजम काया कसनी, सांख जोग ब्रत दाना ।
यातें नहीं ब्रह्म से मेला, गुन हर करम बँधाना ।
बकता होय होय कथा सुनावै, स्रोता सुन घर आवै ।
ज्ञान ध्यान की समझ न कोई, कह सुन जन्म गँवावै ।
जन दरिया यह बड़ा अचंभा, कहे न समझै कोई ।
भेड़ पूंछ गहि सागर लांघें, निस्चय डूबे सोई ।

मैं तोहि कैसे बिसरूं देवा ।
ब्रह्मा बिस्नु महेसुर ईसा, ते भी बछैं सेवा ॥टेक॥
सेस सहज मुख निस दिन ध्यावै, आतम ब्रह्म न पावै ।
चाँद सूर तेरी आरति गावें, हिरदय भक्ति न आवै ।
अनंत जीव जाकी करत भावना, भरमत बिकल अयाना ।
गुरु परताप अखँड लौ लागी, सो तेहि माहिं समाना ।

बकुण्ठ आदि सो अँग माया का, नरक अंत अँग माया।
पारब्रह्म सो तो अगम अगोचर, कोइ बिरला अलख लखाया।
जन दरिया यह अकथ कथा है, अकथ कहा क्या जाई।
पंछी का खोज मीन का मारग, घट घट रहा समाई।

है कोइ संत राम अनुरागी,
जाकी सुरत साहब से लागी ।टेक।
अरस परस पिव के सँग राती, हीय रही पतिवरता।
दुनिया भाव कछू नहिं समझै, ज्यों समुँद समानी सलिता।
मीन जाय कर समुंद सयानी, जँह देखै जहँ पानी।
काल कीर का जाल न पहुँचे, निर्भर ठौर लुभानी।
बावन चंदन भौंरा पहुँचा, जँह बैठे तँह गंधा।
उड़ना छोड़ के थिर हो बैठा, निस दिन करत अनंदा।
जन दरिया इक राम भजन कर, भरम वासना खोई।
पारस परस भया लोह कंचन, बहुर न लोहा होई।

बाबल कैसे बिसरा जाई।
जदि मैं पति संग रल खेलूँगी, आपा धरम समाई ।टेक।
सतगुर मेरे किरपा कीनी, उत्तम बर परनाई।
अब मेरे सांई को सरम पड़ैगी, लेगा चरन लगाई।
थे जानराय मैं बाली भोली, थे निर्मल मैं मैली।
वे बतलाएँ मैं बोल न जानूँ, भेद न सकूँ सहेली।
थे ब्रह्मभाव में आतम कन्या, समझ न जानूँ बानी।
दरिया कहै पति पूरा पाया, यह निस्चय कर जानी।

अब मेरे सतगुर करी सहाई।
भरम भरम बहु अवधि गवाँई।
मैं आपहि में थित पाई।
हिरनी जाय सिंघ घर रोका, डरप सिंघनी हारी।
सोता साह होय कर निर्भय, बस्तु करै रखवारी।
अजगर उड़ा सिखर को डाँका, गरुड़ थकित होय बैठा।
भोम उलट कर चढ़ी अकासा, गगन भोम में पैठा।
सिंघ भया जाय स्याल अधीना, मच्छा चढ़ै अकासा ॥
कुरम जाय अगना में सोता, देखै खलक तमासा।
राजा रंक महल में पौढ़ा, रानी तहाँ सिधारी।
जन दरिया वा पद को परसै, ता जन की बलिहारी ॥

कहा कहूँ मेरे पिउ की बात,
जोरे कहूँ सोइ अंग सहात ॥टेक॥
जब मैं रही थी कन्या क्वारी।
तब मेरे करम हता सिर भारी ॥
जब मेरी पिउ से मनसा दौड़ी,
सतगुरु आन सगाई जोड़ी ॥
तब मैं पिउ का मंगल गाया,
जब मेरा स्वामी व्याहन आया ॥
हथलेवा दे बैठी संगा,
तब मोहिँ लीनी बाँये अंगा ॥
जन दरिया कहै मिट गइ दूती,
आपौ अरप पीव सँग सूती ॥

हाथरस वाले तुलसी साहब की बानी

लख पिय सुरत सम्हार जाल जिया ।। टेक ।।
तजौ अरंड बास बसौ चंदन, बंधन करम कराल।
जैसे कुघात साथ पारसै, कंचन होत निहाल।
यहि बिधि दारू लार संग लोहा, बूड़े न सतसंग चाल।
अस गुरु सबद सुरत सिष मारग, लखि भये अगम अकाल।
जिमि तखान जान पाहन से, गुर रस आयन ख्याल।
ज्यों सुख चंद मनो ससि सनमुख, चुवत अमीं रो ततकाल।
सुरजमुखो रबि सनमुख लावे, तत छिन अगिन प्रभाल।
यहि बिधि संत कहें तुलसी सब, भृंगी कोट हवाल।

निज नैन नगर सत सुरत सहेली हो झूले ।।टेक।।
कंज करंज कँवल के उपर, गूजत भँवर भिरंग।
सँग सुरत ससि रवि के मध में, मानो गज गैंद मतंग।
गगन गिरा गढ़ चढ़ि के बानो, उठे रस रंग तरंग।
बैन मृदंग मधुर धुन बाजै, गाजत अबर अरंग।
अमी अगम गम गैल गली में, चुइ चुइ पिवत उमंग।
मधुकर कली कंगल कै सँग में, बिरसत सुधि बुधि अंग।
तुलसी तोल बोल बिर्त बेली, सेली सुरत उतंग।
चंग चमक चित चीन्ह चमन में, गिर गिर धधकत गंग।

अरे तन भंग भँवर मन।
जुगन जुगन में कठिन जगत को रे रंग ।।टेक।।
ज्यों कपि डोर बाँधि बाजीगर।
पकड़ि नचावे करम कलंदर संग ।।
भटकत कलप कलप काया सँग।
उड़त रसन को ज्यों बिन डोर पतंग।
कंटक काल दयाल गुरन बिन।
बिकट गजब यह नहिं बस होत अपंग।
जनम जनम जग भोग विषय बस।
पलक पलक में माया ममत तरंग।
आसा बदन बास तन धारन।
करत करम बस फिर फिर पावत अंग।

एरी कोई बूझे चतुर सुजान।
जगत में संत सिरोमन बाक ।।टेक।।
गुर के बचन बिलोक बिमल मन।
करत परम हित सोइ सतसँग की सूझ।
सूरत सुरग नरक न्यारी तजि।
निरमल कारज साईं सनमुख जोई जूझ।
जग की लाज अकाज समझ जब।
उडू उदित भयो नासत तिमर अबूझ।
द्वै पट पार फरक फुलवारी।
लेत सुगँध गँध भँवर पोहप पर गूँज।
मधुकर कँवल केल रस पीवत।
अधर अमी को तुलसी सबब समूझ।

एरी हम जब जानें सइयाँ सुघड़ खिलइया।
चौपड़ नरद बचइयाँ ।।टेक।।
पवन गवन को री भवन बिचारे।
स्रुत को समोइयाँ तत रँग तत जनइयाँ।
छानो दाव चार दिस चौकस।
चित से चिन्हइयाँ पासे पुखत डरइयाँ।।
चार बरन को री चारों सार है।
चतुर चलइयाँ छक पंजा दृगन दिखइयाँ।
फूटे न नरद निरख जुग जाको।
सार पकइयाँ तुलसी पौ दांव जितइयाँ।

एरी रँगरेज मिले कोइ चतुर रँगइया।
चूनर रँग चटकइयाँ।
सुंदर सूत सुरत का धागा।
बुनत बुनइयाँ सतगुर से हम लइयाँ।
छोरा पोत परखि कर लीन्हा।
धोवत धोवइयाँ माड़ी साफ करइयाँ।
कुंदी करम काढ़ि कर दीन्हो।
सीवत सिवइयाँ फरिया फरक बनइयाँ।
जेठे रंग मजीठ रँगाई।
संत लखइयाँ पिया को पहिर रिझइयाँ।।
तुलसी आज मिले यहि औसर।
जतन जनइयाँ कारीगर ने बनइयाँ।।

अरे मन ममता बढ़ी है।
या जग में बंधन डारे काल।।टेक।।
काहु को धरि धरि दंत करोरत।
काहु को रंग लगाय रखत जम जाल।।

काहु को माया मरोर करावत।
काहु करतब करि करम लिखावत भाल ॥
डगर डगर कोउ पंथ न पावत।
चावत चौबँध बाँधि करत बेहाल ॥
मूल मदत धुर धाम सरोही।
सोइ बाँधि सुरत सतगुर दृढ़ ढाल ॥
तुलसी सतगुर संत कहत हैं।
जग बंधन जम से सब छूट निकाल ॥

अरे कोइ अमर नहीं है या तन में।
काया करम अधार ॥टेक॥
उपजै मरै बनै फिर बिनसै।
जुग जुग बंधन दुख सुख बारम्बार ॥
आसा दुख बंधन भटकावत।
आप आपन पौ नहिं चीन्हा करतार ॥
केहर सुत भेड़न सँग भूला।
मन गुन इंद्रिन सँग करत बिहार ॥
जब बन सिंघ मिले उपदेसी।
सतगुर को मिलि भव के भरम निकार ॥
तुलसी जब तक मूल परखिया।
निरमल होय लखि आवे समझ बिचार ॥

लगत न लाज महंत को ॥टेक॥
गाड़ा ऊँट अटा ले चालत, लानत ऐसे पंथ को।
चेला करत फिरत घर घर पर, आसा बास दुख अंत को।
इंद्री सुख भोजन नित खावत, जम धरि तोड़त दंत को।

काया बस माया सँग फूले, भूलि मूल तजि कंत को।
बदन बनाय काया जिन कीन्हा, चीन्ह चरन लखि संत को।
गुर घट भान जान सिष किरनी, नभ चढ़ि मिल गुर मिंत को।
कनफूका सुख बाट न पैहौ, गुर चेला बहे अंत को।
गुर अपना गुर आदि न जाना, खानो परत परंत को।
तुलसी किरन गगन गुर भेटते, मेटे काल दयंत को।

परसत पावन जाना जोई जाना जाई ॥टेक॥
बिकट बंक की प्रबल बिमारी, इँगल पिंगल सुखमन में जाई।
इत गरजत उत धधक सुनावत, बिच बिच बैन बजावत भारी ॥
अनहद ताल मृदंग मुहचँग बाजे, किँगरी संख घट माहीं।
सरसर सननन भरभर भननन, उलटत तुलसी भव हन ॥
कंज कँवल मध मंज मुकर देखा, तत रँग रमता पचरंग रतधारी।
स्याम सेत जरद सुरख, हरिया सँग कर प्रवेस।
गगन मगन जहाँ मन गुन गवन ॥
जोग जुगत से मुकत बिचारी, संत मता कहूँ और पुकारी।
बेहद बाट ब्रह्मँड न पिंड के, अधर अलख नहिँ जाई।
मन मट मननन चढ़ि घट घननन, तुलसी तुलसी को योन ॥

अगम अमल मधे सुगम बिमल देखा।
सम सत समदा बेहद बिरद काढ़ी ॥टेक॥
अमर पवन की साँस हूँ को हन।
मंजन चीन्हिये कहूँ करता कर है ॥
अधर अमी में उधर नमी में।
सहस कँवल तामें छल ले बाढ़ी ॥

बदन जाय के तत तिलों देखे।
अद्भुत पद पावन ले गाढ़ी ।।
सुरत सुमन की सबज भवन कंजन।
अंजन कीनिये तब तुलसी गाये ।।

ए भौंरा तोकूँ मैं हटकत तू नहिँ मानत कहन मोर ।।टेक।।
पोहप बास फूलन पर राजी, रस बस तन सँग करम घोर।
बीत गई वाकी बिसरानी, थाको है दस इंद्रिन को जोर।
जुग जुग जनम गयो रस पीते, बीते नर घर कियो न ठौर।
तुलसी यह तोर मोर की बूटी, छूटत नहिँ तन मन को छोर।

सुन समता लख लोजिये, सुंदर मूल मराल मधुर धुन।
सबद सिंध स्रुत नाद बिंद से, हारी हाहा पापा जानी।
आनी आपा थापा गा ।।टेक।।
ज्ञानी बानी नीथापा, झा किड़कत झुम किड़कत।
झाझुम किड़कत, झुमकिड़ से तलमता ।।
लै लइ साथ लै लइ साथ लै लइ साथ सननननननन।
होतक हग होतक हग हग हग हारी हूहूताका।
सुन अरूप तुलसी की संध से, पद परबंद उर लाय लीजिये।
साकिड़तक कुमकिड़तक काकुमकिड़तक।
कुमकिड़ हे तलामता ।।

सोहागिन सुन्दरी, तुम बसहु पिया के देस।
नैहर नेह छाँड़ि देवो री, सुन सतगुर उपदेस।
कोटि करो इहाँ रहन न पैहो, क्या धनि रंक नरेस।
प्रभु के देस परम सुख पूरन, निरभय सुनत सँदेस।
जरा मरन तन एक न व्यापै, सोक मोह नहिँ लेस।
सब से हिल मिल बैर बिसन तज, परम प्रतोत प्रबेस।
दम पर दम हरदम प्रीतम सँग, तुलसी मिटा कलेस।

संत केसवदास

सतगुरु परम निधान, ज्ञानगुरु तें मिलै।
पावै पद निरबान, परम गति तब दिलै॥
अर्थ धर्म मोच्छ काम, चारि फल होवई।
सुक्त सुकृति कै अंस, साध लिये सो वई॥
जेहिं निरखत मन मगन, सो दुबिधि नसावई।
अद्भुत रूप अबिनासि, सो घटहिं समावई॥
ओ अं सब्द अलेख, लखि नरक निवारई।
जीवन मुक्ति बिदेस, पाँच पचीसहिं हारई॥

साँख्य जोग यह धर्म है, कर्म बीज को जार।
जोई था सोई हुआ, देखा सुन्न मँझार॥
अबिचल अगम अगाध, साध गति लखै न कोई।
प्रेम प्रकास बास आकासहिं, निसु दिन होई॥

बिना सीस कर चाकरी, बिन खाँडे संग्राम।
बिन नैनन देखत रहै, निसु दिन आठो जाम॥
प्रेम प्रीति यह रीति, जीति भ्रमहिं ढहावई।
सदा अनन्द बिनोद मिलै, अबिगत सुख पावई॥

निर्गुन राज समाज है, चँवर सिँहासन छत्र।
तेहिँ चढ़ि यारी गुरु दियो, के सोहिँ अजपा मंत्र॥

धनि सो घरी धनि बार, जबहिँ प्रभु पाइये।
प्रगट प्रकास हजूर, दूर नहिँ जाइये॥

नहिँ जाइ दूर हजूर साहिब, फूलि सब तन में रह्यो।
अमर अछय सदा जुगन जुग, जक्त दीपक उगि रह्यो॥
निरखि दसौ दिसि सर्ब सोभा, कोटि चंद सुहावनं।
सदा निरभय राज नित सुख, सोई केसो ध्यावनं॥
पूरन सर्ब निधान, जानि सोइ लीजिए।
निर्मल निर्गन कंत, ताहि चित दीजिये॥

दीजिये चित रीझि कै उत, बहुरि इतहिँ न आइये।
जहँ तेज पुंज अनंत सूरज, गगन में मठ छाइये॥
लिय घट पट खोलि कै प्रभु, अगम गति तब गति करी।
बढ़ो अधिक सुहाग केसो, बीछुरत नहिँ इक घरी॥
अद्भुत भेख बनाय, अलेख मनाइये।
निसु बासर करि प्रेम, तो कंठ लगाइये॥

लाइये घट छाड़ि के मठ, उमँगि सोहं भरि रहो।
बढ़ो अधिक सुहाग सुन्दरि, अलख स्वामी रमि रहो॥
मिल्यो प्रभु अनूप उदै अति, सर्ब गति जा सों भई।
आदि अंत अरु मध्य सोई, मिलि पिया केसो मई॥
फूलि रह्यो सब ठाँव, तौ धरनि अकास में।
सो त्रिभुवनपति नाथ, निरखि लियो आप में॥

निरखि आपु अघात नाहीं, सकल सुख रस सानिये।
पिवहि अमृत सुरति भर करि, संत बिरला जानिये॥
कोटि बिस्नु अनंत ब्रह्मा, सदा सिव जेहि ध्यावहीं।
सोइ मिल्यो सहज सरूप केसो, अनँद मंगल गावहीं॥

अबिनासी दूलह मन मोह्यो, जाको निगम बतावै नेत ।।टेक।।
निरंकार तिरअंक निरंजन, निर्बिकार निरलेस ।
अगह अजोनि भवन भरि पायो, सतगुरु के उपदेस ।।
सुरति निरति के बाजन बाजे, चित तेतन सँग हेत ।
पाँच पचीस एक सँग खेलहिँ, निर्गुन के यह खेत ।।
सुख सागर अनुभव फल फूली, जगमग सुन्दर सेत ।
नखसिख पूरि रहे दसहूँ दिसि, सब घट अबिगत जेत ।
अजर प्रकास जोति बिनु पावक, परम निरंतर देख ।
अनँत भानु ससि कोटिक निर्मल, केसो आतम लेख ।।

ऐसे संत बिबेकी होरी खेलै हो, जाके गुरुमुख दृढ़ बिस्वास ।
स्रवन नैन रसना मिलो है, आतम राम के पास ।।टेक।।
इक रँग रूप बनो सब सुंदरि, सोभा बनो है ठाठ ।
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ, तिरबेनी के घाट ।।
आनँद केलि होत निसु बासर, बाढ़त प्रेम हुलास ।
अगर अबीर अखंड कुमकुमा, केसर सदा सुबास ।।
सहज सुभाव को खेल बन्यो है, फगुआ बरनि न जात ।
सुरति सुहागिनि उठि उठि लागहि, अबिनासी के गात ।।
लघु दीरघ मिलि चाचरि जोरी, होरी रची अकास ।
पावक प्रेम सहज सों फूँक्यो, दसौ दिसा परकास ।।
फेंट गही छबि निरखि रही है, मंद मंद मुसुकात ।
फगुवा दान दरस प्रभु दीजै, केसो जन बलि जात ।।

निरमल कंत संत हम पाया ।
कोटि सूर जाकी निर्मल काया ।।
प्रेम बिलास अमृत रस भरिया,
अनुभौ चँवर रैन दिन ढुरिया ।

आनँद मंगल सोहं गावैं,
सुख सागर प्रभु कंठ लगावैं।
सत्य पुरुष धुनि अति उजियारी,
कोटि भानु ससि छबि पर वारी।
तेज पुंज निर्गुन उँजियारा,
कह केसो सोइ कंत हमारा।।

निरखि रूप मन सहज समाना,
मैं तैं मिटि गो भर्म पराना।
अच्छर माहिँ निअच्छर देखा,
सोई सब जीवन का लेखा।
ऐसो भेद जो जानै कोई,
ता को आवागवन न होई।
जैसे उग्र ऋनी कहवाया,
मिटिगा रूप भेष नहिँ माया।
ऐसे निर्मल है ब्रह्मज्ञानी,
सदा बखानहि अमृत बानी।
उदित पुरुष निरमल जेहिँ काया,
सोई साहिब केसो छाया।

छाया काया तें प्रभु न्यारा,
धरनि अकास के बाहर पारा।
अगम अपार निरन्तर बासी,
हलै न टलै अगम अबिनासी।
वा कहँ अद्भुत रूप न रेखा,
अगम पुरुष प्रभु सब्द अलेखा।

निज जन जाय तहाँ प्रभु देखा,
आदि न अँत नाहिँ कछु भेखा।
मिलि अंगम सुख सहज समाया,
या बिधि केसो बिसरी काया।

पिय थारे रूप भुलानी हो।
प्रेम ठगौरी मन रह्यो, सुख स्वाद बखानी हो।
भँवर कँवल रस बोधिया, सुख स्वाद बखानी हो॥
दीपक ज्ञान पतंग सों, मिलि जोति समानी हो॥
सिंधु भरा जल पूरना, सुख सीप समानी हो।
स्वाँति बुँद सों हेतु है, ऊर्ध मुख लगानी हो॥
नैन स्रवन मुख नासिका, तुम अंतरजामी हो।
तुम बिनु पलक न दीजिये, जस मीन अरु पानी हो॥
व्यापक पूरन दसौ दिसि, परगट पहिचानी हो।
केसौ यारी गुरु मिले, आतम रति मानी हो॥

म्हारे हरिजू सूँ जुरलि सगाई हो।
तन मन प्रान दान दै पिय को, सहज सरूपम पाई हो॥
अरध उरध के मध्य निरंतर, सुखमन चौक पुराई हो।
रबि ससि कुंभक अमृत भरिया, गगन मँडल मठ छाई हो॥
पाँच सखी मिलि मंगल गावहिँ आनँद तूर बजाई हो।
प्रेम तत्त दीपक उँजियारो, जगमग जोति जगाई हो॥
साध संत मिलि कियो बसीठी, सतगुरु लगन लगाई हो।
दरस परस पतिबरता पिय की, सिव घर सक्ति बसाई हो।
अमर सुहाग भाग उँजियारो, पूर्व प्रीति प्रगटाई हो।
रोम रोम मन रस के बसि भइ, केसो पिय मन भाई हो॥

निर्गुन नाम निधान, करो मन आरति हो ॥टेक॥
गंगा जमुना सरसुती सुखमन घर बिसराम।
निझर झरत अमृत रस निरमल, पीवहिं संत सुजान ॥
द्वादस पदुम पदारथ, मुक्ता नाम कि खान।
चंदन चौक सदर उँजियारो, सकल बिस्व को पान ॥
अगम अगोचर गुंजत निसु दिन, तन मन प्रान समान।
अमर बिदेह भयो पद परसत, तिमिर मिटायो भान ॥
कारज करम करै सो करता, अबिनासी निजु जान।
औरन को अदृष्ट है केसो, सोई पुरुष पुरान ॥

खाक के गात में पाक साहिब मिल्यो,
सुनि गुरु बचन परतीत आई।
पाँच अरु तीन पच्चीस कलिमल कटे,
आप को साफ कर तुही साईं ॥
सिफत क्या करौं सोइ अवर नहिं दूसरो,
बैन सँग बोलता आप माहीं।
सेत दरियाव जगमगित प्रभु केसवा,
मिलि गयो बुंद दरियाव माहीं ॥

स्याम के धाम में बैठि बातैं करै,
हरि-जन सोई ,हरि भक्त नीता।
आदि को सोधि कै मद्ध को बाँधि कै,
अँत को छेदि रन सूर जीता ॥
काम अरु क्रोध को लोभ अरु मोह को,
ज्ञान के बान सों मारि लीता।
जानि जन केसवा मानि मन में रहा,
यारी सतगुरु मिला भेद दीता ॥

सोई निज संत जिन अंत आपा लियो,
जिसो जुग-जुग गगन बुद्धि जागी।
प्रान आपान असमान में थिर भया,
सुन्न के सिखर पर जिकिर लागी।
रहत घर बास बिनु स्वास का जीव है,
सक्ति मिलि सीव सों सुरति पागी।
अकह आलेख आदेख को देखिया,
पेखि केसो भयो भयो ब्रह्मरागी॥

गगन मगन धुनि लगन लगी,
सुनत सुनत तन त्रिप्त भई।
जगर मगर नहिँ डगर बगर नहिँ,
रबि ससि निसु दिन भाव नहीं॥
प्रान गवन हरि पवन मवन करि,
मिलि सन्मुख पिय बाँह गही।
सत रति सत्त पती हम पावल,
केसोदास सुहाग सही॥

निसु बासर बस्तु बिचारु सदा,
मुख साच हिये करुना धन है।
अघ निग्रह संग्रह धर्म कथा,
निपरिग्रह साधन को गुन है॥
कह केसो भीतर जोग जगै,
इत बाहर भोग मई तन है।
मन हाथ भये जिनके तिन के,
बन ही घर है घर ही बन है।

दौलत निसान बान धरे खुदी अभिमान,
करत न दाया काहू जीव को जगत में।
जानत है नीके यह फीको है सकल रंग,
गहे फिरै काल फंद मारै गो छिनक में।
घेरा डेरा गज बाज झूठो है सकल साज,
बादि हरिनाम कोऊ काज नाहिँ अंत कै।
बार बार कहौं तोहि छोड़ु मान मायामोह,
केसो काहे को करै छोभ मोह काम कै ।।

सुरति समानी ब्रह्म में, दुबिधा रह्यो न कोय।
केसो संभलि खेत में, परै सो संभलि होय ।।

सात दीप नौ खंड के, ऊपर अगम अबास।
सब्द गुरू केसो भजै, सो जन पावै बास ।।

आस लगें बासा मिलै, जैसी जा की आस।
इक आसा जग बास है, इक आसा हरि पास ।।

आसा मनसा सब थकी, मन निज मनहिँ मिलान।
ज्यों सरिता समुँदर मिली, मिटि गो आवन जान ।।

जेहि घर केसो नहिँ भजन, जीवन प्रान अधार।
सो घर जम का गेह है, अंत भये ते छार ।।

जगजीवन घट घट बसै, करम करावन सोय।
बिन सतगुरु केसो कहै, केहि बिधि दरसन होय ।।

सतगुरु मिल्यो तो का भयो, घट नहिँ प्रेम प्रतीत।
अंतर कोर न भींजई, ज्यों पत्थल जल भीत ।।

केसो दुबिधा डारि दे, निर्भय आतम सेव।
प्रान पुरुष घट घट बसै, सब महँ सब्द अभेव ॥
पंच तत्त गुन तीन के, पिंजर गढ़े अनंत।
मन पंछी सो एक है, पारब्रह्म को अतंत ॥
ऐसो संत कोइ जानि है, सत्त शब्द सुनि लेह।
केसो हरि सों मिलि रहो, नेवछावर करि देंह ॥
भजन भलो भगवान को, और भजन सब धंध।
तन सरवर मन हंस है, केसो पूरन चंद ॥

व्रजवासी तुलसीदास

चैत

चैत चिरजीवै न कोई, जीव जम को ग्रास है।
मूढ़ निश्चय समुझ अन्धे, स्वप्न सो जग बास है।।
बिषय तृष्णा लोभ बंशी, मोह माया जार है।
तात मात भ्रात बनिता, झूठ सब परिवार है।।
जठर में जिन प्राण राखे, सो बिसारे बावरे।
देख मृग-तृष्णा जो भूले, बृथा धोखा खाव रे।।
राम भजु मन पाय नर तन, बनो अच्छो दाव रे।
ऐसो अवसर खोय के, फिर मूढ़ गोता खाव रे।।

बैसाख

भजन कर भगवान् को मन, आइयो बैसाख रे।
घटत छिन छिन अवधि तेरी, जायगी मिलि खाख रे।।
कठिन काल कराल सिर पर, करि अचानक घात रे।
नाम बिन जमदंड त्रासन, कोइ न दैहै हाथ रे।।
सीस दस दुर्योधनादिक, गये सब मिलि धूर रे।
हरि बिमुख बिश्राम नाहीं, समुझि देखो कूर रे।।
नीर बुल्ला जस कुसुम रँग, ऐसही संसार रे।
सार केवल नाम हरि को, ताहि नाहिँ बिसार रे।।

जेठ

जेठ जग अति धूप गाढ़ो तेज तामस घाम रे।
तपत हैं त्रयताप सों तन, मूढ़ बिनु हरि नाम रे।।
लपट तृष्णा अधिक बाढ़ी, चहूँ दिश झहरात रे।
चलतु है निशि दिवस जग में, जरतु है जिय गात रे।।
संतोष दाया क्षमा मन में, शील शीतल छाँय रे।
साधु संगत भजन करि ले, नहीं और उपाय रे।।
कोटि कोटि उपाय कर मन, जीव जरनि न जाय रे।
पियौ अमृत नाम हरि को, तुरत तपति बुझाय रे।।

आषाढ़

लग्यो मास असाढ़ आगम, का सँवारत गेह रे।
नाम सीताराम को भजु, नाहिँ निश्चल देह रे।।
महल कंचन के बने, बहु भाँति शोभा होति रे।
जटित मणिगण के झरोखा, दीप माणिक जोति रे।।
यदपि ऐसो धाम तेरो, रच्यो श्रम करि सूम रे।
भजन बिन नहिँ सोहै जैसे, अशुभ मरघट भूमि रे।।
लग्यो धंधो धाम को, तू करतु है केहि काम रे।
बृथा जीवन जात जग में, लेत नहिँ हरि नाम रे।।

सावन

सँसार सागर बढ़चो सावन, अगम अकथ अपार रे।
नाव जीरण बोझ भारी, नाहिँ वारा पार रे।।
जात बूड़चो मूढ़ अँधे, परचो माँझाधार रे।
बैठि नाम जहाज हरि के, उतरु पैले पार रे।।

कर्म कींच बढ़ो जहाँ तहँ, मलिन मन चित देहि रे।
अमल नीर बिबेक सों, तू बिमल मन कर लेहि रे॥
जन्म जन्म अनेक के अघ, ओघ दारुण जे करे।
अग्नि किनका नाम हरि को, पुंज पापन के जरे॥

भादों

मास भादों अति भयानक, गहगहे अति गाजहीं।
तन गगन में कूच के, श्वासा नगारे बाजहीं॥
दुरित प्रगटत थिरत नाहीं, चित्त चंचल दामिनी।
दंभ जुगनू निशि अविद्या, अविवेक कारी यामिनी॥
करौ हिय में आय के, हरिनाम भानु प्रकाश रे।
दंभ जुगनू निशि अविद्या, होय सब कर नाश रे॥
जगत आशा कान कुल तजि, करौ हरि सों हेत रे।
मेटि के अघ ओघ जन के, आपनो कर लेत रे॥

क्वार

क्वार कुल की भीर भारी, रूप शोभा धाम रे।
देखिके जिन भूल कोऊ, नाहिँ आवत काम रे॥
बसत पक्षी वृक्ष पै निशि, आय के बहु भाँति रे।
प्रातही दिशि समुझ अपनी, तुरतही उड़ि जात रे॥
पंथ में पंथी अनेकन, जुरे सरिता घाट रे।
नाव चढ़ि भये पार पैले, गये निज निज बाट रे॥
ऐसही चल जात सब जग, जात नहिँ कोइ साथ रे।
नेह कर भगवान सों, जग में सखा पितु मात रे॥

कातिक

मास कातिक बालकन सँग, खेल बालापन गयो।
जोर जोवन जुबा तन में, नाम हरि को नहिँ लयो।।
जरा तन भइ छीन काया, थके कर पग नैन रे।
घटी प्रीति न लगत नीके, चंद्रबदनी बैन रे।।
बीत यों पन तीनहूँ, कफ आइयो पित बात रे।
काल सिर पर निकट आयो, मूढ़ मन पछितात रे।।
अश्व गज रथ माल मुक्ता, जात नहिँ कछु साथ रे।
राम-बिमुख गँवाय के सब, चलत शठ धुनि माथ रे।।

अगहन

मास अगहन रहट घरिया, चलत चित दै देख रे।
जात आवत भरी रीती, ऐसही जग लेख रे।।
तैसही फल चाखिहै, जस करे करनी आप है।
आन स्वारथ पुण्य सोई, आन पीड़ा पाप है।।
देख के परदोष रज सम, कहत गिरि सम सोय रे।
दोष अपने मेरु सम हैं, तिन्हैं राखत गोय रे।।
आय जग में बदी तजु, यामें कछू न सवाद रे।
द्रोह पर परदार निंद्रा, छाँड़ मिथ्या बाद रे।।

पूस

पूस कीट पतंग होते, किधों तरवर पच्छि रे।
किधों जल के जीव होते, किधों सागर मच्छि रे।।
भ्रमत षटऋतु दिवस निशि, तन सहत है बहु दुःख रे।
हरि बिमुख शठ जीव कतहूँ, नाहिँ पावत सुख रे।।
जगत सोवत फिरत इत उत, अवधि छिन छिन घटतु रे।
सुबस रसना पाइ के, हरि नाम काहे न रटतु रे।।
फिरत भटकत जगत में, हरि हृदय जीवन मूरि रे।
नाम को जान्यो नहीं, सब जानिवे में धूरि रे।।

माघ

माघ कुल गुरु शील शोभा, बन्यो रूप सरूप रे।
भक्ति बिन भगवंत की नर, नीर बिन जिमि कूप रे।।
पतित पावन नाम हरि को, ताहि हिरदे राख रे।
नाम दीन्ही गति खलन को, बेद जा की साख रे।।
ब्याध सदना श्वपच गणिका, भीलनी जप नाम को।
बिना जप तप योग संयम, गये हैं निज धाम को।।
होइ कोऊ रँक राजा, ऊँच नीच न जाति रे।
बान हैं रघुनाथ की, निज दासही सों नात रे।।

फाल्गुन

मास फागुन धन रतन रथ, देइ कंचन दान रे।
अश्व गज गो भूमि सेज्या, नाहिँ नाम समान रे।।
भ्रमत तीरथ सकल व्रत, कर जोग साधन सोय रे।
यज्ञ जप तप नेम हरि के, नाम सम नहिँ होय रे।।
सिर जटा नख मौन धारत, गेह तज बन बास रे।
वेद शास्त्र पुराण पढ़ि, नहिँ जात ओसन प्यास रे।।
तर्यो चाहै जीव जो तूँ, त्यागु आन उपाव रे।
विश्वास करु निज दास तुलसी, प्रेम हरिगुण गाव रे।।

गुरु रामदास (पंजाव वाले)

गुर बिन ज्ञान न होवई, न सुख बसै मनि आई।
नानक नाम विहूनी मनसुखी, जामति जनमु गँवाइ।।

वाणी गुरु है, गुरुवाणी, विच वाणी अम्रित सारे।
गुरुवाणी कहे सेवकु जनु मानै, परतखि गुरु निसतारे।।

गिआनु अंजनु गुर दीया अभिमान अँधरे बिनासु।
हरि किरपा ते संत भेटिया, नानक मन परगासि।।

सो पुरखु निरंजुनु हरि पुरखु निरंजनु हरि अगमा अगम अधारा।
सभि धिआवहि, सभि धिआवहि, तुवु जो हरि सबे सिरजन हारा।।

कीआ खेल बड मेलु तमासा, वहि गुरु तेरी सब रचना।
तू जलि थलि गगनि पयालि पूरी रहिअ अम्रित ते मीठे जाके बचना।।

हरि मुख काज रचाइआ, गुरमुखि वो आहणि आइआ।
वोआहणि अइआ गुरमुखि हरि पाइआ सा धन कंत पिआरी।।
संत जना मिलि मंगल गाए हरि जीऊ आप सवारी।
सुरि नर गण गंधर्व मिलि आए अपूर बज बणाई।
नानक प्रभु पाइआ मैं साचा न कदे गरै न जाइ।।

हरि दरसन को मेरा मन बहुत तपते।
जिउ त्रिखावंत विनु नीर।
मेरे मनि प्रेमु लगो हरि तीर।
हमरि बेदन हरि प्रभु जाने, मेरे मन अंतर की पीर।
मेरे हरि प्रीतम की कोई बात सुनावै सो भाई सो मेरा बीर।
मिलु मिलु सखी गुरा कहु मेरे प्रभु के ले सतिगुर की धीर।
जन नानक की हरि आस पुजावहु, हरि दरसन शांति सरीर॥

हरिरणाखसु दुस्टु मारिआ प्रहलादु तराइआ।
गिआन अंजन जिस दिआ अगि आन अँधेरे विनासु।
गुर जहाज, खेवट गुरु, गुर बिन तरआ न कोई।
वाणी गुरु गुरु है वाणी विच वाणी अम्रित सारे॥

तुकाराम बुश्रा

हरीसुँ मील देष येक ही बेरे।
पाछे फिर तु नावे घर ॥धृ.॥
मात सुनो दुती श्रावे मनावन।
जाया करीती भर जोबन ॥
हरीसु मोही कहीया न ज्याये।
तब तु बुझे श्रांगों पाये॥
देष ही भावा कछु पकडी हात।
मीलाई तुका प्रभु सात॥

क्या कहुँ नही बुझत लोका।
ली ज्यावे जम मारत धका ॥धृ.॥
क्या जीवने की पकड़ी श्रासा।
हातों लीया नहीं तेरा घासा॥
कीसे दीवाने कहता मेरा।
छुटे जावे तन तुँ सब च्या नेरा।
कहे तुकातु भया दीवाना।
श्रापना बीच्यार कर ले जना॥

कब मरुँ पाउँ चेरन तुम्हारे।
ठाकुर मेरे जीवन प्यारे ॥धृ॥
जेग डरे ज्याकु सो मोही मीठा।
मीठा डर श्रँनदमाही पैठा।

भला पांउँ जनम ईन्हं बेरे।
बस माया के अब संग फेरे।
कहे तुका धन मान ही दारा।
वोही लीये गुडलीये पसारा।

दास पाछे दौरे राम।
सोवे षडा आपे मुकाम ।।ध्रु।।
प्रेम रसडी बांधी गलें।
षैंच च्यलें उधर।
आपणे जाणसुँ भुज न देवे।
कर ही घर आघ्यें बाट बतावे।
तुका प्रभु दीनदयाल।
धारी रे तुज पर हुँ गोपाल ।।

आप तरे त्याकी कोण बराई।
औरणकुँ भलो नाव धराई ।।धृ०।।
काहे भुमी येतना भार राषे।
दुभत धेनु नहीं दुध चाषे।
बरसत मेघ फलत हे बीरषा।
कोण काम अपणां उन्हेती रीषा।
काहे चन्दा सुरीज षावे फेरा।
षीन येक बैठ नहीं नही पावत घेरा।
काहे परीस कंचन करे धातु।
नही मोल तुटे नहीं पावत धातु।
कहे तुका उपकार ही काज।
सबही कर रही या रघुराज ।।

जग चले उस बाट कोरण जाये।
नही समजत फीरे तो ही गोदे षाये ॥ध्रु०॥
नही येक दो सकल सँवँसार।
जो बुझे सो अगला स्वार।
ऊपर स्वार बैठे त्रुस्णा पीठ।
नही बांचें कोई जावे लूट।
देष ही डर फीर बैठा तुका।
जोवत मारग राम ही येका॥

राम कहो जीवना फल सो ही।
हरी भजनसुँ बीलंब न पाई॥ध्रु०॥
कवरण का मँदीर कवन की झोंपरी।
येक रामबीन सव ही फुकरी।
कवरण की काया कवरण की माया।
येक रामवीनं सर्ब ही जाया।
कहे तुका सब ही चलन्हारा।
येक रामबीनं नहीं वासरा॥

छोडे धन मंदिर बन बसाय॥
माँगत टुका घर घर खाया॥
तीनसों हम करबों सलाम।
ज्यामुख बैठा राजाराम॥
तुलसीमाला का बभूत चहावे।
हरजी के गुन निर्मल गावे॥
कहे तुका जो साँई हमारा।
हिरनकश्यप जिन्हे मारहि डारा॥

मंत्र तंत्र नहिं मानत साषा ।
प्रेमभाव नहिं अंतर राषी ॥
राम कहे त्याके पग हूँ लागूं ।
देषत कपट अभिमान दुर भागूँ ॥
अधिक जाती कुल नहिं जानूं ।
जाने नारायन सो प्रानी मानूं ॥
कहे तुका जीव तन धन डारू वारी ।
राम उपासिहुँ बलिहारी ॥

चुरा चुराकर माखन षाया ।
गौलनी का नंदकुमार कन्हैया ॥
काहे बराई दिषावत मोही ।
जानतहुँ प्रभुपना ते राखे भाई ॥
और मात सुन उषलसुँ गला ।
बांध लिया तूँ आपना गोपाला ।
फिरत बन बन गाऊँ धरावत ।
कहे तुकया बंधु लकरी ले हात ॥

हरिसूं मिल ले एक ही बेर ।
पाछें तूँ फेर नावे घर ॥
मात सुनों दुति आवे मनावन ।
जाया करती भर जीवन ।
हरिसुख मोही कहिया न जाय ।
तब तूं बुझे आगो पाय ॥
देषहि भाव कछु पकरी हात ।
मिलाई तुका प्रभु सात ॥

नजर करे सोहि जिके बाबा दुरथी तमासा देख।
लकडी फाँसा लेकर बैठा आगले ठकरा भेख काहे भुला एक देखत।
आँखो भारत डाँगो बाजार दमरी चमरी जो नर भुला।
सोत आधे हिलत खाय नहि बुलावत किसे बाबा आप हिमत जाय।
कहे तुका उस आसा के संग फिर फिर गोते खाय।

अल्ला करे सो होय बाबा करतार का सिरताज।
गाऊ वछरे तिस चलावे यारो बाधो न सात ख्याल मेरा साहेब का
बाबा हुवा करतार।
ह्वात आधे चढ़ पीठ आपे हुवा असिवार जिकिर करो अल्ला की
बाबा सबल्या अदर मेस।
कहे तुका जो नर बुझे सोहि भया दरवेस ॥

अल्ला देवे अल्ला दिलावे।
अल्ला मारे अल्ला खिलावे।
अल्ला बिगर नहीं कोय।
अल्ला करे सोहि होय मर्द होय वो खडा फीर।
नामर्दकुँ नहीं धीर।
आपने दिलकुँ करना खुसी।
तीन दाम की क्या खुमासी सब रसों का किया मार।
भजनगांली एकहि सार।
इमान तो सबही सखा।
थोडी तोभी लेकर ज्या जिन्हो पास नीत सोय।
वोही बसकर ते रोवे।
सांतो पांचो मार लगावे।

उतार सो पीछे खावे सब ज्वानी निकल जावे ।
पीछे गधड़ी मट्टी खावे ।
गाँव ढाल सो क्या लेवे ।
हगवनी भरी नहीं धोवे मेरी दारू जिन्हें खाया ।
दिदार दरगाँ सोहि पाया ।
तल्हे मुँढी घाल जावे ।
विगारी सोवे क्या लेवे बझार का बुझे भाव ।
वोहि पुसत आवे ठाव ।
फुकट बाटु कहे तुका ।
लेवे सोहि लेवो सखा ॥

श्रीसमर्थ रामदास

जित देखो उत रामहिँ रामा।
जित देखो उत पूरण कामा ।।ध्रु०।।
तृण तरुवर साते सागर।
जित देखो उत मोहन नागर ।।
जल थल काष्ठ पषाण अकाशा।
चन्द्र सुरज नच तेज प्रकाशा ।।
मोरे मन मानस राम भजो रे।
रामदास प्रभु ऐसा करो रे ।।

राम न जाने नर तो क्या जी ।।ध्रु०।।
धन दौलत सब माल खजीना।
और मुलुख सर किया तो क्या जी ।।
गोकुल मथुरा मधुवन द्वारका।
और अयोध्या कर आया तो क्या जी ।।
गंगा गोमति रेवा तापी।
और बनारस न्हाया तो क्या जी ।।
दर्वेश शवड़ा जंगम जोगी।
और कानफाड़ी हुआ तो क्या जी ।।
आत्मज्ञान की खबर न जाने।
और ध्यानन बक हुआ तो क्या जी ।।

वेद पुरान की चर्चा घनी है।
और शास्तर पढ़ आया तो क्या जी।।
रामदास प्रभु, आत्म रघूविर।
इस नयन नहिं छाया तो क्या जी।।

रे भाई गैबी मरद सो न्यारे।
वे ही अल्ला मिया के प्यारे।।ध्रु०।।
देहरा तुटेगा, मशीदी फुटेगा
लुटेगा सब इय सो
लुटत नहीं, फुटत नहीं
गैबी सो कैसो रे भाई।।
हिंदू मुसलमान मइज्यब चले
येक सरजिनहारा
साहब अलम कुं चलावे
सो अलम थी न्यारा।।
अवल एक आखीर येक
दोऊ नहीं रे भाई
हम भी जायेंगे
तुम भी जायेंगे
इक सो इलाही रे।।

घट घट साहिया रे अजब अलामिया रे।।ध्रु०।।
ये हिन्दु मुसलमाना दोनों चलावे, पछाने सो भावे।।
सुरिजन हार बड़ा करता है, कोई एक जाने पार।।
अवल अखैर समझ दिवाने, अकलमंद पछाने।।
गरीबन काज बड़ा धनी है, बंदे कमीन कमीन।।

रघुनाथ के दरबार घमडी दे गाजतु है ।।ध्रु०।।
तथ्थै थै थै पखबाज वाजतु हैं,
सुरवर मुनिवर देखन आवतु है ।।
नारद किन्नर सुरवर गावतु है,
शंख भेरि सुनिकै राम थरकतु है ।।
लाल धुसर तबके उडावतु है,
रामदास तहां बलि जावत है ।।

बहिणाबाई

ये गोकुल चल हो कहत मुरारी।
मेघ तुसार निवारे फनिधर सेवा करे बलिहारी ॥
बसुवा अपने कर दीन्हो पालख योंही कीन्हो
जमुना के तट आयके देखें पूरन निरंजन ॥
पूरन रूप यो देखे जमुना जानीये सबही भाव
दोही ठौर भई जमुना नीर तब जानत यो हरि भाव ॥
जैसा परवत वैसो नीर हवो जानी के हास
पाव लागे जनु बहे जायगे सब दोस ॥
जिस चरन को तीरथ शंकर माथा रखीया नीर
वो चरन अब प्राप्त भये हो ये जान उधार ॥
बहिनी कहे जिसकू हरि भावे, उसकू काल ही धोके
बसुदेवा कर आप ही मुरीरी काहे कुं संकट आवे ॥

बसुदेवा तब बारन आवें सोवें गोकुल नंद
दरवाजा आप खोलत है रे आवत गोबिंद ॥
जीस दरवाजें लोहों के सांकल कुलपो तोड़ रखाये,
सब जन सेवक सोये तब ही बसुदेव घर जाये ॥
तब ये माया प्रगट भई है जसोदा सुत भई है,
और सोवे माया ठोर धरी है ॥

जसोदा कूं जहां निद्रा लगी है जाने के गोकुलनाथ,
आवे घर के बासुदेवा ताहां माया लीनी हात ।।
धांकत है मन कांपत है, तन फेर चले मथुरा कूं
निकसे तब या देखन सब कुलुपो होवत वाकूं ।।
बहिनी कहे तब भाया लेकर जाया फेरा मथुरा
देवकी कर लेकर दीन्ही दरवाजे रखे फेरा ।।

बसुदेव जब देखें हीकूं चार भुजा श्री मुरारी
कहत है शाम तुमारो दरशन वांछित रात दिन सारी ।।
तुमकूं वचन सुनावैं दारो सेवक सोवा
तुम रूप छोड़ो देवा हमसे कंस कु है दावा ।।
अब ही सुनो गोपाल भयो अब भारत है कंस,
सबही लरके भारत जावो वो रोवत है हरि पास ।।
चार भुजा तुमको गोविंद चक्र गदा और शंख
जबहि कौस्तुभ देखत तब को मारेगा छोड़ो भेख ।।
जय कृष्ण कृपाल स्वामी बचन सुनो जी हमारा
उस रूपो जब देखे कंस प्राणसु लेवे तेरा ।।
बहिनी कहे हरि प्रगट भयो है, उदर में कारण कौन
पुण्य की बेला प्रगट भई है, वोही कारण जान ।।

जय कृष्ण कृपाल भयो जी
नहीं कीये जप तप दान
नै गृही ब्रह्मन पूजन
कीया भूमि नहि गोदान ।।
तुम क्यौं प्रगट भयो कहा जानो,
अर्चन वंदन नहिँ कछु पायो,
हाय अचंवा मान ।।

अन्न दीयो तब या
रसि नहि देवन पूजो भाव
तीरथ यात्रा कछु नहीं जोड़ी,
कहा भयो नवलाव ।।
वनधारी और निरबाना है
पत्र लिखावत जान,
नंगाह पांव, नंगा देहहि,
बन बन जावत रात।
परबत मांहे जोगी होकर
छोड़ दिया संसार
धूमरपान और पंचाग्नी साधन
बैठे जल की धार ।।
बहिनी कहे कहा जलम का
संचित प्राप्त भये इस बेला
चार भुजा हरि मुज को दिखाया
ये ही कहो घन नीला ।।

सुनो कहत है शाम सुजानो
पुण्य बिना नहीं कोई
जिसके पल्ले जप तप दान है
पावै दरसन वो ही ।।
तुम सब बात सुनो जी
चित्त कूं ठोर धरो जी
हरि के आये,
देये ही बाण कहो जी ।।

फूल बिना, फल जल बिना
अंकुर विन पुरुष नहीं छाया
रवि बिनु कमलिनी, रवि बिन तेज
अंगी तांहां सब आया ॥
तरु तहां बिन बिज तहां
तरू हैं दिपके पास प्रकास
नर तांहीं नारी फुल तांहीं
फल है पुण्य ताहां अविनास ॥
बहिनो कहे जिसकु हरि आवे
केही है पुण्य की रास
शांती क्षमा उस घर में सोवे
सबही संपत दास ॥

ये गोविंद प्राप्त भयो कहा काज
व्रत नहि जानत तप नहि जानत
कारागार में बिराज ॥
पूरब जनम तप करत है,
तब बरद मिलो बनमाली
मेरे पेट में प्रगटो निरगुन
योही मांगत बाली ॥
बहुत ही निकट मांड़ी
तब हरि करूना कर है जान
तीन जनम में मेरे उदर मे
आऊं बर दियो उस रात ॥
उस तप के लीये उदरकूं आये जन
वोहि कृष्ण भयो है येही तप के कारन॥

तपव्रत दान बिन बिहिन
सेवा कृष्ण न आवे संग
संग बिन नहि मुक्ति जिवांकू
ये ही कहत श्रीरंग ॥

बाहिनी कहे उस वसुदेव
देवकी कु देव मुक्ति
वयसों तप बिन प्राप्त नही
वो साधू की संगती ॥

ये अजब बात सुनाई भाई,
गरुड़ को पंख हिरावे कागा
लक्ष्मी चरन चुराई ॥

ये सूरज को बींब अंधोर
सोवे चंदर कूं आग जगावे
राहु के गिहो भोगी कहा रे
अमृत ले भर जावे ॥

कुबेर सोवे धन के आस
हनुमान जोरु मंगावें
वैसे सब ही झुटा है
निंदा की वात सुनावे ॥

समीदर तान्हो पीयत कैसो
साधू मांगत दान
बहिनी कहे जन निंदक है रे
बाको सांच न मान ॥

सब ब्रज नारी सुनो
हरि जनमों नंद जसोदा पेट ।
चलवो चल उस हरि कुं देखे
मिल निकलत है घाट ।।
नारी आरती कर ले गावत
नाम संग में लागा छेद
हलदिर तेल लीये कर माहे
मिलने चले गोविंद ।।
अपने अपने घर तोरन
गुड़िया धरत है जिनमें सुत
नंद को भाग कोइ न जाने
मेटी होवे अनंत ।।
घर घर गावत राग रागिनी
ठोर घोर भयी भार
वा मुख कहा कहूँ
अपने मुख से आवे न जाने पार।।
ब्रज जन नारी मंगल गावत
चिर लुटावे भार
गौ धरत और सुन्ना
दान करत है बाट ही बाट ।।
कुंकम केसर चुब्बा चन्दन
फूल गुलाल की शोभा
देखत इंदर, फणींदर महेंदर
गावत हैं सब रंभा
नाद न भेरी ताल ही
जब झट नांद ने अंबर गाजे,
नाना सुर बजावत
छंदे ढोब ढमामे बाजे ।।

बहिनी कहे हरि जन्म को कहा कहूँ हरि जाने
छंद प्रबंध सुनावत नारी
देह भाव नहि जाने ।।

कंटक को मल्ल मर्द
दौतन को सिर छेद
सुत तेरा नंद कृष्ण
तोही जानी हैं, गोपिन को प्राननाथ
भक्तन कू करे सनाथ
शास्तर की ऐसी वात
संत जानी है ।।
धरम का रक्षन आया
पाप कू सब डार दिया
वोही सुत कृष्ण भया
बात ये सत्य मानी है
सुत मत कहो नन्द, ब्रह्म सो ये ही गोविंद ।
बहिनी का भार प्रबंध, सत्य सुदाईये ।।

जोस आस जोगी जग
जीस आस छोड़ भाग
जोस आस ले बैराग वनवास जात है ।।
जीस आस पान खावे,
जीस आस गंग जावे
जीस आस धरत सोवें
जप तप ही करतु है ।।

जीस ग्रास शिर मुंडे
जीस ग्रास मुच्छ खंडे
जीस ग्रास होते रंडे
जलमे वसतु है ।।
वो ही सत्य जान नंद
प्रगट भया है गोविंद
पुण्य ही तेरा ग्रगाध
बहिणी ये कहतु है ।।

जमुना के तट धेनु चरावत
गावत है गोपाल री
गीत प्रबंध हास्य विनोद
नाचत है श्री हरी ।।

मैं येरी देखत मय
नंदलाल कांसे पीत वसन है झलाल
कानों में कुंडल देती ढाल
सिर पर मोर पिखा मोर दिखा नंदलाल ।।

ग्रबीर गुलाल सबके माथा
हार सुवास पिनाये
जाई जुई चंपन कोमल
चंदन चपक लाये
छंद धीमा धीमा सुनावत है
हरि बंध गयो मेरो प्रान
बहिना कहे सब भूल गये
मेरा हरी सु लगा है मन ।।

मरन सो हक रे है बावा
मरन सो हक है ।।ध्रु।।
काहे डरावत मोहे बाबा
उपजे सो मर जाये भाई
मरन धरन सा कोई बावा
जनन मरन ये दोनों भाई
मोकले तन के साथ
मोती पुरे सो आपही मरेंगे
बदनामी झुठी बात ।।
जैसा करना वैसा भरना
संचित ये ही प्रमान
तारन हार तो न्यारा है रे
हकीम वो रहिमान ।।
बहिनी कहे वो अपनी बात
काहे करे डौर (गौर)
ग्यानी होवे तो समज लेवे
मरन करे आपे दूर ।।

सच्चा साहेंब तूं येक मेरा
काहे मुजे फिकीर
महाल मुलुख परवा नही
क्या करूं पील पथीर ।।
गोविंद चाकरी पकरी
पकरी पकरी तेरी ।।ध्रु०।।
साहेब तेरी जिकीर करते
माया परदा हुवा दूर
चारो दील भाई पीछे रहते है
बंदा हुजूर ।।

मेरा भी पन सट कर
साहेब पकरे तेरे पाय
बहिनी कहे तुमसे गोंविद -
तेरे पर बलि जाय ।।

वैसी रात बढ़ाई
सब जानो तुम भाई ।।ध्रु०।।
देव कहे सो कहा न होवे
सुन रे मूढ़ो अंध
लीला मनुख भई जीस
मणिका छूटा बंद ।।
रावन मार के विभीषण लंका
यह पाई राज्य कमाई
राक्षस कू अमराई दीयो
ये वैसे राम नवाई ।।
पहरादों बिश्व समिंदर बुरना
परबत लोट दिया है ।
आगे जलावे पिता उसका
सत्व से राम रखावे ।।
पानी मांहें गजकू छोड़े
सावज मार न भाई
उसको रन्यो कुटनी मुक्तो
करता राम सो वोही ।।
मिरा को बिख अमृत किया
फत्तर कू दूध पिलाया
स्वामी बिख चढ़े तब राम राम
ऐसो बीरद बढ़ाया ।।

शनि को रूप लीया
राम राखो भक्त को सीस
ब्रह्मन सुदामा सुन्नो की नगरी
वैसे करे जगदीश ॥
वैसे भगत बहुत रखे
तब कहा कहु जी बढ़ाई।
बहिनी कहे तुम भक्त कृपाल हो
जो करे सो सब होई ॥

जटा न कंथा सिंगी न शंख
अलख मेक हमारा बाबू
झोली न पत्र कान में मुद्रा
गगन पर देख तारा ॥
बाबा हमतो निरंजन वासी,
साधू संत योगी जान लो हम क्या जाने घरवासी ॥ध्रु०।
माता न पिता बंधु न भगिनी
गव गोत बो सब न्यारा
काया न माया रूप न रेखा
उलटा पंथ हमारा बाबा
धोती न पोथी जात न कुल
सहजी सहजी भेक पाया
अनुभवी पत्रि सी सिद्ध की खादी
उन नो ध्यान लगाया ॥
बोध बाल पर बैठा भाई
देखत हे तिन्ह लोक
ऊर्ध्व नयन की उलटी पाती
जहां प्रकाश आनंद कोटी ॥

भाव भगत मांगत भिक्षा
तेरा मोक्ष कीदर रहा दिखाई
बहिनी कहे मैं दासी संतन की
तेरे पर वलि जावे ॥

दो दिन की दुनिया रे बाबा
दो दिन की है दुनीया ।ध्रु।०॥
ले अल्ला का नाम क्रूल धरो ध्यान
बंदे न होना गुंम
गाव रतन से ही सार
नई आवेगा दूज बार
वेगी करो है फिकीर
करो अल्ला की जिकीर ॥
करो अल्ला की फिकीर
तब मिलेगा गामील पीर
बहिणी कहे तुजे पुकार
कृष्ण नाम तमे हुसियार ॥

जय जय कृष्ण कृपाला
हो जी नहीं किया जप तप दान
जिस गृहीं ब्रह्मन पूजन
नहि रे भूमि नहि गोदान ॥

तुम भ्यौं प्रगट भयौ कहा जानो
अर्चन वंदन कछु पालो होय अचंबा मानो ॥
अन्न दिया उसकू रसि
नहि रे देवत पूजो भाव
तीरथ यात्रा नहि कुछ जोडी कहा भयो नवलाव ॥

बनधारी और निरपानी है पत्र लिखावतजान
नंगेहि पाव नंगा देह ही बनबन धुंढत रान ।।
परवतयां हैं जोगी होकर छोड़ दियो संसार
धूमर पाने पंचाग्नी साधन बैठे जल की धार।।
बहिणी कहे कहा जन्म को संचित प्राप्त भये इस बेला ।
चार भुजा हरि भुज को दिखाया येई कहो घठा नीला ।।

नंदजी आसीस भार भट भाट को असीस है ।
चिरकाल सुत तेरो
सत्य जाण बात है।
गज दासी घोड़े ।
वस्त्र शस्त्र दान देत है ।
कृष्ण को प्रताप भार ।
बहिणी मूसे गात है ।।

जसोदा का पुण्य फलो ।
नंदजी तेरो भलो ।
कृष्णजी को आस डारो माया मोह नंद जी ।।
यो ही…ब्रह्म निर्गुणाहि वाको नाम कृष्ण जी ।
स्वरूप धाम बैकुंठ को जाणजी ।।
कुर्म नारसिंव्ह रूप ।
फरश वामन रूप ।
मत्स्य ही वराह रूप ।
योही कृष्ण सत्य जी ।।
छोडा माया पूत वैसी यो सत्य हृषीकेशी ।
उसको दरसन दो जी
पाप जावे बहिणी का जी ।।

केशवस्वामी

लागी हो गोविंदा से पिरती
हृदय कमल में जब तक देखूं, परम सुन्दर भरी श्याम की मूरती ।।ध्रु०।।
धन सुत सम्पति कुछ नहिं भावत
निशिदिन सुख रूप हरिगुणगावत ।।
आदि पुरुष हरि नंद का सुत
निरखत नयरो डरे जमदुत ।।
आनन्द घन मनमोहन श्याम
कहत केशव मोकुं मिलिया राम ।।

आवो रे नंदा नंदन प्यारे ।।ध्रु०।।
तन धन ज्योबनं पति सुत संपति भावत नहि तुज बीन पियारे ।।
आदि पुरुष तूं त्रिभुवन नायक, शुक सनकादिक मुनि को सांई ।।
जनन मरण दुःख सखल निवारण, चरण कमल दल तेरो गुसांई ।।
तुही मेरो माता तुही मेरा पिता, तुही मेरा भ्राता परम दयानिधी ।।
केशव राज प्रभू नितहारे मिलन सुं सकल सुख की गति पाडंगी बीरधी ।।

राम सुमिरण करीय अभागी ।।ध्रु०।।
त्रिभुवन नाथ सीता पति राघव, हृदय कमल में धरीय अभागी ।।
नवविध भजन गुरुमुख करीके, त्रिविध-ताप दुख हरीय अभागी ।।
निशिदिन सुखधन राम चिंतन सु, अचल मोक्ष पद चढ़िय अभागी ।।
काहे कु उपजीय काहे कु मरीय, काहे कु काल कुंडरीय अभागी ।।
कहत केशव राम पूर्ण मंगल धाम, समज भवार्णव तरीय अभागी ।।

राम-सुमीरन करना ही रे बाबा ।।ध्रु०।।
काम क्रोध मद मत्सर छांड़ के, यो भव सागर तरना रे बाबा ।।
खीन खीन पावन आयुष खरचत, साधु समागम धरना रे बाबा ।।
गमना गमन निवारण हरिगुण, गाजत बैकुंठ-चरणा रे बाबा ।।
ग्यान ध्यान सु अंग मिल रहणा, मन में दयानिधि भरणा रे बाबा ।।
कहत केशव अब आवोगे मरणा, बिसरुं नको रघुनाथ के चरणा रे बाबा ।।

आज राम मेरो मन में भरो रे ।।
देह विदेह की सुध बिसरो रे, लोक लाज को काम सरो रे ।।ध्रु०।।
शाम सुंदर रनी मंकु लागी, और कछु समजत नहीं रे ।।
आसन बासन सबही भुल गई, रूप निरखिते थकित रही रे ।।
प्रेम नीर अखियां झरत, रोम फरकते बुंद ढरे रे ।।
मैं तो पिया को दर्शि मगन भई मन माने कोऊ कैसे कहो रे ।।
अष्ट भाव सुं गात्र गलित मेरो, नाथ जी ने चित्त हर लीनो रे ।।
केशव प्रभु सुं निकट मिल रही, जेल माही जैसे लवन गिरो रे ।।

मैं राम जपत हुँ माई री ।।ध्रु०।।
आसन मुद्रा बहुत चेन्हाई के, चरण सुं पीरत लगाई री ।।
पति सुत मित गृह सकल हो तजी के, सन्तन के घर आई री ।।
तन धन ज्योबन कछु नहि भावत, भावत हरि सुखदायी री ।।
कहत केशव कवि शाम सुन्दर-छवी, मती गतो तहां मैं छपाई री ।।

लालत सुं मेरी प्रित जरी हो ।।ध्रु०।।
ज्यागति सोबति राम की मुरती, देखती हुँ ज्याहां तहां खरी हो ।।
साट घरी मो साई की बीसर, परत नहीं मकुं येक घरी हो ।।
प्रेम नीर नयन बरसन लागो, लोकन सुं सब लाज उरी हो ।।
कहा कहूँ कछु कहन न आवे, शाम बदन देख भुल लही हो ।।
केशव को प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल वाके बिलगी परी हो ।।

संतन की भई बेटी हो बाबा ।।ध्रु०।।
भजन-दाल ज्ञान-घृत सुं, खावती आनन्द रोटी हो बाबा ।।
प्रेम निजामृत पीवत पीवती, बहुत पडी हय लाठी हो बाबा ।।
ब्रह्मयोग से अचल सबल भरीय, काल की गती सब लोटी हो बाबा ।।

संत की चाकरी करले बाबा ।।ध्रु०।।
इस तन का क्या भरोसा, कब ज्यावेगा मर ।।
निरंजन का रूप समज, छोड़ दे कर कर ।।
कहत केशव राम कु पाया, वो नर अमर ।।संत की०।।

आज मोरे घर आओ गोविंद राजा ।।ध्रु०।।
शाम सुंदर कमलापति गिरिधर, बाजत धीमधीम नाम का बाजा ।।
चंदन विलेपित अांग सुहावत, भाल कस्तुरी माथा मुकुट विराजत ।।
पीत पटधारी गोकुल विहारी, मदन मुरती प्राण नाथ मुरारी ।।
भव दुःख वारण कौंस विदारण, पतीत-तारण केशव नारायण ।।

देखोरी माई नंदकिशोर
श्याम सुंदर चित्त नवनीत च्योर ।।ध्रु०।।
दीन दयाकर त्रिभुवन नाथ,
खेलत गोविंद गोपी संगात ।।
सुखधन निर्गुन हरि अविकारी,
भगत काज भयो सगुण मुरारी ।।
आदि मध्य अंत रहित गोपाल,
केशव राज प्रभु परम कृपाल ।।

मन में गंगा मन में काशी
मन में सदा शिव गुरु अविनाशी ।।ध्रु०।।
मन को मरम न जाने कोय,
मन समजो सो बिरला होय ।।
मन में जेमुना मन में द्वारका,
मन में ब्रिंदावन प्रभु हरी सारीखा ।।
पिंड ब्रह्मांड की मन में रचना
कहत केशव मन ब्रह्म ही समजना ।।

राम ही माता राम ही पीता,
राम भगिनी राम भ्राता रे।
धन सुत संपति राम रमापति,
आर (और) नहीं मैं ध्याता रे बाबा ।।ध्रु०।।
राम सगा मोरे राम सगा रे,
राम बिना नहीं कोहु रे बाबा ।
राम ही जीवन राम परमधन
राम सकल सुख दाता रे बाबा ।।
हृदय कमल में राम ही भरीया,
ताथे बीसर गई दोड रे बाबा ।
राम दयानिधि दिनकर कुलदीप,
राम चरण चित राता रे बाबा ।।
केवल मुरती राम सदाफल,
राम निरंजन साई रे।
राम रसामृत केशव लेकर,
रमत निजानंद माही रे ।।

ताली बजाऊं गांउ राम को नाम
और देवन से नही मेरो काम ।।ध्रु०।।
गले में तुलशी मन मेरो शाम,
जित देखो तित राम ही राम ।।

अन्दर राम बाहिर राम,
राम बिना नहिँ खाली ठाम
केशव को प्रभु देखी पाई विश्राम
भक्त बत्सल हय मेघ श्याम ॥

तुम मेरे जिया के प्यारे,
तुज विण भव दुःख कोण निवारे ॥ध्रु०॥
तेरौ नाम सुमीरण जो कोही करे रे
तिनको ही जम काल डरे रे ॥
कहत केशव हम दास तिहारे,
दरशण को हय प्यास पियारे ॥

क्या कहूँ भाई अब हरि सुख पाई,
सकल ही गति मेरी हरी ने चुराई ॥ध्रु०॥
हरि गुण माला पेरी हूँ मन में,
हरि के चरन के थीर रहूँ मधुबन में ॥
निशिदिन मन में हरि सु लगाई
हरि के भजन सुं प्राण जगाई ॥
हरि सुं निबरी जन सुं मैं बिगरी
केशव साही के संग सब बिसरी ॥

नौबत बाजत है हरि नाम की,
गलित भई गति सकल ही काम की
मन में बैठी मुरत शाम की,
फीरत दुराई राजा राम की ॥
ध्यान सी लेइ कीय अष्ट ज्याम की
मंगल चाकरी केशव गुलाम की ॥

बोध बिराज्या घर कुं बुलावूं
काम क्रोध कूं जहर पिलावूं ॥ध्रु०॥
तोही सखी मैं संत की चेरी,
बहुत क्या बोलूं बात घनेरी ॥
चिंता वारूं ममता ज्यारूं
समता भाई के पद रज भ्यारूं ॥
प्रेम भुवन में आसन बाउं,
हृदय निवासी के दरसन पाउं ॥
सहज समाधी के सेज बिछाउं
केशव सांइ सुं मील मील ज्याउं ॥

मेरे हात में दिया राम,
मेरा मार चेलाया काम ॥ध्रु०॥
लीजै उस धनी का नाम,
कीजे बार बार सलाम ॥
दिखलाकर वस्त्र,
मेरे अन्दर किया स्वस्थ ॥
चित्पद ईनाम दिया,
केशव कूं न्याहल किया ॥

सौंसार मंडण सारा मार चेलाया
गरिब नवाजे रघुराज मैं पाया ॥ध्रु०॥
डर चुका बे मेरा डर चुका बे,
देवन का देव 'राजाराम' देख्या बे ॥
काम का मा बाप मद काफर मुवा,
कहत केशव राज बड़ा आनंद हुवा ॥

आज घमंडी मेरी देखो, घमंडी मेरी देखो
सुख बिना राम मुरत, हृदय कमल रेखो ॥ध्रु०॥
राम ने दिदार, मुजे दिया सब लेदार ॥
राम मेरा यार, करे बहुत मुसुं प्यार ॥
कहत केशव बात, भन्या दिल में रघुनाथ ॥

रामनाम कहो गोपाल नाम कहो।
संत के दरबार अब देखत रहो ॥ध्रु०॥
संसार जंजाल सब छोड़कर दिजे,
लालन का जप प्रेम-महाल में किजे ॥
ज्यात का अहम ग्यान ध्यान से तोड़ो,
मन्मथ का ख्याल ब्रह्मानंद से छोड़ो ॥
कहत केशवराज भाव दिल में धरो,
दिल को पछान बाल न हकीकत करो ॥

संतन के संग माया-ममता जली
अंदर की गांठ मेरी बोध से खुली ॥
राम का दिदार अजी मुझे दिया बे
दिल का जालिन अभिमान मुवा बे ॥
सुख दुःख समान ब्रह्मानंद से सहूँ,
जब तक गोपाल जी को मील मील रहूँ ॥
कहत केशवराज मेरी येकीन बड़ी
चिद्धन की छबि मेरे दिल में खड़ी ॥

लाल बड़ा बे गोपाल बड़ा बे
हर वक्त हरदम मेरे दिल में खडा बे ।।ध्रु०।।
संत का सिरताज मेरे घर कू आया,
संसार बैरी मेरा मार चलाया ।।
भात भात का अज मेरा किया दिलासा
लिखकर दिया चिदानंद मुकासा ।।
कहत केशवराज कवी कविन का नवी,
देखि यामो विसर गयी अपनी छबी ।।

चंद सुरीज मंद ज्याहा खिन्न भय तारे,
सोही असल रूप वावा देखनारे न्यारे ।।
तेज बिना ज्योति मुंढे ज्योति बिना प्रकाश,
रंग बिना रूप मुंढे रूप बिना बास ।।
आगे भरपुर, पाछे भरपुर, भरपुर सबले ठार,
पुरा गुरुपाई यतो हरवक्त खुदीदार ।।
वस्ताद की सौगंध मुजे, हम तो बाबा हारे
कहत केशव गगन मगन सोई अल्ला के प्यारे।

पर पुरुष की चेटकी नारी नाचती निज्यानंद ।
बोध प्याला भर भर पीवे डुलती ब्रह्मानंद ।।ध्रु०।।
नाचती दरबार चेटकी छूयां सब काम ।
बार बार बोले राम रहीम यही नाम ।।
सद सलीते शर पर लीते विशम नही भावे,
निन्यानंद गावत फिरे चेटकी भुली ज्यावे ।।
चेटक दानी वक्तयानी आवे मेहरबानी,
चिदजेरीना पेन सुख साहेब का पछयानी ।।

साहेब मेहेर धरे तब चेटकी ख्याल करे,
मुसलं देहभाव बिसरी उसी ख्याल में भरे ।।
सद्‌गुरु पाया चेटका लाया चेटकी भई मस्त,
कहत केशव उस मस्ती में साहेब किया दस्त ।।

घर घर अमल सब जन खावे
सोखी न माही उतर ज्यावे ।।ध्रु०।।
बाजीगिरी रंग दिखावे,
ऐसा अमल मुझे नहि भावे ।।
तो गुरु का अमल खावो भाई,
इस अमल की बहुत मिठाई ।
गुरु कृपे केशव लज्जत पाई,
तो अपनी सुद आप गमाई ।।
सद्‌गुरु नाथ अमल मस्त,
उस अमल में साहेब दस्त ।
सिद्ध साधु खाते समस्त,
तो घर बैठे पावे भिस्त ।।
गुरु कृपें केशव अमलदार,
अमल खाते अपना दीदार ।
तुम लीज्यो भाई एक ही बार,
इस अमल कू चढ़ना उतार ।।

तो सुन हो पंडता मेरी बात
आतम तत्व की केउ बखानु ज्यात ।।ध्रु०।।
निर्गुण ब्रह्म हम पढ़त हैं शास्त्र,
तो फिर फिर कैसे गफलत खात ।।

तो निर्गुण ब्रह्म कु तुम नहीं ज्याने,
तो काहे बखाने शास्त्र के माने,
आपस्कों विसरे आपस म्याने
देखत पंडत कैसे दिवाने ॥

तो तत्व की बात करे सब कोय,
तत्व जाने सो विरला होय।
आपस्म्याने आप समावे।
कहें केशव तत्वकु पावे ॥

राम सुं राजी वो मेरा राम सुं राजी।
गरीब नवाज की चाकरी लागी जेमकुं दीया बाजी ॥ध्रु०॥
रघुपति सुं नेह लागा, दिल का धोका सकल भागा।
निरंजन के चरण कमल, अचल किया ज्यागा ॥
गुरमुख सुराम दीठा, संसार-जंजाल तूटा,
कहत केशव राज कवी, लागीया रघुनाथ मीठा ॥

बलाय ज्याउं मैं तेरे चरण उपर सुं ॥ध्रु०॥
महबूब साहेब तूही, पिरतम तुज बाज नहीं।
हीरद कमल मांही, तेरो ध्यान करती हूँ ॥
आनंद-घन मदन तात, कमलापति भुवननाथ।
देखत सब गलित गात, बात केउं कहूँ ॥
कहत केशवराज कवी, तंही धनी तूंही नबी।
मद बीसरी तेरी छेबी, मन में धरती हूँ ॥

झुटा तेरा जप
भात रोटी गप
अतित सुरहे छप
तीन काल लेवे झड़प।
मु सु लेवे नांम।
अंदर भरे काम।
ऐसा बेकांम
तुज केव मिलेगा राम ॥
तन लाते खाक ॥
मन में नापाक
अैसें कै लाख।
हम देखे सौ लाख ॥

मध्व मुनीश्वर

ऐसी खेलोरे मत होली, जिसमें कुफर की है बोली ।।ध्रु०।।
फकीर मिलावो रिजक खिलावो, नाजिक खुदा है भाई ।।
अकल धरोरे जिकिर करोरे, खावो भेस्त मिठाई ।।

महल में हरिख्याल पढ़ो मत, इसकी देख मनाई ।।
रंगबिरंगी होकर जावो, दो दिनकी दुनियाई ।।

अपने मु से फजियत होते, इसमें क्या सुगराई ।।
कहनेहि में मालुम होती, कम अकलों की बढ़ाई ।।
भेस्तके प्यारे वो नर प्यारे, जिनकी जिकिर खुदाई ।।
दोजख में जो जाय पड़ेगा, उनकी ऐसी कमाई ।।

ये नरदेही बहुर न आवे, समज रहो चतुराई ।।
नाथ माधो कहत साधो, तुमकू राम दुहाई ।।

ऐसा कहूँ नहीं जी परबंदा, छोडे सबही धंदा ।।ध्रु०।।
कितवे सेंवी मुलुक गवायां, कुफर में डुबा अंधा ।
गुरुके कदमकी बंदगी नाकर, चोरकू दुश्मन चंदा ।।

परधन में हरि दिल में पैठी, गलबीच डाली कंथा ।
हातमें तसबी हरहर बोले, ख्याली उलटा पंथा ।।

दुनया लूटी ठग विद्या से, ऐसा बह्मन कच्चा ।
नाथ माधो कहत है साधो, साई न माने सच्चा ।।

क्या तुम देखते हो वाजीगिरी का तमाशा ॥ध्रु०॥
हाती घोडे माल कबीला, कोई न किसका साथी।
अमीर वजीरा सबगसब गय, आगे चढती राह हमेशा ॥
कौन करारी चीज है माशुक, जिस पर आशक होना।
दम लेनकु कहुँ नहि जागा, झूठा वखुद भरोसा ॥
कहत है माधोनाथ गुसाई, नासिकतिर्मक वाला।
जिकिर गुरुकी अलबत करना, जिसमें दिलका खुलासा ॥

अब कर दिल दिवाने पाक ॥ध्रु०॥
झूटी माया झूटी काया, आखर सारी खाक ॥
काहे कू बंदे महल बनाया, खर्च हजारों लाख।
हरदम तूंही तूंही कहना, जंगल तेरे ल्याख ॥
फजर नीकी बंदगी करना, अकल से होना च्याख।
कहत है माधोनाथ गुसाई, अपना पानी राख ॥

अब मत सोव दिवाने जाग ॥ध्रु०॥
इस देहिकु देख लगी है काल लहर की आग ॥
अपनी कमाई जिकिर खजीना लेकर भाईभाग ॥
कहत माधोनाथ गुसाई, देख हवासिर बाग ॥

अब चल भाई हमारे साथ ॥ध्रु०॥
जो कुछ होना होयगा सो परमेसर के हात ॥
अपने महलकु अकल से जाना घोर अँधारी रात ॥
इस दुनीया से फरीग होना ऐसी बड़ों की बात ॥
इस पानी में वैसा वे रहना जैसा कमल का पात ॥
कहत है माधो तुजे मिलाऊँ साहेब सीतानाथ ॥

भजमन साहेब मोहनलाल ।।ध्रु०।।
कानन कुंडल मुकुट बिराजे, गलबीच मोतनमाल ।।
मृगमद आछो तिलक लगायो, सौंधे भीने बाल ।।
पील झगोरी दामीनी चमके, उपर वोढी शाल ।।
कुंज गलनमों बंसी बजावे, गाजे माधव ख्याल ।।

बंदे मतकर इतना मान ।।ध्रु०।।
अकलकु पकड तूं नकल है ख्याली, नकली दी सब जान ।
क्यों नहीं सुनता क्यों नहीं गुनता, तेरा दिल सैतान ।।
इस देही में पंछी जीयगा, दो दिन का मेहमान ।।
झुटी काया झुटी माया, आखर मौत निदान ।।
कहत है माधोनाथ गुसाई, वैरागी मस्तान ।।

बंदे भज गरीबनवाज ।।ध्रु०।।
मैं तो बंदा जिकिरकु अंधा, इस दुनिया में निकाज निकाज ।।
सव माफ बंदेकु गुन्हाजी, ऐसी तुम्हारी आवाज आवाज ।।
सच्चा साहेव पालो तुही, माधो गरीब नवाज नवाज ।।

माया का गुलाम न करे साईकु सलाम ।।ध्रु०।।
कामी कपटी चोर तुफानी मुतफन्नी अलाम रे ।।
उसकू तंबी पहुंचावेगा हजरत का ईलाम रे ।।
कवडी उपर जविडा बारे, दुनयाई हराम ।।
ऐसा बेईमान इसकू क्यों मिलेगा राम रे ।।
नाहक सारी उमर गवांई न लिया हरिका नाम रे ।।
जहा किया शरीरी का बैकुंठ में इनाम रे ।।
कहत है माधोराम उसका दोजख में मुकाम रे ।।

तूं है रामजादा रे, मैं तो हरामजादा रे।
न करूं तेरी खिजमत रे, मेरे पर तूं खिजमत रे।।
इस दुनियांकू जर दे रे, मेरे पर तूं नजर दे रे।।
जबलग मिलती सवजी जी, तबलग कहते सब जी जी ।।
दो दिनकी ये दौलत जी, अखर खाना दौलत जी ।।
बाजे नागारा ठुबडुबजी, माया नदी मों डुबडुब जी ।।
जागीर वजुद खेडाह जी, वहां तो बहुत बखेडा जी ।।
तेरा नाम न गाउं रे, चेला पुरान गाऊ रे।।
मध्व मुनीश्वर पेदास्ती, उसकी कर तूं निगादास्ती ।।

माशुक तेरा मुखड़ा दिखाव ।।ध्रु०।।
कपट का घुंगट खोल सीतावी, इश्क मिठाई चखाव ।।
आशक तेरा जिवडा चातक, कर मेहर बरखाव ।।
दिलकागज पर सूरत तेरी, गुरु के हात लिखाव ।।
मध्व मुनीश्वर साई तेरा, असल नाम सिखाव ।।

वड़ा नाथ माधो अगडधत्त गुंडा, पिवे घोटकर भांग भरपूर कुंडा ।।
भुले हातमें मस्त लेकर कुतका, नहीं इस बराबर दुन्या में उचक्का ।।
बडा नाथमाधो बहमन मे दुकसवी, गले गोधडी हात में एक तसवी ।।
धनीकू करे याद हरदम दिवाना, शहर में पुकारे बुरा है जमाना ।।
पीरों का मुरीद मुठभर भंग चाबे, धनीके बयाने हमेशा मस्त गावे ।।
आवल झरझरीकी नली ओढता है, कंकर फोडकरती धुवा छोडता है।।
गंगा के किनारे बड़ा यक नकी है, वहां येक खपरेला बंगला किया है।
ताहां नाथमाधो हमेशा भूलता है, फकीरकु नजर देखकर फूलता है ।।
कुसुंबी चिरा बांधकर फेरबिगी, अगलबंद जामानिमा सब्जरंगी।
बडा नाथमाधो बम्हन जोर मंगी, धनीकू करे याद भंगी तरंगी ।।

जहां सुरसती का हुवा संगम, पुराना पड़ोसी ऊपर धेक जंगम।
नीचे मठकी जो चौगीर्द जागा, नजर देखत ही कुफर दूर भागा ।।

राखे असल जो इमान, बड़ा साई मुसलमान ।।
नहीं तो अवस बेइमान, दुनिया बीच रोते हैं ।।
करै दैबकु जो कैद, बडा सोही येक सैद।
नहीं तो सैतानसे कैद, चिकड लगा धोवते ।।
लाश मेरा महबूब, उसका बंदा सोही खूब।
जो नाथमाधो का कुफ, सुनकइ महजुज होते हैं ।।

रुखा पीपल पात है, जैसा पवन से जात है ।।
वैसी फकीर की बात है, रमता भला नवखंडमे ।।
अकल फरणीसात है, जिकीर चाहात है ।।
मिठी शकर सो खात है, खटा मठा सब फेक दिया ।।
गुरुनामका अमल पीया, कुफर गनीम सब जेर किया।
अवल उसोने तख्त किया, भला हुवा अब दिल का ।।
काया विकट किल्ला बडा, जिसपर धनी आप चढा।
आगे फकीर बंदा खडा, करे हमेशा बंदगी ।।
किल्ला बिकट फक्ते किया, जिसपर धनीका तख्त किया।
दिल वजुदकू सिरपाव दिया, मेहरबान हुवा माधोनाथ ।।

बह्मन पढ़ा है बेदकू, समजा नहीं उसीके भेदकू ।।
पूजे पत्तरके देवकू, पंडीत हुवा तो क्या हुआ ।।
अंदर नहीं दिल पाक रे, सेवा जिकिरकू च्याखरे ।।
उपर लगावे खाक रे, जोगी हुवा तो क्या हुवा ।।

बांधे गलेमो लिंग रे, आगे बजावत सींग रे ।।
खावे मुठी येक भंग रे, जंगम हुवा तो क्या हुवा ।।
माला लिई है हातमे, जपता रहे दिन रात में ।।
दिल नही उस बात में, भजनी हुवा तो क्या हुवा ।।
फजर किताबां खोलता, मु से नसीहत बोलता ।।
अपने अमल नहिं डोलना, काजी हुवा तो क्या हुवा ।।
हुसियार न अपने वक्त रे, चढ़े न भेश्तका तख्त रे ।।
भगली ऐसा बदबख्त रे, मुल्ला हुवा तो क्या हुवा ।।
साहेब करता बंदी जुदा, समजा नहीं दिल मे खुदा ।।
फकीर हुवा नहीं अपसुधा, जिंदा हुवा तो क्या हुवा ।।
इस बात से मध्वनाथ कहे, रब साइं का घर दूर है ।।
नही दूर रे, भरपूर है, जंगल फिरा तो क्या हुवा ।।

बह्मन पढ़ा है वेदकू, समजा उसी के भेद कू ।।
पूजे न पथरके देवकू, पंडीत ऐसा सबमें भला ।।
अंदर करे दिल पाक रे, सेवा जिकिरकू च्याख रे ।।
उपर न लगावे खाक रे, जोगी ऐसा सबमें भला ।।
बांधे गलेमो लिंग रे, आगे न बजावत सींग रे ।
खाबे न भूंजी भंग रे, जंगम ऐसा सबमें भला ।।
माला न लेवे हातमे, जपता रहे दिन रात में ।
दिल धनी के बात में, भजनी ऐसा सबमें भला ।।
फजर किताबा खोलता, साची नसीहत बोलता ।।
अपने अमलबीच डोलता, काजी ऐसा सबमें भला ।।
हुसियार अपने अपने बक्तरे, चढे बेहश्त का तख्त रे ।
खुला है उसका बखत रे, मल्ला ऐसा सबमें भला ।।

साहेब करता बंदा जुदा, समजा है दिलमें वो खुदा ।
फकीर हुवा है आप सुधा, जिंदा ऐसा सब मे भला ।।
इस बात से माधोनाथ कहे, नही साईका घर दूर है ।
नही दूर रे भरपूर है, जंगल फिरा तो सबमें भला ।।

अंधा रे जग अंधा ।।ध्रु०।।
साहेव से अपनी प्रीत छांडके, बेइमान हुवा बंदा ।।
बेद किताब कुछ नहीं माने, प्यारी का सब धंदा ।।
कहत है माथोनाथ गुसाई, निर्मल फकीर चंदा ।।

बडा बाजीगर, साई बडा बाजीगर ।
बाजीगर को बाजी झूटी, अकेला आखर ।।
सबकी नजर बंद करकर, दिखावता है पर ।
एक परके पलख म्याने, छत्तीस कबूतर ।।
एक रस्सी का साप करे, जबू न उसका जहर ।
लहर चढ़ेने शहर भुलाना, इस चौक मे कहर ।।
हांडी बाग का गला काटे, मारे पेट में छुरी ।
जीवना मरना वैसा झुटा, बात तैसी बुरी ।।
बाजीगर के हंडीबागकु कही नहीं डर ।
मध्वनाथ का गुरु जबरदस्त है शिर पर ।।

राखो प्रभुजी लाज, आपने शरनागत की लाज ।।ध्रु०।।
पतितपावन नाम तुम्हारो, गुरुजी गरीबनवाज ।।
भवसिंधू के पार उतारो, इतना हमारो काज ।।
कहत है माधोनाथ गुसाई, मुनिजन के महाराज ।।

यारो समजो रे दो दिनकी जिनगी यारो ।।ध्रु०।।
नंगे आना नंगे जाना काका बाबा भाई।
काकी अंमा नानी दादी लालुच देति लुगाई ।।
कहांकी संपत ऊँच हवेली कहांका खेल कविला ।
कहांक नौबद हाथी घोडा जहांका वहीं तबीला ।।
हात दियो कुछ करबे दान, पग से कर तीर्थाटन ।
संपत नही तो भिच्छा मांगकर खुद खिलावे बह्मन ।।
अखंड माधव साधव नहीं भाई सब संतनका लडका ।
हरि भजनसो मस्त भया है खूप लगावे कड़का ।।

बंगला जोर बनाया वे, धामो नारायण डोले ।।ध्रु०।।
नीचे भट्टी ऊपर पानी वामो लगाये बत्ती ।
साततात का महल बनाया खूब बसाई बस्ती ।।
चार देहे का मठ बनाया पचीस लगाये फत्तर ।
पांच तख्त पर पांच बगीचे नहर चलाये अंतर ।।
काला पीला सुफेत हारा नहि कछु जरदे रंगका ।
अखंड माधव रामभजन से महल बना बिन धोका ।।

मुह से राम हय जी, उन घर क्या कम हय जी ।।ध्रु०।।
भजन पुजन तो कछु नहि जाने, अर्जव करत है दुनिया ।
आटा चावल दाल तुवर की घी शक्कर दे बनिया ।।
चेले चाटी भिच्छा मांगते हम तो बैठे डेरे ।
गौबा बम्मन रोटी खाले हम तो सबके चेरे ।।
अखंड माधव साधु नहीं भई राम नाम का सुख लेता ।
जगद्गुरु है साईं हमारा जो चाहे सो देता ।।

झटपट भजले सीताराम, प्यारे झटपट ।।ध्रु०।।
दुसरे का घर मुंडमुंडा कर बड़े हिम्मत से जमावे दाम ।
धरम करे बेशरम गठडा गरम किया नर बड़ा गुलाम ।।
जातपात खुदु संत मिले पर बखत पड़े तो नावे काम ।
लालुच लुगाई भाई बेटा क्यों बे गिर्दि करे हाम ।।
अखंड माधव कहत दिवाना बडे संतन के घर का गुलाम ।
गस्त अइ भई सुस्त रहो मत फकड का टुक लेवो सलाम ।।

शिवदिन केसरी

गुप्त होकर परगट होवे मथुरा गोकुल वासी
प्राण निकार सिद्ध जो होवे सत्यलोक का वासी ॥
॥सोई कच्चा०॥

वेदशास्त्र में कछु नही रक्खा पूर्णज्ञान को पाया
वेद विधी का मार्ग चल के तन का लकडा लिया
॥सोई कच्चा०॥

शिवदिन के प्रभु केसरि साहेब करनी कथनी रहनी
आपहि मध्ये आपकु चीन्हे वोही है गुरुज्ञानी ॥
॥सोई कच्चा०॥

आदेस कहना जी आदिपुरुष लखना जी ॥ध्रु०॥
सिरपर टोपी कानों में कुंडल गले रुद्राक्ष माला
तिलक भालपर चंद्रकोर है श्यामसुंदर का टिकला
सेली सिंगी पुंगी तुंबी और बभूत का गोला
अनहद किन्नर नाद सुनावे अलख निरंजन भोला ॥
वैरागी का लिया लँगोटा पंथ चलावे उल्टा
तत्वबोध का प्याला पावे गगन मगनमें लपटा
आदेस......॥

निरगुन केसरिनाथ कृपाधन शिवदिनहरि का साई
....

आदेस......॥

दो दिन तूम भलाई कर रे
आखर तेरी मरमर रे ।।ध्रु०।।
सुपना सी जिंदगानी जानी दौलत झूटी भरभर रे
आतम ग्यान बिन मुगत न होई जमका पेट डर डर रे
कुटुम्ब कबीला साथ न जावे छांड बुराई कर कर रे
शिवदिन प्रभ्र को साहेब के चरन सुभग धर धर रे

हम फकीर जनम के उदासी निरंजनवासी ।।ध्रु०।।
सत की भिच्छा दे मेरी माई मन का आटा भरपूर
वारवार हम नहि आने के हरदम हार खुसी ।।हम फकीर०।।
सोना रूपा धेला पैसा जो कुच हम ना चाहे ।
प्रेम कि भिच्छा ला मेरी माई, हम पंची परदेसी ।। हम फकीर०।।
सिर फोड जलाली करते मगनहार वो न्यारे
शिवदिन के प्रभु केसरि साहेब चरनो के रहिवासी ।। हम फकीर०

हजरत अल्ला, सब दुनिया पालनवाला ।।ध्रु०।।
जिसका असमान है एक तंबू, धरती जाजम पवना खूंबू
ऊपर गाडा है गंबू, हरदम अल्ला ।।सब०।।
चंद्र सूरज दोनों चिराखो, नव दरवाजे दसवी खिरकी ।।
उधर रखी है एक फिरकी, सब धर अल्ला० ।।
सात समुंदर खंडक खोली, पोहबत का दरवाजा मोली
अबोल बोलत मीठी बोली, सब रस अल्ला......।।
साई केसरि गुरु पिर सारा, शिवदिन नाम मुरीद हि तारा ।
झगमग जागत आते हि जारा, लाल हि लाला ।।सब...।।

अल्लख जागे, गुरुजी अल्लख जागे ।।ध्रु०।।
उलट पलट मो दर्सन गाढा रूप रेख बिन पुरुख ठाडा ।
चंद्र सुरज विन तेज उघाडा, कर्मशूल का भूल उघाडा
समाधी लागी सहजी सहजा, अनुहत सिंगी बाजत बाजा
उन्मनि संगे सो मन रीझया, जाहा ताहा नहि आप विन दुजा
चतुर्दल षडदल दश पल उलटा, द्वादशदल षोडस दल फांटा
द्विदल पर किया चपेटा, तब सहस्र दल भौरा पैठा
अजरामर पद केसरि गुरु का, पाया शिवदिन आदि अंत का
अमृत पीया अर्धचंद का, धोका नहि अब जनम मरन का ।

मारो पेट बड़ा वांका सब से लगा दिया ठोका
देख सन्यासी देख फकीरा घर-घर माके टूका
एक आसन पर क्या बैठेगा पीछे काल का डंका
ईस पेट से चोर छिनाला ईस पेट से पैदा
ईस पेट से ढोंग धतूरा किया पेट ने पैदा
ईस पेट से रख शिपाई राजा परजा मरते
ईस पेट से अमीर उमराव मुलुक-मुलुक पर फिरते
शिवदिन को मन जग बैठे नहीं पेट से न्यारे
गरीब बिरे पशु पछी सोई सबहि पेट ने घेरे

जड़ाव कोंदन का कोंदन का, बनाव सच्चिद्घन का
लाल सफेद वर काला, उपर चमके उन्मति बाला
निगा लगी अलख मो, झगमग झनत्कार झलक मो
केसरि गुरु कांचन मो, शिवदिन जडा गया कोंदन मो ।

बाबा उमर गमाई रे, भाई भगति न पाई रे
झूटी संगत कछु नहिँ बाबा साहब साथी करना
जैसा आना वैसा जाना, नाहीं दीन पछाना ।
चांद सुरज और तारे जलके विजलीभाव बतावे

ठोक न नेमे चूक पडी तब काया खाक मिलावे
माता पिता जोरू लरके तब ही फूटा खेला
नैन आरसा देख दिवाने कर साहब सो मेला
दिलका आइना दिलमें देख सब घट जात जागावे
साहेब केसरिनाथ जगावे नारायन सो भावे ।।

उस पर बल जैये बल जैये
प्रेम प्रीति से रहिये ।।
अलख पलख मो सारा, सब घट देखे साई हमारा
अजपा जप करता है, कर बिन मन मनका फिरता है।।
आसक केसरि घर का, शिव दिन बंदा उसके घर का।।

अमृतराय

श्री बृंदावन मो यदुराज बिराजत है ।।ध्रु०।।
गीत नृत्यगति, हावभाव किति, धिमिकिंधिमिकिंधिमि ।
मृदंग नवघन, घोर गर्जे पखवाज राज सीताज ताजकी,
आवाज गहरे, थरन होत यत, झनन झनन झनन झांजरी ।
इतन मोल की, ढोल की गात, घुम घुम घुम घुम ।
नाद जम रह्यो, तामो मुरली, तनन तनन ।
उपज अलोटी, कोयलकंठी, कृष्ण कंठ सो, लपट लपट के;
तान लपटके, निपट मुलायम, तीन ग्राम यकवीस मूर्छना,
यम सो येक, अलाफ सवाई सुखो, सोत वृखभान जवाई ।
उप्पर थाट, विमान सुरनर, गुमान अमृतराय ने,
अधरांगुलि दे दे थक्कित रहै, श्री बृंदाबन मो ना

गनपत भावे, हरिकथा रंग मो आवे ।।ध्रु०।।
पग सो नाचे मुख सो गावे, चारो कर सो भाव बतावे
सुरस जिंदे संग बुलावे ।।
लपटा नाम बंद सो दुलदुल दोंद हलावे ।।हरि०।।
चूवे कू तुर्की गत सिखलावे, जादा नव दिलमो पठावे ।
अंकुश पाश फर्श चमकावे ।।
लढाई दुष्ट दैनन भो ज्या हर सीख लगावे ।।हरि०।।
संकट दुख जंजाल जलावे, जग में सत्कीरत उजलावे
ब्रह्मा नदी डुली डुलावे ।।
अमृतराय के घर बेठेला संसार चलावे ।।हरि०।।

सब सो आदा, मोरे सर साहेब ज्यादा ।।ध्रु०।।
जासे प्रकृति पुरुष नरमादा, पैदा हुवे कहत तह दादा
तीनो लोक करे मर्जादा ।।
आगे दौरे देव तेतीस करोर प्यादा ।।मोरे सर०।।
विधि हरिहर का भजन बिरादा, उत्पत्ति स्थिति बोझ्या लादा
तामो सबको आप अलादा ।।
यह गति जाने व्यास ध्रुव नारद प्रह्लादा ।।मोरे सर०।।
चूवे पर जडाव का है हौदा, चामर छत्र सुनेरी चर्दा ।
आचे अठरा पुरान कर्दा ।।
बाटे खैरात रुपये होन मोहरा खुर्दा ।।मोरे सर०।।
जाने पूरन विदिया चौदा, देवे मोल लिये बिन सौदा ।
पूरन प्रसाद मुक्त वलोदा ।।
धर्मो हीन हयांय मुक्त वालीदा बाबा आदम उमदा ।।मो०।।
चमके पेशानी पर चाँदा, तक्त बनाया सिंदुर वरदा ।
जग मो देवे आशिर्वादा ।।
आवे अमृत राज सों सुफेत कलंदर सादा ।।मोरे सर०।।

ब्रजराज जी के दरसन को लगे लोभी नैन हमारे ।।ध्रु०।।
पकर पूत के कर मो दो कर मो घर राखत, लय छरी डरावत
दइ दइ मारे, मलान मुखकर, हस हस हस कर,
'नहीं नहीं मृत्तिका खाई ।'
झूठ कहत बलभद्दर भाई, सो तुम सांच न मानो भाई !
आव देखो म्हारे मुखमाही !
बदन पसारत तामो, कै कै प्रकार के रूप दीप दीपांतर
शशि सूरज नव लाख तारागण,
पंच तत्व तेजाम्बर धरणी, पवन पाणी चारों वानी
चारों देह चतुर्दस लोक,
गया परयाग, विष्णु कांची, आवंतिका, द्वारावति, गोकुल,

कुल सुरबर, सनक सनन्दन
विद्याधर बहु, त्रिबिध देखकर, जसुमत मनमों थकीत होकर,
कीरत बखानत
पूरन ब्रह्म परमात्म सनातन, पुरान पावन, पूतना शोषरण
चंचल के चित्तन के चालक, त्रिभुवन पालक !
बालक होकर तुम जीते हम हारे ।।ब्रज०।।

महाराज द्रौपदि के काज गरूडारूढ़ दुर दुर दौरे ।।ध्रु०।।
कपटी काहा करे है मारे, कपटकर कर फांसे डारे,
कपटी कौरव दुर्जन हारे, कपटें पांडव जीते सारे ।
निपट कपट कर लपट रहत रिपु
अपट अपट रह चपट न काजे
खटपट निपट करे तम दुर्जन विवस्त्र करत मोहे सिताब भैया
—दौर करो तो रहत शरम प्रभु; बेगन बेग पवन रथ तेजी—
जोर के पांउ पयोद नहीं तो आपने दोरे ।।महाराज।।
भैया भगत राज प्रभुप्यारे भैया बलिभद्र सों प्यारे,
भैया शूरवीर हत यारे, ऐसे नर कौरव संहारे ।
कवन काज पर विलंब कीनी, कबलों अपनो प्राण धरूं मैं,
मानजाय अपमान आवेगो, लाज गई नाहीं रही सरम कछु,
जस जाय अपेस आवेगो, देस देस अकिर्ति होयगी,
इस कारण प्रभु सीस नमाऊ, राख लाज में शरण आपकी,
सिताब भैया साहेब मेरे भक्त काज पर बहो रे ।।महाराज०।।

श्री बृंदाबन मो अजपत बृजराज बिराजत ।।ध्रु०।।
सत्यलोक तें ब्रह्मदेव जब, गोप भेख धर देखन आये,
गोवन के लघु रुछपाल कर, पुच्छ धरत,
सिरमोर पच्छ, गर गुंज गुच्छ, बिच्छ लच्छ लच्छ

श्री वच्छ चिन्ह प्रभु तुच्छ गन्यो बल, परिच्छबेको,
बच्छा बालसह सकल चुराये
एक बरस दरसन बिन ब्रिजजन तत गोकुल गन आप भये।
ग्रह ग्रह की बछिया, नइ नइ अछिया
धोरी धुमरी, कारी पियरी
हरी बिचित्रा, कपिला बरनी, प्रतच्छ हरनी
जे ग्रह जैसो रहे तैसो
रंग चाल खुर सिंघ भाल, गोपाल बाल
सब विष्णु अवतरे
जाको जैसो सुभाव तैसो,
ऐन बैन को, नैनहीन को,
बधीर कुबरे, पंगु दुबरे,
तुटी पन्हय्या, नई पुरानी, अपुन बिरानी,
लकुट कामरी, गलित पासुरी, धुनिन बासुरी
कुरुप सुरूप सब विश्व कृष्ण मय,
त्रिलोक बिलोक,
नयन करत एक ब्रिजराज चरन पर
आन पर लुटित, कोटि कोटि कहे,
मुरत आप मुरख बिसारे
स्तुति गावत पद पंकज पुनीत रहे ।।श्री बृन्दा०।।

जमुना तट पुलिन ऊपर प्रभु खेले शाम विलासी ।।ध्रु०।।
सरत्कालको कार्तिक मास, सुद्ध पच्छ मो खेलत रास
गयो रयन को चित्त उलास, कुंजबन मो आयो अविनास,
मधुर मधुर बांसुरी बजावे, राग रागिनी तामो गावे

अलाप तान बिचित्र बनावे, बंसी की धुन खूब लगावे,
ब्रिज अबला को चीर चुरावे, गोपिन को सब धीर उरावे
बजावने मो पिया बुलावे
धुन कान मो बैठी गोपिका छबरिया, पूत छोड़ पति छोड़ निकसिया,
दध मंथन जल्दी डारत है,
कंडन पिसना, पछोड़ना सब, खाना पीना,
न्हाना धोना देना आना जाना
काम काज घर दार छोरके
रीत भात सब लज्जा छांडी दौर करत डर नहीं चित्त मो
काम भरो गोपिन के तन मो, शाम मुरत बैठी है मन मो
भयो त्रिया को मेला बन मो, पूरन चंदहि देखे गगन मो
सीतल शुभ चांदना रयन मो, पूरन काम भर गयो नयन मो
किसन कहे तब बात, पहर दस घरी हो गयी रात,
दौरते आवत क्यों ब्रजवासी ।।जमुना०।।

त्रेतायुग तारण संवत्सर, तामो चैत्र माप्त ऋतु सुंदर,
नवमी शुक्ल पक्ष रविवासर, अभिजित लग्न पुनर्वसुभीतर,
पाये रामजन्म रवि कुलमो, लीला नटवर,
बानधनुख पटपीत सुभितकत, दिव्यमुगुट सिर,
कानन कुण्डल, हारजडित मणि पदकखचित शुभवदन रदन,
अलि नलिन नयन, श्नुग स्रवन अधर, भूचाप सहन,
शुकनास सरल इनु गाल भालपर तिलक ललित,
मृदु कुरल सुनिल, जनुविमल हृदय, सम सदय उदर,
जगनिलय चरणद्वय, कदलिगर्भ, सुकुमार मारसम,
अलंकार साकार अभयकर परमधाम परमेश
परमनृप कामिनि सन्मुख ठाड रहे, जगदीश ज्ञानकर,

चरनधरे, अतिचकित थकत मृदुबात करत
'प्रभुजी' ! इह तुम बिध रूप धरे तब कौसल्या
सुत कौन कहे ? यहि मातन की बिनती सुनके
तब ही करुनाधन बाल भये, जननी जगदीश उठाय लिए,
जगजीवन स्तनपान किये, मृदु बस्तरमो प्रभु सोय रहे,
हर यह बिध प्रेमलकूं बस हय सहसुमित्रा भरतादिबन्धु अये,
नरनाथकु सुखसिंधु भये, विधिपूर्वक जातकर्म किये,
निजप्रभु वदन अवलोकत, यह दुंदुभि नाद विनोद प्रमोद
महा सुर वृन्द सुमनबृष्टि करत है, रामजन्म अमृतराय कहत है।

देखो रे देखो आया लंक का राजा ।।ध्रु०।।
कांचन की लंका, तीन कोन, सब काम सुनेरी, रंगमहाल,
सब जगा जगा चौगिई बनी है, लाख माडिया,
बड्या उंच खुब खड्या हवेल्या, मढ्या लाल से,
जड्या जुहर से, झगमग तारे, लाल अगारे,
सफेद सारे कोदन हीरे, जरी फरारे, उपर सवारे,
चंद्र दजारे, सबसे न्यारे, चंद्रसुरज दोनों पर वरि
ढाल ढोल डफ मेघ गर्जना, कठधड, बिजली,
घडघंड बादल भंभेरिया चराचर, करन ताल रणसिंग
ढोल पखवाज बजतर, थैय्य थैययकै काख
लठिया, अखसूय और तिडिमिडि तिडितिडे,
घौस धडाधड नौवदवाजा ।।देखो ध्रु०।।

रणखांम गढा अस्मान बराबर, ध्वजाउंच,
नव लाख देखते लोक खलक सब मुलुख मुलख के,
करोर हाती, घोरे तेजी, उंटू पालखी रथ गाडोया,
करोर लष्कर, तहामें बूबखूब बिलंदी, दसानन घन,
सुभान अल्ला, औ मतवाला, खूब बना दौलत का प्याला,

दादा आदम की अजब लीला, कांचन का तो कोर बना है,
चौफेर जिन खंदक क्यारी, भरे जोर दरयांव दर्दकर,
कहा करे भाई वो राम लछिमन, भरत सत्रुघन, वाली,
सुग्रिव, बंदर लंगुर, बैन बैन को घुमा चौकडे,
खानेवाले देखो यारो,
थरथर थरथर दसानन के कंपत भये बीस भुजा ।देखो रे०।
एतन मो जि रामचन्द्र की चढ़ी फौज ज्या पडी लंक पर,
अढी आढाकर सिडी आनपर, भिडी बांधकर,
खडी बाह पर, बडी लढाई, चढी लंक पर,
चन्द्र सुरज दो डाउ डाउकर नडा छूटकर
खडा मेघ गडगडा गुमानिल लडा उठकर खडा लढा,
लाहु सनननननन्त बान छूटे छच्छननननननन,
खर्ग बाजे खक्खनननननन, तोल बाजे दछनननननन,
गगनबीच घघनननननन, मेघनाद कंकडडडडडड,
पटे बाजे बभरररररर, बाके तीर सस्सरररररर
उडे फूल जब सुले हाती, गिरे सिपाई फते राम की,
खुले लाल गुलाल सिंधुकर, रावनमारा राकेस घेरा,
तमाम सारा, भागे लोक कुल लंक लुटाई,
निशाण चढाया दुहाई फिरे रामराजा ।।देखो रे०।।
लुटी लंक जब खटपट कठोर, चटपट चटणी लटपट लहणी,
निकट भुवन घर खटाटोप पट द्रुमकुट द्रिकिट दधधीमपधीमप,
अनुहत बाजे तनित परंम पटे हर राम राम घनश्याम,
सुंदर नरनाम जपजे रामपूरणधाम त्रिकुट दे धाम,
बिभीषण ढाव अचल दे सीता सकल निल महानील,
पेर सबल सेतुबल अंगद मैतरु सुक्र सुक्षणघन
जांबुवंत हनुमान गनत दुर्वास ब्रह्मऋषी,
वसिष्ट विश्वामित्र प्रतिनाम पौलस्त्य भार्गव,

भारद्वाज अंगिर मांडेय गुरु पैगंबर पूजत
रामराम सुखधाम सलकसब कामपूर्ण परब्रह्म
सनातन कविजन पुष्पवृष्टि करत जयजयकार करत,
कहे अमृतराय सब लंगरऊपर ज्या बैठे सब,
देव बजावत अनुहात बाजे बाजा ।।देखो रे०।।

श्री बृन्दावन मो अजयत ब्रिजराज बिराजत है ।।ध्रु०।।
घन तरबर सुरतरु की छाया, कमल कर तक्त बिछाया
तापर सजल जलद सभकाया, मोर मृगट सिरपेच बनाया,
संग राधिका सह ब्रिजजाया, परब्रह्म हर तिनको पाया,
नैनमो भरपूर समाया, माया मे नट भे कछु पाया,
बाका वनवारी मन भाया,
महल सराय मोहबादरी
हर सखि नादर, दामिनी सुंदर, बनि अनि आदर
कोदर बारन आदर बासुरा को प्रबला,
असुरखल प्रताप कार प्रभाकर प्रस्तुती प्रभु प्रसादकार प्रमदानी,
कमलनि प्रयानिका गति प्रफुलित मति सो प्रबुध प्रबीन,
प्रगट प्रेम से परम पुरुख संनिध सेवा कर है—
ब्रिजजन हरि सेवा कर रहे ।।श्री वृंदाबन मो०।।
बैठे शाम महामरकत तनु,
तापे मोर को चामर बीजित, कामर सखीकार लिये
धाम रहित भई शाम नयन कु
नाम शरन मो, पामर समकर,
रगरिठारी, त्यजो अटारी
बिपुर पुरकबती, अलक सवारत,
ललित सुललना, नहिँ कछु तुलना,
कान निकट अति, मान वती, मृदुपान खवावत,
जांबुनद छबि तांबूल लिये

कंबुकंठ गति अंबुज कर सो, अंबुपान करवावत दूती,
श्रवण मकर मनु मुखि अधर अनुग्रह
गृह सी जाके सन्मुख दगते
पाच्छे सरकत मनु उन्मन मोहे ।।श्री वृन्दाबन मो०।।
श्रीपति कुंज निवासी सहस आया
अविनास निज रास मंडल मो अस पाया ।
सहभास सकल कु एक-एक गोपी एक नंद लाला,
भुज पर भूज भुंजंग विशाला,
कर महे कर मुकुट रसाला, मालाकार भई व्रिजबाला
मरकत मजनिम श्री गोपाला, सुवर्ण नमनी त्रय अधर प्रवाला
मर्द गर्द जामनि जुध जुथमो, नव घन मो डारी,
जुगल जुगल राकेंद्र उजारो कवन ग्यान उपमान सवारो
गुन गाय भव बंध न करे,
जमुना जल कल्लोल, लोल लोल का रज
कुंज के कुंज फुले, अलि पुंज कुंजहि गुंज,
तनहि मोहे गुंज रमत हे
बैठे नाद सुश्चद, लेत अनुवाद, बिना उन्माद
मगन घुनि अपनि कच्छु ना कहे ।।श्री वृन्दा०।।
गीतनृत्यगति हावभाव इति धिमिकिति धिमिकिति
धिमि धिमि धिमि धिमि घोर गर्जत पखवाज साजकी,
आवाज गहेरी,
परत होत सननननननननना सनन सनन,
झ्यांझरि इतन मोलक, ढोलकी गत,
घुंघु घुंघु मोरचंग,
तार गुंगार उठतु है एक सखि के मुख ते तत्थैया तत्थैया
कबितकाई कहत इत पायल,
नरतन चाल चलत घुंररु घुमघुम घुम घुम नादजम रह्यो,

तामो मुरलिया, तननं तननं सा रि ग म प ध नि सा
सा नि ध प म न ग स्वसुरवर्तनि उपज अनोटी,
कोयल कंठी कृष्ण कंठ से लपट,
कपट की तान लपटकी तिक पट भुमयन तिनगम
आर एकहि जो गगन हवाई,
खुसी होत वृखभानजवाई,
कवित सुरसिर राग रागिनी,
कबित, ध्रुपद त्रिवट पंचदर पंचगीत और प्रबंध सुनि सुनि,
ठौरठौर गन्धर्न-गर्वहत उपर थाट बिमानी,
सुरमुनि गलित गुमान, अमृतराय प्रभुलीला देखे,
अधर अंगुरिया देह थकित रहे सुसर किंनर,
थकित रहे नारद तुंबर थकित रहे ।।श्री बृन्दाबन।।

इहलीला चंद रचाया। पल में त्रैलोक्य नचाया ।।ध्रु०।।
उठके प्रात जसोदा मय्या, दे नवनीत पुत्रश्यामा,
नाच कन्हया शब्द उठाया, अजब तमासा उन्ने दिखाया,
ग्वालन के सुसमाज आज ब्रिजराज पकर बलभद्र अंगुरिया,
नचत राग च्छुहु गाय रागनी, उपरत पायल
उठतनादजी, हरत देव गंधर्व रटत, मृदुतान 'तुटत'
आकास फटत, धुम धुम धुम घुंगरु
गर्जहि, तत्काल मोहबस, नंद जसोमति,
गोपम्हर्णी, तत्थै तत्थै नृत्य करत, इकनीर भरत,
कोइ देख सुरत, घटसिर न धरत, दधि मथन करत,
मन सुमन हरत तनमन बिसरत,
सुखसदन फिरत, कर रदन थिरत, नगबदन धरत
देहमदन झरत, इह प्रकार नरनारी
गोकुल के सब ब्रिजबासी लोक चबासी,
मगन सघन होकर, मुरली में धुन से नाच नचाया ।।इहलीला।।

मथुरा कंस नचे अभिमानी, प्रलंब अगबग मुश्कि सानी,
लंक बिभीषन नचत सुग्यानी, जरासंध शिशुपाल गुमानी,
तुर्त निशाचर खबर हिरानी, एकहि बेर कलोल भयो,
धरणीधर कंपत, लिये हस्त में, अर्गखर्गबेसर्ब करत,
उड्डान मार्ग को नजर न लावे दुर्ग दुर्ग दौड़त है जिनको,
दर्प बडो तन सर्प लिये मन गर्क किये, नहि तर्क चले,
रजअर्क निकारत, अर्क पकरवे, झपट-झपट,
नभ लपट-सपट कर भूमि गिरे पुन ऐसे सब घनघोर हरेते,
अवनि भज्यावत असुर तिहुँ अहिकेन को नचत नचाय्या ।।इहलीला।।
धर्म भीम अर्जुन अधिकारी, नचत नकुल सहदेव सुनारी,
कौरव भीखम गुरु अचारी, अंध वृद्ध कुन्ती गांधारी,
महा तपि सुर ऋषि जटाधारी, कंदमूल फल पबन आहारी,
देसदेस के अजब गजब सब, भूच सहर के बातशाह उमराव शिपाई,
सुभामृते सरदार सवाई, मुजुमदार फडनीस किरवाई,
दरखदार चिटणीस उपाई, फौजदार मिल करत हवाई,
ठौर ठौर दरबार कचेरी, बड़े मुत्सदी हटघट बाजार,
बाजार बीच, अत सुखत पुखत, तज जडक, तरुखत नहीं सराकखसा,
सेट शियाना, सौदागिर करलेत मुलताना, खैच कमाना,
करत तनाना, मनू हु न भावे, आप बिराना,
तेली बनिया, बरई रिनिया, साबलुहार, जुहार कामगार,
कारिगिरि बादीगिर, वढई, माट, कुंभार, सुनार,
छीपी, रजपुत नीच ऊच मिल नाचत उठरा जात नसे,
सुक हंस कोक बक पच्छिन से, अहि पिप्पलिका लघुकीटन से,
बन पर्वत दह जड़ वृच्छन से, अवसानन भान कच्छुमन से,
धुन बासुरि की, सुन गान करत, पुन जितक महीमे,
जीव जंत्र, शावर जंगम तिनहू, न चबे बचाया ।।इहलीला।।
नचत बलि बामन सुविलासी, नारायणमुख सहस बिलासी,
जलजा वरून अप्सरादासी, सब पाताल लोकपुरबासी,

स्वर्गनचत सुर इन्द्रचन्द्र रव बुध कुज कब,
गुरु केत राहु सनि विष्णु गजानन चतुरानन,
पंचानन बर आनन जमनिधपति,
नारद भैरव अष्ट गरूर गोपति गिरिजा, सचि सावित्री,
सरसति, रंभादिक अष्टनायिका, बसिष्ट व्यास पारासर,
गौतम भरद्वाज दुर्बासदेव अंबगाधिज कश्यप सुख मैत्र,
अत्रि जमदग्नी अगस्ति बकदालम्य मृकुंड कपिलमुनि,
जाज्ञवल्क्य दत्तात्रय यते वाहन सह उपदेव देव तेतीस कोटी,
ऋषि सहस अट्ठासी मिल सब, ध्रुव पहेलाद विजय जय,
सनक सनंदन, भक्त नचत गंधर्व, जक्षगन, लच्छ लच्छ,
पृथमी जल अंबर तेज पवन सह पंचतत्व गुन,
सिंधु सप्त ये विधसे सब नचवायी, त्रिभुवन नाटक,
यों प्रियलीलाधारी, सुरअवतारी, ख्याल ग्वाल बिच,
अद्भुतपगते नचत नचत अमृत बक को,
अपराधपुंज प्रभुने निज उदर पचाया ।।इहलीला।।

आदरकर नृपति पद गय्ये, तब हरिचरित शुकमुनि कहे ।।
ब्रिजमो निजरिपु जन्मो कहान, इह धुनि कौंध सुनि जब कान ।।
अन्तरगत अतिचिंता भई, ताहामों आई पूतना बाई ।।
आज्ञा ले गोकुलमो चली, बिखलतिका नृप सुखते खुली ।।
जिसको हय लरको का आहार, सोती गृहमो करे बिचार ।।
डायल चुडेल बालक की खूनी, उलट भेख सुरकना बनी ।।
गृहमोआय अचानक बैठी, नंद भुवन आसन आ बैठी ।।
वहां को रूप देख ब्रिजनारी, चकित थकित भये सकल बिचारी ।।
कोइ कहे दिव्य इन्द्र की शचि, बोलत आपने आने रुचि ।।
कोइ कहे लछिमी, कोई गौरी, कपट भेक देख भई बावरी ।।
हो तुम कौन कहां से आये, पुछके नहिँ अचरजु पाये ।।

काम रूप धर सुंदर नार, मुखमो रदन खुले जो अनार ।।
चंद्र आननी पंकजनयनी, अधर प्रवाल लाल कुच वैनी ।।
कोमल अंग भुजंगम बेनी, गलित कुसुम चलि ब्रिजदुखदयिनी ।।
गृहमों आय करे संचार, हरि मारन को करत बिचार ।।
कृष्ण का यह करत ककाय, रोय उठे हरि बालिबलास ।।
लघुभंचक कंचन के डौरे, जननि झुलावत प्रभु विन डौरे ।।
बालघातिनी आई पास, नयनन मोंह रहें जगनिवास ।।
पोहची निकट निपट अनिवार, जैसी म्यान मोकि तरवार ।।
खलदुर्जन को अन्तरभाव, अन्तरजामी जानत डाव ।।
कालभुजंगम ज्यान क सोयो, रजोवूध से घर कर लीयो ।।
कृष्ण उठाय हिरदसे लीयो, विखमर्दित कुद्ध मुखमो दीयो ।।
कृष्णसाप जो तनसों लागो, प्रानपान करबे कुज त्यागो ।।
मेरो नन्दलाल बहुरंगी, रुधिरहारन को लागि सुरंगी ।।
ले जसोमते ले अपनो पूत, इह पूतन को जागे भूत ।।
रंग करि अइ अलबिसबासरि, बिकलभई रंजनी चरनारी ।।
ले ले कहत जसोमति दौर, आनन्दभरन भयो कछु और ।।
छोड छोड कहे रे ! कछु बाल, छुटत नड़ीं असुरन को काल ।।
मेरो छमा करो अपराध ।....................................।।
अरे महाराज, मुगुम मैं पाऊं, गई फेर मैं अज नई आऊ ।।
चंड भयंकर बड़ो अकास, आय सके नहि ब्रिजजन पास ।।
आनबनी मोतन की घेर, काहा को कहा कहे भई जेर ।।
निकट समय मरने की बिरिया, छी छी करत व्याध कर बिरिया ।।

माधव महाराज

प्रातसमय रघुवीर जगावे कौसल्या महरानी ।
उठो लालजी भोर भयो संतन को हितकारी ।। ध्रुव पद ।।
बंदीजन गंधर्व गुण गावे नाचे थै थै तारी ।।
शैलसुता शिवद्वारे ठाड़े, होत कोलाहल भारी ।।उठो।।
सुर नरमुनि ब्रह्मादि देवता सनकादिक ऋषि चारी ।
बेदबानी विप्रजन गावे रघुकुल जन बिस्तारी ।
सुन प्रिय वचन उठे रघुनन्दन नैनन पलख उघारी ।
चितवन अभय देत भक्तन को मुक्त भये नर नारी ।
भरत शत्रुघन छत्र चवर लिये जनकसुता लियो झारी ।
मेवा पान लियो कर लछिमन भर कंचन की थारी ।
कर अस्नान दान नृप दीन्हे, गौ गज कंचन भारी ।
जयजयकार करत धन्य माधव रघुकुल जस विस्तारी ।।उठो।।

देवनाथ महाराज

भज मन श्री राजा रघुनाथ ।।ध्रु०।।
कहुको माता पिता और भाई, कहुको ये जामात ।।भजमन०।।
कामिनी कामकी कठन पडत है, गहिरी अंधेरी रात ।।भजमन०।।
जल अंजुली जल पाय पले पल, तब तनू सुहाग ।।भजमन०।।
देवनाथ प्रभु नाथ निरंजन, साच बनी है बात ।।भजमन०।।

राम न जाने तो नर जिया तो क्या जिया ? ।।ध्रु०।।
धनदवलत धन मालखजीना
और मुलुख सर किया तो क्या (किया) जी ? ।।राम०।।
गंगा गोमति रेवा तापी
और बनारस न्हाया तो क्या (किया) जी ? ।।राम०।।
गोकुल मथुरा मधुवन द्वारका ।
और अजुध्या कर आया तो क्या जी ? ।।राम०।।
दर्वेश से वड़ा जंगम जोगी ।
और कान फाडा आया तो क्या जी ? ।।राम०।।
वेदपुरान की चर्चा घनेरी ।
और शास्त्र पढ़ आया तो क्या जी ? ।।राम०।।
जर हि जौहर महाल बनाया ।
खालि तिर्या संग सोया तो क्या जी ? ।।राम०।।

आत्मज्ञान की खबर न जानी ।
और बानी वक दिया तो क्या जी ? ।।राम०।।
देवनाथ प्रभु आत्मा गोविंद ।
इस नयनन मों नहिँ छाया तो क्या जी ? ।।राम०।।

प्रीत की रीत कठण निभाना ।।ध्रु०।।
यह जग मो कोई नहीं है अपना मन मिले प्रित काहु करना ।।
जीले कृपा करे नाथ दयाधन तबले भली वुरी सब किछु सहना ।।
देवनाथ प्रभु सच्चा साहेब देखत नैन मो मस्त हो रहेना ।।

सखी मेरो पिया कौन वतावे, जाउंगी हूं वलहारी ।।ध्रु०।।
कहा करो, कित ज्याउ अरी ! अब घुंडत हूं नहि पावे ।।सखी०।।
रैन दिन मोहे चैन पडे नहीं, सोवत निंद न आवे ।।सखी०।।
बावरी भई सांवरो नहिं दिखत, या मन विरह सतावे ।।सखी०।।
देवनाथ प्रभु नाथ निरंजन, पिया मेरो नाहिं दिखावे ।।सखी०।।

प्यारे ! उलट कमल मो पलट, देख ले मौजा
सब घट मैं नाथ विराजा ।।ध्रु०।।
नर लाल हुवा बेहाल, पड़ा भ्रमजाला ।
क्यंव फिरता भटका भूला ।।
तैं, डार सुधारस घटकु, विखय बिख प्याला ।
पीकर हुवा मतवाला ।।
चढ आवे तुज पर काल फौज सों आला ।
को होय तेरा रखवाला ।।
इस माया मों एक तरन गुरु महाराजा ।।सब०।।

मैं हूं वे कहां का, कौन कहां सो आया ।
ये सार बिचार न पाया ।।
मा बाप बेहन और भाइ कबीला माया ।
मैं मेरा कहां डुबवाया ।।
संसार नरक का मूल, नाहक लपटाया ।
कर याद गुरु वस्ताद, पकर ले पाया ।।
सुन छमा टाल ले हात ग्यान को नेजा ।।सब०।।
कर हुकुम फौज मैं बाजे काल का डंका ।
तुझे फाम नहीं ले नाम पीर मुर्षद का ।।
हो सवार साबुत तो बे घोड़ा मन का ।
चढ़ सवार सले बड़ा सुरतगडबांका ।।

ये संसार बड़ो दुखदायी, निपट काल को रगड़ो ।
नेह लगावो, हर सो यारो ! नाम कभू ना छोड़ो ।।ध्रु०।।
ज्यो तुम हमसों प्रीत लगाई, सो दिन दिन पै बढ़ती है ।
कीज्यो यारो ! और कछु नहीं, यही हमारी बिनती है ।।ये०।।
कल तो होगा कूच हमारा, ख्याल फकीरी रमता है ।
तुम चारों में प्रेम प्रीत सो भई दो दिन की गमता है ।।ये०।।
भली बुरी कछु निकसी बाणी, अपना करके जाना है ।
देवनाथ प्रभु फक्कड यारो ! उनको उनहीं माना है ।।।ये०।।

पिपीलिकासों ब्रह्म तलों जी यो जग भरा पसारा,
उलट कमल में नैन न्याहारो ब्रह्म रूप ये सारा ।।ध्रु०।।
नीज रूपसों आप बिराजे, आत्मा गुरु अलबेला ।
चीन्हो ताको मगन हो पिवो प्रेम रस प्याला ।।पिपीलिकासों ।।

प्याला पीया ऐसा जी से नाथ निरंजन सूजे ।
ऐसा मर्द कोन है ठाडा वचन साधु का बूझे ।।पिपीलिकासों०।।
नरनारायन आपहि तुम हो ज्यो गुरुपदरस पीयो ।
देवनाथ कहे पलटो यारो ! अजरअमरपद पावो ।।पिपीलिकासों०।।

खासी यह नरदेही रे ! बाबा ! आवनकी फेर नाहीं ।।ध्रु०।।
पाप पुन्न समभाग भया, तव आपहि प्रगट सुहाई ।
आतमग्यान की पेटी सुहावत या बिच राजत साई ! ।।खासी०।।
लख चौरासी फेरा फिरा तब भागसों पूरन पाई ।
अमोल से ज्यावत है घडिया समजत नाहिन कोई ।।खासी०।।
या बिच आतमराम बिराजत बेदन की है गाही ।
सो निजसार बिचार कर देखिय आप भरो जगमांहीं ।।खासी०।।
आप भरो जगमांही कैसो देख विचार के येही ।
सरन हो नाथ निरंजन को और गुरुविन मारग नाहीं ।।खासी०।।
देवनाथ गोविंद दयाघन व्याप रह्यो जगमांही ।
देवनाथ प्रभु सुमरो या मन गुरुबिन मारग नाहीं ।।खासी०।।

निगुरे ! क्या किया वे ! ।।ध्रु०।।
मा बाप और भाई कबीला, अपना करके भाया बे।।निगुरे०।।
ज्योरू लरके समदि जवाई, मोह लपटाया बे ।।निगुरे०।।
भाग पूरबकता सोंपाई, खासी ये नर काया बे ।।निगुरे०।।
या तन आतमाराम न चीन्हो, जनम अकारन खोया बे ।।निगुरे०।।
बिखयबिखका प्याला पीयो, दिल मस्ताना भूला बे ।।निगुरे०।।
देवनाथ कहे फिर जलदी सों नाहक के भरमाया बे ! ।।निगुरे०।।

वा पर सो तनमन वारो ।।ध्रु०।।
मुरली अधरधर सुंदर नागर, गौबन की रखवारो ।।वापरसो०।।
सूरत शाम, मूरत खूब, नैनन रूप न्याहारो ।।वापरसो०।।
देवनाथ प्रभुनाथ निरंजन, पूरन ब्रह्म है मेरो ।।वापरसो०।।

बन्सी कुंजबन मो मधुर बजी ।।ध्रु०।।
आधि रैन सुख चैन पिया संग, सुवत कान भयो रजी ।।बंसो०।।
बेग उठ चली कुंज रहासो, बाबरी भई मोहे कछु न सूजो ।।बंसी०।।
देवनाथ धुन सुनत कान, तब गृहधनसुत संसार त्यजी ।।बंसी०।।

जमुनातट के निकट बजावे मधुर धुनी मुरली की ।
सुनत कानहू कई बावरी सूध न रही तनमनकी ।।ध्रु०।।
आधि रैन सुख चैन सखीरी में पिया संग सोई ।
सुनत नाद मदमस्त दौर के बिंदराबन आई ।।जमुना०।।
कह री बजाई बंसी कान्हने मधुर लहर बाकी ।
सुनत डार घर बार निकसी मैं बुद्ध राखी बाहकी ।।जमुना०।।
गरज गरजके बरसे मेहु बुंद बरी टपके ।
आधि रात अधियारी परी री बीच दामनि चमके ।।जमुना०।।
देबनाथ प्रभुनाथ निरंजन नंदलाल कान्हा ।
देख लपट रही पगसों सखीरी निरख रूप नैना ।।जमुना०।।

साथी कोई नहिं अपना बे ! दुनियां दो दिन का सपना बे ।।ध्रु०।।
मयाखेल झूट पसारा मृगजल साच दिखावे ।
भूला नर जो इस जल म्याने फिर फिर गोला खावे ।।साथी०।।
बहेन भाई सखा कबिला नाहक कहता मेरा ।
काल आवेगा ले जावेगा कोउ नहीं है तेरा ।।साथी०।।

चौर्‌यासी में फिरते-फिरते उत्तम नरदेह पाया ।
भूला भूला फिरे दिवाना अबहू समज ना आया ।।साथी०।।
आपहि आपने साथ सगालो, दुजा कोउ नहिँ आवे ।
ज्यान बूझकर अंधा होता आखरकू पस्तावे ।।साथी०।।
धन माल जाता यारो ! पास कछू नहिँ रहता ।
हरिभजनमों चित्त न लागे तो खा बैठे गोता ।।साथी०।।
खविंद हमारा नाथ गोविंदा पूर्णब्रह्म मैं जाना ।
हरिभजन की नौबत बाजे देवनाथ मस्ताना ।।साथी०।।

कैसी मोहन बंसी वजाई ।
सुनत धुन मोहे सुध नहीं पाई ।।ध्रु०।।
उत्तम सावन मास बिकसत पुन करे नर नारी ।
साथ सखी ले मंगल गावत आधी रैन अंधारी ।।
कान परी धुन मोह लयो मन ये ब्रिजलाल व्यहारी !
मधुर बजावत, राग अलापत, गावत तान सलाई ।।कैसी०।।
भादो मासमों मेघ गडागड़ टपकत बुंदरी खासी ।
रुमझुम-रुमझुम झुरमुट झरिया बरखत है घनरासी ।।
ओढि खुशाल दुशाल पिया संग रमही भोगविलासी ।
बिजलीसी वंसी आयी, परि मोहे मदन कुमार भगाई ।।कैसी०।।
कुंवारि करे सिंगार सवारो सेज पे नाथ हूँ बैठी ।
सारी हरी चुनरी पेहरी भर जीवन नैन अंगेठी ।
आयो पियो मोरे लपट गले मिल बोलत बातही मीठी ।
तो सुनो आवो नंद कछु तन मन धन आस छुराई ।।कैसी०।।
कार्तिक मासमों गोरिया नहावत कुटिलालक सवारे ।
बैठी हती ढीग मातपिताजू के कानन नाद न्यहारे ।
बिंदराबन ब्रिजराज बजावत बंसी नंददुलारे ।
से सुनके भई बावरी चंचल मन कछु सूजत नाहीं ।।कैसी०।।

अघहनमों अघहर बरत करत है पूजत देवि कुंवारी ।
मांगत दे भिक जनम जनम की दे कंश या बनवारी ।
जमुना जी के तट निकट बिराजत ठाडी भये पुतनारी ।
साथ लियो ब्रिजबाल गोपाल ज्यो पिता घट कास सोंहाई ।।कैसी०।।
पूसनमों कछु पूसन पावे सिर पूरन भई है उदासी ।
ज्या गह्यों मन प्रभुपायनसों गृहधन आस निरासी ।
धुन सुन मुरली की बिकल भयो मन कुंजमें ज्याय के निकसी ।
हरि बिन कछु नहिँ सूजत या मन बाबरि भइ है लुगाई ।।कैसो०।।
माहो मासमों मनसिज मोरे बाजत थंड घनेरी ।
तकिया तोषक नरम न्याहली कछु नहिँ लागत प्यारी ।
मारी अटारिके डारी निरखत नैन कुंज व्यहारी ।
खडरस मोहे मीठो न लागत बंसी चित्त चुराई ।।कैसी०।।
फागण मासमों खेलत फागको सब मिलया ब्रिजनारी ।
ग्यान गुलाल और ध्यान अबिर की हाथ लिई भर जोरी ।
भक्ती की रंग सुरंग बलायोरी प्रेम भरे पिचकारी ।
ऐसी भई मतवारी सखी सब कान्हकु देखन आयी ।।कैसी०
चैतनमों मधु चित्त चितावत कामि भई मृगनैनी ।
आंव के वनमांही किलकत कोकिल बोलत अमृत बानी ।
ब्रिजराज बिरह की मारी भई तब मोहन लागसों हानी ।
मुरलि नही सखी मोहनी डारी नांद सुनी ललचाई ।।कैसी०।।
बैशाख मासमों आई उदासी झारत जब रूख पाती ।
तैसे हूं डार सिंगार जो हरि बिन भरमर आवत छाती ।
आधि रैन मोहे चैन परे नहीं कुंजमों धूंडन जाती ।
बावरी भई जैसी बिजया सारी सूध गमाई ।।कैसी०।।
मास भये दस हैरत बाटके तो सखी जेठ ही आयो ।
दास उदास के आस मिलि बेगी सुभ सकुनही दिखायो ।
बहुवा फिरकत बाजुवा लपलपके नैन चलावो ।
आयी हुती कही मोसों सखि ! चल बेगी कान्ह बुलाई ।।कैसी०।।

आयी आखाडमों आस पुरी मन पुरनानंद भयोरी।
या तन कुंजमों श्रीगुरुगोबिंद आतमाराम न्यहारी।
समरस रम कहयो मानरूपमों वृत्ति भई अविकारी।
देवनाथ प्रभु अंतर बाहिर छाय रहयो सबमांही ।।कैसी०।।
प्रभु सुंदर मुरली बजाई, या तनमों सब हेत मिठाई।।

भली फकीरी छांड जिकीरी नरख किसी सों काम रे ।।ध्रु०।।
गाता फिरता जगमो रिझाता, क्यंव चाहाता ते दाम रे ।।भली०।।
धनकामिनिसो लपट रहयोके, पकुटे झुटे चाम रे ।।भली०।।
दुजो दौलत मारनसें पर, ले हरिजी कों नाम रे ।।भली०।।
देवनाथप्रभु देख नजरसों, सच्चा आतमाराम रे! ।।भली०।।

गोकुलवाला, ब्रिजवासी गोकुलवाला ।।ध्रु०।।
माथे मोर मुगुट है डाला मानो कोटि सुरज उजियाला।
कानन कुंडल की छब आला, गले सुहावत वैजयंतीमाला ।।गोकुल०।।
अजि जसोभत तनुरंग काला, गहरा जमुना का जल काला।
तामों रहत फणी वो काला, ताको जेर करे नंदलाला ।।गोकुल०।।
ज्याको ध्यान धरत शिव भोला, सो गोपिनसों करत किलोला।
साथ लियो गोपन का मेला, कमल नैन प्रभु छैल छबेला ।।गोकुल०।।
सद्गुरुगोविंदनाथ गोपाला, भुवनत्रय को पालनवाला।
मुरली अधर धरसो अलबेला, देवनाथ को दिनानाथ रखवाला ।।गो०।।

आपहि अपना बाप म्हतारी आपहि अपना बेटा।
आपहि अपना गुरु पिर चेला कालकहरसे छूटा।।
आपहि आप मगनमों रहेगा बोध भंगमों धुंदा।
नरकाया फेर न आवे नाहक हुवा है अंधा।।
देवनाथ ये कहत पुकारे मायामों जगमंदा।
हमतो निकसे फेर फटकर खाविंद नाथ गोविंदा ।।

रमते नाथ फकीर कोई दिन याद करोगे ! ॥ध्रु०॥
कोई दिन बैठे पालखि घोड़ा, कोई दिन गिरी ग्रबदागीर ॥कोइ०॥
कोइ दिन वोढे शाल दुशाला, कोइ दिन भगवे चीर ॥कोइ०॥
कोइ दिन धोती है लंगोटी, कोइ दिन नंगे पीर ॥कोइ०॥
कोइ दिन खासा पलंग विछानो, कोइ दिन जामिन पे गीर ॥कोइ०॥
कोइ दिन महलो म्याने सोते, कोइ दिन गंगातीर ॥कोइ०॥
कोइ दिन खेलते हंसते रोते, करले नामजिकीर ॥कोइ०॥
देवनाथ प्रभु नाथ निरंजन, सच्चे साहेब पीर ॥कोइ०॥

लगन लाग रही राम भजनसों ।
ग्रौर न कछु मन ग्रावे मेरे राम ॥ध्रु०॥
रामबिना मोहे चैन परे नहीं, झूठी दिखावन धनसुतधाम ॥लगन०॥
झूठे भाईबंद लुगाई, ग्रवसर कोउ न ग्रावे काम ॥लगन०॥
देवनाथ प्रभ नाथ निरंजन, सच्चा है गुरु ग्रात्माराम ॥लगन०॥

दयालनाथ महाराज

भज पंढरपुरवालाजी, बालाजी जगपाला जी ।।ध्रु०।।
कटपर कर बिटपर प्रभु थाडा, शामबरन घन कालाजी ।।
दाम खरचुआ कछु लगता नही, मुफ्त की तुलसी मालाजी ।।
भांगही सिरनी कछू ना जाने, चुकटी अबिर खुसियालाजी ।।
ताल बजावत गावत निशदिन, ढोल मिरदंग करतालाजी ।।
ऐसो भजनानन्द कहूं नही, नहि देखा दध कालाजी ।।
भीमातट देवनाथ दयाल, नाचत फिरत मतवाल.जी ।।

राजन को महाराजधिराजा पंढरपूरमो ठाडे हो ।।ध्रु०।।
जगत जगदीस को भेदहरन हरचरन कमल दो जोरे हो ।।
मीथ्या माया कारण विटपे यह प्रभुजी अवसारै हो ।।राज०।।
कट पर राखे सात निरंतर लागो काच्छ हमारे हो ।
बोलत भव को थाह बतावत पतित अनंत उधारे हो ।।राज०।।
भीमा तट पे नाथ दिगंबर आसा लागेही थाडे हो ।
मिलन अपने यहिये बतावत यह कारण दध च्यौरे हो ।।राज०।।
ब्रह्मानंद आनन्द भजनमो डोलत नंद दुल्हारे हो ।
देवनाथ दयाल अनाथ के घनकारे रखवारे हो ।।राज०।।

श्रीगोपाल गोविंद गदाधर पल छन रट मन मेरे ।।ध्रु०।।
स्त्री भाई पिता महतारी, पूत सुता धन तेरे ।।
काम न आवे धाम सिद्धासन, अंत समय जमद्वारे ।।श्री०।।
नाम लेत बाल्मीकि अजामिल, पशु गजकू उद्धारे ।।श्री०।।
गणिका की निजधाम दयो तेरो, पापतो ये हर्‍यो रे ।।श्री०।।
ध्रुव पहेलाद बिभीखन नारद, निसिदिनी नाम उचारे ।
व्यास बसिष्ट शुकादि मुनिनको, नाम ही जन्म सुधारे ।।श्री०।।
देवनाथ दयाल महा सब जनममरण दरवारे ।
भवसागरमो बुरत तोहे तुमरणेच, हरी तारे ।।श्री०।।

गुरू के चरण चित लागाजी ।
लागाजी प्रित धागाजी, अनुरागाजी ।।गु०।।ध्रु०।।
गुरु किरपा अंजन नैननमो, लेतही भवभ्रम भागाजी ।।
लाल सुफेद पर काला नीला, बोठा अंबर बागाजी ।।गु०।।
वामो पीत शिखा झमकत है, जोतहि झग नग जागाजी ।।गु०।।
परब्रह्म देवनाथ दयाला, देखत भवभ्रम भागाजी ।।गु०।।

गुरपद पायाजी, अनुभव आया जी ।।ध्रु०।।
सदगुरू ने जद किरपा कीयी चिदघनतक बिराजे ।
तन्मय छत्र विचित्र सुहावे अनुहत डंका बाजे ।।
द्वैतदलन करने मिलाया दैवीसंपत को जा ।
देखत ही सब शत्रु मिट गये इस बिध मैं हूं राजा ।।
सारबिचारबिबेकसो नेमधरमसो जाने ।
मुक्ति निरतितूर्या सह मिल रहू, कीर बेद बखाने ।।
भगत जगतमों मिल गये इस बिध, नामनिशान फडके ।
त्रिभुवन का सब खेल हमारा, जम की छाती तडके ।।
जगमगज्योत निरामय देखी क्या कहुँ अजब तमासा ।
देवनाथ प्रभुदयाल निरंजन झुले मस्त हमेशा ।।

हरि के चरण चितलागोरे, प्रभु के चरण चित लागोरे ।।ध्रु०।।
काहेके मातापिता और भाई काहेके पूत जमाता ।
अंतसमय कोउ नहिँ अपना जमना दुख घन पायो ।।
लालसफेद और कालानीला रंग में घुस घुस आवो ।
पीतसिखा और दामन चमकत जोत में जोतसमाओ ।।
देवनाथ प्रभुदयाल की भवती भावरी जावो ।
जनममरन का डर नहिँ बाबा जीवत मुक्ती पावो ।।

भजमन राधापत कान्हाजी ।
कान्हाजी ब्रिजराणाजी, नन्दछोनाजी ।।ध्रु०।।
अटल बेहारी मुगुट शिरशोभे, कुंडल झलकत कान्हाजी ।।भज०।।
पोत वसन कट राजत साजत, मालगले मोतियानाजी ।।भज०।।
गोपिनसो झटपट खेलत है, छतियन गेंद धरानाजी ।।भज०।।
देवनाथ प्रभु दयाल जग को, कहत जसोमति तान्हाजी ।।भज०।।

उठ प्रभातसमय जाग राधापत कान्हा ।।ध्रु०।।
गौवन को मेल बाल गोपन के अयहा ।
बजत टाल मृदंग रंग मधुर राग बीना ।।उठ०।।
पसुपत बिधी नारदादि सनक भक्त सैना ।
हात जोरकर बिनती, दर्शन दिजै नैना ।।उट०।।
ब्रिजके बाल उठ गोपाल नंदलालछोना ।
देवनाथ प्रभु दयाल गावे जस ताना ।।उठ०।।

जरा हस हस वेणु बजाओजी ।
तुमे दुहाई नंद चरनकी ।।हस०।।ध्रु०।।
लटपट पेच मुगुट पर छूटे, हसि आवत तोरे लटकन की ।।
घुंघट खोल दरस मोहे दीजै, चोट चलावो नैना पलखन की ।।

सब बनिता बिरहन की मारी, बिसरि, बिकल पल छन मन की ।।
मोरमुगुट पीतांबर शोभे, चाल चलावो जैसी मटकन की ।।
देवनाथ प्रभु दयाल तुम हो, ग्रास लगी पद सुमरण की ।।

कोई देखा देखा वनवारी जी ।।ध्रु०।।
मोर मुगुट के लटपट पेंच सो, कुंडक की छब न्यारीजी ।।कोई०।।
इत राधा उत चंद्रावलि ले, बह्यां पकर झकझोरीजी ।।कोई०।।
एक गोपीनकू चुंबक छुग्रत, छतिया धरकी नारीजी ।।कोई०।।
देवनाथ प्रभु दयाल छबीला नटनागर गिरधारीजी ।।कोई०।।

झुरमट खेलत बांके बिहारी ।।ध्रु०।।
धिमकित ताताधिमकित मंदल चरण उठत ग्रविकारी ।
ढोलक झालरि डफ धुमकत है बीन छतार करारी ।।
पायल घुंघरू छुम-छुम नाचत शोले सह सहवारी ।
ततथै ताथै एक सखी बोलत जमरही नांद सवारी ।।
तामो मुरली भोंतनननन सारिगमपधनिध भारी ।
कोयलकंठ की बठाकंठ (?) सो लपट लपट ललकारी ।।
देवनाथ प्रभुनाथ दयाल की शुकोंदिमुदे(?) ग्रांगोरी ।।झुरमुट०।।

मोहे मिला नंद का ग्रो लाला ।।मोहे०।।ध्रु०।।
गोपी जू गोपी जू गोपी जू बनसीबट के तले बजावत ग्रो थाडा ।।
लटपट पेच मुगुट ग्रलबेला, नाचत छेल छबोला ।।बजा०।।
घुंघट वामो चोट चलावे नैनन करत न्याहाला ।।बजा०।।
पीत वसन कट राजत साजत, गरे मोतन की माला ।।बजा०।।
श्याम मुरत देवनाथ दयालू ग्रखियन करत उजाला ।।ब्रजान।।

किसन के चरणन की बलिहारी ।।ध्रु०।।
मोरमुकुट पीतांबर सोभे, कुंडल की छब न्यारी ।।कि०।।
बिंद्राबन के कुंज गलिन मो, खेलत राधा प्यारी ।।कि०।।
जमुना के निर तिर धेनु चरावे, बांसरी बजावे नंद प्यारी ।।कि०।।
देवनाथ प्रभु दयालु छबीला, नटनागर गिरधारी ।।कि०।।

तूं बजावेगी कैसी बासरी अलबेली, तू जसोमती छोरी ।।ध्रु०।।
एक गोपीनें मुगुट लिया है, एक सखी ले गई पामरी ।।
एक मुरली करकी ले भागी, एक मोतनमाला तोरी ।।तूं०।।
पीतांबर एक सखी ले गई, आस पास सब दे दे तारी ।
सरस बनी है नंद की लरकी, कहत खिजावत सब नारी ।।तूं०।।
राधाजू के चरण कमल पर, सीस नमाओ करजोरी ।
तब छोरू देवनाथ दयालु, कहो तुम जीते हम हारी ।।तूं०।।

खेलुंगी आज मैं होरी, प्रभुनाथ जी संग ।।ध्रु०।।
रूप भयो जग मो हे अनुपम, जाऊँगी हूं बलहारी ।।
ग्यान गुलाल और ध्यान अबिरकी, हात लयो भरजोरी ।।
आतम रंग सवाई सो मारूं, प्रेम भरी पिचकारी ।।
देवनाथ प्रभु नाथ दयालसो कबहुं न रहूंगी न्यारी ।।

घागरिया उतारो रे बनवारी, तेरी सुरतपै वारी ।।ध्रु०।।
मैं जमुनाजल भरन जाति थी, बीच मिले गिरधारी ।।घा०।।
घगरि फूट गई चुनरि भीज गइ, सास नणद दे गारी ।।
चन्द्रसखो भज बालकृष्ण छब, चरण कमल बलिहारी ।।घा०।।
देवनाथ प्रभु दयाल तुमहो, हमसो करत बरजोरी ।।घा०।।

गुलाबराय महाराज

हरि नित निज भक्तनके संग ।।
प्रेम द्वेष जानते नाही, देते मुक्ति अभंग ।।हरी नित।।
मीरा को विष प्याला पीयो खेले गोपिनसंग ।।हरी नित।।
सूरदास को अखिया दीन्ही जनी के लिखे अभंग ।।हरी नित।।
एकनाथ घर नीर भरे प्रभु किसको चढावत तंग ।।हरी नित।।
ज्ञानेश्वरवाला गोपि हरी–साथ उडावत रंग ।।हरी नित ।।
इस भांती जिन प्रभुकी महिमा वे गुरुनाथ हमारे ।
अलकावतिपति करुणा सुंदर कोटी पुण्यनिहारे ।।

मेरे प्रभु की बलहारी है ।।
मेरे गुरुके आज्ञाबचनतें, देवयत्रकी हुशियारी है ।।मेरे प्रभुकी।।
मेरे गुरुके परमचरण की। मोरहि सीस सवारी है ।।मेरे प्रभुकी।।
जिनकी कृपातें कृष्णसंग मैं, खेलत नहिँ भी हारी है ।।मेरे प्रभुकी।।
ज्ञानेश्वरप्रभु सद्गुरु मोरे, तिन पग प्रीति हमारी है ।।मेरे प्रभुकी।।

गुरुबिन हरिगुन रंग न पावे ।।
हरीध्यानतें गुरु नहिँ मिलते, गुरुसुमिरनतें हरि घर आवे ।।गु०।।
दुष्टको मारत भक्तन तारन, हरि अपने दिल भेद लखावे ।।गु०।।
गुरु दुर्जनकूं सुजन करतु है, हरिसों अधिक गुरुहि हिय भावे ।।गु०।।
विट्ठलनंदनगुण विट्ठल से, सज्जनवदन अधिकतम गावे ।।गु०।।

मेरी माधव चरन सु प्रीत ॥
जो चाहे सो मुकती धंडे, मैं चाहूं रति रीत ॥मेरी माधव॥
कठिन बचन यह जानति नहि हूं, सुलभनाम भक्तगीत ॥मेरी माधव।
जहाँ तक रागद्वेष नहि जावे, तहाँ तक भवमय नीत ॥मेरी माधव।
ज्ञानेश्वर कन्यका विनति सुनि शामहि हृदय भरीत ॥मेरी माधव।

मुख मुरली मोहन धारी ॥
सुनत अवाज मोहि बस भये शचिपति विधि त्रिपुरारी ॥मुख०॥
जपतप छोरि कुंजबन धूंडत तापस योगि बिचारी ॥मुख०॥
चारुचरण तें कुंभिनी पावन चरण भई है सारी ॥मुख०॥
अलंदिपति नंदिनि मनहारी अनुहत खेल खिलारी ॥मुख०॥

मोरी प्रभु पग लागी प्रीति ॥
जप तप दान मनहि नहिँ भावत जात निषिल्द बिहीत ॥मोरी॥
ध्यान पकर करि जरा मिलाई कब पावोंगी रीत ॥मोरी॥
अलकावति पतिसुता कांतपग राखो सकल जिवीत ॥मोरी॥

मेरे तो तुमहि प्रभु प्राण के पियारे।
कोउ पवन जवन धरत सुखवत मुख सारे ॥
करण नयन एक करी निरखत पिव प्यारे।
जीव ब्रह्म एक करी कोउ चित्त भारे ॥मेरे॥
ब्रजराजतनुज चरणनख शरण हमारे।
अलकावतिपतिनंदिनि दिन रजनि पुकारे ॥मेरे॥

मन प्रित लागी रे रघुबर की ॥
वदन नयन टक लागी हरिसो मुनिजन सुरवर की ॥मन प्रीत॥
मन क्रम बचन नाम ही लेते देखत भव सुर की ॥मन प्रीत॥
हिय भरि राखी बयनमाधुरी अलकावतिवरकी ॥मन प्रीत॥

माई मेरी हरिपगसो टक लागी ।
विखय प्रिय सब छोर दिये है, श्यामसुंदर पर भयी अनुरागी ।।
रिद्धि सिद्धि यह बहत गयी सब, भये नयन असुबन के बिभागी ।।
सब जग हासत रोबत हम है, रोना सुख जानत ही जागी ।।
ज्ञानेश्वर प्रभुवचन श्रवणतें, गोपिरमणसंग रतिरस पागी ।।

गोपीनाथ मिलनको, साधु राहा बतावो ।।
योग याग ये मायाबनविच, कौनसि रीति सहज सिखावो ।।
सैली शिंगी मुद्रा ैनी, झोली लिइ कहा शाम दिखावो ।।
छोर दार घर संप्रदाय लिन नाथन भइ अब नथनी दिलावो ।।
मंत्र जंत्र उसि को ही देके काम क्रोध यह शेर जलावो ।।
अमृत ओहि मोहे दान देव गुरु ज्ञानेश्वर हरि एक मिलावो ।।

सुनिये मेरि पुकार माधव ।।
औरनसे मैं जिकिर न करती जामें बहुत बिकार माधव ।।
नहिँ चाहती हूं सायुजता मैं नहिँ जोगकु अधिकार माधव ।।
ज्ञानेश्वरप्रभु करुणाबलतें तुम्हारे पग लगनार माधव ।।

मेरे हिय तुरत बसो सांब शूलपाणी ।
गंगाधर नंदिवहन सदपवर्गदानी ।।मेरे हिय ।।
जरतिहूं मैं चिंतानल पायी भवग्लानी ।
दोनकें दयाल तुमहि सकल हृदय ज्ञानी ।।मेरे हिय।।
हो बिरागि नदपि कीन्हि आधतनु भवानी ।
काहे कुमर छोर दियो बर बिनु भयखानी ।।मेरे।।
जय गिरिजावल्लभगुरू जय करूणाखानी ।
ज्ञानेश्वररूप धरी रखो शिर पानी ।।मेरे।।

हरि मोरे सब सुखके दाता ।।
और हमरा कोई नहिँ जन मारूंगी संसार को लाता ।।
कोइ मुझे तो जूति लगावत कोई शिरये धरत है छाता ।।
कोई तो पेम से गुरग मोरे गावत करत कोई तो दोख कि बात ।।
स्तुति अरु निंदा शब्दमात्र है मैं तो भई नि:शब्द की ज्ञाता ।।
बर्णाश्रम यह बिधिनिषेध को मैं तो कृष्णचरण धरूँ माथा ।।
ज्ञानेश्वरकन्या सब जनको कह कर जोरि भजो रघुनाथा ।।

प्रभु बिन कौन जगत मा तुम्हारा ।।
औरत चाहत नथनि जोड को सुत चाहत दे सदन हमारा ।।प्रभु बिन।।
प्राणसंयमन धीरे धीरे करो देहसो जान्यो आत्मा न्यारा ।।प्रभु बिन।।
श्रीगुरुआज्ञा एकहि पालो हरिरूप देखा मुक्त संसारा ।।प्रभु बिन।।
तुम हम मिलके एक करेंगे प्रभु ज्ञानेश्वर चरण अधारा ।।प्रभु बि न।।

नहिँ रोना बेटा द्यूंगि पती नंदलाल ।।
तेरे कारन बलहि करोंगी भगवद्धर्म सुकाल, नहिँ रोना बेटा ।।
तेरे कारन भूमि ऊपर ल्यूंगो किसन महाल, नहिँ रोना बेटा ।।
जननि वचनको सुनिके निकरा मनका सब बेहाल, नहिँ रोना बेटा ।।
ज्ञानेश्वर प्रभु कन्या की तो पातिव्रत्यमय चाल, नहिँ रोना बेटा ।।

प्रभु तज मत जावो ब्रजगोपी बावरीया होवेंगी ।।
सास ननंदा इन्हें देखकर अधिकहि गारी देवेंगी ।
सो सुनि सुनि के ताप भया तब जमुना में मर जावेंगी ।।
तुमही अपनें मनमो देखो विचारिके नंदलाल ।
जब तुम गेथे रासमंडल से कैस भयो थो हाल ।।
फिर जो तुम आवें लवटे तो दही दुध देवेंगी ।
फिर जो मुरली नाथ बजाई तो बल तें छिन लेवेंगी ।।

तरुणी गोकुलमांहि बहुत है मथुरापुर में कोय ।
जिसके कारन भक्ति बिबसपिय गवन आपका होय ।।
यहाँ रहेंगे जदुपति तुम तो दूधदही नित लावेंगी ।
अरु अलकावतिपति करुणाबल रतिरस सुरस पिलावेंगी ।।प्रभु तज।

मैं भई दिवानी श्याम ।।
बाला कहती पतिनाम सुमर तो आवत घनश्याम ।।मैं भई।।
सास ससुर को गोता देकर धुंडति हों बनधाम ।।मैं भई।।
अलकावतिपति बचन यही है लेना व्रजबरनाम ।।मैं भई।।

बंसी बाजे झननन सुमधुर ।।
श्रवण सुनत मैं बावरि भइ हूं डारे धननंदन रमणदूर ।।बंसी बाजे।।
सुनत अवाज काम कोपरिपू प्रेम कटक बस मरि होत चूर ।।बंसी बाजे।।
सुंदर श्याम चरण दृग निरखी हिय में बाढा अनुराग पूर ।।बंसी बाजे।।
दोनों मिलिके ज्ञानेश्वर गुण गाऊं लगाय अनाहत सूर ।।बंसी बाजे।।

मैं भयी दिवानी श्याम ।।
तोर मुरली की धून सुनत सब तनुभर उबरा काम ।।मैं भयी।।
घरबार की कुछ सूद ना रही अक़ल गुंडा बेकाम ।।मैं भयी।।
वृन्दाबन मो आइ अकेली तजि तजि निज पतिसुतग्राम ।।मैं भयी।।
सुरत सावली देख तेहारी दिलकु लगा आराम ।।मैं भयी।।
तुम्हारा हमरा यहि नेह बढे ले ज्ञानेश्वर नाम ।।मैं भयी।।

मैया तेरे बालेने मोहनि डारी ।।धृ०।।
जाती थी जमुना जल भरन को रंग पिचकारी मारी ।।मैया तेरे।।
घर जंगल सब एक दिखत है भूल गयी सुध ह्मारी ।।मैया तेरे।।
ज्ञानेश्वर की कन्या हूं मैं भई श्रीहरि की नारी ।।मैया तेरे।।

जमुना तीर खड़ी ।।धृ०।।
मै हुं अकेली ग्वालन अबला तुम्हरे बहुत गडी ।।जमुना तीर।।
तुम हो लरके नंदजी लाला मैं हूँ तुमसुं बडी ।।जमुना तीर।।
कोई छोट बडा न जाके लई काम सगडी ।।जमुना तीर।।
ज्ञानेश्वरकन्या श्रीहरी को प्रेम प्रसाद अडी ।।जमुना तीर।।

मोरे किते गये दोउ लाल ।।धृ०।।
देख्यो न उन्हें जगत पसाप्यौ आठ वरस के बाल ।।मोरे।।
नहिँ पहनाई मोतन लरिया खुषि में लें बनमाल ।।मोरे।।
ज्ञानेश्वर तुम्हरे बेटिन के असुवन भीगत गाल ।।मोरे।।

कान्हा ये मुरली न बजावो ।।धृ०।।
सास हमारी गारि देत प्रभु तुम अपने घर जावो ।।कान्हा।।
कुल छुराय के चार लोक में प्रभु मोहे न लजावो ।।कान्हा ये।।
ज्ञानेश्वर करुणा कर कहके निज पग नख सुपुजावो ।।कन्हा ये।।

अबे, चल दिवाने क्या गरज तेरी हमें परी ।।धृ०।।
ले मटका दधि का सिर ऊपर, जाति हुं कंसपुरी ।।अबे चल।।
निजसम चावट युवति गोकुलीं, पाहुनि घे दुसरी ।।अबे चल।।
अलंदिबल्लभ तात हमारे, देवेंगे पीठ छरी ।।अबे चल।।

बतावो माई कोन बन रघुबीर ।।धृ०।।
हात धनुखशर लेले बनमो चालत निज पद धीर।
देखत नयनन तरु गन तारे मुक्ति दिई पुनि चीर।
तरबर तुम सब मुनिगन हो यह करते पान समीर।
तपकरि करि राम को बुलाये वनि अपवर्ग निधीर।
शामतनू रघुपति लछमन का सुंदर गौर शरीर।
श्री ज्ञानेश्वर बाला हरिपग राखति प्रेम सुशीर।

गुंडा केशव

आकल से तहकीक गुरो मुख किताब ।।
हिँदू और मुसल्लमान कर्तार बुझ ।
सोही मस्त गुंडे साहेब रिझ ।।
न हींदु मुसल्लमान कर्तार जी ।
न जोगी न ज्यंगम आसल्ल धाख जी ।।
जीसी का कीया सब अठारा बरण ।
वरण से ज्युदा बुज्य गुंडे रतण ।
तिन्हों लोक का साच्य साहेब रतण ।
आज्याति मेहरबक्ष हीरदे ल्लमरण ।।
नही ज्यात ना पात सबसे ज्युदा ।
ज्यगत में भरा सुझ्य गुंडे खुदा ।।

गरिवन्नबाई खुदा का करम ।
बुझुयो हो बुझूयो ज्यात खासा जनम ।।
कमाई करो प्रेम दिल्ल बिच धनि ।
हुसीयार गुंडे गगन मो गनि ।।
फत्तर कूं पुज्ये मुरख हिदू गंव्हार ।
फत्तर जीसने पैदा कीया सो बिचार ।।
जामि और सब कुच्य जीसी का बनाव ।
देवन का बड़ा देव गुंडे ही लाव ।।

लगी है प्रेम लगन कि याद।
पीया बिन जीयेरा केकर जीये,
खुदरते बूनियाद ॥
मेहरबक्ष दयाल अजोज कुं,
और न ज्यानु बांदा ॥
गुंडा केशो प्रेम दीललंया,
तेरी खाने ज्यादा ॥

हुआ है मनुआ सब तिरथ सपड़ा।
सकल तिरथ को आद गुंसाई,
वाकु लगन ज्यड़ा ॥
भटकत कोण फीरे दिल्ल ज्यामें,
गुरुमुख भ्रम निबड़ा।
बेहाली मो मस्त सदा है,
सब तन प्रेम गड़ा ॥
केशोदास येकीन साबुत से,
हिरदे खूब खड़ा ॥

साधो गरिब निवाज्य बड़े हैं।
ज्याको करम सकल सुख पाया, आटल खंब खड़े हैं ॥
पतित पावन साच्च गुसइयां, आलख गगन अड़े हैं।
पिरणपियारे आजीज उधारे लालसे(?) ख्याल ज्यड़े हैं ॥
मस्त सदा झुलती ज्यों कुंज्यान प्रेम महक की मोगड़े हैं ॥
गुंडा केशो करम तिहारो साहेब शोखलीड़े हैं ॥

मश्कुल्ल दिल्ली खुलाया।
दरवाज्या उलट कैं ज्याना, येह मकुं सिखलायो ॥

करले आरति अलख नरंजन।
सब घट पुरण भव भये भंज्यन ॥
पहीली आरति आपकुं पछ्यानो ।
आप ही आप मो आप समानो ॥
दूसरि आरति दोऊंन ही बुझ्या ।
येक अनेक मो साहेब से रिझ्या ॥
तिसरि आरति त्रीगुण से न्यारा ।
अनुहाद बज्यत गैबि नगारा ॥

अंतर राम बाला, बहिर राम साती।
त्रिकुट भू बन देखुं उलटह ज्योती
वैरागण प्रेम प्यारी बितरागी हुं तो
राम हि राम देखों त्रिभुवन
तन मन राम भावे, नयन झरोखे बाला
पूरब कमाई कहुं·· उज्यीला
सूफल ज्यनम खासो गुंडो केशो
ज्यये बोलो रामजी की हिरदे प्यारा।

प्रभुजी तुम मेरो ज्यजमान
अदणा ब्राह्मण तोरो भीकारि तोकुं सब अभिमान
दिन दयाल क्रीपा कर मोकुं, होते क्या है गुमान
त्रिजग के तुम ठाकुर दाता, भक्तन को सुख मान
गुंडा केशो गरिब नवाज्यो, साहेब दिल्ल ईमान

हम तो दास गुरु के नाथ उपासी
त्रीजग को आदिनाथ गोसांई, हर घट हिरदे बिलासी
आलख ज्यगत गुर सबका राज्य का, जीये का जीये मुखासी
गुंडा केशो लगन मगन मो··प्रेम गई खासी
अंदर खुदा बाहेर खुदा खुदा बुझ्यो भाई।
प्रेम झरोखे लेत मुज्यरा पकडो लागन्न कोई
खूब दिल्ल को प्यारा, बनि जी सबूब से न्यारा
बुझले दादा सुझले भाई, असल्ल नफा सारा।

माणिक महाराज

गुरुजी ! तोरे पैया पर सीस धरू ।।ध्रुवपद।।
तेरा नाम का ध्यान धरू, तेरे काज मरू।
आपने तन की चाम निकाल के, चरण पनैया करू।
माणिक कहे तेरी मूरत प्यारी, नैनन बीच भरू ।।

मनलागा मेरो रे ! अवधूता सो ।।ध्रुव।।
निराकार निर्गुन निरंजन, निराकार बिना नाथा सो।
बहुरंगी जोगी संग त्यागी, ज्ञान अखिल पददाता सो।
माणिक के मन लग गये सुमरन, अनसूयाजी के पूता सो।

देखो देखो सखि रे छब्र बालाकी ।।ध्रुवपद।।
शेषाचल पर आप बिराजे, चौकी हनुमंत लाला की।
मोर मुकुट मस्तक पर सोहे, बहुत लगी लड माला की।
माणिक के मन सुमरत बाला, फासा कटे भवजाला की ।।

नंदकुमार सावरो कान्हा, बासुरी बजाई।
शुक सनक व्यासमुनि, ध्रुव प्रल्हाद नारदमुनि।
भय रहे स्थिर देह, सूध बिसराई।
चकित भये सब ही देव, ब्रह्मा विष्नु महादेव।
त्रिभुवन मो नाद भरे सुनत शेष शायो।
स्थिर रहे जमुन नीर, डुल भये बिमानी सुर।
माणिकदास मगन भये हरि के गुण गाई ।।

*